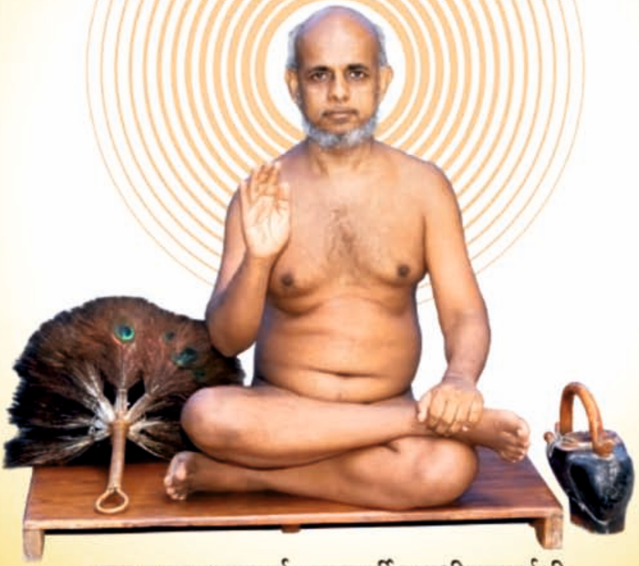

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

जैनमुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा

लेखिका
डॉक्टर साध्वी सौम्यगुणाश्री

प्रकाशक
जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय
लाडनूं (राजस्थान)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

जैन मुद्रा योग की
वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा

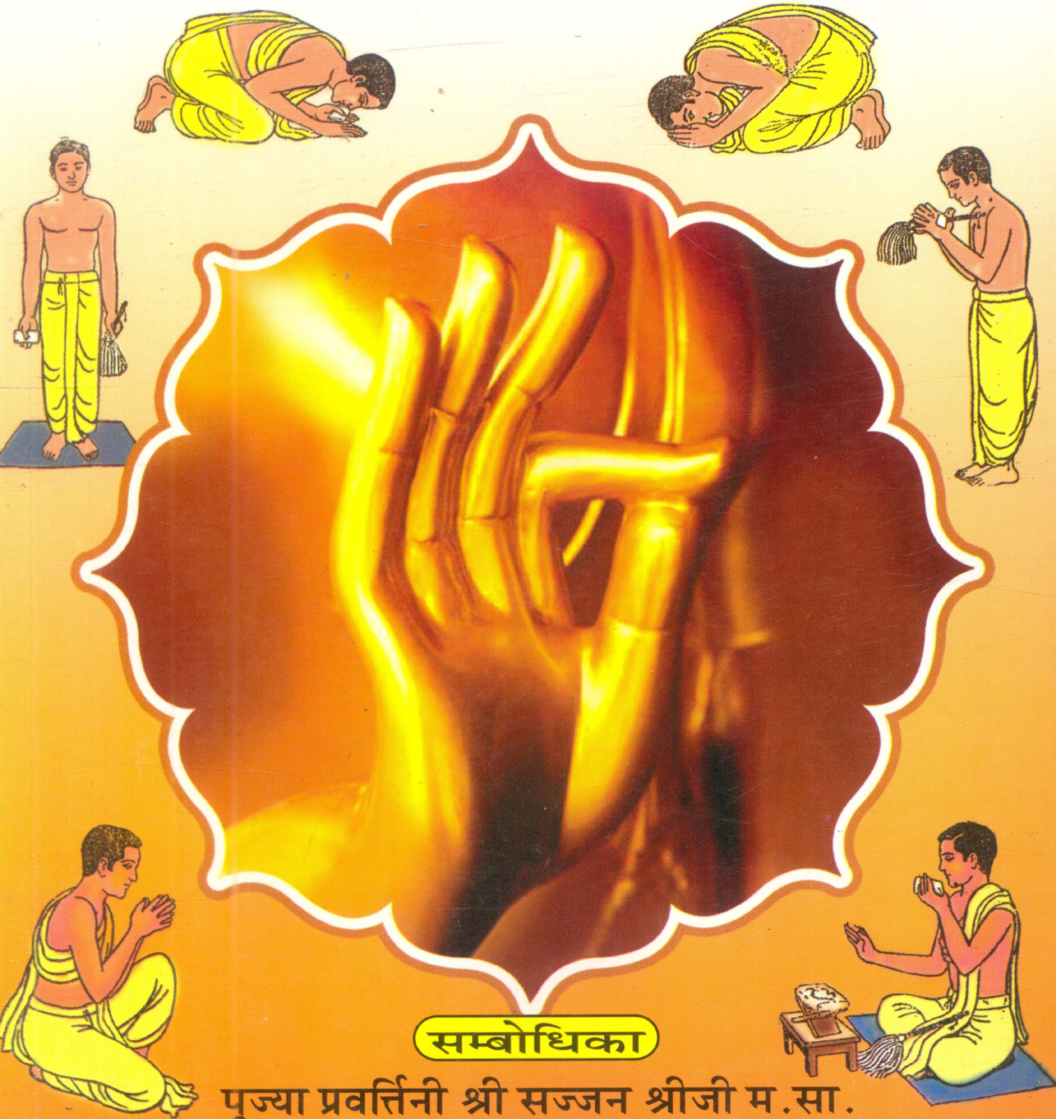

सम्बोधिका

पूज्या प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा.

परम विदुषी शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

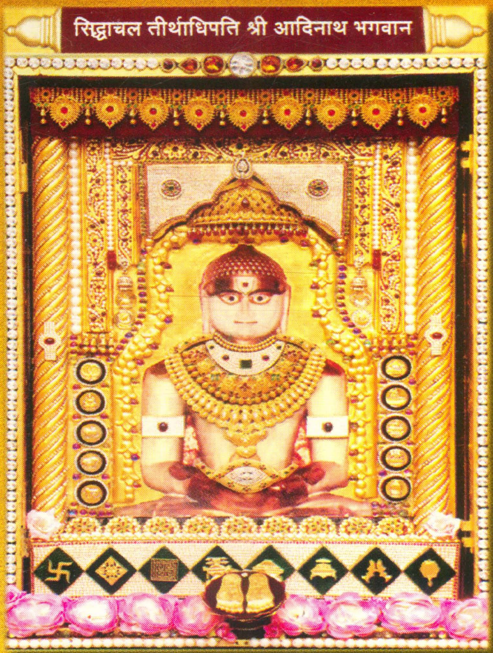

श्री जिनदत्तसूरि अजमेर दादाबाड़ी

श्री मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादाबाड़ी (दिल्ली)

श्री जिनकुशलसूरि मालपुरा दादाबाड़ी (जयपुर)

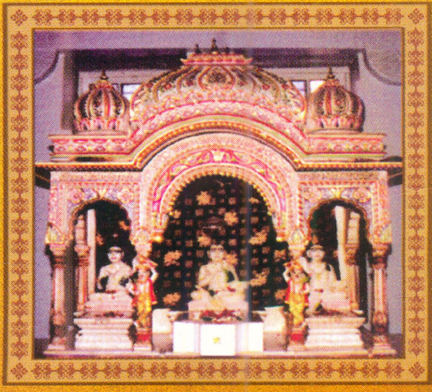

श्री जिनचन्द्रसूरि बिलाडा दादाबाड़ी (जोधपुर)

जैन मुद्रा योग की
वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा
जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर
(डी. लिट् उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-17

2012-13

R.J. 241 / 2007

णाणस्स सारमायारो

शोधार्थी
डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

निर्देशक
डॉ. सागरमल जैन

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय
लाडनूं-341306 (राज.)

जैन मुद्रा योग की

वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-17

णाणस्स सारमायारो

स्वप्न शिल्पी

आगम मर्मज्ञा प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.

संयम श्रेष्ठा पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

मूर्त्त शिल्पी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

(विधि प्रभा)

शोध शिल्पी

डॉ. सागरमल जैन

जैन मुद्रा योग की
वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा

कृपा वर्धक : पूज्य आचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा.

मंगल वर्धक : पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.

आनन्द वर्धक : आगमज्योति प्रवर्तिनी महोदया पूज्या सज्जन श्रीजी म.सा.

प्रेरणा वर्धक : पूज्य गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

वात्सल्य वर्धक : गुर्वाज्ञा निमग्ना पूज्य प्रियदर्शना श्रीजी म.सा.

स्नेह वर्धक : पूज्य दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य तत्वदर्शना श्रीजी म.सा. पूज्य सम्यक्दर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य शुभदर्शना श्रीजी म.सा. पूज्य मुदितप्रज्ञाश्रीजी म.सा., पूज्य शीलगुणाश्रीजी म.सा., म.सा., सुयोग्या कनकप्रभाजी, सुयोग्या श्रुतदर्शनाजी सुयोग्या संयमप्रज्ञाजी आदि भगिनी मण्डल

शोधकर्त्री : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)

ज्ञान वृष्टि : डॉ. सागरमल जैन

प्रकाशक :
- प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर-465001
  email : sagarmal.jain@gmail.com
- सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
  बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड, पालीताणा-364270

प्रथम संस्करण : सन् 2014

प्रतियाँ : 1000

सहयोग राशि : ₹ 100.00
(पुनः प्रकाशनार्थ)

कम्पोज : विमल चन्द्र मिश्र, वाराणसी

कॅवर सेटिंग : शम्भू भट्टाचार्य, कोलकाता

मुद्रक : Antartica Press, Kolkata

ISBN : 978-81-910801-6-2 (XVII)

© All rights reserved by Sajjan Mani Granthmala.

प्राप्ति स्थान

1. श्री सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड,
पो. पालीताणा-364270 (सौराष्ट्र)
फोन : 02848-253701

2. श्री कान्तिलालजी मुकीम
श्री जिनरंगसूरि पौशाल, आड़ी बांस
तल्ला गली, 31/A, पो. कोलकाता-7
मो. 98300-14736

3. श्री भाईसा साहित्य प्रकाशन
M.V. Building, Ist Floor
Hanuman Road, PO : VAPI
Dist. : Valsad-396191 (Gujrat)
मो. 98255-09596

4. पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.T.I. रोड, करौंदी वाराणसी-5 (यू.पी.)
मो. 09450546617

5. डॉ. सागरमलजी जैन
प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड
पो. शाजापुर-465001 (म.प्र.)
मो. 94248-76545
फोन : 07364-222218

6. श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर
तीर्थ, कैवल्यधाम
पो. कुम्हारी-490042
जिला- दुर्ग (छ.ग.)
मो. 98271-44296
फोन : 07821-247225

7. श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर
84, अमन कोविल स्ट्रीट
कोण्डी थोप, पो. चेन्नई-79 (T.N.)
फोन : 25207936,
044-25207875

8. श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी,
महावीर नगर, केम्प रोड
पो. मालेगाँव
जिला- नासिक (महा.)
मो. 9422270223

9. श्री सुनीलजी बोथरा
टूल्स एण्ड हार्डवेयर,
संजय गांधी चौक, स्टेशन रोड
पो. रायपुर (छ.ग.)
फोन : 94252-06183

10. **श्री पदमचन्दजी चौधरी**
शिवजीराम भवन, M.S.B. का रास्ता,
जौहरी बाजार
पो. जयपुर-302003
मो. 9414075821, 9887390000

11. श्री विजयराजजी डोसी
जिनकुशल सूरि दादाबाड़ी
89/90 गोविंदप्पा रोड
बसवनगुडी, पो. बैंगलोर (कर्ना.)
मो. 093437-31869

संपर्क सूत्र

श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत
9331032777
श्री रिखबचन्दजी झाड़चूर
9820022641
श्री नवीनजी झाड़चूर
9323105863
श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख
8719950000
श्री जिनेन्द्र बैद
9835564040
श्री पन्नाचन्दजी दूगड़
9831105908

आत्मार्पण

जिनका ज्ञान मंडित गंभीर, व्यक्तित्व
रत्नाकर के समान
विराट एवं विशाल है।

जिनका सत्कर्म गुंजित सृजनशील कृतित्व
विश्वकर्मा की रचनाओं के समान
नयनाभिराम एवं अभिनन्दनीय है।

जिनका मर्यादा युक्त महामनस्वी जीवन
लक्ष्मण रेखा की भाँति
अडोल, अकम्प एवं अविचल है।

जिनकी शान्ति रस बरसाती प्रेरणास्पद वाणी
प्रवाहमान सलिल की भाँति
जगवल्लभ एवं जग कल्याणी है।

जिनकी आनन्द दायिनी वरद छाँह
कल्पतरु की भाँति
अभीष्ट दायक एवं मोक्षफल प्रदायक है।

ऐसे
लोक नायक, युग श्रेष्ठ, राष्ट्रसंत
परम श्रद्धेय, आचार्य श्री पद्मसागर सूरीश्वरजी म. सा.
के
पाणि-पद्मों में
सादर अर्पित

सज्जन मन की अभिव्यक्ति

आज सर्वत्र छाया हुआ है–

आतंकी आवेश, वैज्ञानिक उन्मेष और वैचारिक विद्वेष

बढ़ रहा है जगत में–

प्रतिस्पर्धात्मक भाव, आपसी मन मुटाव और संबंधों में अलगाव

गौण होता जा रहा है–

पारिवारिक सद्भाव, सामाजिक समभाव और वैयक्तिक प्रेम भाव

इसलिए अब आवश्यक है...

संतुलित रहे मन-वचन-काया का व्यापार

सीमित हो लक्ष्यहीन दौड़ भाग

नियंत्रित हो विलासिता एवं परिग्रह के भाव

जैनाचार्यों ने बताया तदहेतु अमृत अनुष्ठान

मुद्रा प्रयोग से करिए सर्वत्र मंगल विधान

सर्व विघ्न हर लेता और देता मोक्ष निधान

साधक वर्ग के सर्वांगीण विकास के लिए

एक अभिनव आयाम...

हार्दिक अनुमोदन

अजिमगंज (प॰ बं॰) हॉल कोलकाता निवासी

श्रावकरत्न **पिता श्री रिखबचंद - मातु श्री पन्नीदेवी**

की चिरंजीवी स्मृति निमित्ते

सुपुत्र

समाज रत्न श्री सीनाचंदजी-अपराजिताजी

सुपौत्र

दीपक–आशा

सुपुत्री

मनीषा-राहुलजी सिपानी

प्रपौत्र

जय कुमार बैद परिवार

श्रुत संवर्धन की परम्परा के स्वर्ण पुरुष
श्री सोनाचंदजी बैद परिवार

संसार में मुख्य तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं– आत्मदृष्टा, युगद्रष्टा और भविष्यद्रष्टा। आत्मद्रष्टा व्यक्ति केवल अपने आपको देखते हैं, अपने बारे में सोचते हैं। उनकी समस्त गतिविधियाँ आत्म केन्द्रित होती हैं। युगद्रष्टा व्यक्तियों के सामने सम्पूर्ण युग रहता है। वे युग की स्थितियों का आकलन करते हैं, समस्याओं को देखते हैं और उनका समाधान करते हैं। भविष्यद्रष्टा व्यक्ति दूरगामी सोच रखते हैं, दूरदृष्टि से देखते हैं और आने वाले समय की पदचाप को पहचान कर पहले ही सावधान हो जाते हैं।

मानव कल्याण के प्रति समर्पित, समाज भूषण श्री सोनाचंदजी बैद समाज के ऐसे ही मूर्धन्य, सेवाभावी एवं पुरुषार्थी व्यक्ति हैं। ये जितने स्वयं के प्रति जागृत हैं उतने ही सामाजिक विकास हेतु चिंतित भी। आत्मद्रष्टा बन स्वयं का मार्ग शोधन करते हैं, युगद्रष्टा के रूप में विश्व की समस्त क्रियाओं को अपडेट रखते हुए समाज में नित नए आयाम प्रस्तुत करते हैं तथा भविष्यद्रष्टा के समान अपने अनुभव एवं दीर्घदृष्टि से सामाजिक चेतना का निर्माण करते हैं। समाज विकास इनका मूल ध्येय एवं समाज सेवा इनका मूल मंत्र है।

वर्तमान में कोलकाता निवासी श्री सोनाचंदजी बैद का जन्म 4 दिसम्बर 1951 को अजिमगंज में हुआ। कलकत्ता की गोएन्का कॉलेज Calcutta University से LLB पूर्ण कर आपने एक सफल बनाया।

"दीपकचंद सोनाचंद बैद चैरीटेबल ट्रस्ट" का गठन आपकी दानवीरता का ही परिचायक है। जो पद एवं प्रतिष्ठा आपने व्यापारिक क्षेत्र में प्राप्त की उससे कई गुणा अधिक वर्चस्व सामाजिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में हासिल किया है।

पूर्वी भारत में आप बंगाल के हैं। आपके द्वार पर आने वाला व्यक्ति कभी भी हताश या निराश होकर नहीं लौटता। समाज उत्थान आपका व्यसन है। स्कूल, हॉस्पीटल, मन्दिर, उपाश्रय आदि के निर्माण में आपका सहयोग दाताओं में शीर्षस्थ पर रहता है।

व्यावहारिक दक्षता के साथ आध्यात्मिक उच्चता पाने हेतु आप सदा गतिशील रहते हैं। व्यापारिक एवं सामाजिक जिम्मेदारियों के बावजूद भी अपने दैनिक नियमों में एकदम चुस्त हैं। विदेश यात्रा आदि में भी पूजा हेतु जिनप्रतिमा अपने साथ रखते हैं। जमीकंद आदि अभक्ष्य पदार्थों का उपयोग आपके घर में ही नहीं होता। आपका आचरण पूर्ण रूपेण एक धर्मनिष्ठ श्रावक के लिए अनुकरणीय है। आप सजोड़े 16 उपवास, 10 सजोरो से उपवास, अट्ठाई आदि तपस्या भी कर चुके हैं। अपने इस सुसंस्कृत जीवन का प्रमुख श्रेय आप अपने माता-पिता एवं आचार्य श्री पद्मसागर सूरीश्वरजी म.सा. को देते हैं। तारा बाई कांकरिया का मार्गदर्शन भी आपके जीवन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। बंगाल में पधारने वाले प्राय: साधु-साध्वीजी की सेवा हेतु आप उनके सतत संपर्क में भी रहते हैं। आचार्यश्री एवं पूज्य गुरुवर्य्याश्री की निश्रा में अजिमगंज छ:रि पालित संघ यात्रा का भव्य आयोजन एवं Train द्वारा आयोजित पालीताणा, शंखेश्वर आदि संघ यात्रा के भी आप गुरुवर के आशीर्वाद रहा है।

धर्म कार्यों के प्रति सर्वात्मना समर्पित होने पर भी आप पदलिप्सा आदि से अत्यन्त दूर रहते हैं। Name and Fame दोनों से ही मुक्त रहकर गुप्त सेवा को आप अधिक श्रेयस्कर मानते हैं।

नारी को सदा प्रेरणादीप के समान माना गया है। वह अपने प्रकाश से आस-पास रहने वाले हर व्यक्ति को सही दिशा प्रदान करती है। श्रीमती अपराजिताजी बैद एक ऐसी ही गुण संपन्न महिला है। आपकी दीर्घ दृष्टि, औदार्य वृत्ति, निश्छल प्रेम, अगाध वात्सल्य आदि से मात्र बैद परिवार ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संघ-समाज लाभान्वित होता रहता है। इसी कारण इस अल्पवय में कई लोग आपको संघ माता भी कहते हैं। सोनाचंदजी के जीवन में आप दीपक की बॉति के समान स्थान रखती हैं। श्री सोनाचंदजी

के सद्कर्तृत्व की रोशनी अपराजिताजी के निरपेक्ष एवं निष्पक्ष सहयोग की वजह से ही है। आपने परछाई बनकर जीवन की ऊँची-नीची डगर में अपने पति का साथ सहचरी के रूप में निभाया है।

सुपुत्र दीपक एवं सुपुत्री मनीषा को विदेशों में उच्च अध्ययन करवाने के बावजूद भी उन्हें धर्म संस्कारों से जोड़े रखा है तथा उनमें भी धर्म कार्यों के प्रति पूर्ण सजगता एवं समर्पण के संस्कारों का सिंचन किया है।

गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. के प्रति आपके अंतस्थल में विशेष श्रद्धा का स्पंदन है। आचार्य पद्मसागर सूरीश्वरजी म.सा. को जीवन में पूर्ण आशीर्वाद रहा है। एवं पूज्याश्री के मुखारविन्द से साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी के अध्ययन आदि के विषय में जानकर उनके सम्पूर्ण अध्ययन एवं पुस्तक प्रकाशन में सहयोगी बनने की भावना अभिव्यक्त की। दीपक USA से Physics Honrs & Computer Science (Hons.) & Master Degree करके Microsoft को Engineer बनकर Seattla USA में मनीषा Dental Dr. बनकर सेवा में है। सज्जनमणि ग्रंथमाला आप जैसे समाज गौरव के दीर्घायु जीवन की प्रार्थना करते हुए आपकी प्रशस्ति में इतना ही कहता है–

हीरे जैसा चमके चेहरा, मोती जैसी है मुस्कान।
सोने सम सौं टंच खरा, यह मानव बड़ा महान।।

●

सम्पादकीय

मुद्रा विज्ञान पंच महाभूतों पर आश्रित सबसे प्राचीन एवं त्रिकाल प्रासंगिक महाविज्ञान है। भारतीय ऋषि-महर्षियों की वैज्ञानिकता एवं विलक्षणता का ज्वलंत प्रमाण है। ध्यान, आसन, प्राणायाम आदि प्राकृतिक योग साधनाएँ सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति की ही देन है। मुद्रा भी इन्हीं योग साधनाओं का एक प्रकार है।

मुद्रा अर्थात Actin या अंग संचालन की एक विशेष क्रिया जिसके द्वारा हाव-भाव प्रदर्शित किए जाते हैं। जब से इस सृष्टि में जीव हैं तभी से मुद्रा विज्ञान का भी अस्तित्व है। वाणी से पहले भाव अभिव्यक्ति का साधन मुद्रा ही बनती है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसके अन्त:करण में जैसे भाव होते हैं वैसी ही अभिव्यक्ति उसके मन, वचन, काया से होने लगती है। उदा. जब हमें किसी पर स्नेह आ रहा हो तो सहजतया मस्तक पर हाथ चला जाता है। क्रोध आ रहा हो तो आँखे लाल हो जाती है एवं शरीर तन जाता है। अभिमान का भाव आने पर कन्धे तन जाते हैं। पूर्व काल में चित्र एवं सांकेतिक भाषा का प्रयोग एक प्रकार से मुद्रा योग का ही रूप था। उबासी आने पर चुटकी बजाने के पीछे मुद्रा प्रयोग का एक बहुत बड़ा रहस्य छुपा हुआ था। जब भी उबासी आदि लेते हुए जबड़ा फँस जाए तो अंगूठे और मध्यमा अंगुली द्वारा मुख के आगे चुटकी बजाने से जबड़ा शीघ्र ही ठीक हो जाता है।

मुद्रा मानव के शरीर रूपी यन्त्र की नियन्त्रक तालिकाएँ (Switch) हैं। इन तालिकाओं के द्वारा मनुष्य के शरीर में महत्त्वपूर्ण तात्त्विक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यत्मिक एवं शारीरिक परिवर्तन बिना किसी सहायता के सरलता से लाए जा सकते हैं। मुद्रा प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किसी भी वर्ग, आयु, लिंग के लोगों द्वारा सहजता पूर्वक सीखी जा सकती है। इसके लिए किसी विशिष्ट सामग्री, सुविधा या वातावरण की आवश्यकता नहीं, व्यक्ति जब चाहे इनका तत्काल प्रयोग कर सकता है। आज रोगों

की बढ़ती संख्या तथा Doctor एवं दवाइयों का खर्च आम आदमी के लिए बहुत बड़ी समस्या है। इन परिस्थितियों में मुद्रा प्रयोग एक ब्रह्मास्त्र है।

मुद्रा निर्माण में मुख्य सहयोगी अंग है हाथ। प्रकृति ने जल, अग्नि, वायु आदि पाँचों तत्त्वों को हमारे हाथ में समाहित किया है। मुद्रा प्रयोग के द्वारा इन तत्त्वों का संतुलन किया जाता है।

आध्यात्मिक जगत के उत्थान में भी मुद्रा प्रयोग एक सम्यक मार्ग है। आन्तरिक भावजगत एवं चक्र जागरण में मुद्रा प्रयोग संजीवनी औषधि के रूप में कार्य करता है।

दैविक साधना अथवा देवताओं को आमंत्रित करते हुए उन्हें प्रसन्न करने आदि में भी मुद्रा प्रयोग प्राचीनकाल से देखा जाता है। प्राय: जितने भी धर्म सम्प्रदाय हैं उनमें कुछ मुद्राओं का प्रयोग उनके उत्पत्ति काल से ही प्रचलित है। प्रार्थना आदि के लिए सभी के द्वारा कुछ विशिष्ट मुद्राएँ धारण की जाती है। इस्लाम धर्म में नमाज अदा करते हुए ईसाई लोगों के द्वारा प्रार्थना करते हुए कुछ विशिष्ट मुद्राएँ प्रयोग में ली जाती है। वैदिक परम्परा में देवोपासना से सम्बन्धित एवं बौद्ध परम्परा में भगवान बुद्ध से सम्बन्धित मुद्राएँ विश्व प्रसिद्ध है।

यदि जन साहित्य का अवलोकन करें तो आगम साहित्य में कहीं-कहीं पर कुछ विशिष्ट मुद्राओं का आलेख प्राप्त होता है जैसे प्रतिक्रमण सम्बन्धी मुद्राओं का उल्लेख आवश्यक सूत्र में तो गोदुहासन, खड्गासन आदि का वर्णन भगवान महावीर की साधना कर आचारांग सूत्र में प्राप्त होता है। मध्यकालीन साहित्य की अपेक्षा विविध प्रतिष्ठाकल्प, विधिमार्गप्रपा, आचारदिनकर आदि ग्रन्थ इस विषय में द्रष्टव्य हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विविध-विधानों में मुद्राओं के महत्व को देखते हुए आद्योपरान्त उपलब्ध मुद्राओं का सचित्र वर्णन करते हुए उनके लाभ आदि की प्रामाणिक चर्चा की है। जैन मुद्राओं के साथ नाट्य, बौद्ध, हिन्दू, यौगिक एवं आधुनिक चिकित्सा सम्बन्धी मुद्राओं का वर्णन करके इस कृति को विश्व उपयोगी बनाया है। मुद्राओं का सचित्र वर्णन उसकी प्रयोग विधि को और सहज एवं सरल बनाएगा। सहस्राधिक मुद्राओं का विशद एवं

प्रामाणिक यह संकलन विश्व वंदनीय है। प्रथम बार इतनी मुद्राओं को एक साथ प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

साध्वी के इस विश्वस्तरीय योगदान के लिए सदियों तक उन्हें याद किया जाएगा। यह कार्य जिन धर्म को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाएगा। मैं सौम्यगुणाश्रीजी के इस कार्य की अंतरमन से सराहना करता हूँ। वे इसी निष्ठा एवं लगन के साथ श्रुत उपासना में संलग्न रहें एवं जिनशासन के श्रुत भण्डार का वर्धन करें यही हार्दिक अभ्यर्थना है।

डॉ. सागरमल जैन
प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

आशीर्वचन

आज मन अत्यन्त आनंदित है। जिनशासन की बगिया को महकाने एवं उसे विविध रंग-बिरंगे पुष्पों से सुरभित करने का जो स्वप्न हर आचार्य देखा करता है आज वह स्वप्न पूर्णाहुति की सीमा पर पहुँच गया है। खरतरगच्छ की छोटी सी फुलवारी का एक सुविकसित सुयोग्य पुष्प है साध्वी सौम्यगुणाजी, जिसकी महक से आज सम्पूर्ण जगत सुगन्धित हो रहा है।

साध्वीजी के कृतित्व ने साध्वी समाज के योगदान को चिरस्मृत कर दिया है। आर्या चन्दनबाला से लेकर अब तक महावीर के शासन को प्रगतिशील रखने में साध्वी समुदाय का विशेष सहयोग रहा है।

विदुषी साध्वी सौम्यगुणाजी की अध्ययन रसिकता, ज्ञान प्रौढ़ता एवं श्रुत तल्लीनता से जैन समाज अक्षरशः परिचित है। आज वर्षों का दीर्घ परिश्रम जैन समाज के समक्ष 23 खण्डों के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

साध्वीजी ने जैन विधि-विधान के विविध पक्षों को भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से उद्घाटित कर इसकी त्रैकालिक प्रासंगिकता को सुसिद्ध किया है। इन्होंने श्रावक एवं साधु के लिए आचरणीय अनेक विधि-विधानों का ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, समीक्षात्मक, तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए निष्पक्ष दृष्टि से विविध परम्पराओं में प्राप्त इसके स्वरूप को भी स्पष्ट किया है।

साध्वीजी इसी प्रकार जैन श्रुत साहित्य को अपनी कृतियों से रोशन करती रहे एवं अपने ज्ञान गांभीर्य का रसास्वादन सम्पूर्ण जैन समाज को करवाती रहे, यही कामना करता हूँ। अन्य साध्वी मण्डल इनसे प्रेरणा प्राप्त कर अपनी अतुल क्षमता से संघ-समाज को लाभान्वित करें एवं जैन साहित्य की अनुद्घाटित परतों को खोलने का प्रयत्न करें, जिससे आने वाली भावी पीढ़ी जैनागमों के रहस्यों का रसास्वादन कर पाएं। इसी के साथ धर्म से विमुख एवं विश्रृंखलित होता जैन समाज विधि-विधानों के महत्त्व को समझ पाए तथा वर्तमान में फैल रही भ्रान्त

मान्यताएँ एवं आडंबर सम्यक दिशा को प्राप्त कर सकें। पुनश्च मैं साध्वीजी को उनके प्रयासों के लिए साधुवाद देते हुए यह मंगल कामना करता हूँ कि वे इसी प्रकार साहित्य उत्कर्ष के मार्ग पर अग्रसर रहें एवं साहित्यान्वेषियों की प्रेरणा बनें।

आचार्य कैलास सागर सूरि
नाकोड़ा तीर्थ

हर क्रिया की अपनी एक विधि होती है। विधि की उपस्थिति व्यक्ति को मर्यादा भी देती है और उस क्रिया के प्रति संकल्प-बद्ध रहते हुए पुरुषार्थ करने की प्रेरणा भी। यही कारण है कि जिन शासन में हर क्रिया की अपनी एक स्वतंत्र विधि है।

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन उपलब्ध होता है कि भरत महाराजा ने हर श्रावक के गले में सम्यक दर्शन,सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र रूप त्रिरत्नों की जनोई धारण करवाई थी। कालान्तर में जैन श्रावकों में यह परम्परा विलुप्त हो गई। दिगम्बर श्रावकों में आज भी यह परम्परा गतिमान है।

जिस प्रकार ब्राह्मणों में सोलह संस्कारों की विधि प्रचलित है। ठीक उसी प्रकार जैन ग्रन्थों में भी सोलह संस्कारों की विधि का उल्लेख है। आचार्य श्री वर्धमानसूरि खरतरगच्छ की रुद्रपल्लीय शाखा में हुए पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के विद्वान आचार्य थे। आचारदिनकर नामक ग्रन्थ में इन सोलह संस्कारों का विस्तृत निरूपण किया गया है। हालांकि गहन अध्ययन करने पर मालूम होता है कि आचार्य श्री वर्धमानसूरि पर तत्कालीन ब्राह्मण विधियों का पर्याप्त प्रभाव था, किन्तु स्वतंत्र विधि-ग्रन्थ के हिसाब से उनका यह ग्रन्थ अद्भुत एवं मौलिक है।

साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन गृहस्थ के व्रत ग्रहण संबंधी विधि विधानों पर तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन करके प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। यह बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ साबित होगा, इसमें कोई शंका नहीं है। साध्वी सौम्यगुणाजी सामाजिक दायित्वों में व्यस्त होने पर भी चिंतनशील एवं पुरुषार्थशील हैं। कुछ वर्ष पूर्व में

विधिमार्गप्रपा नामक ग्रन्थ पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर अपनी विद्वत्ता की अनूठी छाप समाज पर छोड़ चुकी हैं।

मैं हार्दिक भावना करता हूँ कि साध्वीजी की अध्ययनशीलता लगातार बढ़ती रहे और वे शासन एवं गच्छ की सेवा में ऐसे रत्न उपस्थित करती रहें।

उपाध्याय श्री मणिप्रभसागर

किसी भी धर्म दर्शन में उपासनाओं का विधान अवश्यमेव होता है। विविध भारतीय धर्म-दर्शनों में आध्यात्मिक उत्कर्ष हेतु अनेक प्रकार से उपासनाएँ बतलाई गई हैं। जीव मात्र के कल्याण की शुभ कामना करने वाले हमारे पूज्य ऋषि मुनियों द्वारा शील-तप-जप आदि अनेक धर्म आराधनाओं का विधान किया गया है।

प्रत्येक उपासना का विधि-क्रम अलग-अलग होता है। साध्वीजी ने जैन विधि विधानों का इतिहास और तत्सम्बन्धी वैविध्यपूर्ण जानकारियाँ इस ग्रन्थ में दी है। ज्ञान उपासिका साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी ने खूब मेहनत करके इसका सुन्दर संयोजन किया है।

भव्य जीवों को अपने योग्य विधि-विधानों के बारे में बहुत-सी जानकारियाँ इस ग्रन्थ के द्वारा प्राप्त हो सकती है।

मैं ज्ञान निमग्ना साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि इन्होंने चतुर्विध संघ के लिए उपयोगी सामग्री से युक्त ग्रन्थों का संपादन किया है।

मैं कामना करता हूँ कि इसके माध्यम से अनेक ज्ञानपिपासु अपना इच्छित लाभ प्राप्त करेंगे।

आचार्य पद्मसागर सूरि

विनयाद्यनेक गुणगण गरीमायमाना विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्रीजी एवं सौम्यगुणा श्रीजी आदि सपरिवार सादर अनुवन्दना सुखशाता के साथ।

आप शाता में होंगे। आपकी संयम यात्रा के साथ ज्ञान यात्रा अविरत चल रही होगी।

आप जैन विधि विधानों के विषय में शोध प्रबंध लिख रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

ज्ञान का मार्ग अनंत है। इसमें ज्ञानियों के तात्पर्यार्थ के साथ प्रामाणिकता पूर्ण व्यवहार होना आवश्यक रहेगा।

आप इस कार्य में सुंदर कार्य करके ज्ञानोपासना द्वारा स्वश्रेय प्राप्त करें ऐसी शासन देव से प्रार्थना है।

आचार्य राजशेखर सूरि
भद्रावती तीर्थ

महत्तरा श्रमणीवर्या श्री शशिप्रभाश्री जी
योग अनुवंदना!

आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। इसी के साथ 'शोध प्रबन्ध सार' को देखकर ज्ञात हुआ कि आपकी शिष्या साध्वी सौम्यगुणा श्री द्वारा किया गया बृहदस्तरीय शोध कार्य जैन समाज एवं श्रमण-श्रमणी वर्ग हेतु उपयोगी जानकारी का कारण बनेगा।

आपका प्रयास सराहनीय है।

श्रुत भक्ति एवं ज्ञानाराधना स्वपर के आत्म कल्याण का कारण बने यही शुभाशीर्वाद।

आचार्य रत्नाकरसूरि

जो कर रहे स्व-पर उपकार
अन्तर्हृदय से उनको अमृत उद्गार

मानव जीवन का प्रासाद विविधता की बहुविध पृष्ठ भूमियों पर आधृत है। यह न तो सरल सीधा राजमार्ग (Straight like highway) है न पर्वत का सीधा चढ़ाव (ascent) न घाटी का उतार (descent) है अपितु यह सागर की लहर (sea-wave) के समान गतिशील और उतार-चढ़ाव से युक्त है। उसके जीवन की गति सदैव एक जैसी नहीं रहती।

कभी चढ़ाव (Ups) आते हैं तो कभी उतार (Downs) और कभी कोई अवरोध (Speed Breaker) आ जाता है तो कभी कोई (trun) भी आ जाता है। कुछ अवरोध और मोड़ तो इतने खतरनाक (sharp) और प्रबल होते हैं कि मानव की गति-प्रगति और सन्मति लड़खड़ा जाती है, रुक जाती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने के लिए जैन दर्शन के आप्त मनीषियों ने प्रमुखतः दो प्रकार के विधि-विधानों का उल्लेख किया है– 1. बाह्य विधि-विधान 2. आन्तरिक विधि-विधान।

बाह्य विधि-विधान के मुख्यतः चार भेद हैं– 1. जातीय विधि-विधान 2. सामाजिक विधि-विधान 3. वैधानिक विधि-विधान 4. धार्मिक विधि-विधान।

1. जातीय विधि-विधान– जाति की समुत्कर्षता के लिए अपनी-अपनी जाति में एक मुखिया या प्रमुख होता है। जिसके आदेश को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। मुखिया नैतिक जीवन के विकास हेतु उचित-अनुचित विधि-विधान निर्धारित करता है। उन विधि-विधानों का पालन करना ही नैतिक चेतना का मानदण्ड माना जाता है।

2. सामाजिक विधि-विधान– नैतिक जीवन को जीवंत बनाए रखने के लिए समाज अनेकानेक आचार-संहिता का निर्धारण करता है। समाज द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों की आचार-संहिता को ज्यों का त्यों चुपचाप स्वीकार कर लेना ही नैतिक प्रतिमान है। समाज में पीढ़ियों से चले आने वाले सज्जन पुरुषों का अच्छा आचरण या व्यवहार समाज का विधि-विधान कहलाता है। जो इन विधि-विधानों का आचरण करता है, वह पुरुष सत्पुरुष बनने की पात्रता का विकास करता है।

3. वैधानिक विधि-विधान– अनैतिकता-अनाचार जैसी हीन प्रवृत्तियों से मुक्त करवाने हेतु राज सत्ता के द्वारा अनेकविध विधि-विधान बनाए जाते हैं। इन विधि-विधानों के अन्तर्गत 'यह करना उचित है' अथवा 'यह करना चाहिए' आदि तथ्यों का निरूपण रहता है। राज सत्ता द्वारा आदेशित विधि-विधान का पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

इन नियमों का पालन करने से चेतना अशुभ प्रवृत्तियों से अलग रहती है।

4. धार्मिक विधि-विधान— इसमें आप्त पुरुषों के आदेश-निर्देश, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निर्धारित रहते हैं। जैन दर्शन में "आणाए धम्मो" कहकर इसे स्पष्ट किया गया है। जैनागमों में साधक के लिए जो विधि-विधान या आचार निश्चित किए गये हैं, यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो आप्त के अनुसार यह कर्म अनैतिकता की कोटि में आता है। धार्मिक विधि-विधान जो अर्हत् आदेशानुसार है उसका धर्माचरण करता हुआ वीर साधक अकुतोभय हो जाता है अर्थात वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार नहीं करता। यही सद्व्यवहार धर्म है तथा यही हमारे कर्मों के नैतिक मूल्यांकन की कसौटी है। तीर्थंकरोपदिष्ट विधि-निषेध मूलक विधानों को नैतिकता एवं अनैतिकता का मानदण्ड माना गया है।

लौकिक एषणाओं से विमुक्त, अरहन्त प्रवाह में विलीन, अप्रमत्त स्वाध्याय रसिका साध्वी रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन वाङ्मय की अनमोल कृति खरतरगच्छाचार्य श्री जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित **विधिमार्गप्रपा** में गुम्फित जाज्वल्यमान विषयों पर अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन को मुख्यतः चार भाग (23 खण्डों) में वर्गीकृत करने का अतुलनीय कार्य किया है। शोध ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्टतः हो जाता है कि साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में जिन आज्ञा का निरूपण किसी परम्परा के दायरे से नहीं प्रज्ञा की कसौटी पर कस कर किया है। प्रस्तुत कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हर पंक्ति प्रज्ञा के आलोक से जगमगा रही है। बुद्धिवाद के इस युग में विधि-विधान को एक नव्य-भव्य स्वरूप प्रदान करने का सुन्दर, समीचीन, समुचित प्रयास किया गया है। आत्म पिपासुओं के लिए एवं अनुसन्धित्सुओं के लिए यह श्रुत निधि आत्म सम्मानार्जन, भाव परिष्कार और आन्तरिक औज्ज्वल्य की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।

अल्प समयावधि में साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने जिस प्रमाणिकता एवं दार्शनिकता से जिन वचनों की परम्परा के आग्रह से रिक्त तथा साम्प्रदायिक मान्यताओं के दुराग्रह से मुक्त रखकर सर्वग्राही श्रुत का निष्पादन जैन वाङ्मय के क्षितिज पर नव्य नक्षत्र के रूप में किया है। आप श्रुत साभिरुचि में निरन्तर प्रवहमान बनकर अपने निर्णय, विशुद्ध विचार एवं निर्मल प्रज्ञा के द्वारा सदैव सरल, सरस और सुगम अभिनव ज्ञान रश्मियों को प्रकाशित करती रहें। यही अन्तःकरण आशीर्वाद सह अनेकशः अनुमोदना... अभिनंदन।

जिनमहोदय सागर सूरि चरणरज
मुनि पीयूष सागर

जैन विधि की अनमोल निधि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी म.सा. द्वारा "जैन-विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर सुविस्तृत शोध प्रबन्ध सम्पादित किया गया है। वस्तुतः किसी भी कार्य या व्यवस्था के सफल निष्पादन में विधि (Procedure) का अप्रतिम महत्त्व है। प्राचीन कालीन संस्कृतियाँ चाहे वह वैदिक हो या श्रमण, इससे अछूती नहीं रही। श्रमण संस्कृति में अग्रगण्य है– जैन संस्कृति। इसमें विहित विविध विधि-विधान वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक जीवन के विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपादित करता है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध।

इस शोध प्रबन्ध की प्रकाशन वेला में हम साध्वीश्री के कठिन प्रयत्न की आत्मिक अनुमोदना करते हैं। निःसंदेह, जैन विधि की इस अनमोल निधि से श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी, विद्वान-विचारक सभी लाभान्वित होंगे। यह विश्वास करते हैं कि वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए भी यह कृति अति प्रासंगिक होगी, क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें आचार-पद्धति यानि विधि-विधानों का वैज्ञानिक पक्ष भी ज्ञात होगा और वह अधिक आचार निष्ठ बन सकेगी।

साध्वीश्री इसी प्रकार जिनशासन की सेवा में समर्पित रहकर स्व-पर विकास में उपयोगी बनें, यही मंगलकामना।

मुनि महेन्द्रसागर
1.2.13 भद्रावती

विदुषी आर्या रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन विधि विधानों पर विविध पक्षीय बृहद शोध कार्य संपन्न किया है। चार भागों में विभाजित एवं 23 खण्डों में वर्गीकृत यह विशाल कार्य निःसंदेह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है।

शासन देव से प्रार्थना है कि उनकी बौद्धिक क्षमता में दिन दूगुनी रात चौगुनी वृद्धि हो। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान गुण की वृद्धि के साथ आत्म ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनें।

यह शोध ग्रन्थ ज्ञान पिपासुओं की पिपासा को शान्त करे, यही मनोहर अभिलाषा।

महत्तरा मनोहर श्री चरणरज
प्रवर्त्तिनी कीर्तिप्रभा श्रीजी

दूध को दही में परिवर्तित
करना सरल है। जामन डालिए
और दही तैयार हो जाता है।
किन्तु, दही से मक्खन निकालना
कठिन है। इसके लिए दही को
मथना पड़ता है। तब कहीं
जाकर मक्खन प्राप्त होता है।
इसी प्रकार अध्ययन एक
अपेक्षा से सरल है, किन्तु
तुलनात्मक अध्ययन कठिन है।
इसके लिए कई शास्त्रों को
मथना पड़ता है।

साध्वी सौम्यगुणा श्री ने जैन
विधि-विधानों पर रचित साहित्य
का मंथन करके एक सुंदर चिंतन
प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है
वह अत्यंत अनुमोदनीय एवं
प्रशंसनीय है।

शुभकामना व्यक्त
करती हूँ कि यह
शास्त्रमंथन अनेक साधकों
के कर्मबंधन तोड़ने में
सहायक बने।

साध्वी संवेगनिधि

सुश्रावक श्री कान्तिलालजी मुकीम द्वारा शोध प्रबंध सार संप्राप्त हुआ। विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाजी के शोधसार ग्रन्थ को देखकर ही कल्पना होने लगी कि शोध ग्रन्थ कितना विराट्काय होगा। वर्षों के अथक परिश्रम एवं सतत रुचि पूर्वक किए गए कार्य का यह सुफल है।

वैदुष्य सह विशालता इस शोध ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारी हार्दिक शुभकामना है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका बहुमुखी विकास हो! जिनशासन के गगन में उनकी प्रतिभा, पवित्रता एवं पुण्य का दिव्यनाद हो। किं बहुना!

साध्वी मणिप्रभा श्री
भद्रावती तीर्थ

मंगल नाद

मुद्रा नाम सुनते ही हमारे सामने प्रतिष्ठा आदि में अथवा साधना आदि में प्रयुक्त कुछ मुद्राएँ उभरने लगती है, परन्तु यह शब्द मात्र वहाँ तक सीमित नहीं है। हमारी दैनिक क्रियाओं में भी मुद्रा का प्रमुख स्थान है क्योंकि जन-जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति मुद्रा के माध्यम से होती है। यदि विधि-विधान के सन्दर्भ में मुद्रा प्रयोग पर विचार करें तो अब तक प्रचलित मुद्राओं के विषय में ही जानकारी एवं पुस्तकें आदि संप्राप्त है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने मुद्रा विषयक कार्य अत्यन्त बृहद् स्तर पर कई नूतन रहस्यों की उद्घाटित करते हुए किया है। इन्होंने जैन परम्परा से सम्बन्धित लगभग 200 मुद्राएँ, 400 बौद्ध मुद्राएँ, हिन्दू और नाट्य परम्परा से सम्बन्धित करीब 400 ऐसे लगभग हजार मुद्राओं पर ऐतिहासिक कार्य किया है। जो विश्व स्तर पर अपना प्रथम स्थान रखता है। यह कार्य समस्त धर्मावलम्बियों के लिए उपयोगी भी बनेगा, क्योंकि इसे साम्प्रदायिक सीमाओं से परे किया गया है। यद्यपि बौद्ध एवं वैदिक परम्परा में इस विषय पर कार्य हुआ है किन्तु वह स्वरूप एवं विवरण तक ही सीमित है, उनकी उपादेयता एवं उपयोगिता आदि के सम्बन्ध में यह प्रथम कार्य है। इसी के साथ साध्वीजी ने सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक आदि के परिप्रेक्ष्य में भी इस विषय पर गहन अध्ययन किया है।

इन मुद्राओं में से भी अभ्यास साध्य, अनभ्यास साध्य मुद्राओं का वर्णन भिन्न-भिन्न साहित्य में प्राप्त मुद्राओं के आधार पर किया गया है। इसकी वर्तमान उपयोगिता दर्शाने हेतु साध्वीजी ने एक्युप्रेशर, चक्र जागरण, तत्त्व संतुलन एवं विभिन्न रोगों पर इनका प्रभाव आदि को परिप्रेक्ष्यों में भी यह कार्य किया है। मुद्राओं का ज्ञान सुगमता से किया जा सके एतदर्थ प्रत्येक मुद्रा का रेखाचित्र दीर्घ परिश्रम एवं अत्यन्त सजगता पूर्वक बनाया गया है।

इस दुरुह कार्य को साध्वीजी ने जिस निष्ठा एवं उदार हृदयता के साथ सम्पन्न किया है। इसके लिए वे सदैव अनुशंसनीय एवं अनुमोदनीय हैं। इनकी बौद्धिक क्षमता का ही परिणाम है कि दो वर्ष जितने लम्बे कार्य को इन्होंने एक वर्ष के भीतर पूर्ण किया है। यद्यपि कई बार हम लोगों ने समय की अल्पता, करते हुए यह कार्य की विराटता एवं दुरुहता को देख जैन परम्परा तक सीमित करने का सुझाव भी दिया परंतु यदि सामग्री एवं जानकारी होते हुए कार्य को आधा अधूरा छोड़ना यह अन्वेषक का लक्षण नहीं है। इसलिए अत्यल्प समय में कठोर श्रम के साथ इस कार्य को सात खण्डों में सम्पन्न किया है। आज मैं सौम्याजी के इस कार्य से स्वयं को ही नहीं अपितु संपूर्ण जैन समाज को गौरवान्वित अनुभव कर रही हूँ।

मैं अन्तर्मन से सौम्याजी की एकाग्रता, कार्य मग्नता, आज्ञाकारिता एवं अप्रमत्तता के लिए इन्हें साधुवाद एवं भविष्य के लिए शुभाशीष प्रदान करती हूँ।

आर्य्या शशिप्रभा श्री

दीक्षा गुरु प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा. एक परिचय

रजताभ रजकणों से रंजित राजस्थान असंख्य कीर्ति गाथाओं का वह रश्मि पुंज है जिसने अपनी आभा के द्वारा संपूर्ण धरा को देदीप्यमान किया है। इतिहास के पन्नों में जिसकी पावन पाण्डुलिपियाँ अंकित है ऐसे रंगीले राजस्थान का विश्रुत नगर है जयपुर। इस जौहरियों की नगरी ने अनेक दिव्य रत्न इस वसुधा को अर्पित किए। उन्हीं में से कोहिनूर बनकर जैन संघ की आभा को दीप्त करने वाला नाम है– पूज्या प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.।

आपश्री इस कलियुग में सतयुग का बोध कराने वाली सहज साधिका थी। चतुर्थ आरे का दिव्य अवतार थी। जयपुर की पुण्य धरा से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। आपके जीवन की अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जैसे– जन्म, विवाह, दीक्षा, देह विलय आदि इसी वसुधा की साक्षी में घटित हुए।

आपका जीवन प्राकृतिक संयोगों का अनुपम उदाहरण था। जैन परम्परा के तेरापंथी आम्नाय में आपका जन्म, स्थानकवासी परम्परा में विवाह एवं मन्दिरमार्गी खरतर परम्परा में प्रव्रज्या सम्पन्न हुई। आपके जीवन का यही त्रिवेणी संगम रत्नत्रय की साधना के रूप में जीवन्त हुआ।

आपका जन्म वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा के पर्व दिवस के दिन हुआ। आप उन्हीं के समान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म योगी, प्रज्ञाशील साधक थी। सज्जनता, मधुरता, सरलता, सहजता, संवेदनशीलता, परदुःखकातरता आदि गुण तो आप में जन्मतः परिलक्षित होते थे। इसी कारण आपका नाम सज्जन रखा गया और यही नाम दीक्षा के बाद भी प्रवर्त्तित रहा।

संयम ग्रहण हेतु दीर्घ संघर्ष करने के बावजूद भी आपने विनय, मृदुता, साहस एवं मनोबल डिगने नहीं दिया। अन्ततः 35 वर्ष की आयु में पूज्या प्रवर्त्तिनी ज्ञान श्रीजी म.सा. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीवान परिवार के राजशाही ठाठ में रहने के बाद भी संयमी जीवन का हर छोटा-बड़ा कार्य आप अत्यंत सहजता पूर्वक करती थी। छोटे-बड़े सभी की

सेवा हेतु सदैव तत्पर रहती थी। आपका जीवन सद्गुणों से युक्त विद्वत्ता की दिव्य माला था। आप में विद्यमान गुण शास्त्र की निम्न पंक्तियों को चरितार्थ करते थे-

शीलं परहितासक्ति, रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः, परिपाकोज्ज्वलं फलः ।।

अर्थात शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य, निर्लोभता आदि विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

अहिंसा, तप साधना, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता, विनम्रता एवं विद्वानों के प्रति असीम श्रद्धा उनकी विद्वत्ता की परिधि में शामिल थे। वे केवल पुस्तकें पढ़कर नहीं अपितु उन्हें आचरण में उतार कर महान बनी थी। आपको शब्द और स्वर की साधना का गुण भी सहज उपलब्ध था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात आप 20 वर्षों तक गुरु एवं गुरु भगिनियों की सेवा में जयपुर रही। तदनन्तर कल्याणक भूमियों की स्पर्शना हेतु पूर्वी एवं उत्तरी भारत की पदयात्रा की। आपश्री ने 65 वर्ष की आयु और उसमें भी ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में सिद्धाचल तीर्थ की नव्वाणु यात्रा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में धर्म की सरिता प्रवाहित करते हुए भी आप सदैव ज्ञानदान एवं ज्ञानपान में संलग्न रहती थी। इसी कारण लोक परिचय, लोकैषणा, लोकाशंसा आदि से अत्यंत दूर रही।

आपश्री प्रखर वक्ता, श्रेष्ठ साहित्य सर्जिका, तत्त्व चिंतिका, आशु कवयित्री एवं बहुभाषाविद थी। विद्वदवर्ग में आप सर्वोत्तम स्थान रखती थी। हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं पर आपका सर्वाधिकार था। जैन दर्शन के प्रत्येक विषय का आपको मर्मस्पर्शी ज्ञान था। आप ज्योतिष, व्याकरण, अलंकार, साहित्य, इतिहास, शकुन शास्त्र, योग आदि विषयों की भी परमें वेत्ता थी।

उपलब्ध सहस्त्र रचनाएँ तथा अनुवादित सम्पादित एवं लिखित साहित्य आपकी कवित्व शक्ति और विलक्षण प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

प्रभु दर्शन में तन्मयता, प्रतिपल आत्म रमणता, स्वाध्याय मग्नता, अध्यात्म लीनता, निस्पृहता, अप्रमत्तता, पूज्यों के प्रति लघुता एवं छोटों के

प्रति मृदुता आदि गुण आपश्री में बेजोड़ थे। हठवाद, आग्रह, तर्क-वितर्क, अहंकार, स्वार्थ भावना का आप में लवलेश भी नहीं था। सभी के प्रति समान स्नेह एवं मृदु व्यवहार, निरपेक्षता एवं अंतरंग विरक्तता के कारण आप सर्वजन प्रिय और आदरणीय थी।

आपकी गुण गरिमा से प्रभावित होकर गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा आपको आगम ज्योति, शास्त्र मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, अध्यात्म योगिनी आदि सार्थक पदों से अलंकृत किया गया। वहीं सकल श्री संघ द्वारा आपको साध्वी समुदाय में सर्वोच्च प्रवर्त्तिनी पद से भी विभूषित किया गया।

आपश्री के उदात्त व्यक्तित्व एवं कर्मशील कर्तृत्व से प्रभावित हजारों श्रद्धालुओं की आस्था को 'श्रमणी' अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में लोकार्पित किया गया। खरतरगच्छ परम्परा में अब तक आप ही एक मात्र ऐसी साध्वी हैं जिन पर अभिनन्दन ग्रन्थ लिखा गया है।

आप में समस्त गुण चरम सीमा पर परिलक्षित होते थे। कोई सद्गुण ऐसा नहीं था जिसके दर्शन आप में नहीं होते हो। जिसने आपको देखा वह आपका ही होकर रह गया।

आपके निरपेक्ष, निस्पृह एवं निरासक्त जीवन की पूर्णता जैन एवं जैनेतर दोनों परम्पराओं में मान्य, शाश्वत आराधना तिथि **'मौन एकादशी'** पर्व के दिन हुई। इस पावन तिथि के दिन आपने देह का त्याग कर सदा के लिए मौन धारण कर लिया। आपके इस समाधिमरण को श्रेष्ठ मरण के रूप में सिद्ध करते हुए उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. ने लिखा है-

महिमा तेरी क्या गाये हम, दिन कैसा स्वीकार किया।
मौन ग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं।।

आज परम पूज्या संघरत्ना शशिप्रभा श्रीजी म.सा. आपके मंडल का सम्यक संचालन कर रही हैं। यद्यपि आपका विचरण क्षेत्र अल्प रहा परंतु आज आपका नाम दिग्दिगन्त व्याप्त है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही हर प्रकार की Tension एवं विपदाएँ दूर हो जाती है।

●

शिक्षा गुरु पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. एक परिचय

'धोरों की धरती' के नाम से विख्यात राजस्थान अगणित यशोगाथाओं का उद्‌भव स्थल है। इस बहुरत्ना वसुंधरा पर अनेकशः वीर योद्धाओं, परमात्म भक्तों एवं ऋषि-महर्षियों का जन्म हुआ है। इसी रंग-रंगीले राजस्थान की परम पुण्यवंती साधना भूमि है श्री फलौदी। नयन रम्य जिनालय, दादाबाड़ियों एवं स्वाध्याय गुंज से शोभायमान उपाश्रय इसकी ऐतिहासिक धर्म समृद्धि एवं शासन समर्पण के प्रबल प्रतीक हैं। इस मातृभूमि ने अपने उर्वरा से कई अमूल्य रत्न जिनशासन की सेवा में अर्पित किए हैं। चाहे फिर वह साधु-साध्वी के रूप में हो या श्रावक-श्राविका के रूप में। वि.सं. 2001 की भाद्रकृष्णा अमावस्या को धर्मनिष्ठ दानवीर ताराचंदजी एवं सरल स्वभावी बालादेवी गोलेछा के गृहांगण में एक बालिका की किलकारियां गूंज रही थी। अमावस्या के दिन उदित हुई यह किरण भविष्य में जिनशासन की अनुपम किरण बनकर चमकेगी यह कौन जानता था? कहते हैं सज्जनों के सम्पर्क में आने से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तब सम्यकदृष्टि जीव तो निःसन्देह सज्जन का संग मिलने पर स्वयमेव ही महानता को प्राप्त कर लेते हैं।

किरण में तप त्याग और वैराग्य के भाव जन्मजात थे। इधर पारिवारिक संस्कारों ने उसे अधिक उफान दिया। पूर्वोपार्जित सत्संस्कारों का जागरण हुआ और वह भुआ महाराज उपयोग श्रीजी के पथ पर अग्रसर हुई। अपने बाल मन एवं कोमल तन को गुरु चरणों में समर्पित कर 14 वर्ष की अल्पायु में ही किरण एक तेजस्वी सूर्य रश्मि से शीतल शशि के रूप में प्रवर्त्तित हो गई। आचार्य श्री कवीन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में मरूधर ज्योति मणिप्रभा श्रीजी एवं आपकी बड़ी दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई।

इसे पुण्य संयोग कहें या गुरु कृपा की फलश्रुति? आपने 32 वर्ष के गुरु सान्निध्य काल में मात्र एक चातुर्मास गुरुवर्य्याश्री से अलग किया और वह भी पूज्या प्रवर्त्तिनी विचक्षण श्रीजी म.सा. की आज्ञा से। 32 वर्ष की सान्निध्यता में आप कुल 32 महीने भी गुरु सेवा से वंचित नहीं रही। आपके जीवन की यह

विशेषता पूज्यवरों के प्रति सर्वात्मना समर्पण, अगाध सेवा भाव एवं गुरुकुल वास के महत्त्व को इंगित करती है।

आपश्री सरलता, सहजता, सहनशीलता, सहृदयता, विनम्रता, सहिष्णुता, दीर्घदर्शिता आदि अनेक दिव्य गुणों की पुंज हैं। संयम पालन के प्रति आपकी निष्ठा एवं मनोबल की दृढ़ता यह आपके जिन शासन समर्पण की सूचक है। आपका निश्छल, निष्कपट, निर्दम्भ व्यक्तित्व जनमानस में आपकी छवि को चिरस्थापित करता है। आपश्री का बाह्य आचार जितना अनुमोदनीय है, आंतरिक भावों की निर्मलता भी उतनी ही अनुशंसनीय है। आपकी इसी गुणवत्ता ने कई पथ भ्रष्टों को भी धर्माभिमुख किया है। आपका व्यवहार हर वर्ग के एवं हर उम्र के व्यक्तियों के साथ एक समान रहता है। इसी कारण आप आबाल वृद्ध सभी में समादृत हैं। हर कोई बिना किसी संकोच या हिचक के आपके समक्ष अपने मनोभाव अभिव्यक्त कर सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है 'सन्त हृदय नवनीत समाना'– आपका हृदय दूसरों के लिए मक्खन के समान कोमल और सहिष्णु है। वहीं इसके विपरीत आप स्वयं के लिए वज्र से भी अधिक कठोर हैं। आपश्री अपने नियमों के प्रति अत्यन्त दृढ़ एवं अतुल मनोबली हैं। आज जीवन के लगभग सत्तर बसंत पार करने के बाद भी आप युवाओं के समान अप्रमत्त, स्फुर्तिमान एवं उत्साही रहती हैं। विहार में आपश्री की गति समस्त साध्वी मंडल से अधिक होती है।

आहार आदि शारीरिक आवश्यकताओं को आपने अल्पायु से ही सीमित एवं नियंत्रित कर रखा है। नित्य एकाशना, पुरिमड्ढ प्रत्याख्यान आदि के प्रति आप अत्यंत चुस्त हैं। जिस प्रकार सिंह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पूर्णत: सचेत एवं तत्पर रहता है वैसे ही आपश्री विषय-कषाय रूपी शत्रुओं का दमन करने में सतत जागरूक रहती हैं। विषय वर्धक अधिकांश विगय जैसे– मिठाई, कढ़ाई, दही आदि का आपके सर्वथा त्याग है।

आपश्री आगम, धर्म दर्शन, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध विषयों की ज्ञाता एवं उनकी अधिकारिणी है। व्यावहारिक स्तर पर भी आपने एम.ए. के समकक्ष दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययन के संस्कार आपको गुरु परम्परा से वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी निश्रागत गुरु भगिनियों एवं शिष्याओं के अध्ययन, संयम पालन तथा आत्मोकर्ष के प्रति

आप सदैव सचेष्ट रहती हैं। आपश्री एक सफल अनुशास्ता हैं यही वजह है कि आपकी देखरेख में सज्जन मण्डल की फुलवारी उन्नति एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर रही हैं।

तप और जप आपके जीवन का अभिन्न अंग है। 'ॐ ह्रीं अर्हं' पद की रटना प्रतिपल आपके रोम-रोम में गुंजायमान रहती है। जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप तदनुकूल मन:स्थिति बना लेती हैं। आप हमेशा कहती हैं कि

जो-जो देखा वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

आपकी परमात्म भक्ति एवं गुरुदेव के प्रति प्रवर्धमान श्रद्धा दर्शनीय है। आपका आगमानुरूप वर्तन आपको निसन्देह महान पुरुषों की कोटी में उपस्थित करता है। आपश्री एक जन प्रभावी वक्ता एवं सफल शासन सेविका हैं।

आपश्री की प्रेरणा से जिनशासन की शाश्वत परम्परा को अक्षुण्ण रखने में सहयोगी अनेकश: जिनमंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ है। श्रुत साहित्य के संवर्धन में आपश्री के साथ आपकी निश्रारत साध्वी मंडल का भी विशिष्ट योगदान रहा है। अब तक 25-30 पुस्तकों का लेखन-संपादन आपकी प्रेरणा से साध्वी मंडल द्वारा हो चुका है एवं अनेक विषयों पर कार्य अभी भी गतिमान है।

भारत के विविध क्षेत्रों का पद भ्रमण करते हुए आपने अनेक क्षेत्रों में धर्म एवं ज्ञान की ज्योति जागृत की है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छ.ग., यू.पी., बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की यात्रा कर आपने उन्हें अपनी पदरज से पवित्र किया है। इन क्षेत्रों में हुए आपके ऐतिहासिक चातुर्मासों की चिरस्मृति सभी के मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। अन्त में यही कहूँगी-

चिन्तन में जिसके हो क्षमता, वाणी में सहज मधुरता हो।
आचरण में संयम झलके, वह श्रद्धास्पद बन जाता है।
जो अन्तर में ही रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।
जो भीतर में ही भ्रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।।

ऐसी विरल साधिका आर्यारत्न पूज्याश्री के चरण सरोजों में मेरा जीवन सदा भ्रमरवत् गुंजन करता रहे, यही अन्तरकामना।

कैसे पाई सौम्याजी ने अपनी मंजिल

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

आज सौम्यगुणाजी को सफलता के इस उत्तुंग शिखर पर देखकर ऐसा लग रहा है मानो चिर रात्रि के बाद अब यह मनभावन अरुणिम वेला उदित हुई हो। आज इस सफलता के पीछे रहा उनका अथक परिश्रम, अनेकश: बाधाएँ, विषय की दुरूहता एवं दीर्घ प्रयास के विषय में सोचकर ही मन अभिभूत हो जाता है। जिस प्रकार किसान बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक अनेक प्रकार से स्वयं को तपाता एवं खपाता है और तब जाकर उसे फल की प्राप्ति होती है या फिर जब कोई माता नौ महीने तक गर्भ में बालक को धारण करती है तब उसे मातृत्व सुख की प्राप्ति होती है ठीक उसी प्रकार सौम्यगुणाजी ने भी इस कार्य की सिद्धि हेतु मात्र एक या दो वर्ष नहीं अपितु सत्रह वर्ष तक निरन्तर कठिन साधना की है। इसी साधना की आँच में तपकर आज 23 Volumes के बृहद् रूप में इनका स्वर्णिम कार्य जन ग्राह्य बन रहा है।

आज भी एक-एक घटना मेरे मानस पटल पर फिल्म के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है मानो अभी की ही बात हो, सौम्याजी को हमारे साथ रहते हुए 28 वर्ष होने जा रहे हैं और इन वर्षों में इन्हें एक सुन्दर सलोनी गुड़िया से एक विदुषी शासन प्रभाविका, गूढ़ान्वेषी साधिका बनते देखा है। एक पाँचवीं पढ़ी हुई लड़की आज D.LIt की पदवी से विभूषित होने वाली है। वह भी कोई सामान्य D.Lit. नहीं, 22-23 भागों में किया गया एक बृहद् कार्य और जिसका एक-एक भाग एक शोध प्रबन्ध (Thesis) के समान है। अब तक शायद ही किसी भी शोधार्थी ने डी.लिट् कार्य इतने अधिक Volumes में सम्पन्न किया होगा। लाडनूं विश्वविद्यालय की प्रथम डी.लिट्. शोधार्थी सौम्याजी के इस कार्य ने विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक कार्यों में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हुए श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सत्रह वर्ष पहले हम लोग पूज्या गुरुवर्य्याश्री के साथ पूर्वी क्षेत्र की स्पर्शना कर रहे थे। बनारस में डॉ. सागरमलजी द्वारा आगम ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को जानने का यह एक स्वर्णिम अवसर था अतः सन् 1995 में गुर्वाज्ञा से मैं, सौम्याजी एवं नूतन दीक्षित साध्वीजी ने भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी की ओर अपने कदम बढ़ाए। शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए हम लोग धर्म नगरी काशी पहुँचे।

वाराणसी स्थित पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वहाँ के मन्दिरों एवं पंडितों के मंत्रनाद से दूर नीरव वातावरण में अद्भुत शांति का अनुभव करवा रहा था। अध्ययन हेतु मनोज्ञ एवं अनुकूल स्थान था। संयोगवश मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. की निश्रावर्ती, मेरी बचपन की सखी पूज्या विद्युतप्रभा श्रीजी आदि भी अध्ययनार्थ वहाँ पधारी थी।

डॉ. सागरमलजी से विचार विमर्श करने के पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा पर शोध करने का निर्णय लिया गया। सन् 1973 में पूज्य गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. बंगाल की भूमि पर पधारी थी। स्वाध्याय रसिक आगमज्ञ श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भँवलालजी नाहटा से पूज्याश्री की पारस्परिक स्वाध्याय चर्चा चलती रहती थी। एकदा पूज्याश्री ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों का अनुवाद हो। पूज्याश्री योग-संयोग वश उसका अनुवाद नहीं कर पाई। विषय का चयन करते समय मुझे गुरुवर्य्या श्री की वही इच्छा याद आई या फिर यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौम्याजी की योग्यता देखते हुए शायद पूज्याश्री ने ही मुझे इसकी अन्तस् प्रेरणा दी।

यद्यपि यह ग्रंथ विधि-विधान के क्षेत्र में बहु उपयोगी था परन्तु प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध होने के कारण उसका हिन्दी अनुवाद करना आवश्यक हो गया। सौम्याजी के शोध की कठिन परीक्षाएँ यहीं से प्रारम्भ हो गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण का ज्ञान किया। तत्पश्चात दिन-रात एक कर पाँच महीनों में ही इस कठिन ग्रंथ का अनुवाद अपनी क्षमता अनुसार कर डाला। लेकिन यहीं पर समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। सौम्यगुणाजी जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दर्शनाचार्य (एम.ए.) थीं, बनारस में पी-एच.डी. हेतु आवेदन नहीं कर सकती थी। जिस लक्ष्य को लेकर आए थे वह कार्य पूर्ण नहीं

होने से मन थोड़ा विचलित हुआ परन्तु विश्वविद्यालय के नियमों के कारण हम कुछ भी करने में असमर्थ थे अत: पूज्य गुरुवर्य्याश्री के चरणों में पहुँचने हेतु पुन: कलकत्ता की ओर प्रयाण किया। हमारा वह चातुर्मास संघ आग्रह के कारण पुन: कलकत्ता नगरी में हुआ। वहाँ से चातुर्मास पूर्णकर धर्मानुरागी जनों को शीघ्र आने का आश्वासन देते हुए पूज्याश्री के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर में आगम ज्योति, पूज्या गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की समाधि स्थली मोहनबाड़ी में मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन था अत: उग्र विहार कर हम लोग जयपुर पहुँचें। बहुत ही सुन्दर और भव्य रूप में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जयपुर संघ के अति आग्रह से पूज्याश्री एवं सौम्यगुणाजी का चातुर्मास जयपुर ही हुआ। जयपुर का स्वाध्यायी श्रावक वर्ग सौम्याजी से काफी प्रभावित था। यद्यपि बनारस में पी-एच.डी. नहीं हो पाई थी किन्तु सौम्याजी का अध्ययन आंशिक रूप में चालू था। उसी बीच डॉ. सागरमलजी के निर्देशानुसार जयपुर संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. शीतलप्रसाद जैन के मार्गदर्शन में धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी श्रीमाल के डेढ़ वर्ष के अथक प्रयास से उनका रजिस्ट्रेशन हुआ। सामाजिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने अपने कार्य को गति दी।

पी-एच.डी. का कार्य प्रारम्भ तो कर लिया परन्तु साधु जीवन की मर्यादा, विषय की दुरूहता एवं शोध आदि के विषय में अनुभवहीनता से कई बाधाएँ उत्पन्न होती रही। निर्देशक महोदय दिगम्बर परम्परा के होने से श्वेताम्बर विधि-विधानों के विषय में उनसे भी विशेष सहयोग मिलना मुश्किल था अत: सौम्याजी को जो करना था अपने बलबूते पर ही करना था। यह सौम्याजी ही थी जिन्होंने इतनी बाधाओं और रूकावटों को पार कर इस शोध कार्य को अंजाम दिया।

जयपुर के पश्चात कुशल गुरुदेव की प्रत्यक्ष स्थली मालपुरा में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर लाइब्रेरी आदि की असुविधाओं के बीच भी उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया। तदनन्तर जयपुर में एक महीना रहकर महोपाध्याय विनयसागरजी से इसका करेक्शन करवाया तथा कुछ सामग्री संशोधन हेतु डॉ. सागरमलजी को भेजी। यहाँ तक तो उनकी कार्य गति अच्छी रही किन्तु इसके बाद लम्बे विहार होने से उनका कार्य प्राय: अवरूद्ध हो गया। फिर अगला चातुर्मास पालीताणा हुआ। वहाँ पर आने वाले यात्रीगणों की भीड़

और तप साधना-आराधना में अध्ययन नहींवत ही हो पाया। पुन: साधु जीवन के नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर कदम बढ़ाए। रायपुर (छ.ग.) जाने हेतु लम्बे विहारों के चलते वे अपने कार्य को किंचित भी संपादित नहीं कर पा रही थी। रायपुर पहुँचते-पहुँचते Registration की अवधि अन्तिम चरण तक पहुंच चुकी थी अत: चातुर्मास के पश्चात मुदितप्रज्ञा श्रीजी और इन्हें रायपुर छोड़कर शेष लोगों ने अन्य आसपास के क्षेत्रों की स्पर्शना की। रायपुर निवासी सुनीलजी बोथरा के सहयोग से दो-तीन मास में पूरे काम को शोध प्रबन्ध का रूप देकर उसे सन् 2001 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया। येन केन प्रकारेण इस शोध कार्य को इन्होंने स्वयं की हिम्मत से पूर्ण कर ही दिया।

तदनन्तर 2002 का बैंगलोर चातुर्मास सम्पन्न कर मालेगाँव पहुँचे। वहाँ पर संघ के प्रयासों से चातुर्मास के अन्तिम दिन उनका शोध वायवा संपन्न हुआ और उन्हें कुछ ही समय में पी-एच.डी. की पदवी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। सन् 1995 बनारस में प्रारम्भ हुआ कार्य सन् 2003 मालेगाँव में पूर्ण हुआ। इस कालावधि के दौरान समस्त संघों को उनकी पी-एच.डी. के विषय में ज्ञात हो चुका था और विषय भी रुचिकर था अत: उसे प्रकाशित करने हेतु विविध संघों से आग्रह होने लगा। इसी आग्रह ने उनके शोध को एक नया मोड़ दिया। सौम्याजी कहती 'मेरे पास बताने को बहुत कुछ है, परन्तु वह प्रकाशन योग्य नहीं है' और सही मायने में शोध प्रबन्ध सामान्य जनता के लिए उतना सुगम नहीं होता अत: गुरुवर्य्या श्री के पालीताना चातुर्मास के दौरान विधिमार्गप्रपा के अर्थ का संशोधन एवं अवान्तर विधियों पर ठोस कार्य करने हेतु वे अहमदाबाद पहुँची। इसी दौरान पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी इस कार्य का पूर्ण सर्वेक्षण कर उसमें अपेक्षित सुधार करवाए। तदनन्तर L.D. Institute के प्रोफेसर जितेन्द्र भाई, फिर कोबा लाइब्रेरी से मनोज भाई सभी के सहयोग से विधिमार्गप्रपा के अर्थ में रही त्रुटियों को सुधारते हुए उसे नवीन रूप दिया।

इसी अध्ययन काल के दौरान जब वे कोबा में विधि ग्रन्थों का आलोडन कर रही थी तब डॉ. सागरमलजी का बायपास सर्जरी हेतु वहाँ पदार्पण हुआ। सौम्याजी को वहाँ अध्ययनरत देखकर बोले– "आप तो हमारी विद्यार्थी हो, यहाँ क्या कर रही हो? शाजापुर पधारिए मैं यथासंभव हर सहयोग देने का प्रयास करूँगा।" यद्यपि विधि विधान डॉ. सागरमलजी का विषय नहीं था परन्तु

उनकी ज्ञान प्रौढ़ता एवं अनुभव शीलता सौम्याजी को सही दिशा देने हेतु पर्याप्त थी। वहाँ से विधिमार्गप्रपा का नवीनीकरण कर वे गुरुवर्य्याश्री के साथ मुम्बई चातुर्मासार्थ गईं। महावीर स्वामी देरासर पायधुनी से विधिप्रपा का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ।

किसी भी कार्य में बार-बार बाधाएँ आए तो उत्साह एवं प्रवाह स्वत: मन्द हो जाता है, परन्तु सौम्याजी का उत्साह विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धिंगत रहा। मुम्बई का चातुर्मास पूर्णकर वे शाजापुर गईं। वहाँ जाकर डॉ. साहब ने डी.लिट करने का सुझाव दिया और लाडनूं विश्वविद्यालय के अन्तर्गत उन्हीं के निर्देशन में रजिस्ट्रेशन भी हो गया। यह लाडनूं विश्व भारती का प्रथम डी.लिट. रजिस्ट्रेशन था। सौम्याजी से सब कुछ ज्ञात होने के बाद मैंने उनसे कहा– प्रत्येक विधि पर अलग-अलग कार्य हो तो अच्छा है और उन्होंने वैसा ही किया। परन्तु जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वह इतना विराट रूप ले लेगा यह अनुमान भी नहीं था। शाजापुर में रहते हुए इन्होंने छ:सात विधियों पर अपना कार्य पूर्ण किया। फिर गुर्वाज्ञा से कार्य को बीच में छोड़ पुन: गुरुवर्य्या श्री के पास पहुँची। जयपुर एवं टाटा चातुर्मास के सम्पूर्ण सामाजिक दायित्वों को संभालते हुए पूज्याश्री के साथ रही।

शोध कार्य पूर्ण रूप से रूका हुआ था। डॉ.साहब ने सचेत किया कि समयावधि पूर्णता की ओर है अत: कार्य शीघ्र पूर्ण करें तो अच्छा रहेगा वरना रजिस्ट्रेशन रद्द भी हो सकता है। अब एक बार फिर से उन्हें अध्ययन कार्य को गति देनी थी। उन्होंने लघु भगिनी मण्डल के साथ लाइब्रेरी युक्त शान्त-नीरव स्थान हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। इस बार लक्ष्य था कि कार्य को किसी भी प्रकार से पूर्ण करना है। उनकी योग्यता देखते हुए श्री संघ एवं गुरुवर्य्या श्री उन्हें अब समाज के कार्यों से जोड़े रखना चाहते थे परंतु कठोर परिश्रम युक्त उनके विशाल शोध कार्य को भी सम्पन्न करवाना आवश्यक था। बनारस पहुँचकर इन्होंने मुद्रा विधि को छोटा कार्य जानकर उसे पहले करने के विचार से उससे ही कार्य को प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उस कार्य ने भी एक विराट रूप ले लिया। उनका यह मुद्रा कार्य विश्वस्तरीय कार्य था जिसमें उन्होंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, योग एवं नाट्य परम्परा की सहस्राधिक हस्त मुद्राओं पर विशेष शोध किया। यद्यपि उन्होंने दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को 6-7

महीने में एक बार पूर्ण कर लिया, किन्तु उसके विभिन्न कार्य तो अन्त तक चलते रहे। तत्पश्चात उन्होंने अन्य कुछ विषयों पर और भी कार्य किया। उनकी कार्यनिष्ठा देख वहाँ के लोग हतप्रभ रह जाते थे। संघ-समाज के बीच स्वयं बड़े होने के कारण नहीं चाहते हुए भी सामाजिक दायित्व निभाने ही पड़ते थे।

सिर्फ बनारस में ही नहीं रायपुर के बाद जब भी वे अध्ययन हेतु कहीं गई तो उन्हें ही बड़े होकर जाना पड़ा। सभी गुरु बहिनों का विचरण शासन कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने से इस समस्या का सामना भी उन्हें करना ही था। साधु जीवन में बड़े होकर रहना अर्थात संघ-समाज-समुदाय की समस्त गतिविधियों पर ध्यान रखना, जो कि अध्ययन करने वालों के लिए संभव नहीं होता परंतु साधु जीवन यानी विपरीत परिस्थितियों का स्वीकार और जो इन्हें पार कर आगे बढ़ जाता है वह जीवन जीने की कला का मास्टर बन जाता है। इस शोधकार्य ने सौम्याजी को विधि-विधान के साथ जीवन के क्षेत्र में भी मात्र मास्टर नहीं अपितु विशेषज्ञ बना दिया।

पूज्य बड़े म.सा. बंगाल के क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। कोलकाता वालों की हार्दिक इच्छा सौम्याजी को बुलाने की थी। वैसे जौहरी संघ के पदाधिकारी श्री प्रेमचन्दजी मोघा एवं मंत्री मणिलालजी दुसाज शाजापुर से ही उनके चातुर्मास हेतु आग्रह कर रहे थे। अत: न चाहते हुए भी कार्य को अर्ध विराम दे उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। शाजापुर एवं बनारस प्रवास के दौरान किए गए शोध कार्य का कम्पोज करवाना बाकी था और एक-दो विषयों पर शोध भी। परंतु "जिसकी खाओ बाजरी उसकी बजाओ हाजरी" अत: एक और अवरोध शोध कार्य में आ चुका था। गुरुवर्य्या श्री ने सोचा था कि चातुर्मास के प्रारम्भिक दो महीने के पश्चात इन्हें प्रवचन आदि दायित्वों से निवृत्त कर देंगे परंतु समाज में रहकर यह सब संभव नहीं होता।

चातुर्मास के बाद गुरुवर्य्या श्री तो शेष क्षेत्रों की स्पर्शना हेतु निकल पड़ी किन्तु उन्हें शेष कार्य को पूर्णकर अन्तिम स्वरूप देने हेतु कोलकाता ही रखा। कोलकाता जैसी महानगरी एवं चिर-परिचित समुदाय के बीच तीव्र गति से अध्ययन असंभव था अत: उन्होंने मौन धारण कर लिया और सप्ताह में मात्र एक घंटा लोगों से धर्म चर्चा हेतु खुला रखा। फिर भी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति संभव नहीं थी। इसी बीच कोलकाता संघ के आग्रह से एवं अध्ययन

हेतु अन्य सुविधाओं को देखते हुए पूज्याश्री ने इनका चातुर्मास कलकत्ता घोषित कर दिया। पूज्याश्री से अलग हुए सौम्याजी को करीब सात महीने हो चुके थे। चातुर्मास सम्मुख था और वे अपनी जिम्मेदारी पर प्रथम बार स्वतंत्र चातुर्मास करने वाली थी।

जेठ महीने की भीषण गर्मी में उन्होंने गुरुवर्य्याश्री के दर्शनार्थ जाने का मानस बनाया और ऊपर से मानसून सिना ताने खड़ा था। अध्ययन कार्य पूर्ण करने हेतु समयावधि की तलवार तो उनके ऊपर लटक ही रही थी। इन परिस्थितियों में उन्होंने 35-40 कि.मी. प्रतिदिन की रफ्तार से दुर्गापुर की तरफ कदम बढ़ाए। कलकत्ता से दुर्गापुर और फिर पुनः कोलकाता की यात्रा में लगभग एक महीना पढ़ाई नहींवत हुई। यद्यपि गुरुवर्य्याश्री के साथ चातुर्मासिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारियाँ इन्हीं की होती है फिर भी अध्ययन आदि के कारण इनकी मानसिकता चातुर्मास संभालने की नहीं थी और किसी दृष्टि से उचित भी था। क्योंकि सबसे बड़े होने के कारण प्रत्येक कार्यभार का वहन इन्हीं को करना था अतः दो माह तक अध्ययन की गति पर पुनः ब्रेक लग गया। पूज्या श्री हमेशा फरमाती है कि–

जो जो देखा वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

सौम्याजी ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर संघ-समाज को समय ही नहीं अपितु भौतिकता में भटकते हुए मानव को धर्म की सही दिशा भी दिखाई। वर्तमान परिस्थितियों पर उनकी आम चर्चा से लोगों में धर्म को देखने का एक नया नजरिया विकसित हुआ। गुरुवर्य्याश्री एवं हम सभी को आन्तरिक आनंद की अनुभूति हो रही थी किन्तु सौम्याजी को वापस दुगुनी गति से अध्ययन में जुड़ना था। इधर कोलकाता संघ ने पूर्ण प्रयास किए फिर भी हिन्दी भाषा का कोई अच्छा कम्पोजर न मिलने से कम्पोजिंग कार्य बनारस में करवाया गया। दूरस्थ रहकर यह सब कार्य करवाना उनके लिए एक विषम समस्या थी। परंतु अब शायद वे इन सबके लिए सध गई थी, क्योंकि उनका यह कार्य ऐसी ही अनेक बाधाओं का सामना कर चुका था।

उधर सैंथिया चातुर्मास में पूज्याश्री का स्वास्थ्य अचानक दो-तीन बार बिगड़ गया। अतः वर्षावास पूर्णकर पूज्य गुरूवर्य्या श्री पुनः कोलकाता की ओर

पधारी। सौम्याजी प्रसन्न थी क्योंकि गुरूवर्य्या श्री स्वयं उनके पास पधार रही थी। गुरुजनों की निश्रा प्राप्त करना हर विनीत शिष्य का मनेच्छित होता है। पूज्या श्री के आगमन से वे सामाजिक दायित्वों से मुक्त हो गई थी। अध्ययन के अन्तिम पड़ाव में गुरूवर्य्या श्री का साथ उनके लिए सुवर्ण संयोग था क्योंकि प्रायः शोध कार्य के दौरान पूज्याश्री उनसे दूर रही थी।

शोध समय पूर्णाहुति पर था। परंतु इस बृहद कार्य को इतनी विषमताओं के भंवर में फँसकर पूर्णता तक पहुँचाना एक कठिन कार्य था। कार्य अपनी गति से चल रहा था और समय अपनी धुरी पर। सबमिशन डेट आने वाली थी किन्तु कम्पोजिंग एवं प्रूफ रीडिंग आदि का काफी कार्य शेष था।

पूज्याश्री के प्रति अनन्य समर्पित श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा को जब इस स्थिति के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने युनिवर्सिटी द्वारा समयावधि बढ़ाने हेतु अर्जी पत्र देने का सुझाव दिया। उनके हार्दिक प्रयासों से 6 महीने का एक्सटेंशन प्राप्त हुआ। इधर पूज्या श्री तो शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा सम्पन्न कर अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने की इच्छुक थी। परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है यह कोई नहीं जानता। कुछ विशिष्ट कारणों के चलते कोलकाता भवानीपुर स्थित शंखेश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा चातुर्मास के बाद होना निश्चित हुआ। अतः अब आठ-दस महीने तक बंगाल विचरण निश्चित था। सौम्याजी को अप्रतिम संयोग मिला था कार्य पूर्णता के लिए।

शासन देव उनकी कठिन से कठिन परीक्षा ले रहा था। शायद विषमताओं की अग्नि में तपकर वे सौम्याजी को खरा सोना बना रहे थे। कार्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता इसी से पूर्व उनके द्वारा लिखित 23 खण्डों में से एक खण्ड की मूल कॉपी गुम हो गई। पुनः एक खण्ड का लेखन और समयावधि की अल्पता ने समस्याओं का चक्रव्यूह सा बना दिया। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जिनपूजा क्रिया विधानों का एक मुख्य अंग है अतः उसे गौण करना या छोड़ देना भी संभव नहीं था। चांस लेते हुए एक बार पुनः Extension हेतु निवेदन पत्र भेजा गया। मुनि जीवन की कठिनता एवं शोध कार्य की विशालता के मद्देनजर एक बार पुनः चार महीने की अवधि युनिवर्सिटी के द्वारा प्राप्त हुई।

शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा निमित्त सम्पूर्ण साध्वी मंडल का चातुर्मास बकुल बगान स्थित लीलीजी मणिलालजी सुखानी के नूतन बंगले में होना निश्चित हुआ।

पूज्याश्री ने खडगपुर, टाटानगर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। पाँच-छह साध्वीजी अध्ययन हेतु पौशाल में ही रूके थे। श्री जिनरंगसूरि पौशाल कोलकाता बड़ा बाजार में स्थित है। साधु-साध्वियों के लिए यह अत्यंत शाताकारी स्थान है। सौम्याजी को बनारस से कोलकाता लाने एवं अध्ययन पूर्ण करवाने में पौशाल के ट्रस्टियों की विशेष भूमिका रही है। सौम्याजी ने अपना अधिकांश अध्ययन काल वहाँ व्यतीत किया।

ट्रस्टीगण श्री कान्तिलालजी, कमलचंदजी, विमलचंदजी, मणिलालजी आदि ने भी हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। संघ-समाज के सामान्य दायित्वों से बचाए रखा। इसी अध्ययन काल में बीकानेर हाल कोलकाता निवासी श्री खेमचंदजी बांठिया ने आत्मीयता पूर्वक सेवाएँ प्रदान कर इन लोगों को निश्चिन्त रखा। इसी तरह अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत (लालाबाबू) जो सौम्याजी को बहनवत मानते हैं उन्होंने एक भाई के समान उनकी हर आवश्यकता का ध्यान रखा। कलकत्ता संघ सौम्याजी के लिए परिवारवत ही हो गया था। सम्पूर्ण संघ की एक ही भावना थी कि उनका अध्ययन कोलकाता में ही पूर्ण हो।

पूज्याश्री टाटानगर से कोलकाता की ओर पधार रही थी। सुयोग्या साध्वी सम्यग्दर्शनाजी उग्र विहार कर गुरुवर्य्याश्री के पास पहुँची थी। सौम्याजी निश्चिंत थी कि इस बार चातुर्मासिक दायित्व सुयोग्या सम्यग दर्शनाजी महाराज संभालेंगे। वे अपना अध्ययन उचित समयावधि में पूर्ण कर लेंगे। परंतु परिस्थिति विशेष से सम्यगजी महाराज का चातुर्मास खडगपुर ही हो गया।

सौम्याजी की शोधयात्रा में संघर्षों की समाप्ति ही नहीं हो रही थी। पुस्तक लेखन, चातुर्मासिक जिम्मेदारियाँ और प्रतिष्ठा की तैयारियाँ कोई समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। अध्ययन की महत्ता को समझते हुए पूज्याश्री एवं अमिताजी सुखानी ने उन्हें चातुर्मासिक दायित्वों से निवृत्त रहने का अनुनय किया किन्तु गुरु की शासन सेवा में सहयोगी बनने के लिए इन्होंने दो महीने गुरुवर्य्या श्री के साथ चातुर्मासिक दायित्वों का निर्वाह किया। फिर वह अपने अध्ययन में जुट गई।

कई बार मन में प्रश्न उठता कि हमारी प्यारी सौम्या इतना साहस कहाँ से लाती है। किसी कवि की पंक्तियाँ याद आ रही है–

सूरज से कह दो बेशक वह, अपने घर आराम करें।
चाँद सितारे जी भर सोएं, नहीं किसी का काम करें।
अगर अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है।
तो सौम्य गुणा सा जुगनु सारा, अंधकार हर लेता है।।

जिन पूजा एक विस्तृत विषय है। इसका पुनर्लेखन तो नियत अवधि में हो गया परंतु कम्पोजिंग आदि नहीं होने से शोध प्रबंध के तीसरे एवं चौथे भाग को तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अब तीसरी बार लाडनूं विश्वविद्यालय से Extension मिलना असंभव प्रतीत हो रहा था।

श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा समस्त परिस्थितियों से अवगत थे। उन्होंने पूज्य गुरूवर्य्या श्री से निवेदन किया कि सौम्याजी को पूर्णत: निवृत्ति देकर कार्य शीघ्रातिशीघ्र करवाया जाए। विश्वविद्यालय के तत्सम्बन्धी नियमों के बारे में पता करके डेढ़ महीने की अन्तिम एवं विशिष्ट मौहलत दिलवाई। अब देरी होने का मतलब था Rejection of Work by University अत: त्वरा गति से कार्य चला।

सौम्याजी पर गुरुजनों की कृपा अनवरत रही है। पूज्य गुरूवर्य्या सज्जन श्रीजी म.सा. के प्रति वह विशेष श्रद्धा प्रणत हैं। अपने हर शुभ कर्म का निमित्त एवं उपादान उन्हें ही मानती हैं। इसे साक्षात गुरु कृपा की अनुश्रुति ही कहना होगा कि उनके समस्त कार्य स्वत: ग्यारस के दिन सम्पन्न होते गए। सौम्याजी की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्याश्री को समर्पित उनकी कृति पूज्याश्री की पुण्यतिथि के दिन विश्वविद्यालय में Submit की जाए और निमित्त भी ऐसे ही बने कि Extension लेते-लेते संयोगवशात पुन: वही तिथि और महीना आ गया।

23 दिसम्बर 2012 मौन ग्यारस के दिनें लाडनूं विश्वविद्यालय में 4 भागों में वर्गीकृत 23 खण्डीय Thesis जमा की गई। इतने विराट शोध कार्य को देखकर सभी हतप्रभ थे। 5556 पृष्ठों में गुम्फित यह शोध कार्य यदि शोध नियम के अनुसार तैयार किया होता तो 11000 पृष्ठों से अधिक हो जाते। यह सब गुरूवर्य्या श्री की ही असीम कृपा थी।

पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. की हार्दिक इच्छा थी कि सौम्याजी के इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान किया जाए जिससे जिन शासन की प्रभावना हो और जैन संघ गौरवान्वित बने।

भवानीपुर-शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा का पावन सुयोग था। श्रुतज्ञान के बहुमान रूप 23 ग्रन्थों का भी जुलूस निकाला गया। सम्पूर्ण कोलकाता संघ द्वारा उनकी वधामणी की गई। यह एक अनुमोदनीय एवं अविस्मरणीय प्रसंग था।

बस मन में एक ही कसक रह गई कि मैं इस पूर्णाहुति का हिस्सा नहीं बन पाई।

आज सौम्याजी की दीर्घ शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर देखकर नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पूज्या प्रवर्त्तिनी म.सा. जहाँ भी आत्म साधना में लीन है वहाँ से उनकी अनवरत कृपा दृष्टि बरस रही है। शोध कार्य पूर्ण होने के बाद भी सौम्याजी को विराम कहाँ था? उनके शोध विषय की त्रैकालिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य शेष थे तथा पुस्तकों का प्रकाशन कोलकाता से ही हो रहा था। अत: कलकत्ता संघ के प्रमुख श्री कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, श्राविका श्रेष्ठा प्रमिलाजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा आदि ने पूज्याश्री के सम्मुख सौम्याजी को रोकने का निवेदन किया। श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत, श्री मणिलालजी दूसाज आदि भी निवेदन कर चुके थे। यद्यपि अजीमगंज दादाबाड़ी प्रतिष्ठा के कारण रोकना असंभव था परंतु मुकिमजी के अत्याग्रह के कारण पूज्याश्री ने उन्हें कुछ समय के लिए वहाँ रहने की आज्ञा प्रदान की।

गुरूवर्य्या श्री के साथ विहार करते हुए सौम्यागुणाजी को तीन Stop जाने के बाद वापस आना पड़ा। दादाबाड़ी के समीपस्थ शीतलनाथ भवन में रहकर उन्होंने अपना कार्य पूर्ण किया। इस तरह इनकी सम्पूर्ण शोध यात्रा में कलकत्ता एक अविस्मरणीय स्थान बनकर रहा।

क्षणै: क्षणै: बढ़ रहे उनके कदम अब मंजिल पर पहुँच चुके हैं। आज जो सफलता की बहुमंजिला इमारत इस पुस्तक श्रृंखला के रूप में देख रहे हैं वह मजबूत नींव इन्होंने अपने उत्साह, मेहनत और लगन के आधार पर रखी है। सौम्यगुणाजी का यह विशद् कार्य युग-युगों तक एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में

स्मरणीय रहेगा। श्रुत की अमूल्य निधि में विधि-विधान के रहस्यों को उजागर करते हुए उन्होंने जो कार्य किया है वह आने वाली भावी पीढ़ी के लिए आदर्श रूप रहेगा। लोक परिचय एवं लोकप्रसिद्धि से दूर रहने के कारण ही आज वे इस बृहद् कार्य को सम्पन्न कर पाई हैं। मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि वे सदा इसी तरह श्रुत संवर्धन के कल्याण पथ पर गतिशील रहे। अंततः उनके अडिग मनोबल की अनुमोदना करते हुए यही कहूँगी–

प्रगति शिला पर चढ़ने वाले बहुत मिलेंगे,
कीर्तिमान करने वाला तो विरला होता है।
आंदोलन करने वाले तो बहुत मिलेंगे,
दिशा बदलने वाला कोई निराला होता है।
तारों की तरह टिम-टिमाने वाले अनेक होते हैं,
पर सूरज बन रोशन करने वाला कोई एक ही होता है।
समय गंवाने वालों से यह दुनिया भरी है,
पर इतिहास बनाने वाला कोई सौम्य सा ही होता है।
प्रशंसा पाने वाले जग में अनेक मिलेंगे,
प्रिय बने सभी का ऐसा कोई सज्जन ही होता है।।

●

हार्दिक अभिवन्दना

किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर कहा है-

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आवत फल होय।।

हर कार्य में सफलता समय आने पर ही प्राप्त होती है। एक किसान बीज बोकर साल भर तक मेहनत करता है तब जाकर उसे फसल प्राप्त होती है। चार साल तक College में मेहनत करने के बाद विद्यार्थी Doctor, Engineer या MBA होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी आज सफलता के जिस शिखर पर पहुँची है उसके पीछे उनकी वर्षों की मेहनत एवं धैर्य नींव रूप में रहे हुए हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व सौम्याजी का आगमन हमारे मण्डल में एक छोटी सी गुड़िया के रूप में हुआ था। व्यवहार में लघुता, विचारों में सरलता एवं बुद्धि की श्रेष्ठता उनके प्रत्येक कार्य में तभी से परिलक्षित होती थी। ग्यारह वर्ष की निशा जब पहली बार पूज्याश्री के पास वैराग्यवासित अवस्था में आई तब मात्र चार माह की अवधि में प्रतिक्रमण, प्रकरण, भाष्य,कर्मग्रन्थ, प्रात:कालीन पाठ आदि कंठस्थ कर लिए थे। उनकी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण पूज्य छोटे म.सा. (पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा.) उन्हें अधिक से अधिक चीजें सिखाने की इच्छा रखते थे।

निशा का बाल मन जब अध्ययन से उक्ता जाता और बाल सुलभ चेष्टाओं के लिए मन उत्कंठित होने लगता, तो कई बार वह घंटों उपाश्रय की छत पर तो कभी सीढ़ियों में जाकर छुप जाती ताकि उसे अध्ययन न करना पड़े। परंतु यह उसकी बाल क्रीड़ाएँ थी। 15-20 गाथाएँ याद करना उसके लिए एक सहज बात थी। उनके अध्ययन की लगन एवं सीखने की कला आदि के अनुकरण की प्रेरणा आज भी छोटे म.सा. आने वाली नई मंडली को देते हैं। सूत्रागम अध्ययन, ज्ञानार्जन, लेखन, शोध आदि के कार्य में उन्होंने जो श्रृंखला प्रारम्भ की है आज सज्जनमंडल में उसमें कई कड़ियाँ जुड़ गई हैं परन्तु मुख्य कड़ी तो

मुख्य ही होती है। ये सभी के लिए प्रेरणा बन रही हैं किन्तु इनके भीतर जो प्रेरणा आई वह कहीं न कहीं पूज्य गुरुवर्य्या श्री की असीम कृपा है।

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत कर्म के लिए चाहिए
महत प्रेरणा बल भी भीतर

यह महत प्रेरणा गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। विनय, सरलता, शालीनता, ऋजुता आदि गुण गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सौम्याजी का मन शुरू से सीधा एवं सरल रहा है। सांसारिक कपट-माया या व्यवहारिक औपचारिकता निभाना इनके स्वभाव में नहीं है। पूज्य प्रवर्तिनीजी म.सा. को कई बार ये सहज में कहती **'महाराज श्री!' मैं तो आपकी कोई सेवा नहीं करती, न ही मुझमें विनय है, फिर मेरा उद्धार कैसे होगा, मुझे गुरु कृपा कैसे प्राप्त होगी?' तब पूज्याश्री फरमाती– 'सौम्या! तेरे ऊपर तो मेरी अनायास कृपा है, तूं चिंता क्यों करती है? तूं तो महान साध्वी बनेगी।'** आज पूज्याश्री की ही अन्तस शक्ति एवं आशीर्वाद का प्रस्फोटन है कि लोकैषणा, लोक प्रशंसा एवं लोक प्रसिद्धि के मोह से दूर वे श्रुत सेवा में सर्वात्मना समर्पित हैं। जितनी समर्पित वे पूज्या श्री के प्रति थी उतनी ही विनम्र अन्य गुरुजनों के प्रति भी। गुरु भगिनी मंडल के कार्यों के लिए भी वे सदा तत्पर रहती हैं। चाहे बड़ों का कार्य हो, चाहे छोटों का उन्होंने कभी किसी को टालने की कोशिश नहीं की। चाहे प्रियदर्शना श्रीजी हो, चाहे दिव्यदर्शना श्रीजी, चाहे शुभदर्शनाश्रीजी हो, चाहे शीलगुणा जी आज तक सभी के साथ इन्होंने लघु बनकर ही व्यवहार किया है। कनकप्रभाजी, संयमप्रज्ञाजी आदि लघु भगिनी मंडल के साथ भी इनका व्यवहार सदैव सम्मान, माधुर्य एवं अपनेपन से युक्त रहा है। ये जिनके भी साथ चातुर्मास करने गई हैं उन्हें गुरुवत सम्मान दिया तथा उनकी विशिष्ट आन्तरिक मंगल कामनाओं को प्राप्त किया है। पूज्या विनीता श्रीजी म.सा., पूज्या मणिप्रभाश्रीजी म.सा., पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या सुलोचना श्रीजी म.सा., पूज्या विद्युतप्रभाश्रीजी म.सा. आदि की इन पर विशेष कृपा रही है। पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा., आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी म.सा., आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी आदि ने इन्हें अपना

स्नेहाशीष एवं मार्गदर्शन दिया है। आचार्य श्री राजयशसूरिजी म.सा., पूज्य भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. एवं पूज्य वाचंयमा श्रीजी (बहन) म.सा. इनका Ph.D. एवं D.Litt. का विषय विधि-विधानों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'विधिप्रभा' नाम से ही बुलाते हैं।

पूज्या शशिप्रभाजी म.सा. ने अध्ययन काल के अतिरिक्त इन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं किया और आज भी हम सभी गुरु बहनों की अपेक्षा गुरु निश्रा प्राप्ति का लाभ इन्हें ही सर्वाधिक मिलता है। पूज्याश्री के चातुर्मास में अपने विविध प्रयासों के द्वारा चार चाँद लगाकर ये उन्हें और भी अधिक जानदार बना देती हैं।

तप-त्याग के क्षेत्र में तो बचपन से ही इनकी विशेष रुचि थी। नवपद की ओली का प्रारम्भ इन्होंने गृहस्थ अवस्था में ही कर दिया था। इनकी छोटी उम्र को देखकर छोटे म.सा. ने कहा- देखो! तुम्हें तपस्या के साथ उतनी ही पढ़ाई करनी होगी तब तो ओलीजी करना अन्यथा नहीं। ये बोली- मैं रोज पन्द्रह नहीं बीस गाथा करूंगी आप मुझे ओलीजी करने दीजिए और उस समय ओलीजी करके सम्पूर्ण प्रात:कालीन पाठ कंठाग्र किये। बीसस्थानक, वर्धमान, नवपद, मासक्षमण, श्रेणी तप, चत्तारि अट्ठ दस दोय, पैंतालीस आगम, ग्यारह गणधर, चौदह पूर्व, अट्ठाईस लब्धि, धर्मचक्र, पखवासा आदि कई छोटे-बड़े तप करते हुए इन्होंने अध्ययन एवं तपस्या दोनों में ही अपने आपको सदा अग्रसर रखा।

आज उनके वर्षों की मेहनत की फलश्रुति हुई है। जिस शोध कार्य के लिए वे गत 18 वर्षों से जुटी हुई थी उस संकल्पना को आज एक मूर्त्त स्वरूप प्राप्त हुआ है। अब तक सौम्याजी ने जिस धैर्य, लगन, एकाग्रता, श्रुत समर्पण एवं दृढ़निष्ठा के साथ कार्य किया है वे उनमें सदा वृद्धिंगत रहे। पूज्य गुरुवर्य्या श्री के नक्शे कदम पर आगे बढ़ते हुए वे उनके कार्यों को और नया आयाम दें तथा श्रुत के क्षेत्र में एक नया अवदान प्रस्तुत करें। इन्हीं शुभ भावों के साथ-

गुरु भगिनी मण्डल

प्राक्कथन

मुद्रा योग विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, अध्यात्म साधना का आवश्यक चरण है तथा शास्त्रीय विद्याओं में विशिष्टतम विद्या है। मानव मात्र के समग्र विकास के लिए मुद्रा योग अत्यन्त ही उपयोगी है। भारतीय ऋषि-महर्षियों ने मन, बुद्धि एवं शरीर को शान्त रखने के लिए विभिन्न मुद्राओं का प्रयोग किया था। इस विज्ञान के द्वारा हम आज भी आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति प्राप्त करके भव-भवान्तर को सफल बना सकते हैं।

मानव मात्र की अन्त: शक्तियाँ असीम हैं किन्तु वे हमारी असीमित कल्पना के विस्तृत क्षेत्र से भी परे हैं। भौतिक स्तर पर जीवन यात्रा का निर्वहन करने वाला व्यक्ति उन अन्त: शक्तियों को न पहचान सकता है और न ही उनका सार्थक उपयोग कर पाता है। वह सामान्यत: अज्ञानजनित बुद्धि एवं मोहादि के वशीभूत हुआ बाह्य उपलब्धियों को ही वास्तविक मानता है। मुद्रा एक ऐसी पद्धति है जिसके माध्यम से हम जड़-चेतन का भेद ज्ञान करते हुए यथार्थता के निकट पहुँच सकते हैं, पौद्गलिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का मूल्यांकन कर सकते हैं और अन्तरंग शक्तियों को जागृत करने हेतु प्रयत्नशील हो सकते हैं। प्रत्येक मानव का अन्तिम लक्ष्य यही होना चाहिए कि उसे अपनी निजी शक्तियों का बोध हो और अपने स्वरूप की पहचान हो। एक बार चेतना के उच्च स्तरों की झलक दिख जाये तो मायाजाल के सभी झूठे प्रपंच एवं समस्याएँ समाप्त हो सकती है।

इस उच्च भूमिका पर आरोहण करने के लिए चित्त का एकाग्र होना आवश्यक है। अधिकांश पद्धतियों में एकाग्रता के महत्त्व पर जोर दिया गया है। एकाग्रता द्वारा हम बहिरंग जीवन की ओर प्रवाहित होती हुई चेतना को अन्तरंग क्षेत्रों की ओर मोड़ सकते हैं। यदि प्रश्न उठता है कि एकाग्रता क्या है? साधारणत: एकाग्रता का मतलब है अपनी चेतन-धारा को सभी बाह्य विषयों एवं विचारों से हटाकर किसी विशेष विचार-बिन्दु पर केन्द्रित करना। यह कार्य सरल नहीं है। हमारी चेतना को विविधता प्रिय है। एक

से दूसरे और दूसरे से तीसरे विषय पर मंडराने की आदत बहुत पुरानी है इसे एक विषय पर केन्द्रित करना संकल्प साध्य है।

मुद्राएँ शरीर एवं चित्त स्थिरीकरण के लिए ब्रह्मास्त्र का कार्य करती हैं। जैसे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कभी निष्फल नहीं जाता वैसे ही सुविधि युक्त किया गया मुद्राभ्यास स्थिरता गुण को विकसित करता है। घेरण्ड संहिता में सुस्पष्ट कहा गया है कि स्थिरता के लिए मुद्रायोग को साधना चाहिए।

स्थैर्य गुण बहिरंग व अन्तरंग समग्र पक्षों से अत्यन्त लाभदायी है। हम अनुभव करें तो निःसन्देह महसूस हो सकेगा कि स्थिरता के पलों में व्यक्ति की चेतना अबाध रूप से प्रवाहित होने लगती है। इस अवस्था में अवचेतन मन में छिपे मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप चेतन मन के स्तर तक ऊपर उठ आते हैं तथा अनावृत्त होने लगते हैं।

सामान्य तौर पर मानसिक विक्षेपों के कारण हम अपनी आंतरिक शक्तियों से संबंध स्थापित नहीं कर पाते अथवा उन्हें अभिव्यक्त नहीं कर पाते। जबकि एकाग्रता के क्षणों में ही हम अपने व्यक्तित्व के आंतरिक पक्षों को समझना प्रारंभ करते हैं। इस प्रकार एकाग्र चित्त के परिणाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुद्रा विज्ञान से इन परिणामों को अवश्यंभावी प्राप्त किया जाता है।

मुद्राएँ शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन बनाए रखती है। हठयोग संबंधी मुद्राभ्यास में बन्ध का प्रयोग भी किया जाता है स्वभावतः मुद्रा और बन्ध हमारे शरीर के स्नायु जालकों तथा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को उत्तेजित करते हैं और शरीर की जैव-ऊर्जाओं को सक्रिय करते हैं। कभी-कभी मुद्राएँ आंतरिक, मानसिक या अतीन्द्रिय भावनाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के रूप में भी कार्य करती हैं। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है।

हमारे शरीर में अतीन्द्रिय शक्तियों से युक्त एक यौगिक पथ है जिसे मेरूदण्ड कहते हैं। इस मार्ग पर तथा इसके ऊपरी और निचले हिस्से में अनेक शक्तियाँ मौजूद हैं। साथ ही इस मार्गस्थित शक्तियों के इर्द-गिर्द विभिन्न स्नायु जाल बिछे हुए हैं। ये जाल मस्तिष्क केन्द्रों और अंतःस्रावी ग्रंथियों से सीधे जुड़े होते हैं। यौगिक मुद्राओं से स्नायु मंडल जागृत होकर शरीर में अनेक मनोवैज्ञानिक और जीव-रासायनिक परिवर्तन करते हैं। इन स्थितियों में अदृश्य शक्ति सम्पन्न षट्चक्रों का भेदन होता है और चेतन धारा ऊर्ध्वगामी बनती है।

मुद्रा तत्त्व परिवर्तन की अपूर्व क्रिया है। हमारा शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित माना जाता है। इन तत्त्वों की विकृति के कारण ही प्रकृति में असंतुलन और शरीर में रोग पैदा होते हैं। हस्त मुद्राएँ पंच तत्त्वों को संतुलित करने का सशक्त माध्यम है क्योंकि शरीर की पाँचों अंगुलियाँ पंच तत्त्व की प्रतिनिधि है, जिन्हें इन अंगुलियों की मदद से घटा-बढ़ाकर संतुलित किया जा सकता है। शरीर विज्ञान के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के अग्रभाग से जोड़ा जाए तो उससे सम्बन्धित तत्त्व स्थिर हो जाता है, जैसे अंगूठा अग्नि तत्त्व का स्थान है, तर्जनी वायु तत्त्व का, मध्यमा आकाश तत्त्व का, अनामिका पृथ्वी तत्त्व का और कनिष्ठिका जल तत्त्व का प्रतीक है। इस प्रकार अंगूठे के स्पर्श से संबंधित अंगुलियों के तत्त्व जो शरीर में व्याप्त हैं, प्रभावित होते हैं।

अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के निचले हिस्से अर्थात् मूल पर्व पर लगाने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व की शरीर में वृद्धि होती है। यदि अंगुली को मोड़कर अंगूठे की जड़ में अर्थात उसके आधार पर रखने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व का शरीर में ह्रास होता है। इस प्रकार विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से पंच तत्त्वों को घटा-बढ़ाकर सन्तुलित किया जा सकता है। इससे शरीर को स्वास्थ्य-लाभ मिलता है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि अधिकांश मुद्राएँ हाथों से ही क्यों की जाती है? यदि गहराई से अवलोकन करें तो परिज्ञात होता है कि शरीर के सक्रिय अंगों में हाथ प्रमुख है। हथेली में एक विशेष प्रकार की प्राण ऊर्जा अथवा शक्ति का प्रवाह निरन्तर होता रहता है। इसी कारण शरीर के किसी भी भाग में दु:ख, दर्द, पीड़ा होने पर सहज की हाथ वहाँ चला जाता हैं। अंगुलियों में अपेक्षाकृत संवेदनशीलता अधिक होती है इसी कारण अंगुलियों से ही नाड़ी को देखा जाता है। जिससे मस्तिष्क में नब्ज की कार्यविधि का संदेश शीघ्र पहुंच जाता है। रेकी चिकित्सा में हथेली का ही उपयोग होता है। रत्न चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के नगीने अंगूठी के माध्यम से हाथ की अंगुलियों में ही पहने जाते हैं जिनकी तरंगों के प्रभाव से शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है।

एक्यूप्रेशर चिकित्सा में हथेली में सारे शरीर के संवदेन बिन्दु होते हैं। सुजोक बायल मेरेडियन के सिद्धान्तानुसार अंगुलियों से ही शरीर के

विभिन्न अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को नियन्त्रित और संतुलित किया जा सकता है। हस्त रेखा विशेषज्ञ हथेली देखकर व्यक्ति के वर्तमान, भूत और भविष्य की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को बतला सकते हैं। कहने का आशय यही है कि हाथ, हथेली और अंगुलियों का मनुष्य की जीवन शैली से सीधा सम्बन्ध होता है। ये मुद्राएँ शरीरस्थ चेतना के शक्ति केन्द्रों में रिमोट कन्ट्रोल के समान कार्य करती हैं फलत: स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारण होता है।

मुद्रा यह किसी एक धर्म या सम्प्रदाय से अथवा हिन्दु या बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित नहीं है। ईसाई धर्म में भी हस्त मुद्राएँ देवता एवं संतों के अभिप्राय तथा अभिव्यक्ति के माध्यम रहे हैं। ईसा मसीह द्वारा ऊपर किए गए दाएँ हाथ की मध्यमा एवं तर्जनी ऊर्ध्व की ओर, अनामिका एवं कनिष्ठका हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठा उन दोनों को आवेष्टित करते हुए ऐसी जो मुद्रा दर्शायी जाती है वह कृपा, क्षमा एवं देवी आशीष की सूचक है। इसी प्रकार मरियम की मूर्ति में जो मुद्रा दिखाई देती है वह मातृत्व एवं ममत्त्व भाव की सूचक है। यह भगवान के इच्छाओं के स्वीकार की भी द्योतक है।

हिन्दु और बौद्ध धर्म में प्रयुक्त कई मुद्राएँ विशिष्ट देवी-देवताओं आदि की सूचक है। मुख्यतया तांत्रिक मुद्राएँ विशेष प्रसंगों में पादरी तथा लामाओं द्वारा धारण की जाती है। इस प्रकार मुद्रा विज्ञान समस्त धर्मपरम्परा सम्मत है।

मुद्रा योग से संबन्धित यह शोध कार्य सात खण्डों में किया गया है।

प्रथम खण्ड में मुद्रा का स्वरूप विश्लेषण करते हुए तत्संबंधी कई मूल्यवान् तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मुद्रा योग का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पक्ष भी प्रस्तुत किया है जिससे शोधार्थी एवं आत्मार्थी आवश्यक जानकारी एक साथ प्राप्त कर सकते हैं। इस खण्ड का अध्ययन करने पर परवर्ती खण्डों की विषय वस्तु भी स्पष्ट हो जाती है इस प्रकार यह मुख्य आधारभूत होने से इस खण्ड को प्रथम क्रम पर रखा गया है।

तदनन्तर सर्व प्रकार की मुद्राओं का उद्भव नृत्य व नाट्य कला से माना जाता है। विश्व की भौगोलिक गतिविधियों के अनुसार आज से लगभग **बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास न्यून एक कोटाकोटि सागरोपम पूर्व** भगवान ऋषभदेव हुए, जिन्हें वैदिक परम्परा में भी युग के आदि कर्त्ता

माना गया है। जैन आगमकार कहते हैं कि उस समय मनुष्यों का जीवन निर्वाह कल्पवृक्ष से होता था। धीर-धीरे काल का सुप्रभाव निस्तेज होने लगा, उससे भोजन आदि की कई समस्याएं उपस्थित हुई। तब ऋषभदेव ने पिता प्रदत्त राज्य पद का संचालन करते हुए लोगों को भोजन पकाने, अन्न उत्पादन करने, वस्त्र बुनने आदि का ज्ञान दिया। वे पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन आमोद-प्रमोद तथा नीति नियम पूर्वक जी सकें, एतदर्थ पुरुषों को 72 एवं स्त्रियों को 64 प्रकार की विशिष्ट कलाएँ सिखाई। उनमें नृत्य-नाट्य और मुद्रा कला का भी प्रशिक्षण दिया। इससे सिद्ध होता है कि मुद्रा विज्ञान की परम्परा आदिकालीन एवं प्राचीनतम है। इसलिए नाट्य मुद्राओं को द्वितीय खण्ड में स्थान दिया गया है।

प्रश्न हो सकता है कि नाट्य मुद्राओं पर किया गया यह कार्य कितना उपयोगी एवं प्रासंगिक है? इस सम्बन्ध में इतना स्पष्ट है कि जीवन में स्वाभाविक मुद्रा का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। 1. नृत्य में प्राय: सभी मुद्राएँ सहज होती है।

2. जो लोग नृत्य-नाट्यादि में रूचि रखते हैं वे इस कला के मर्म को समझ सकेंगे तथा उसकी उपयोगिता के बारे में अन्यों को ज्ञापित कर इस कला का गौरव बढ़ा सकते हैं।

3. जो नृत्यादि कला सीखने में उत्साही एवं उद्यमशील हैं वे मुद्राओं से होते फायदों के बारे में यदि जाने तो इस कला के प्रति सर्वात्मना समर्पित हो एक स्वस्थ जीवन की उपलब्धि करते हुए दर्शकों के चित्त को पूरी तरह आनन्दित कर सकते हैं। साथ ही दर्शकों का शरीर व मन प्रभावित होने से वे भी निरोग तथा चिन्तामुक्त जीवन से परिवार एवं समाज विकास में ठोस कार्य कर सकते हैं।

4. नृत्य कला में प्रयुक्त मुद्राओं से होने वाले सुप्रभावों की प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध हो तो इसके प्रति उपेक्षित जनता भी अनायास जुड़ सकती है और हाथ-पैरों के सहज संचालन से कई अनूठी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकती हैं।

5. यदि नाट्याभिनय में दक्षता हासिल हो जाये तो प्रतिष्ठा-दीक्षादि महोत्सव, गुरू भगवन्तों के नगर प्रवेश, प्रभु भक्ति आदि प्रसंगों में उपस्थित जन समूह को भक्ति मग्न कर सकते हैं। साथ ही शुभ परिणामों की भावधारा

का वेग बढ़ जाने से पूर्वबद्ध अशुभ कर्मों को क्षीणकर परम पद को प्राप्त किया जा सकता है।

6. कुछ लोगों में नृत्य कला का अभाव होता है ऐसे व्यक्तियों को इसका मूल्य समझ में आ जाये तो वे भक्ति माहौल में स्वयं को एकाकार कर सकते हैं। उस समय हाथ आदि अंगों का स्वाभाविक संचालन होने से षट्चक्र आदि कई शक्ति केन्द्र प्रभावित होते हैं और उससे एक आरोग्य वर्धक जीवन प्राप्त होता है तथा अंतरंग की दूषित वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं।

7. हमारे दैनिक जीवन व्यवहार में हर्ष-शोक, राग-द्वेष, आनन्द-विषाद आदि परिस्थितियों के आधार पर जो शारीरिक आकृतियाँ बनती है इन समस्त भावों को नाट्य में भी दर्शाया जाता है इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ समस्त देहधारियों (मानवों) की जीवनचर्या का अभिन्न अंग है।

नाट्य मुद्राओं पर शोध करने का एक ध्येय यह भी है कि किसी संत पुरुष या अलौकिक पुरुष द्वारा सिखाया गया ज्ञान कभी निरर्थक नहीं हो सकता। इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ अनेक दृष्टियों से मूल्यवान् हैं।

तदनन्तर जैन शास्त्रों में वर्णित मुद्राओं को महत्त्व देते हुए उन्हें तीसरे खण्ड में गुम्फित किया गया है। क्योंकि जैन धर्म अनादिनिधन होने के साथ-साथ इस मुद्रा विज्ञान के आरम्भ कर्ता एवं युग के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान है। इन्हें जैन धर्म के आद्य संस्थापक भी माना जाता है।

मुद्रा सम्बन्धी चौथे खण्ड में हिन्दू परम्परा की मुद्राओं का आधुनिक परिशीलन किया गया है। हिन्दू धर्म में प्रचलित कई मुद्राओं का प्रभाव जैन आचार्यों पर पड़ा तथा देवपूजन आदि से संबंधित कतिपय मुद्राएँ यथावत् स्वीकार भी कर ली गई ऐसा माना जाता है। वर्तमान में विवाह आदि कई संस्कार प्राय: हिन्दू पण्डितों के द्वारा ही करवाये जा रहे हैं इसलिए इसे चौथे क्रम पर रखा गया है। दूसरे, हिन्दू धर्म में सर्वाधिक क्रियाकाण्ड होता है और उनमें मुद्रा प्रयोग होता ही है।

मुद्रा सम्बन्धी पाँचवें खण्ड में बौद्ध परम्परावर्ती मुद्राओं को सम्बद्ध किया गया है। यद्यपि भगवान महावीर और भगवान बुद्ध समकालीन थे फिर भी हिन्दू धर्म जैनों के निकट माना जाता है। यही कारण है कि अनेक कर्मकाण्डों का प्रभाव जैन अनुयायियों पर पड़ा। आज भी जैन परम्परा के

लोग हिन्दू मन्दिरों में बिना किसी भेद-भाव के चले जाते हैं जबकि बौद्ध धर्म के प्रति ऐसा झुकाव नहीं देखा जाता।

हिन्दू धर्म भारत के प्राय: सभी प्रान्तों में फैला हुआ है जबकि बौद्ध धर्म श्रमण परम्परा का संवाहक होने पर भी कुछ प्रान्तों में ही सिमट गया है। इन्हीं पहलूओं को ध्यान में रखते हुए बौद्ध मुद्राओं को पांचवाँ स्थान दिया गया है।

प्रस्तुत शोध के छठवें खण्ड में यौगिक मुद्राओं एवं सातवें खण्ड में आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं का विवेचन किया गया है। वर्तमान में बढ़ रही समस्याओं एवं अनावश्यक तनावों से छुटकारा पाने के लिए योगाभ्यास परमावश्यक है। इसलिए यौगिक एवं प्रचलित मुद्राओं को पृथक् स्थान देते हुए जन साधारण के लिए उपयोगी बनाया है। साथ ही ये मुद्राएँ किसी परम्परा विशेष से भी सम्बन्धित नहीं है।

इस तरह उपरोक्त सातों खण्ड में मुद्राओं का जो क्रम रखा गया है वह पाठकों के सुगम बोध के लिए है। इससे मुद्राओं की श्रेष्ठता या लघुता का निर्णय नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वरूपत: प्रत्येक मुद्रा अपने आप में सर्वोत्तम है। किन्तु प्रयोक्ता के अनुसार जो जिसके लिए विशेष फायदा करती है वह श्रेष्ठ हो जाती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह शोध कार्य केवल विधि स्वरूप तक ही सीमित नहीं है इसमें प्रत्येक मुद्रा का शब्दार्थ, उद्देश्य, उनके सुप्रभाव, प्रतीकात्मक अर्थ, कौन सी मुद्रा किस प्रसंग में की जाये आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यों को भी उजागर किया गया है जिससे यह शोध समग्र पाठकों के लिए हमेशा उपादेय सिद्ध हो सकेगा।

प्रसंगानुसार मुद्रा चित्रों के सम्बन्ध में यह कहना चाहूंगी कि यद्यपि चित्रों को बनाने में पूर्ण सावधानी रखी गयी है फिर भी उसमें गलतियाँ रहना संभव है। क्योंकि हाथ से मुद्रा बनाकर दिखाने एवं उसके चित्र को बनाने वाले की दृष्टि और समझ में अन्तर हो सकता है।

चित्र के माध्यम से प्रत्येक पहलु को स्पष्टत: दर्शाना संभव नहीं होता, क्योंकि परिभाषानुसार हाथ का झुकाव, मोड़ना आदि अभ्यास पूर्वक ही आ सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त मुद्राओं के वर्णन को समझने में और ग्रन्थ कर्त्ता के अभिप्राय में अन्तर होने से कोई मुद्रा गलत बन गई हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ।

यहाँ निम्न बिन्दुओं पर भी ध्यान दें-

1. हमारे द्वारा दर्शाए गए मुद्रा चित्रों के अंतर्गत कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ दर्शक के देखने के हिसाब से माना गया है तथा कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ प्रयोक्ता के अनुसार दर्शाया गया है।
2. कुछ मुद्राएँ बाहर की तरफ दिखाने की है उनमें चित्रकार ने मुद्रा बनाते समय वह Pose अपने मुख की तरफ दिखा दिया है।
3. कुछ मुद्राओं में एक हाथ को पार्श्व में दिखाना है उस हाथ को स्पष्ट दर्शाने के लिए उसे पार्श्व में न दिखाकर थोड़ा सामने की तरफ दिखाया है।
4. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार दिखाई नहीं जा सकती है अत: उनकी यथावत् आकृति नहीं बन पाई हैं।
5. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार बनने के बावजूद भी चित्र में स्पष्टता नहीं उभर पाई हैं।
6. कुछ मुद्राओं के चित्र अत्यन्त कठिन होने से नहीं बन पाए हैं।

इस मुद्रा योग के तृतीय खण्ड में जैन मुद्राओं का गुम्फन किया गया है। इसमें जैन परम्परा की महत्त्वपूर्ण मुद्राओं का समीक्षात्मक अध्ययन करते हुए उसे पाँच अध्यायों में प्रस्तुत किया है।

प्रथम अध्याय में सामान्य तौर पर मुद्राओं के विभिन्न प्रभाव बतलाए गए हैं।

द्वितीय अध्याय में 14वीं शती के महान् आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा की लगभग 75 मुद्राओं का सोद्देश्य स्वरूप बतलाया गया है।

तृतीय अध्याय में 15वीं शती के दिग्गज आचार्य श्री वर्धमान सूरि द्वारा उल्लेखित मुद्राओं का रहस्यपूर्ण विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में प्राचीन-अर्वाचीन प्रतियों एवं ग्रन्थों में उपलब्ध शताधिक *मुद्राओं का प्रभावी वर्णन किया गया है।*

पांचवाँ अध्याय उपसंहार के रूप में निरूपित है। इसमें मुख्य रूप से रोगोपचार उपयोगी जैन मुद्राओं की सारणी प्रस्तुत की गई है।

●

कृतज्ञता ज्ञापन

जगनाथ जगदानंद जगगुरू, अरिहंत प्रभु जग हितकरं
दिया दिव्य अनुभव ज्ञान सुखकर, मारग अहिंसा श्रेष्ठतम्
तुम नाम सुमिरण शान्तिदायक, विघ्न सर्व विनाशकम्
हो वंदना नित वन्दना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।1।।

संताप हर्ता शान्ति कर्ता, सिद्धचक्र वन्दन सुखकरं
लब्धिवंत गौतम ध्यान से, विनय हो वृद्धिकरं
दत्त-कुशल मणि-चन्द्र गुरुवर, सर्व वांछित पूरकम्
हो वंदना नित वन्दना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।2।।

जन जागृति दिव्य दूत है, सूरिपद वलि शोभितम्
सद्ज्ञान मार्ग प्रशस्त कर, दिया शास्त्र चिन्तन हितकरं
कैलाश सूरिवर गच्छनायक, सद्बोधबुद्धि दायकम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।3।।

श्रुत साधना की सफलता में, जो कुछ किया निस्वार्थतम्
आशीष वृष्टि स्नेह दृष्टि, दी प्रेरणा नित भव्यतम्
सूरि 'पद्म' 'कीर्ति' 'राजयश' का, उपकार मुझ पर अगणितम्।
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।4।।

ज्योतिष विशारद युग प्रभाकर, उपाध्याय मणिप्रभ गुरुवरं
समाधान दे संशय हरे, मुझ शोध मार्ग दिवाकरम्
सद्भाव जल से मुनि पीयूष ने, किया उत्साह वर्धनम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।5।।

उल्लास ऊर्जा नित बढ़ाते, आत्मीय 'प्रशांत' गणिवरं
दे प्रबोध मुझको दूर से, भ्राता 'विमल' मंगलकरं
विधि ग्रन्थों से अवगत किया, यशधारी 'रत्न' मुनिवरं
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।6।।

हाथ जिनका थामकर, किया संयम मार्ग आरोहणम्
अनुसरण कर पाऊं उनका, है यही मन वांछितम्
सज्जन कृपा से होत है, दुःसाध्य कार्य शीघ्रतम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम् ।।7।।

कल्पतरू सा सुख मिले, शरणागति सौख्यकरम्
तप-ज्ञान रूचि के जागरण में, आधार हैं जिनका परम्
मुझ जीवन शिल्पी-दृढ़ संकल्पी, गुरू 'शशि' शीतल गुणकरम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम् ।।8।।

'प्रियदर्शना' सत्प्रेरणा से, किया शोध कार्य शतगुणम्
गुरु भगिनी मंडल सहाय से, कार्य सिद्धि शीघ्रतम्
उपकार सुमिरण उन सभी का, धरी भावना वृद्धिकरं
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम् ।।9।।

जिन स्थानों से प्रणयन किया, यह शोध कार्य मुख्यतम्
पार्श्वनाथ विद्यापीठ (शाजापुर, बनारस) की, मिली छत्रछाया सुखकरम्
जिनरंगसूरि पौशाल (कोलकाता) है, पूर्णाहुति साक्ष्य जयकरं
हो वन्दना नित वन्दना, है नगर कार्य सिद्धिकरम् ।।10।।

साधु नहीं पर साधकों के, आदर्श मूर्ति उच्चतम्
श्रुत ज्ञानसागर संशय निवारक, आचरण सम्प्रेरकम्
इस कृति के उद्धार में, निर्देश जिनका मुख्यतम्
शासन प्रभावक सागरमलजी, किं करुं गुण गौरवम् ।।11।।

अबोध हूँ, अल्पज्ञ हूँ, छद्मस्थ हूँ कर्म आवृतम्
अनुमोदना करुं उन सभी की, त्रिविध योगे अर्पितम्
जिन वाणी विपरीत हो लिखा, तो क्षमा हो मुझ दुष्कृतम्
श्रुत सिन्धु में अर्पित करुं, शोध मन्थन नवनीतम् ।।12।।

●

मिच्छामि दुक्कडं

आगम मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, जैन जगत की अनुपम साधिका, प्रवर्त्तिनी पद सुशोभिता, खरतरगच्छ दीपिका पू. गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की अन्तरंग कृपा से आज छोटे से लक्ष्य को पूर्ण कर पाई हूँ।

यहाँ शोध कार्य के प्रणयन के दौरान उपस्थित हुए कुछ संशय युक्त तथ्यों का समाधान करना चाहूँगी-

सर्वप्रथम तो मुनि जीवन की औत्सर्गिक मर्यादाओं के कारण जानते-अजानते कई विषय अनछुए रह गए हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार ही विषय का स्पष्टीकरण हो पाया है अतः कहीं-कहीं सन्दर्भित विषय में अपूर्णता भी प्रतीत हो सकती है।

दूसरा जैन संप्रदाय में साध्वी वर्ग के लिए कुछ नियत मर्यादाएँ हैं जैसे प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, उपस्थापना, पदस्थापना आदि करवाने एवं आगम शास्त्रों को पढ़ाने का अधिकार साध्वी समुदाय को नहीं है। योगोद्वहन, उपधान आदि क्रियाओं का अधिकार मात्र पदस्थापना योग्य मुनि भगवंतों को ही है। इन परिस्थितियों में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या एक साध्वी अनधिकृत एवं अननुभूत विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर सकती है?

इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' यह शोध का विषय होने से यत्किंचित लिखना आवश्यक था अतः गुरु आज्ञा पूर्वक विद्वद्वर आचार्य भगवंतों से दिशा निर्देश एवं सम्यक जानकारी प्राप्तकर प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

तीसरा प्रायश्चित्त देने का अधिकार यद्यपि गीतार्थ मुनि भगवंतों को है किन्तु प्रायश्चित्त विधि अधिकार में जीत (प्रचलित) व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त योग्य तप का वर्णन किया है। इसका उद्देश्य मात्र यही है कि भव्य जीव पाप भीरू बनें एवं दोषकारी क्रियाओं से परिचित होवें। कोई भी आत्मार्थी इसे देखकर स्वयं प्रायश्चित्त ग्रहण न करें।

इस शोध के अन्तर्गत कई विषय ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र की दूरी के कारण यथोचित जानकारी एवं समाधान प्राप्त नहीं हो पाए, अतः तद्विषयक पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं कर पाई हूँ।

कुछ लोगों के मन में यह शंका भी उत्पन्न हो सकती है कि मुद्रा विधि के अधिकार में हिन्दू, बौद्ध, नाट्य आदि मुद्राओं पर इतना गूढ़ अध्ययन क्यों?

मुद्रा एक यौगिक प्रयोग है। इसका सामान्य हेतु जो भी हो परंतु इसकी अनुश्रुति आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता के रूप में ही होती है।

प्रायः मुद्राएँ मानव के दैनिक चर्या से सम्बन्धित है। इतर परम्पराओं का जैन परम्परा के साथ पारस्परिक साम्य-वैषम्य भी रहा है अतः इनके सद्पक्षों को उजागर करने हेतु अन्य मुद्राओं पर भी गूढ़ अन्वेषण किया है।

यहाँ यह भी कहना चाहूँगी कि शोध विषय की विराटता, समय की प्रतिबद्धता, समुचित साधनों की अल्पता, साधु जीवन की मर्यादा, अनुभव की न्यूनता, व्यावहारिक एवं सामान्य ज्ञान की कमी के कारण सभी विषयों का यथायोग्य विश्लेषण नहीं भी हो पाया है। हाँ, विधि-विधानों के अब तक अस्पृष्ट पन्नों को खोलने का प्रयत्न अवश्य किया है। प्रज्ञा सम्पन्न मुनि वर्ग इसके अनेक रहस्य पटलों को उद्घाटित कर सकेंगे। यह एक प्रारंभ मात्र है।

अन्ततः जिनवाणी का विस्तार करते हुए एवं शोध विषय का अन्वेषण करते हुए अल्पमति के कारण शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा की हो, आचार्यों के गूढ़ार्थ को यथारूप न समझा हो, अपने मत को रखते हुए जाने-अनजाने अर्हतवाणी का कटाक्ष किया हो, जिनवाणी का अपलाप किया हो, भाषा रूप में उसे सम्यक अभिव्यक्ति न दी हो, अन्य किसी के मत को लिखते हुए उसका संदर्भ न दिया हो अथवा अन्य कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध किया हो या लिखा हो तो उसके लिए त्रिकरण-त्रियोगपूर्वक श्रुत रूप जिन धर्म से मिच्छामि दुक्कड़म् करती हूँ।

●

विषयानुक्रमणिका

अध्याय–1 : मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्र आदि के विशिष्ट प्रभाव 1-29

अध्याय–2 : विधिमार्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्राओं का सोद्देश्य स्वरूप एवं उसके विभिन्न प्रभाव 30-191

शरीर, स्थान एवं वातावरण की शुद्धि हेतु प्रयुक्त मुद्राएँ– 1. नाराच मुद्रा 2. कुम्भ मुद्रा।

हृदय, मस्तक, शरीर आदि की शुद्धि एवं सुरक्षा हेतु प्रयुक्त मुद्राएँ– 3. हृदय मुद्रा 4. शिरो मुद्रा 5. शिखा मुद्रा 6. कवच मुद्रा 7. क्षुर मुद्रा 8. अस्त्र मुद्रा

सम्यक्त्वी देवी-देवताओं के आह्वान आदि में प्रयुक्त मुद्राएँ– 9. महा मुद्रा 10. सुरभि मुद्रा 11. आवाहनी मुद्रा 12. स्थापनी मुद्रा 13. संनिधानी मुद्रा 14. निष्ठुर मुद्रा 15. आवाहन मुद्रा 16. स्थापन मुद्रा 17. निरोध मुद्रा 18. अवगुण्ठन मुद्रा

जयादि देवताओं की पूजा करने में प्रयुक्त मुद्राएँ–19. गोवृष मुद्रा 20. त्रासनी मुद्रा 21. पाश मुद्रा 22. अंकुश मुद्रा 23. ध्वज मुद्रा 24. वरद मुद्रा।

सोलह विद्यादेवियों की पूजा में उपयोगी मुद्राएँ– 25. शंख मुद्रा 26. शक्ति मुद्रा 27. श्रृंखला मुद्रा 28. वज्र मुद्रा 29. चक्र मुद्रा 30. पद्म मुद्रा 31. गदा मुद्रा 32. घण्टा मुद्रा 33. कमण्डलु मुद्रा 34. परशु मुद्रा (प्रथम) 35. परशु मुद्रा (द्वितीय) 36. वृक्ष मुद्रा 37. सर्प मुद्रा 38. खड्ग मुद्रा 39. ज्वलन मुद्रा 40. श्रीमणि मुद्रा।

दस दिक्पालों की तुष्टि हेतु प्रयुक्त मुद्राएँ– 41. दण्ड मुद्रा 42. पाश मुद्रा 43. शूल मुद्रा 44. संहार मुद्रा।

देवदर्शन करने से सम्बन्धित मुद्राएँ– 45. परमेष्ठी मुद्रा (प्रथम) 46. परमेष्ठी मुद्रा (द्वितीय) 47. पार्श्व मुद्रा।

प्रतिष्ठा आदि में उपयोगी मुद्राएँ– 48. अंजलि मुद्रा 49. कपाट मुद्रा 50. जिन मुद्रा 51. सौभाग्य मुद्रा 52. सबीज सौभाग्य मुद्रा 53. योनि मुद्रा (प्रथम) 54. योनि मुद्रा (द्वितीय) 55. गरुड़ मुद्रा 56. नमस्कार मुद्रा 57. मुक्ताशुक्ति मुद्रा 58. प्रणिपात मुद्रा 59. त्रिशिखा मुद्रा 60. भृंगार मुद्रा 61. योगिनी मुद्रा 62. क्षेत्रपाल मुद्रा 63. डमरूक मुद्रा 64. अभय मुद्रा 65. वरद मुद्रा 66. अक्षसूत्र मुद्रा 67. बिम्ब मुद्रा 68. प्रवचन मुद्रा 69. मंगल मुद्रा 70. आसन मुद्रा 71. अंग मुद्रा 72. योग मुद्रा 73. पर्वत मुद्रा 74. विस्मय मुद्रा 75. नाद मुद्रा 76. बिन्दु मुद्रा।

अध्याय-3 : आचारदिनकर में उल्लिखित मुद्रा विधियों का रहस्यपूर्ण विश्लेषण 192-233

1. मुद्गर मुद्रा 2. यथाजात मुद्रा 3. आरात्रिक मुद्रा 4. वीर मुद्रा 5. विनीत मुद्रा 6. प्रार्थना मुद्रा 7. परशु मुद्रा 8. छत्र मुद्रा 9. प्रियंकरी मुद्रा 10. गणधर मुद्रा 11. कच्छप मुद्रा 12. धनु:संधान मुद्रा 13. सिंह मुद्रा 14. शक्ति मुद्रा 15. पाश मुद्रा 16. कुन्त मुद्रा 17. शाल्मली मुद्रा 18. कन्दुक मुद्रा 19. माला मुद्रा 20. प्रायश्चित्त विशोधिनी मुद्रा 21. ज्ञान कल्पलता मुद्रा 22. मोक्ष कल्पलता मुद्रा 23. कल्पवृक्ष मुद्रा।

अध्याय-4 : मुद्रा प्रकरण एवं मुद्रा विधि में वर्णित मुद्राओं की प्रयोग विधियाँ एवं सुप्रभाव 234-337

1. ॐकार मुद्रा 2. ह्रींकार मुद्रा 3. नकार मुद्रा 4. मकार मुद्रा 5. सिंह मुद्रा 6. ऐंकार मुद्रा 7. शंख मुद्रा 8. चतुष्कपट्ट मुद्रा 9. नागवेलि पत्रद्वय मुद्रा 10. योनि मुद्रा 11. पंच परमेष्ठि मुद्रा (प्रथम) 12. पंच परमेष्ठि मुद्रा (द्वितीय) 13. त्रिद्वार जिनालय मुद्रा 14 स्वस्तिक मुद्रा 15. चतुर्मुख मुद्रा 16. कल्याणत्रय मुद्रा 17. सामान्य जिनालय मुद्रा 18. कपाट मुद्रा 19. तोरण मुद्रा 20 शक्ति

मुद्रा 21. ईश्वर मुद्रा 22. अमृत सञ्जीवनी मुद्रा 23. त्रिनेत्र मुद्रा 24. त्रिपुरस मुद्रा 25. मशीत मुद्रा 26. गृह तोड़ा मुद्रा 27. सिंहासन मुद्रा 28. पद्मकोश मुद्रा 29. सामान्य पद्म मुद्रा 30. नेत्र मुद्रा 31. विकसित पद्म मुद्रा 32. सनाल कमल मुद्रा 33. अश्व मुद्रा 34. गज मुद्रा 35. दण्ड मुद्रा 36. पार्श्वनाथ मुद्रा 37. गरुड़ मुद्रा 38. नाराच मुद्रा 39. सतत मुद्रा 40. वापी मुद्रा 41. कुंभ मुद्रा 42. अपरकुंभ मुद्रा 43. कुंभ मुद्रा 44. हृदय मुद्रा 45. शिरो मुद्रा 46. शिखा मुद्रा 47. कवच मुद्रा 48. घृतभृत कुंभ मुद्रा 49. क्षुर मुद्रा 50. भृंगार मुद्रा 51. अस्त्र मुद्रा 52. धेनु मुद्रा 53. प्रतिमा मुद्रा 54. स्थापनी मुद्रा 55. आवाहनी मुद्रा 56. संनिधापनी मुद्रा 57. निष्ठुरा मुद्रा 58. प्रवहण मुद्रा 59. स्थापन मुद्रा 60. अवगुण्ठन मुद्रा 61. निरोध मुद्रा 62. त्रासनी मुद्रा 63. गोवृषण मुद्रा 64. पाश मुद्रा 65. महा मुद्रा 66. अपरपाश मुद्रा 67. अंकुश मुद्रा 68. अपर अंकुश मुद्रा 69. महांकुश मुद्रा 70. महानागपाश मुद्रा 71. ध्वज मुद्रा 72. शर मुद्रा 73. वज्र मुद्रा 74. श्रृंखला मुद्रा 75. वरद मुद्रा 76. चक्र मुद्रा 78. मुक्ताशुक्ति मुद्रा 79. प्रणिपात मुद्रा 80. योनि मुद्रा 81. त्रिमुख मुद्रा 82. योगिनी मुद्रा 83. डमरूक मुद्रा 84. क्षेत्रपाल मुद्रा 85. अभय मुद्रा 86. पाशक मुद्रा 87. खड्ग मुद्रा 88. प्रवचन मुद्रा 89. योग मुद्रा 90. मंगल मुद्रा 91. आसन मुद्रा 92. अंग मुद्रा 93. पर्वत मुद्रा 94. विस्मय मुद्रा 95. चुंटन मुद्रा 96. श्रीवत्स मुद्रा 97. अक्ष मुद्रा 98. गदा मुद्रा 99. घण्टा मुद्रा 100. नाद मुद्रा 101. कमण्डलु मुद्रा 102. परशु मुद्रा 103. अपर परशु मुद्रा 104. वृक्ष मुद्रा 105. सर्प मुद्रा 106. ज्वलन मुद्रा 107. शिवशासन मुद्रा 108. शूल मुद्रा 109. श्रीमणि मुद्रा 110. शूल मुद्रा 111. संहार मुद्रा 112. परमेष्ठि मुद्रा 113.अंजलि मुद्रा 114. जिन मुद्रा 115. सौभाग्य मुद्रा।

- लघु विद्यानुवाद में वर्णित 44 मुद्राओं का स्वरूप।
- मुनि प्रवर श्री किशनलालजी महाराज साहब द्वारा निरूपित पाँच मुद्राएँ।

1. अर्हँ मुद्रा 2. सिद्ध मुद्रा 3. आचार्य मुद्रा 4. उपाध्याय मुद्रा 5. मुनि मुद्रा।

अध्याय-5 : भौतिक एवं आध्यात्मिक चिकित्सा में उपयोगी जैन मुद्राएँ 338-347

• शारीरिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ • मानसिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ • आध्यात्मिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

•

अध्याय-1

मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्रादि के विशिष्ट प्रभाव

मुद्रा एक ऐसी योग पद्धति है जिसके माध्यम से प्राचीन साधकों एवं दार्शनिकों के अनुभव, ज्ञान एवं साधना पद्धति को आधुनिक वैज्ञानिक संदर्भों में प्रतिपादित किया जा सकता है। यह प्राच्य विद्या वर्तमान युग को एक नई दिशा देने में सक्षम है। इसके द्वारा आज व्यक्तिगत स्तर पर उभर रही समस्याओं का ही नहीं अपितु सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय आदि अनेक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है। मुद्रा दैनिक क्रियाओं में उपयोगी एक महत्त्वपूर्ण विधि है और इसका विधिवत नियमित प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है।

हमारी शारीरिक संरचना एक जटिल मशीन के समान है। इसके विभिन्न पुर्जे (Parts) विविध कार्य करते हैं। मुद्रा प्रयोग के द्वारा उन सभी को एक साथ प्रभावित किया जा सकता है। इस योग के द्वारा शरीरस्थ मूलाधार आदि सप्त चक्रों को जागृत कर मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक विकृतियों पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। इसी के साथ मुद्रा योग अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ, चैतन्य केन्द्र एवं पंच तत्त्व आदि को संतुलित एवं नियंत्रित रखते हुए स्वस्थ, सुसंस्कृत एवं सुदृढ़ समाज के निर्माण में सहयोगी बनता है।

सप्त चक्रों पर मुद्रा के प्रभाव

किसी भी मुद्रा का प्रयोग एवं उसकी साधना जागरण का अभूतपूर्व माध्यम होता है। ये सात चक्र आध्यात्मिक जगत एवं भौतिक जगत को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। सात चक्रों के नाम इस प्रकार हैं–

1. मूलाधार चक्र 2. स्वाधिष्ठान चक्र 3. मणिपुर चक्र 4. अनाहत चक्र 5. विशुद्धि चक्र 6. आज्ञा चक्र और 7. सहस्रार चक्र।

2... जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा

1. मूलाधार चक्र

प्रथम मूलाधार चक्र गुप्तांग एवं गुदा के बीच पेरिनियम में स्थित है। इसे मूलाधार, मूल आधार अथवा प्रथम चक्र के रूप में जाना जाता है। मूलाधार चक्र प्रभावित होने से साधक पर निम्न प्रभाव देखे जा सकते हैं-

इस चक्र का मूल कार्य ऊर्जा का उत्पादन है। यही बलशाली आन्तरिक ऊर्जा व्यक्तित्व विकास करते हुए भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करती है, आत्मविश्वास को सुदृढ़ बनाती है। यह ऊर्जा जागृत न हो तो व्यक्ति Over confident अथवा Low confident हो जाता है।

इस चक्र में रूकावट होने पर अथवा इसके सक्रिय न होने पर समस्त चक्रों पर दुष्प्रभाव पड़ता है, क्योंकि यह प्रथम चक्र होने से सभी का आधार चक्र है। इसके असंतुलन से व्यक्ति सुनता कम और बोलता ज्यादा है। वह परिस्थितियों को भी सहज स्वीकार नहीं कर पाता।

इस चक्र के जागृत होने से क्रोध, पागलपन, घृणा, वस्तु के प्रति अत्यधिक लगाव, अनियंत्रण, अवसाद, अहंकार, वैचारिक एवं भावनात्मक अस्थिरता, ईर्ष्या, आलस्य, अपेक्षा वृत्ति, बड़बड़ाना, (Depression) आत्महत्या के प्रयास आदि कई भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं तथा दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने में सहयोग मिलता है।

सुसंस्कारों के निर्माण में यह चक्र विशेष सहायक बनता है। घटती संवेदनाओं एवं पारिवारिक मूल्यों के पुनर्जागरण में इस चक्र का सक्रिय रहना आवश्यक है। यह चक्र कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करते हुए मृत्यु भय को दूर करता है। इससे साधक आत्मज्ञाता बनकर स्वस्वरूप को प्राप्त करते हुए अन्य कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करता है।

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध प्रजनन तंत्र, गुर्दे एवं गुप्तांग से है। इसलिए तत्सम्बन्धी रोगों जैसे- पुरुष एवं स्त्री प्रजनन अंगों की समस्या, हस्त दोष, स्वप्न दोष, मासिक धर्म सम्बन्धी विकारों आदि का उपशमन होता है। इसी के साथ कैन्सर, कोष्ठबद्धता, फोड़े, सिरदर्द, हड्डी-जोड़ों आदि की समस्या, शारीरिक कमजोरी, बवासीर, गुर्दे, मांसपेशी आदि रोगों का भी निवारण होता है।

यह चक्र शक्ति केन्द्र एवं गोनाड्स ग्रन्थि के कार्य को प्रभावित करता

है अत: इसका संतुलन अथवा असंतुलन शरीर की समस्त गतिविधियों को प्रभावित करता है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र

दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र मूलाधार एवं नाभि के मध्य स्थित है। इसे सकराल, यौन, स्वाधिष्ठान एवं द्वितीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र में उत्पन्न ऊर्जा काम वासना एवं यौन उत्तेजना को नियंत्रित रखती है। दूसरों से प्रीतिपूर्ण व्यवहार रखने में यह चक्र सहायक बनता है।

स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होने पर व्यक्ति के जीवन में निम्न प्रभाव देखें जा सकते हैं–

इस चक्र का मूल कार्य प्रजनन तंत्र एवं यौन इच्छाओं को नियंत्रित करना है। इससे सम्बन्धों में मधुरता एवं विश्वास की वृद्धि होती है। इसका असंतुलन या निष्क्रियता कामेच्छाओं को असंतुलित और सम्बन्धों में पारस्परिक अविश्वास की वृद्धि करता है।

प्रथम मूलाधार चक्र यदि सम्यक प्रकार से जागृत हो और साधक को व्यक्तित्त्व बोध अच्छे से हुआ हो तो ही व्यक्ति दूसरे चक्र की ऊर्जा का उपयोग सत्कार्यों में कर सकता है। अत: दूसरा चक्र मुख्य रूप से व्यावहारिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को प्रेम एवं सौहार्द पूर्ण बनाने में सहायक बनता है।

इस चक्र की सक्रियता से भावनात्मक समस्याएँ जैसे– भय, लालसा, असृजनशीलता, अविश्वास, निष्क्रियता, अनाकर्षक व्यवहार, अत्यधिक कामवृत्ति, अकेलापन, नशे की आदत, मानसिक अशांति एवं भावनात्मक अस्थिरता आदि का निवारण होता है।

यह चक्र आत्मा की आन्तरिक शक्तियों एवं गुणों को जागृत करते हुए जीव को निर्भय बनाता है। क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि दुष्वृत्तियों का क्षय करता है। व्यक्तित्व हिमालय की भाँति धवल एवं वाणी प्रभावशाली बनती है। अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। साधक को आध्यात्मिक उच्चता प्राप्त होती है।

शारीरिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से प्रजनन अंग, दोनों पैर एवं गुर्दे आदि को विशेष प्रभावित करता है। इन अंगों से सम्बन्धित रोग जैसे कि

पैरों में दर्द, सुजन, गुर्दे के रोग, प्रजनन समस्याएँ, अंडाशय, गर्भाशय की समस्या, यौनी विकार, यौन रोग आदि का शमन होता है। इसी के साथ यह खून की कमी, सूखी त्वचा, खसरा, हर्निया, दाद-खाज आदि चर्म समस्याएँ, नपुंसकता, मासिक धर्म सम्बन्धी विकार, रक्त कैन्सर आदि का भी शमन करता है।

इस चक्र के जागृत होने से स्वास्थ्य केन्द्र एवं प्रजनन ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं। जिसके द्वारा काम विकार एवं भावनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

3. मणिपुर चक्र

तीसरा मणिपुर चक्र नाभि में स्थित है। इसे नाभि चक्र या तृतीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। मणिपुर एक ऊर्जा चक्र है। यह साधक को सक्रिय, गतिशील एवं उत्साही बनाता है। इससे साधक आत्मविश्वासी एवं दृढ़ संकल्पी बनता है।

इस चक्र के जागृत होने पर साधक के मनोबल, संकल्पबल एवं आत्मविश्वास में वृद्धि होती है तथा इस चक्र के विकार युक्त होने पर व्यक्ति असक्षम एवं असृजनशील बन जाता है और उसके मनोविकार बढ़ने लगते हैं।

यह तृतीय चक्र व्यक्ति को सामाजिक कर्तव्यों एवं दायित्वों के विषय में जागृत करता है। प्रथम चक्र स्वयं को स्वयं से, द्वितीय चक्र दो व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार से और तृतीय चक्र समूह से जोड़ता है। यह उर्ध्वगमन में भी सहायक बनता है।

इस चक्र के जागरण से क्रोध, भय, अनैकाग्रता, अविश्वास, शंकालु वृत्ति, अखुशहाल जीवन, अविषाद, लालच, अत्यधिक कामवृत्ति आदि भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं।

इस चक्र के ध्यान से कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं जैसे कि व्यक्ति अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा आदि को स्वीकार कर उत्तरोत्तर प्रगति करता है। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ और नैसर्प आदि नौ निधियों की शक्ति प्राप्त होती है तथा परोपकार एवं परमार्थ आदि की रूचि में वृद्धि होती है।

मणिपुर चक्र का मुख्य प्रभाव उदर भाग स्थित पाचनतंत्र, यकृत (लीवर), पित्ताशय तिल्ली आदि पर पड़ता है। जब यह चक्र प्रभावित होता है तब पाचन संबंधी समस्याएँ मधुमेह, अल्सर, पित्ताशय, लीवर, उदर आदि के रोगों

में निश्चित रूप से फायदा होता है। इसी प्रकार यह चक्र रक्त विकार, हृदय विकार, मानसिक विकार, शरीर एवं श्वास की दुर्गंध, वायु विकार, आँखों की समस्या आदि अनेक रोगों का निवारण करता है।

इस चक्र के प्रभावित होने से एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थियाँ विकार मुक्त होती है तथा तैजस् केन्द्र सक्रिय बनता है। ऐसी स्थिति में उदर प्रदेश एवं पाचन तंत्र सम्बन्धी कार्य सुचारू रूप से होते हैं।

4. अनाहत चक्र

अनाहत सप्त चक्रों में चौथा चक्र है। इसका स्थान हृदय प्रदेश माना गया है। इसे अनहत, हृदय अथवा चतुर्थ चक्र के नाम से भी जाना जाता है। अनाहत चक्र की शक्ति प्रेम, परोपकार, दयालुता, उदारता, सहकारिता, कर्तव्यपरायणता, विश्वमैत्री की भावना को उत्पन्न करती हैं। अनाहत चक्र के प्रभावित होने पर व्यक्ति में निम्न प्रभाव परिलक्षित होते हैं।

यह चक्र मुख्य रूप से वक्ष:स्थल, हृदय, रक्तवाहिनियों एवं श्वसन संस्थान सम्बन्धी कार्यों को प्रभावित करता है। इसे भाव संस्थान भी माना गया है। कलात्मक उमंगे, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं के उत्पादन का स्रोत यही चक्र है।

अनाहत चक्र के जागृत होने पर व्यक्ति हृदयगत भावों को सम्यक् रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम बनता है। कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्य जैसे चित्रकला, नृत्य, संगीत, कविता आदि की अभिरूचि में वृद्धि होती है।

भावनात्मक विकार जैसे कि उत्तेजना, चिल्लाना, गाली देना, अनुत्साह, असन्तुष्टि, दुखीपन, धुम्रपान, निर्ममता, कौटुम्बिक समस्या, आत्मसम्मान की कमी आदि अनेक नकारात्मक शक्तियों का निर्गमन इस चक्र की साधना से हो सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से करूणा, क्षमा, विवेक, आत्मिक आनंद, उदारता, प्रेम, सौहार्द, वसुधैव कुटुम्बकम् आदि के भाव विकसित होते हैं तथा सभी के प्रति मैत्री एवं समत्त्व वृत्ति का विकास होता है।

जब किसी मुद्रा का प्रभाव अनाहत चक्र पर पड़ता है तो दैहिक स्तर पर हृदय, रक्त संचरण एवं श्वसन क्रिया प्रभावित होती है। जिससे हृदय रोग, दमा, छाती में दर्द, रक्तवाहिनियों में रूकावट या Blotting आ जाना आदि

रोगों में विशेष रूप से लाभ प्राप्त होता है। इससे एलर्जी, Anxiety disorder सुस्ती, फेफड़ों के रोग, प्रतिरोधात्मक तंत्र के विकार आदि शारीरिक समस्याएँ भी दूर होती हैं।

थायमस ग्रन्थि एवं आनंद केन्द्र के सम्यक संचालन हेतु इस केन्द्र का सक्रिय होना बहुत आवश्यक है। भावना शुद्धि, सौहार्द एवं सामंजस्य की स्थापना में यह चक्र विशेष सहयोगी है।

5. विशुद्धि चक्र

सात चक्रों में पांचवाँ विशुद्धि चक्र कण्ठ प्रदेश में स्थित है। इसे विशुद्ध, कण्ठ अथवा पंचम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। पंचम चक्र की ऊर्जा के प्रभाव से साधक अपने आत्म भावों को वाणी के द्वारा अच्छी प्रकार से अभिव्यक्त कर पाता है। इस चक्र के प्रभाव से साधक के वैयक्तिक, व्यवहारिक एवं आध्यात्मिक जीवन में निम्न लाभ देखे जा सकते हैं-

यह विशुद्धि चक्र संचार केन्द्र है और स्वयं को व्यक्त करने में मुख्य रूप से सहायक बनता है। विपरित परिस्थितियों में समत्व स्थिति एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार में भी विशेष उपयोगी बनता है। अचेतन मन एवं चित्त संस्थान को प्रभावित करते हुए दायें मस्तिष्क के Silent area को जगाने में भी यह चक्र प्राथमिक भूमिका निभाता है।

इस चक्र के सक्रिय न होने पर भावनाओं की अभिव्यक्ति एवं अन्य संचरण कार्यों में रूकावट आ जाती है। इसी के साथ स्मरण शक्ति का ह्रास, कई प्रकार की मानसिक विकृतियाँ एवं कंठ विकार उत्पन्न होते हैं।

चक्र के सक्रिय होने पर भावनात्मक समस्याएँ जैसे अनियंत्रित व्यवहार, भावनाओं में रूकावट, आंतरिक चिंता, अनुशासन की कमी, स्मृति खोना, आत्महीनता, घबराहट, निष्क्रियता, अहंकार आदि अवरोधों के निवारण में विशेष सहायता प्राप्त होती है।

पाँचवें चक्र का ध्यान करने पर साधक भूख प्यास को नियंत्रित कर सकता है। इससे अतिन्द्रिय क्षमता के प्रसुप्त बीजांकुर फुट पड़ते हैं। आंतरिक शक्ति का जागरण होता है। शारीरिक, मानसिक, वैचारिक एवं भावनात्मक स्थिरता एवं दृढ़ता बढ़ती है। साधक चिंतन शक्ति का विकास करते हुए दार्शनिक या आत्मचिंतक बनता है। कंठ प्रदेश में स्रावित होने वाले अमृत रस के पान

से साधक कांतिवान एवं तेजस्वी बनता है तथा अन्य भी कई आध्यात्मिक लाभों को प्राप्त करता है।

शारीरिक स्तर पर विशुद्धि चक्र के जागरण एवं संतुलन से स्वर तंत्र, कंठ एवं कर्ण प्रदेश पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इससे तत्सम्बन्धी रोगों थायरॉइड, बहरापन, कम सुनना, Vocal cord एवं स्वर तंत्र के विकार आदि से राहत मिलती है।

विशुद्धि चक्र के रोग मुक्त होने से विशुद्धि केन्द्र, थायरॉइड और पेराथायरॉईड ग्रंथियाँ प्रभावित होती हैं। इससे वाणी प्रखर एवं प्रभावशाली बनती है।

6. आज्ञा चक्र

इस चक्र का स्थान दोनों भौहों के बीच है। इसे तीसरी आँख या षष्टम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र से प्राप्त ऊर्जा अन्तर्ज्ञान, एकाग्रता एवं अतिन्द्रिय शक्तियों में वृद्धि करती है। आध्यात्मिक उत्थान में यह चक्र विशेष सहायक माना गया है। इसके गतिशील होने पर साधक के जीवन में निम्न लाभ देखे जाते हैं–

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध हमारे अन्तर्ज्ञान एवं अवचेतन मन में घटित घटनाओं से है। यह ईडा, पिंगला एवं सुषुम्ना का संगम स्थल है। इस चक्र की साधना से व्यष्टि सत्ता समष्टि चेतना से सम्बन्ध जोड़ने में सक्षम हो जाती है।

आज्ञा चक्र के जागरण से साधक दिव्य ज्ञानी, दार्शनिक, दूसरों के मनोभावों को समझने वाला बनता है। भूत एवं भविष्य का ज्ञान और विचार संप्रेषण में दक्षता प्राप्त कर लेता है। मन, बुद्धि एवं विचारों की एकाग्रता सधती है जिससे आत्मनियंत्रण की विशिष्ट शक्ति का जागरण होता है।

इस चक्र के प्रभावित होने पर उन्मत्तता, अवषाद, ज्ञान की कमी, चालाकी, स्मृति समस्याएँ, मानसिक विकार, अनिश्चिय, पागलपन, चंचलता, वैचारिक अस्थिरता आदि भावनात्मक समस्याओं का समाधान होता है।

आत्मनियंत्रण में यह चक्र विशेष सहायक है। बौद्धिक सूक्ष्मता एवं प्रखरता में वृद्धि करते हुए यह आन्तरिक ज्ञान चेतना को भी जागृत करता है। इस चक्र को आत्मा का उत्थान द्वार माना गया है। इससे साधक काम वासना आदि पर विजय प्राप्त कर आत्मानंद की प्राप्ति करता है तथा मस्तिष्किय रहस्यों

एवं आत्मज्ञान को उपलब्ध करता है।

छठे आज्ञा चक्र के जागृत होने पर शरीरस्थ पीयूष ग्रन्थि एवं छोटा मस्तिष्क विशेष प्रभावित होता है। इनके स्वस्थ रहने से अनिद्रा, सिरदर्द, ब्रेनट्युमर, मिरगी एवं मस्तिष्क संबंधी रोगों का निवारण होता है। इसी के साथ पुरानी थकान, पागलपन, पीयुष ग्रन्थि की समस्या, बौद्धिक दुर्बलता आदि भी दूर होती हैं।

बौद्धिक स्तर पर यह चक्र एकाग्रता को बढ़ाता है। विचारों को स्थिर करता है। बौद्धिक दुर्बलता एवं अस्थिरता को दूर करता है। सूक्ष्म बुद्धि विकसित होने से समझ शक्ति तथा स्मृति बल में अभिवृद्धि होती है।

आज्ञा चक्र आन्तरिक दिव्य ज्ञान को जागृत करने एवं आत्मनियंत्रण में विशेष लाभदायी है। इस चक्र के संतुलित रहने से दर्शन केन्द्र एवं पीयूष ग्रन्थि नियन्त्रित रहती हैं।

7. सहस्त्रार चक्र

सहस्त्रार चक्र सिर के ऊपरी भाग में अवस्थित उच्चतम चेतना का केन्द्र है। इसे ताज या सप्तम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र का सम्बन्ध सम्पूर्णतया आध्यात्मिक जगत से है। इस चक्र में प्रवाहित ऊर्जा आत्मा और परमात्मा के बीच तादात्म्य स्थापित कर शाश्वत सत्य का अनुभव करवाती है।

यह चक्र अमरत्व का प्रतीक है। इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध ऊपरी मस्तिष्क से है। यह साधक के ज्ञानार्जन में सहायक बनता है और उसे निर्विकल्प एवं निर्विकारी बनाता है।

सहस्त्रार चक्र के जागृत होने पर साधक की मनोदशा संसार के भौतिक प्रपंचों से मुक्त होकर आध्यात्मिक जगत में स्थिर होती है। इससे असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। यह चक्र साधना के उच्चतम प्रतिफल की अनुभूति करवाता है।

भावनात्मक समस्याएँ जैसे कि उन्मत्तता, अवषाद, मृत्यु भय, निराशा, नादानी, पागलपन, अनुत्साह , अन्तरप्रेरणा की कमी, खुश नहीं रहना, निर्णय आदि लेने में कठिनाई होना, मानसिक एवं वैचारिक अस्थिरता आदि के निवारण में विशेष भूमिका निभाता है।

इस चक्र की साधना से साधक को दिव्य ज्ञान की अनुभूति होती है तथा परमोच्च सिद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है।

दैहिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से ऊपरी मस्तिष्क को संतुलित रखता है। मस्तिष्क कैन्सर, मानसिक एवं बौद्धिक समस्याएँ , कामासक्ति, सिरदर्द, मिरगी आदि में इस चक्र की सक्रियता फायदा करती है। इससे पार्किंसंस रोग, अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की समस्या, ऊर्जा की कमी, पुरानी बिमारी, कामेच्छाओं के असंतुलन आदि दूर होते हैं।

पिनियल ग्रन्थि एवं ज्योति केन्द्र सम्बन्धी असंतुलन के नियंत्रण में यह चक्र सहायक बनता है। इस चक्र के विकार ग्रस्त होने पर व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक अवस्था का ज्ञान नहीं रहता।

ग्रन्थि तंत्रों पर मुद्रा के प्रभाव

आधुनिक विज्ञान के अनुसार व्यक्ति की विविध शारीरिक क्रियाओं के संचालन हेतु अनेक ग्रन्थियाँ एक टीम के रूप में कार्य करती हैं, जिसे तन्त्र कहा जाता है। शरीर के नियंत्रक एवं संयोजक के रूप में मुख्य दो तन्त्र हैं- नाड़ी तन्त्र एवं अन्त:स्रावी ग्रन्थि तन्त्र।

अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की रचना हमारे शरीर के नियामक एवं रक्षक तंत्र के रूप में की गई है। यह अपने प्रभावों का निष्पादन रासायनिक स्रावों के माध्यम से करता है जिसे हार्मोन (Harmone) कहते हैं, यह हार्मोन्स रक्त में घुल-मिलकर शरीर के गठन एवं उसके स्वस्थ रहने में सहयोगी बनते हैं तथा मुनष्य की मानसिक दशा, स्वभाव, व्यवहार आदि पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। मुनष्य के भीतर रहे हुए आवेग, वासना, घृणा, कामना आदि को नियंत्रित करने में यह एक प्रमुख स्रोत है। योगाचार्यों के अनुसार ग्रन्थियाँ मन और चारित्र का निर्माण करती हैं।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा पेडु के ईद-गिर्द और नीचे स्थित विद्युत एवं ऊर्जा का उर्ध्वारोहण किया जा सकता है। इससे अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की शक्ति को कई गुणा बढ़ाकर उत्तम चारित्रिक विकास भी संभव है। इन स्रावों के असंतुलन से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। भारतीय योगी साधकों ने हजारों वर्ष पूर्व इन ग्रन्थियों का वर्णन चक्र अथवा कमल के रूप में किया है। ग्रन्थियों एवं चक्रों की तुलना करने पर उनमें कोई विशेष अंतर

परिलक्षित नहीं होता।

जिस प्रकार मधुमक्खी सिंचित फलों के रस में अपना स्राव मिलाकर मधु बनाती है उसी प्रकार ग्रन्थियाँ शरीर में से आवश्यक तत्त्व ग्रहण करके उनमें अपना रस मिलाकर रासायनिक कारखानों की भाँति शक्तिशाली हार्मोन्स का निर्माण करती हैं। ये हार्मोन्स हमारे शरीर में प्रतिक्षण मृतप्राय: कोशिकाओं (Cells) को पुनर्जीवित कर क्रियाशील बनाने का कार्य करते हैं। इससे शारीरिक क्रियाएँ व्यवस्थित रूप से चलती रहती है। कई बार जब ग्रन्थियों में विकृति आ जाती है तो उन्हें संतुलित करना अत्यावश्यक हो जाता है, अन्यथा कई असाध्य रोग उत्पन्न हो सकते हैं। समस्त शारीरिक एवं मानसिक रोगों का मूल कारण अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का असंतुलन ही है।

पंच महाभूतों का नियमन कर शरीर के संगठन (Melabolism of the body) को मजबूत रखना ग्रन्थियों का मुख्य कार्य है। मस्तिष्क और शरीर के प्रत्येक अवयव का संतुलन एवं रोगों से सुरक्षित रखने का कार्य ग्रन्थियाँ ही करती हैं। इस तरह ग्रन्थियाँ हमारे शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं वैयक्तिक निर्माण एवं विकास में सहायक बनती हैं। इन ग्रन्थियों के असंतुलन का प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव एवं व्यवहार पर परिलक्षित होता है जैसे कि यदि एंड्रिनल ग्रन्थि सही रूप से कार्यरत न हो तो लीवर बराबर काम नहीं करता तथा व्यक्ति डरा हुआ एवं चिडचिड़ा बन जाता है। यौन ग्रन्थियों के अधिक सक्रिय होने पर वासना बढ़ती है और व्यक्ति स्वार्थी बनता है। यदि थायमस ग्रन्थि अंसतुलित हो तो स्वभाव में छिछोरापन और दुष्टता आती है। पिच्युटरी ग्रन्थि के बराबर काम नहीं करने पर व्यक्ति निर्दयी और कठोर बन जाता है तथा अपराध कार्यों में उसकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इसलिए अंत:स्रावी ग्रन्थियों को संतुलित रखना परम आवश्यक है। ये समस्त ग्रन्थियाँ परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योंकि एक ग्रंथि में उत्पन्न विकार समस्त ग्रन्थियों को प्रभावित करता है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से अंत:स्रावी ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित किया जा सकता है। हमारे शरीर में मुख्यतया निम्न आठ ग्रन्थियाँ हैं-

1. पिनीयल ग्रन्थि (Pineal Gland)

पिनीयल ग्रन्थि मस्तिष्क के मध्य पिछले हिस्से में स्थित है। इसका आकार गेहूं के दाने से भी छोटा होता है। यह ग्रन्थि मुख्य सचिव की भाँति शरीर

की व्यवस्था एवं गतिविधियों का संचालन करती है। इसे तीसरी आंख भी कहते हैं।

पिनीयल ग्रन्थि सभी ग्रन्थियों का विधिवत विकास एवं संचालन करती है, शैशव अवस्था में कामवृत्तियों को नियंत्रित रखती है तथा संकट के समय में शारीरिक तन्त्रों को आवश्यक निर्देश देने एवं उन्हें क्रियान्वित करने का कार्य करती है। इससे नियंत्रण एवं नेतृत्व शक्ति का विकास होता है। अतः इस ग्रन्थि का सक्रिय एवं संतुलित रहना अनिवार्य है।

शारीरिक स्तर पर इस ग्रन्थि के विधिवत् कार्य न करने पर उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) एवं समय से पूर्व काम वासना जागृत हो जाती है। शरीरस्थ सोडियम, पोटैशियम और जल की मात्रा का संतुलन यही ग्रन्थि करती है। जिन लोगों की यह ग्रन्थि ठीक से काम नहीं करती उनके शरीर में पानी का जमाव होने से शरीर फुग्गे की तरह फूल जाता है और किडनी के रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

यदि यह ग्रन्थि जागृत होकर सम्यक रूप से कार्य करे तो मनुष्य में अनेक दिव्य गुणों का उद्भव हो सकता है। इससे साधक में सज्जनता, साधुता, समझदारी आती है तथा हृदय की सुकुमारता एवं मनोबल दृढ़ होता है।

2. पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)

पीयूष ग्रन्थि का स्थान मस्तिष्क के निचले छोर तथा नाक के मूल भाग के पीछे की ओर है। इस ग्रन्थि का आकार मटर के दाने के जितना है। यह ग्रन्थि सब ग्रन्थियों की रानी है तथा अन्य ग्रन्थियों को काम का आदेश देती है। इसे ग्रन्थियों को नेता (Master Gland) भी कहा जाता है।

यह ग्रन्थि कम से कम नौ प्रकार के विभिन्न हार्मोनों का स्राव करती है जिससे जीवन के कई महत्त्वपूर्ण क्रियाकलापों पर प्रभाव पड़ता है। यह हमारे मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति एवं देखने-सुनने की शक्ति का नियमन करती है। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से व्यक्ति बुद्धिशाली, प्रसिद्ध लेखक, कवि, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञानी और मानव जाति का प्रेमी बनता है।

इस ग्रन्थि का स्राव शरीर की आन्तरिक हलन-चलन, स्फुर्ति, हृदय की धड़कन, शरीर तापक्रम, रक्त शर्करा आदि को नियंत्रित रखता है। यह ग्रन्थि व्यक्ति की लम्बाई, सिर के बाल एवं हड्डियों के विकास को भी संचालित करती है।

इस ग्रन्थि के असंतुलित होने पर से शरीर दुर्बल अथवा अत्यधिक मोटा हो जाता है। यह मस्तिष्क का भी नियंत्रण करती है। अत्यधिक डरने, चोट लगने अथवा गर्भावस्था में अधिक चिंता करने से गर्भस्थ शिशु की पीयूष ग्रन्थि प्रभावित होती है जिसके परिणामस्वरूप अल्प विकसित मस्तिष्क वाले बच्चे (Retarded child) का जन्म होता है। ऐसे बच्चे हीन वृत्तिवाले, भावनाशून्य, शरारती एवं स्वच्छंदी होते हैं। पीयूष ग्रन्थि को मुद्रा प्रयोग द्वारा प्रभावित करने से इन सब समस्याओं में विस्मयकारी समाधान देखा जा सकता है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायता प्राप्त हो सकती है। यह ग्रन्थि तनावमुक्त, प्रसन्नता, सहिष्णुता, मैत्री भावना आदि गुणों से युक्त जीवन जीने में सहयोग करती है तथा वाचालता, अस्थिरता, अत्यधिक संवेदनशीलता, शारीरिक उष्णता आदि को न्यून करती है।

3. थाइरॉइड-पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ (Thyroid and Para thyroid Gland)

थाइरॉइड एवं पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ स्वर यंत्र के समीप श्वासनली के ऊपरी छोर पर स्थित हैं। इन्हें अवटु एवं परावटु ग्रन्थि भी कहा जाता है। यह ग्रन्थि विपुल मात्रा में रक्त की आपूर्ति करती है और बालकों के विकास में विशेष सहायक बनती है।

थाइरॉइड ग्रन्थि शरीर में ऊर्जा उत्पादन का मुख्य अवयव है। चयापचय की मात्रा और व्यक्ति की जल्दबाजी को निर्धारित करने का मुख्य कार्य यही ग्रन्थि करती है। इस ग्रन्थि की सक्रियता से सद्भाव, उच्च विचारशक्ति, एकाग्रता, आत्मसंयम, संतुलित स्वभाव, पवित्रता, परोपकार आदि गुणों का जन्म होता है।

शारीरिक स्तर पर यह ग्रन्थि शरीरस्थ चूने एवं गंधक तत्त्व (Calcium and Phosphorus) का पाचन करती है। शरीर में रहे विजातिय तत्त्वों को दूर करती है। गर्मी को संतुलित रखती है। पाचन एवं प्रजनन अंगों से सीधा सम्बन्ध होने के कारण यह भोजन को रक्त, मांस, मज्जा, हड्डी एवं वीर्य में परिवर्तित करने में सहायक बनती है। कामेच्छा को गति देने, प्रजनन अंगों को स्वच्छ रखने एवं मासिक धर्म को नियंत्रित रखने में भी इस ग्रन्थि की मुख्य भूमिका है।

इस ग्रन्थि के असंतुलित रहने पर शरीर में थकान महसूस होती है। शरीर का सूखना (Rickets), हिचकी (Convulsion), स्नायुओं का ऐंठन आदि रोग होते हैं। बालकों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। पथरी, मोटापा, रियुमेटिजम, आर्थराईटिस, कोलेस्ट्रॉल आदि की समस्या बढ़ जाती है तथा अस्वस्थता, वाचालता, मुखरता, कृतघ्नता आदि दुर्गुणों की वृद्धि होती है।

इस ग्रन्थि की संतुलित अवस्था में वायु तत्त्व, केलशियम, आयोडिन और कोलेस्ट्रॉल नियन्त्रित रखते हैं। मस्तिष्क को संतुलित रखते हुए यह शरीर में होने वाले वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट की चयापचय क्रिया को भी नियंत्रित रखती है।

इस ग्रन्थि के जागृत रहने पर सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है, कामेच्छा नियंत्रित रहती है और बालकों में सुसंस्कारों एवं सद्गुणों का विकास होता है।

4. थायमस ग्रन्थि (Thymus Gland)

थायमस ग्रन्थि गर्दन के नीचे एवं हृदय के कुछ ऊपर सीने के मध्य स्थित है। इसे धायमाता कहा जाता है। इसका प्रमुख कार्य बालकों की रोग से रक्षा करना है। शैशव अवस्था में इस ग्रन्थि की वृद्धि बहुत तेजी से होती है और बीस वर्ष की आयु के बाद यह सिकुड़ जाती है।

इस ग्रन्थि से शैशव अवस्था में शारीरिक विकास का नियमन होता है। विशेष रूप से गोनाड्स (काम ग्रन्थियों) को सक्रिय नहीं होने देती। यौवन अवस्था में उन्मादों का निरोध करती है। मस्तिष्क का सम्यक नियोजन करते हुए लसिका-कोशिकाओं के विकास में अपने स्राव (T-cells) द्वारा सहयोग कर रोग निरोधक कार्यवाही में योगदान करती है। इस प्रकार बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास में यह विशेष सहयोगी बनती है।

5. एड्रीनल ग्रन्थि (Adrenal Gland)

एड्रीनल ग्रन्थि गुर्दे के ऊपरी भाग में युगल रूप में रहती है। यह टोपी जैसी त्रिकोणाकार होती है। इस ग्रन्थि के द्वारा ग्रन्थि शारीरिक गतिविधियों जैसे- हलन-चलन, श्वसन, रक्त संचरण, पाचन, मांसपेशी संकुचन, पानी आदि अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन में विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

यह ग्रन्थि तीन दर्जन से भी अधिक प्रकार के स्रावों को उत्पन्न करती

है। ये स्राव मस्तिष्क एवं प्रजनन अवयवों के स्वस्थ विकास में सहायक बनते हैं तथा मानसिक एकाग्रता एवं शारीरिक सहनशीलता को बढ़ाते हैं। इन स्रावों के प्रभाव से शरीर की स्नायविक और मांसपेशीय संरचना स्वस्थ एवं बलवान रहती है। रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करते हुए शरीर के लिए आवश्यक रसायनों एवं औषधियों के निर्माण में भी यह सहायक बनती है। शरीरस्थ अग्नितत्त्व का नियमन करते हुए यह ग्रन्थि यकृत, लीवर, गोल ब्लेडर, पाचक रस एवं पित्त उत्पादन कार्य का संतुलन करती है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय एवं संतुलित रहने से तीव्र परख शक्ति, अथक कार्य शक्ति, आंतरिक साहस, निर्भयता, आशावादिता, आत्मविश्वास आदि सकारात्मक गुणों की वृद्धि होती है। इसके एपीनेफ्रीन और नोर-एपीनेफ्रिन नामक हार्मोनों के स्राव दर्द, शीत प्रकोप, अल्प रक्तचाप, भावनात्मक उद्वेग, क्रोध, उत्तेजना आदि का शमन करने में विशेष सहयोगी बनते हैं।

6. पेन्क्रियाज ग्रन्थि (Pancreas Gland)

यह ग्रन्थि पेट में 6इंच से 8 इंच लम्बी स्थित है। इस ग्रन्थि में उत्पन्न रस क्षारीय स्वभाव का होने से शरीर के आम्लिय तत्त्वों को नियंत्रित रखता है। इन्हीं रसों में से एक इंसुलिन नामक रस रक्त शर्करा को पचाने में महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। यही रस शरीर में ऊर्जा का भी उत्पादन करता है।

वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार पेन्क्रियाज के अधिक क्रियाशील रहने पर शरीरस्थ रक्त शर्करा कम हो जाती है जिससे लो ब्लड प्रेशर, आधासीसी आदि रोगों की संभावना बढ़ जाती है और वहीं इसकी निष्क्रियता मधुमेह आदि रोगों को बढ़ाती है।

इस ग्रन्थि से जागृत रहने पर भूख, पसीना, रक्तचाप आदि नियंत्रित रहते हैं तथा सिरदर्द, तनाव, कमजोरी, लो ब्लड प्रेशर, मधुमेह आदि रोगों का निवारण होता है। यह ग्रन्थि अनिर्णायकता, चिंतातुरता, अतिसंवेदनशीलता आदि समस्याओं का भी निवारण करती है।

7. प्रजनन ग्रन्थियाँ (गोनाड्स)

रजपिंड एवं शुक्रपिंड (Overies and Testies) के रूप में काम ग्रन्थियाँ मनुष्य के शरीर में पेडु एवं पृष्ठ रज्जु के नीचे के छोर के पास स्थित हैं। स्त्रियों में डिम्बाशय एवं पुरुषों में वृषण प्रजनन ग्रन्थि का कार्य करते हैं। यह ग्रन्थि प्रजनन की अटूट श्रृंखला को चालु रखती है।

गोनाड्स या काम ग्रन्थियाँ मुख्य रूप से कामेच्छा को नियन्त्रित कर विपरित लिंग के प्रति आकर्षण उत्पन्न करती हैं। इससे नि:सृत स्राव के द्वारा स्त्रियाँ स्त्रियोचित व्यक्तित्व को और पुरुष पुरुषत्व को प्राप्त करते हैं। ग्रन्थियाँ देह में स्थित जलतत्त्व का संतुलन करते हुए ज्ञानतंतुओं, मज्जा कोष, मांस, हड्डी, बोन-मेरो एवं वीर्य रज का नियमन करती हैं तथा अन्य अवयव एवं उनके क्रियाकलापों पर भी गहरा प्रभाव डालती है।

यदि काम ग्रन्थियाँ सुचारू रूप से कार्य न करें तो कन्याओं की मासिक धर्म (Menstural Periods) सम्बन्धी गड़बड़ियाँ, मुहाँसे, पांडुरोग (Anemia) आदि तथा लड़कों में हस्तदोष-स्वप्नदोष आदि समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने पर शरीर की गर्मी संतुलित रहती है। इससे युवक-युवतियों का स्वभाव मिलनसार बनता है। यह मनुष्य के व्यवहार एवं वाणी को लोकप्रिय बनाती है।

चैतन्य केन्द्रों पर मुद्रा का प्रभाव

भगवतीसूत्र में बतलाया गया है 'सव्वेणं सव्वे' हमारी चेतना के असंख्य प्रदेश हैं और वे सब चैतन्य केन्द्र हैं। कुछ स्थान या केन्द्र ऐसे होते हैं जिनके द्वारा हम शरीर एवं भावों को अधिक प्रभावित कर सकते हैं। हमारे शरीर के संचालन में चैतन्य केन्द्रों की विशेष भूमिका होती है। चेतना का आन्तरिक स्तर मन नहीं है अपितु चेतन मन में उठने वाले आवेग क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, लालच आदि वृत्तियाँ हैं।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में विवेक चेतना अन्तर्निहित होती है। इस विवेक चेतना एवं विवेक पूर्ण निर्णायक शक्ति का सम्यग विकास ही हमारे भीतर रही पाशवी वृत्तियों, रूढ़िगत परम्पराओं, मानसिक विकारों एवं भावनात्मक अस्थिरता आदि को दूर कर सकती है। विवेक चेतना के जागरण के लिए चैतन्य केन्द्रों का स्वस्थ एवं विकार रहित रहना परमावश्यक है। चित्त का यह स्वभाव है कि वह सिर से लेकर पैर तक घुमता रहता है। कभी ऊपर तो कभी नीचे, कभी अच्छे विचारों में तो कभी बुरे विचारों में, कभी उत्कृष्ट भावों में तो कभी गहन पतन के मार्ग पर। इन सब पर नियंत्रण करने हेतु चैतन्य केन्द्रों का संतुलित एवं जागृत रहना आवश्यक है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से यह कार्य सहज संभव होता है।

वैज्ञानिक शोधों के अनुसार हमारा सम्पूर्ण शरीर विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र (Electro Magnetic Field) है, किन्तु कुछ विशेष स्थानों में विद्युत क्षेत्र की तीव्रता अन्य स्थानों की तुलना में कई गुणा अधिक होती है। हमारा मस्तिष्क, इन्द्रियाँ, अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ आदि कुछ ऐसे ही क्षेत्र हैं। आयुर्वेद की भाषा में इन्हें मर्म स्थान कहा गया है। आयुर्वेदाचार्यों ने 107 मर्म स्थानों का उल्लेख किया है जहाँ पर प्राणों का केन्द्रीकरण होता है। इन रहस्यमय स्थानों में चेतना विशेष प्रकार से अभिव्यक्त होती है। युवाचार्य महाप्रज्ञजी ने तेरह चैतन्य केन्द्रों की चर्चा की है।

1. शक्ति केन्द्र 2. स्वास्थ्य केन्द्र 3. तैजस केन्द्र 4. आनंद केन्द्र, 5. विशुद्धि केन्द्र 6. ब्रह्म केन्द्र 7. प्राण केन्द्र 8. चाक्षुष केन्द्र 9. अप्रमाद केन्द्र 10. दर्शन केन्द्र 11. ज्योति केन्द्र 12. शांति केन्द्र और 13. ज्ञान केन्द्र।

ये चैतन्य केन्द्र समस्त अवयवों में सक्रियता उत्पन्न करते हैं तथा इन्द्रियों एवं मन को भी संचालित करते हैं। इन्द्रियों पर नियन्त्रण पाना साधना का मुख्य लक्ष्य होता है। मुद्रा साधना इसमें सहायक बनती है।

1-2. शक्ति केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र

शक्ति केन्द्र मूलाधार के स्थान पर अर्थात् पृष्ठ रज्जु के नीचे स्थित है। यह स्थान हमारी समस्त शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत (Bio-electricity) का संचयगृह है। यहीं से विद्युत का उत्पादन एवं प्रसरण होता है। इस केन्द्र के जागृत होने से अधोगामी विद्युत प्रवाह ऊर्ध्वगामी बनता है। इससे साधक की सभी क्रियाएँ सकारात्मक एवं ऊर्ध्वगामी बनती है। शक्ति केन्द्र कुण्डलिनी का स्थान है अत: इसके जागृत होने से साधना चरम लक्ष्य तक अवश्य पहुँचती है।

पेडु के नीचे जननेन्द्रिय का अधोवर्ती स्थान स्वास्थ्य केन्द्र है। यह काम ग्रन्थियों का प्रभावी क्षेत्र है इसलिए काम-वासना आदि की उत्पत्ति यहीं से होती है और हमारे समग्र स्वास्थ्य का नियंत्रण भी यहीं से होता है। स्वास्थ्य केन्द्र के स्वस्थ, सक्रिय एवं संतुलित रहने पर व्यक्ति स्वस्थ चित्त का अनुभव करता है। मानसिक एवं भावनात्मक स्वस्थता एवं विकार रहितता में भी यह केन्द्र सहायक बनता है। आत्मनियंत्रण की कला भी इसी केन्द्र से विकसित होती है।

शक्ति केन्द्र और स्वास्थ्य केन्द्र की निर्दोषता से सम्पूर्ण विकास सहज एवं सरल हो जाता है। ये दोनों मूल केन्द्र होने से यदि इनमें विकार हो जायें तो समस्त केन्द्र विकार ग्रस्त हो जाते हैं। यह केन्द्र संतुलित रहने से वृत्तियों का उभार ही नहीं होता, कामेच्छा आदि संतुलित रहती हैं तथा आन्तरिक ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण होता है।

3. तैजस केन्द्र

तैजस् केन्द्र नाभि के स्थान पर होता है। इस केन्द्र का सम्बन्ध एड्रीनल-पैन्क्रियाज ग्रंथि एवं मणिपुर चक्र से है। यह केन्द्र ग्रन्थियों एवं चक्रों के कार्य वहन में सहायक बनता है। योगाचार्यों के अनुसार इस केन्द्र के असंतुलन से क्रोध, लोभ, भय आदि वृत्तियाँ अभिव्यक्त होती हैं। इसके जागरण एवं संतुलन के द्वारा विकृत भावों को रोका जा सकता है। इसके माध्यम से ईर्ष्या, घृणा, भय, संघर्ष, तृष्णा आदि कुवृत्तियों को भी नियंत्रित रखा जा सकता है।

तैजस् केन्द्र अग्नि तत्त्व का स्थान है। इसके अधिक सक्रिय होने पर काम-वासना आदि वृत्तियों में उभार आ जाता है अत: इसको नियन्त्रित रखने से तेजस्विता बढ़ती है, शक्ति का संचय होता है तथा आवेगात्मक वृत्तियाँ शांत रहती हैं।

4. आनंद केन्द्र

आनंद केन्द्र का स्थान फुफ्फुस के नीचे हृदय के निकट में है। थायमस ग्रन्थि को प्रभावित करने हेतु यह एक महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। आनंद केन्द्र के जागृत होने से साधक बाह्य जगत से मुक्त होकर भीतरी जगत में प्रवेश करता है। काम-वासना के परिशोधन में भी यह सहायक बनता है।

जब आनंद केन्द्र संतुलित रहता है तब काम वासना आदि वृत्तियाँ संतुलित रहती हैं, अध्यात्म की ओर रूझान बढ़ता है और हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है।

आनंद केन्द्र के विकृत होने पर कामवृत्तियों की उग्रता बढ़ जाती है जिससे आलस, शुष्कता, निष्क्रियता आदि में वृद्धि होती है एवं अन्य कई विकार उत्पन्न होते हैं।

5. विशुद्धि केन्द्र

विशुद्धि केन्द्र का स्थान कंठ है। यह थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि का मुख्य क्षेत्र है। इस केन्द्र के प्रभावित होने से वाणी पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह उच्चतर चेतना एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करता है। इसका मन के साथ गहरा सम्बन्ध है।

इस केन्द्र के जागृत होने पर जीवन की गति नियंत्रित रहती है। इससे जैविक क्षमता में अभिवृद्धि भी होती है तथा यह भावों के उदात्तीकरण एवं निर्मलीकरण में सहायक बनता है। इस केन्द्र की विशुद्धि से चित्त की एकाग्रता, स्थिरता एवं समाधि को प्राप्त किया जा सकता है।

विशुद्धि केन्द्र का असंतुलन जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में अरुचि उत्पन्न करता है। इससे मानसिक एवं आध्यात्मिक चेतना समाप्त हो जाती है। शारीरिक स्तर पर चयापचय, पाचन आदि की क्रिया असंतुलित रहती है।

इस केन्द्र के नियोजन से शारीरिक क्रियाएँ सुचारू रूप से चलती है। आध्यात्मिक एवं मानसिक जगत सुंदर बनता है।

6. ब्रह्म केन्द्र

ब्रह्म केन्द्र का स्थान जिह्वा का अग्रभाग है। इस केन्द्र की जागृति एवं साधना ब्रह्मचर्य को पुष्ट करती है। हमारे ज्ञानेन्द्रियों का कामेन्द्रियों के साथ सम्बन्ध होता है। जिह्वा का सम्बन्ध जननेन्द्रिय एवं जल तत्त्व से है अत: जब जिह्वा को अधिक रस मिलता है तो कामुकता बढ़ती है।

ब्रह्म केन्द्र के संतुलित अथवा नियंत्रित रहने से संयम एवं ब्रह्मचर्य में वृद्धि होती है। जीभ पर रखा गया संयम काया-वासनाओं को शिथिल करता है। ब्रह्म केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से मनवांछित कार्य की सिद्धि होती है।

इस केन्द्र का असंतुलन काम वासनाओं को उत्तेजित एवं वाणी को अनियंत्रित करता है।

7. प्राण केन्द्र

प्राण केन्द्र का स्थान नासाग्र है। यह अंग प्राण का मुख्य केन्द्र है और इसकी साधना से प्राण का ऊर्ध्वीकरण होता है।

प्राण केन्द्र की साधना से प्रकाश दर्शन, पूर्वाभास, दूराभास आदि हो सकता है। एकाग्रता की सिद्धि में यह केन्द्र अत्यन्त उपयोगी है। इससे संकल्प

शक्ति, मनोबल एवं आत्मविश्वास की वृद्धि होती है।

इस केन्द्र के निष्क्रिय होने पर प्राण बल कमजोर होता है जिससे जीवन का समग्र विकास अवरुद्ध हो जाता है।

8. चाक्षुष केन्द्र

चाक्षुष केन्द्र का स्थान चक्षु है। चित्त की एकाग्रता के लिए यह बहुत प्रभावशाली केन्द्र है। इसके माध्यम से मस्तिष्किय विद्युत् से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। यह जीवनशक्ति का केन्द्र है अत: इसके दीर्घकालीन अभ्यास से दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है।

9. अप्रमाद केन्द्र

अप्रमाद केन्द्र का स्थान कान और उसके आस-पास कनपट्टि का स्थान है। इस केन्द्र की साधना व्यसन मुक्ति में परम उपयोगी है।

रूस के वैज्ञानिकों के अनुसार अप्रमाद केन्द्र पर विद्युत् प्रवाह के प्रयोग से व्यसन मुक्ति में सफलता प्राप्त हो सकती है। इस केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से अनेक बुराईयों का शमन होता है। स्नायुतंत्र चैतन्यशील बनता है तथा स्मृति का विकास होता है। इससे मूर्छा एवं भ्रम की स्थिति दूर होती है।

अप्रमाद केन्द्र की असक्रियता अथवा अतिसक्रियता व्यक्ति को सुस्त, आलसी एवं प्रमादी बनाती है।

10. दर्शन केन्द्र

दर्शन केन्द्र का स्थान हमारी दोनों भृकुटियों के बीच है। यह अति महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। शरीर शास्त्रियों के अनुसार यह वीतराग प्राप्ति का सूचक केन्द्र है। इसे आज्ञा चक्र एवं तृतीय नेत्र भी कहा जाता है।

इस केन्द्र की सक्रियता से चैतन्य जागरण का मार्ग प्रशस्त होता है। चंचल वृत्तियाँ समाप्त होती हैं। मानसिक, वाचिक एवं भावनात्मक स्थिरता और एकाग्रता का विकास होता है। पूर्णाभास, अन्तर्दृष्टि एवं अतिन्द्रिय क्षमताओं का वर्धन होता है। विचार सकारात्मक, उच्च एवं आध्यात्मिक बनते हैं।

दर्शन केन्द्र का असंतुलन व्यक्ति को मानसिक एवं बौद्धिक रूप से विक्षिप्त और असंतुलित कर मस्तिष्क सम्बन्धी विकारों एवं रोगों को उत्पन्न करता है तथा पीयूष ग्रन्थि के कार्यों को भी प्रभावित करता है।

11. ज्योति केन्द्र

ज्योति केन्द्र ललाट के मध्य भाग में स्थित है। इस केन्द्र का सम्बन्ध पिनीयल ग्रन्थि से है। यह केन्द्र कषाय, नोकषाय, काम वासना, असंयम, आसक्ति आदि संज्ञाओं के उपशमन में विशेष सहायक बनता है।

ज्योति केन्द्र को नियंत्रित करने से क्रोधादि आवेश एवं आवेग शांत हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य की साधना ऊर्ध्वता को प्राप्त करती है। पिच्युटरी एवं पिनीयल ग्रन्थि की सक्रियता बढ़ जाती है। एड्रीनल एवं गोनाड्स ग्रन्थियों पर नियंत्रण प्राप्त होता है। कामवृत्तियाँ अनुशासित होने से आन्तरिक आनंद की अनुभूति होती है।

इस केन्द्र के सुप्त रहने पर अपराधी मनोवृत्तियों को बल मिलता है। इससे काम, क्रोध, भय आदि संज्ञाएँ उत्पन्न होती हैं तथा मानसिक एवं भावनात्मक विकृतियाँ बढ़ती है।

इस केन्द्र की साधना करने वाला शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर कामी से अकामी बन जाता है।

12. शांति केन्द्र

शांति केन्द्र का स्थान मस्तिष्क का अग्रभाग माना गया है। यह चित्त शक्ति का भी एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसका सम्बन्ध भावधारा से है। सूक्ष्म शरीर से प्रवाहमान भावधारा मस्तिष्क के इसी भाग में आकर जुड़ती है।

आयुर्वेदाचार्यों ने इसे अधिपति मर्म स्थान कहा है। हठयोग के अनुसार यह ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार चक्र का स्थान है। इसके जागृत होने से परमोच्च अवस्था एवं आत्मानंद की प्राप्ति होती है तथा चैतन्य केन्द्रों का जागरण एवं हृदय परिवर्तन होता है।

शांति केन्द्र की असक्रियता अवचेतन मन में एवं अन्त:स्रावी ग्रन्थियों में विकार उत्पन्न करती है। इससे नाड़ी संस्थान के कार्यों में भी बाधा पहुँचती है।

13. ज्ञान केन्द्र

सिर का ऊपरी भाग (चोटी का स्थान) ज्ञान केन्द्र माना गया है। यह मानसिक ज्ञान का चैतन्य केन्द्र है। मन की सारी मनोवृत्तियाँ इसके विभिन्न कोष्ठों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। यही स्थान बुद्धि, स्मृति, चिन्तनशक्ति आदि का मुख्य केन्द्र है।

ज्ञान केन्द्र के जागरण से मस्तिष्क विकसित होता है। चैतन्य शक्ति प्रबल बनती है। दिव्य ज्ञान का जागरण होता है। अतिन्द्रिय क्षमता का विकास होता है। पूर्वजन्म स्मृति, प्राण-अवबोध (Pre-cognition) आदि विशेष शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

पाँच तत्त्वों पर मुद्रा के प्रभाव

हमारा शरीर मुख्य रूप से पंच महाभूतों का पिण्ड है। ये पाँच तत्त्व मिलकर हमारी समस्त क्रियाओं का संयोजन करते हैं। इनका भिन्न-भिन्न संयोजन शरीर की प्रकृति को निश्चित करता है। जब पाँच तत्त्व उचित मात्रा में बने रहते हैं तो शरीर की चयापचय क्रियाएँ भी सम्यक् प्रकार से होती है तथा शरीर स्वस्थ एवं तंदुरूस्त रहता है।

पारिवारिक संस्कारों, वंशानुगत परम्परा, आहारचर्या, जीवनशैली, वातावरण आदि के कारण तत्त्वों की मूल अवस्था में परिवर्तन होता रहता है। इससे शारीरिक क्रियाओं में विक्षेप एवं विकृति आ जाती है और तत्त्वों की स्वभाव च्युति शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गतिविधियों को प्रभावित करती है। इन तत्त्वों के मूलस्थिति में रहने पर शरीर विशिष्ट शक्ति प्राप्त करता है एवं मस्तिष्क व्यवस्थित रूप में कार्य करता है।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा शरीरस्थ पाँचों तत्त्वों का संतुलन किया जा सकता है। शरीरशास्त्रियों एवं आयुर्वेदाचार्यों ने पाँच अंगुलियों में पाँचों तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। जिसके शरीर में जिस तत्त्व की कमी या असंतुलन हो वह उस तत्त्व से सम्बन्धित मुद्रा का प्रयोग करके उस कमी की परिपूर्ति कर सकता है।

पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व हमारे शरीर की विद्युत शक्ति का नियंत्रण करते हैं। पश्चिमी वैज्ञानिकों ने भी इस विद्युत को जीव विद्युत् (Bioelectricity) अथवा जीवन शक्ति (Bioenergy) के रूप में स्वीकृत किया है। यह प्राण शक्ति जीवन बैटरी के रूप में हमारे शरीर में गर्भाधान के समय स्थापित हो जाती है जो चैतन्य रूपी विद्युत् प्रवाह को उत्पन्न करती है। मुद्रा आदि यौगिक साधनाओं के द्वारा यह विद्युत् प्रवाह सक्रिय रहता है।

मनुष्य की शारीरिक क्रियाओं में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश ये पाँचों तत्त्व निम्न प्रकार से सहायक बनते हैं-

1. पृथ्वी तत्त्व

शरीर का स्थूल ढांचा, अस्थि, मांसपिण्ड आदि पृथ्वी तत्त्व का रूप है। इस तत्त्व की कमी से शरीर के सभी जैविक बल निष्क्रिय हो जाते हैं। उन सभी को सक्रिय रखने के लिए अधिक शक्ति की जरूरत पड़ती है जो कि पृथ्वी तत्त्व से प्राप्त होती है। अधिक वजन वाले, मांसल, चरबीयुक्त व्यक्ति इस तत्त्व के आधिपत्य के उदाहरण हैं। ऐसे लोग निश्चिन्त स्वभाव वाले होते हैं। कुछ हासिल करने की उत्सुकता उनमें नहीं रहती, वे संघर्ष से दूर भागते हैं तथा सुस्त एवं आलसी प्रवृत्ति वाले होते हैं।

इस तत्त्व के त्रुटिपूर्ण रहने से व्यक्ति स्वार्थी बनता है तथा उसके विचारों आदि में शुष्कता एवं आग्रह बढ़ जाता है।

पृथ्वी एक तटस्थ तत्त्व है। इसके संतुलित रहने से व्यक्ति तटस्थ विचारों वाला होता है और उसकी विचलित अवस्था दूर होती है। इस तत्त्व के नियमन से शरीर की स्थूलता, हड्डी, मांस, आदि नियंत्रित रहते हैं।

2. जल तत्त्व

जल जीवन तत्त्व है। हमारे शरीर में 70% से अधिक जल तत्त्व का परिमाण है। यह तत्त्व अपने स्वभाव के अनुसार ही शीतलता प्रदान करता है तथा जीवन प्रवाह को सुरक्षित रखता है। शरीर के तापमान को नियंत्रित एवं रूधिर आदि की कार्य पद्धति को संतुलित रखने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

इस तत्त्व के संतुलित रहने से मूत्रपिंड, प्रजनन अंग, लसिका ग्रन्थियों आदि का स्राव संतुलित रहता है। यह प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करता है। यौन ग्रन्थियों, चेताकोषों, रजवीर्य, अस्थिमज्जा आदि को उत्पन्न करता है तथा शरीर को स्वस्थ रखने में मुख्य सहयोगी बनता है। इस तत्त्व के असंतुलन से शरीर में जल तत्त्व की कमी आदि हो जाती है जिससे रक्त वाहिनियों, मूत्राशय आदि में विकार उत्पन्न हो सकते हैं। भावों के प्रवाह में भी यह रूकावट उत्पन्न करता है।

3. अग्नि तत्त्व

यह तत्त्व शरीर में उत्पन्न अग्नि द्वारा आहार का पाचन कर शरीर को शक्ति प्रदान करता है। इसके जठर, तिल्ली, यकृत, स्वादुपिंड, एड्रीनल आदि

मुख्य केन्द्र हैं। अग्नि तत्त्व संतुलित एवं सक्रिय रहने पर शरीर में अग्निरस, पित्तरस, पाचकरस आदि की उत्पत्ति होती है। यह शरीर के तापमान को बनाए रखते हुए सभी अंगों को सक्रिय रखता है। इससे रूधिर, मांस, चर्बी, अस्थि आदि के निर्माण में सहायता प्राप्त होती है। यह स्नायुतंत्र को स्वस्थ एवं चेहरे को सुंदरता प्रदान करता हुआ रोग प्रतिरोधक तत्त्वों को उत्पन्न करने में भी सहायता प्रदान करता है।

इस तत्त्व का असंतुलन पाचन सम्बन्धी विकारों का मूलभूत कारण है। इससे एनीमिया, पीलिया, बेहोशी, मस्तिष्क सम्बन्धी अव्यवस्था, दृष्टि विकार, मोतिया बिंद, एसिडिटी आदि शारीरिक समस्याएँ उत्पन्न होती है और आन्तरिक बल घटता है।

यह तत्त्व विचार शक्ति में सहायक एवं मस्तिष्क शक्ति को विकसित करता है। इससे शारीरिक तेज एवं कांति में वृद्धि होती है तथा यह ऊर्जा के जागरण एवं ऊर्ध्वीकरण में सहायक बनता है।

4. वायु तत्त्व

वायु तत्त्व को जीवन कहा गया है। यह एक ऐसी शक्ति है जो शरीर के प्रत्येक भाग का संचालन करती है। इसके छाती, फेफड़े, हृदय, थायमस ग्रन्थि आदि मुख्य केन्द्र हैं।

वायु तत्त्व शरीर के प्रमुख सहकारी एवं संरक्षक बल को उत्पन्न करने में सहयोगी बनता है। यह हृदय एवं रूधिर अभिसरण की क्रिया को नियंत्रित और शरीर को संतुलित बनाए रखता है। इससे श्वसन एवं मलमूत्र की गति में भी मदद मिलती है।

इस तत्त्व के समस्थिति में रहने पर वचन शक्ति, मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। इससे स्व नियंत्रण में भी विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

इसके असंतुलन से हृदय रोग, वायु विकार, फेफड़ें आदि के विकार उत्पन्न होते हैं तथा विचारों में संकीर्णता एवं असहकारिता आदि भावों का जन्म होता है।

5. आकाश तत्त्व

यह तत्त्व सम्पूर्ण शरीर में हवा, रक्त, जल आदि तत्त्वों के वहन या

संचरण में सहयोग करता है। इस तत्त्व के संतुलित रहने से शरीरस्थ विष द्रव्यों का निष्कासन सहजतया हो जाता है जिससे शरीर स्वस्थ एवं तंदुरुस्त रहने के साथ-साथ थाइरॉईड, पेराथाइरॉईड, टान्सिल, लार रस आदि पर नियंत्रण रहता है। इससे मस्तिष्क सम्बन्धी विकार भी दूर होते हैं।

इस तत्त्व के असंतुलन से हार्टअटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती है। पीयूष ग्रन्थि एवं पीनियल ग्रन्थि के विकारों का मुख्य कारण इसी तत्त्व का असंतुलन है। यह तत्त्व सम्यक् दिशा में गतिशील हो तो मानसिक शक्तियों का पोषण होता है तथा अध्यात्म मार्ग की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से यह सुस्पष्ट है कि प्रत्येक मुद्रा शरीर के किसी न किसी शक्तिमान चक्रों एवं केन्द्रों आदि को निश्चित रूप से प्रभावित कर उन्हें संतुलित करती है। इससे तद्स्थानीय रोगों का शमन एवं तज्जनित गुणों का प्रगटन होता है।

मुद्रा प्रयोग के नियम-उपनियम

यहाँ मुद्रा का तात्पर्य हाथ की विभिन्न आकृतियों से है क्योंकि प्राय: मुद्राएँ हाथों द्वारा ही की जाती है। कहा जाता है जैसे ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों से निर्मित है वैसे ही प्राणवान शरीर भी पाँच तत्त्वों से बना हुआ है। इन पाँच महाभूत तत्त्वों में अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी और जल की गणना होती है। यौगिक पुरुषों के अनुसार हमारी पाँचों अंगुलियाँ इन तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

स्पष्ट है कि हाथ की अंगुलियों से की जाने वाली मुद्राओं के माध्यम से शरीर के आवश्यक तत्त्वों का प्रभाव घटा-बढ़ा सकते हैं। जिससे शरीर में इन तत्त्वों का संतुलन बना रहता है तथा शरीर के साथ-साथ बुद्धि, मन एवं चेतना के दोषों का परिहार और गुणों का उत्सर्जन होता है।

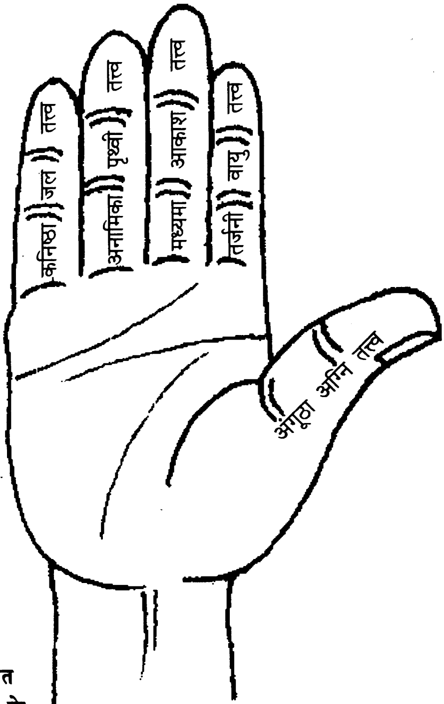

प्रचलित
मान्यता के
अनुसार

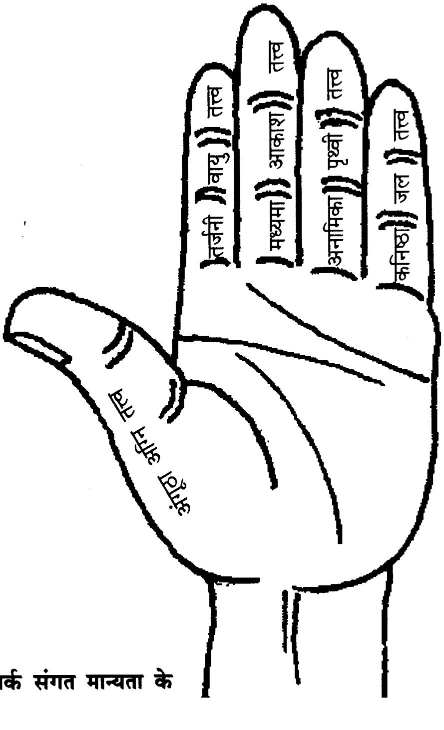

तर्क संगत मान्यता के

अंगुलियों के नाम	तत्त्वों के नाम
अंगूठा (Thumb)	अग्नि तत्त्व (Fire-sun)
तर्जनी (Index)	वायु तत्त्व (Air-wind)
मध्यमा (Middle)	आकाश तत्त्व (Ether-space)
अनामिका (Ring)	पृथ्वी तत्त्व (Earth)
कनिष्ठिका (Little)	जल तत्त्व (Water)

मुद्रा की आवश्यक जानकारी

1. सामान्यतया मनुष्य पाँच तत्त्वों के संतुलन से स्वस्थ रह सकता है। ऋषि-महर्षियों द्वारा निर्दिष्ट एवं अनुभवियों द्वारा उपदर्शित मुद्राएँ बौद्धिक, मानसिक एवं दैहिक संतुलन की अपेक्षा से है अत: इन मुद्राओं का प्रयोग करने से पूर्व उसके प्रति दृढ़ विश्वास एवं अटूट श्रद्धा अवश्य होनी चाहिए।
2. शारीरिक संरचना के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग पर दूसरी अंगुली के अग्रभाग को दबाने से, उस अंगुली का जो तत्त्व है वह बढ़ जाता है तथा अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूल पर लगाने/दबाने से उस अंगुली का जो तत्त्व है उसमें कमी आ जाती है।
3. मुद्रा करते समय अंगुली और अंगूठे का स्पर्श सहज होना चाहिए। अंगूठे से अंगुली को सहज दबाव देना चाहिए और शेष अंगुलियाँ अमुक-अमुक मुद्रा के नियमानुसार सीधी या एक-दूसरे से सटी रहनी चाहिए। हथेली का भाग मुद्रा नियम के अनुरूप रहना चाहिए। यदि अंगुलियाँ पहली बार में सही रूप से सीधी-टेढ़ी या सटी हुई न रह पायें तो आरामपूर्वक जितना बन सके, मुद्रा को यथारूप बनाने की कोशिश करें। तदनन्तर अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे सही मुद्रा भी बन जाती है।
4. मुद्रा प्रयोग दोनों हाथों से करें, क्योंकि दायें हाथ की मुद्रा करने से शरीर के बाएँ भाग पर असर होता है और बाएँ हाथ की मुद्रा करने से शरीर के दायें भाग पर असर होता है। इस तरह शरीर और मन हर तरह से संतुलित रहता है।
5. हर कोई स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, रोगी-निरोगी मुद्राओं का प्रयोग कर सकता है।

6. प्रत्येक व्यक्ति के स्वयं के लिए जो भी मुद्रा उपयोगी हो, उस मुद्रा का प्रयोग नियमत: 48 मिनट तक करना चाहिए। अभ्यास के द्वारा समय मर्यादा बढ़ाई जा सकती है। यदि कोई मुद्रा लंबे समय तक एक साथ न हो सके तो सुबह-शाम 15-15 मिनट करके 30 मिनट तक तो अवश्य करनी चाहिए।
7. भोजन के तुरन्त बाद 30 मिनट तक किसी भी मुद्रा को नहीं करें। केवल गैस या अफरा दूर करने के लिए वायु मुद्रा की जा सकती है।
8. प्राण मुद्रा, अपान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा और ज्ञान मुद्रा को साधक इच्छानुसार दीर्घ समय तक कर सकते हैं, किन्तु वायु मुद्रा, शून्य मुद्रा, लिंग मुद्रा वगैरह अन्य मुद्राएँ व्याधि दूर न हों तब तक ही करनी चाहिए।
9. कोई अन्य चिकित्सा या औषधि का सेवन कर रहे हों, तो उस समय भी मुद्रा चिकित्सा का प्रयोग कर सकते हैं।
10. मुद्राओं में अपानवायु रोग मुक्ति के लिए श्रेष्ठकारी है। इस मुद्रा को हृदय पर स्पर्शित करते ही किसी भी रोग में तत्काल फायदा होता है इसलिए डाक्टरों/वैद्यों के पास जाने से पूर्व रोगी को यह मुद्रा अवश्य कर लेनी चाहिए। उसे तात्कालिक राहत का अहसास होता है।
11. शरीर, मन और चेतना को स्वस्थ रखने के लिए प्राणवायु एवं अपानवायु को संतुलित रखना अत्यन्त जरूरी है। यह संतुलन प्राण मुद्रा एवं अपानमुद्रा के प्रयोग से हीं संभव है। इन मुद्राओं के प्रयोग से नाड़ी शुद्धि और शरीर रोग रहित बनता है इसलिए ये मुद्राएँ निश्चित करनी चाहिए।
12. अनेकों मुद्राएँ चैतसिक, मानसिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक विकास के उद्देश्य से की जाती हैं। इन मुद्राओं को निर्धारित दिशा, आसन, मंत्र एवं समयानुसार करने पर अधिक लाभदायी होती हैं।
13. मुद्रा प्रयोग से पंच तत्त्वों में परिवर्तन, विघटन, प्रत्यावर्तन, अभिवर्धन होता रहता है परिणामत: तत्त्वों में सामंजस्य बना रहता है।
14. कुछ मुद्राएँ निश्चित यौगिक आसन में बैठकर की जाती हैं। इनमें हठयोग सम्बन्धी मुद्राएँ एवं पूजोपासना सम्बन्धी मुद्राएँ मुख्य हैं।

रोग शमन में उपयोगी योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की बहुत सी मुद्राएँ चलते-फिरते, सोते-जागते किसी भी स्थिति में की जा सकती हैं।

अधिकांश मुद्राओं का प्रयोग आवश्यक होने पर 45 से 48 मिनट करना चाहिए। यदि किसी मुद्रा को एक साथ न कर पायें तो 15-15 मिनट या 16-16 मिनट में विभाजित कर तीन बार में पूर्ण कर सकते हैं।

15. मुद्राएँ भिन्न-भिन्न हेतुओं से विभिन्न आसनों में की जाती है। हठयोग की मुद्राएँ बैठकर की जाती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में लेटना भी पड़ता है। हठयोग की मुद्राओं को नियमित रूप में कम से कम एक मिनिट से तीस मिनिट तक कर सकते हैं।

नाट्य परम्परा की मुद्राएँ अधिकांशत: भाव प्रदर्शन के उद्देश्य से प्रयुक्त होती हैं अत: विधि नियम के अनुसार बैठकर या खड़े होकर की जाती है। इनमें समय की कोई निश्चित अवधि नहीं है।

योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की मुद्राएँ अनन्त हैं। इस श्रेणि की मुद्राएँ प्राय: हाथ की पाँच अंगुलियों से ही बनती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में दोनों हाथों के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे ज्ञान मुद्रा, वैराग्य मुद्रा, अभय मुद्रा, ध्यान मुद्रा आदि में समग्र शरीर का उपयोग होता है। साधारण ज्ञान मुद्रा चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा विभिन्न कार्य करते हुए एक हाथ से या दोनों हाथों से भी की जा सकती है किन्तु मुख्य ज्ञान मुद्रा किसी आसन में बैठकर ही की जाती है।

रोग निवारक मुद्राएँ एक साथ दो, तीन, चार भी लगातर की जा सकती है। चाहें तो हर सैकेण्ड के बाद मुद्रा परिवर्तित कर सकते हैं। आवश्यकता होने पर बार-बार बदलते हुए कुछ अधिक समय भी मुद्राएँ कर सकते हैं।

रोग दूर करने वाली साधारण मुद्राओं में किसी मुद्रा को पहले तथा बाद में करने का कोई नियम नहीं है। जिस मुद्रा की आवश्यकता पहले समझें उसे इच्छानुसार कर सकते हैं।

हिन्दु उपासना में गायत्री मुद्राओं का प्रमुख स्थान माना गया है। इन मुद्राओं को त्रिकाल सन्ध्या में करने का प्रावधान है। इन्हें धीरे-धीरे भी कर सकते हैं और शीघ्रता के साथ भी इनका प्रयोग किया जा सकता है।

मुद्रा अभ्यासी साधकों के लिए आवश्यक है कि वे साधना काल के दौरान आत्मा, मन और शरीर से पूरी तरह शान्त और पवित्र हों। ऐसी स्थिति में मुद्राओं का पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

मुद्राएँ करते समय अतिरिक्त अन्य अंगुलियों को सीधा रखना चाहिए। मुद्राएँ उचित प्रकार से करने पर ही अपना प्रभाव दिखाती हैं।

मुद्रा चिकित्सा को अन्य चिकित्सा प्रणालियों जैसे ऐलोपैथी या होम्योपैथी के साथ भी किया जा सकता है। इससे अन्य चिकित्सा प्रणालियों में किसी भी प्रकार से बाधा नहीं पहुँचती वरन् लाभ ही होता है।

प्राय: मुद्राओं का प्रभाव अतिशीघ्र होता है परन्तु पुराने रोगों के निवारण हेतु मुद्राएँ लम्बे समय तक करनी चाहिए।

किसी भी क्रिया को करने से पूर्व उसके लाभ-हानि, विधि-अविधि के विषय में सम्यक जानकारी हो तो उसका प्रयोग शीघ्र परिणामी होता है। मुद्रा साधना यद्यपि एक शारीरिक क्रिया है परन्तु इसका प्रभाव साधक मनुष्य की सूक्ष्म तन्त्र प्रणालियों पर भी देखा जाता है। यही तन्त्र मनुष्य के स्वभाव, आचरण एवं भावजगत को संतुलित रखते हैं। इस अध्याय के माध्यम से साधक को मुद्रा साधना के उन्हीं पक्षों से परिचित करवाते हुए मुद्रा प्रयोग में अधिक जागरूक एवं सक्रिय बनाने का प्रयास किया है। इससे साधक स्वयं अपने रोगों के लक्षण जानकर किस चक्र या ग्रन्थि को नियंत्रित करना है यह जान सकेगा एवं तत्सम्बन्धी मुद्राओं सम्यक विधिपूर्वक उपयोग करके उनके सुपरिणाम प्राप्त कर सकेगा।

●

अध्याय-2

विधिमार्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्राओं का सोद्देश्य स्वरूप एवं उसके विभिन्न प्रभाव

धार्मिक उपासना एवं आध्यात्मिक साधना की समग्रता का एक आधार मुद्रायोग को माना गया है। मुद्रा शब्द अनेकार्थक है। साधना के क्षेत्र में इसके व्यावहारिक और यौगिक उभय अर्थ प्राप्त होते हैं। प्रसंगत: कहा जा सकता है कि मुद्राएँ भावों का प्रतिबिम्ब होती हैं। मुद्रण शब्द मुद्रा से निर्मित है जिसका सांकेतिक अर्थ होता है वर्णमाला के माध्यम से मनोभावों की अभिव्यक्ति करना। जिस तरह मुद्रित (टंकित) शब्दों और वाक्यों द्वारा लेखक के भावों से अवगत हो जाते हैं उसी तरह शरीर की मुद्राओं से अन्तर्भावों का प्रकटीकरण हो जाता है।

शरीर से जितने प्रकार के हाव-भाव किए जाते हैं उतनी ही मुद्राएँ बन जाती है। इस तरह हजारों मुद्राएँ मानी जा सकती है। इस अध्याय में मुख्य रूप से उन मुद्राओं का विवरण दिया जा रहा है जिनका उपयोग प्रतिष्ठा-पूजा आदि प्रमुख विधानों में के समय शरीर शुद्धि, हृदय शुद्धि, स्थान शुद्धि, देवता आह्वान, देवतुष्टि, असुर शक्तियों का निवारण, बिम्बरक्षा, देहरक्षा आदि के लिए किया जाता है।

एक ओर ये मुद्राएँ प्रासंगिक कार्यों को निर्विघ्न रूप से सम्पन्न करती हैं वहीं दूसरी ओर इन मुद्राओं के प्रयोग से शरीर निरोगी, मन स्वस्थ और चेतना ऊर्ध्वाभिमुखी बनती है। जैन मुद्राओं की प्रमुख विशेषता यह है कि इनका प्रयोग रोगोपचार के उद्देश्य से नहीं किये जाने पर भी ये विविध दृष्टियों से लाभ पहुँचाती हैं। इनकी साधना से विकृत तत्त्वों का निर्गमन एवं बीमारियों का उपशमन स्वत: होता है।

शरीर, स्थान एवं वातावरण की शुद्धि हेतु प्रयुक्त मुद्राएँ

1. नाराच मुद्रा

नाराच का शाब्दिक अर्थ है लोहे का बाण। संस्कृत व्युत्पत्ति के अनुसार "नरान् आचमति इति नाराचः" अर्थात जो मनुष्यों को पीड़ित करता है, क्लान्त करता है, आघात पहुँचाता है वह नाराच कहलाता है।

तीर के अनेक प्रकार हैं, किन्तु जिस तीर का सर्वांग लोहे का होता है उसे नाराच कहते हैं। इस मुद्रा के प्रयोजनभूत तत्त्व की दृष्टि से विचार किया जाए तो नाराच मुद्रा का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। चूंकि तीर का अग्रभाग सीधा, नुकीला एवं चमकदार होता है। नाराच मुद्रा से शरीर में चमक उत्पन्न होती है अर्थात तदरूप भावधारा से शरीर की शुद्धि होती है। जिस प्रकार तीर का अग्रभाग लक्ष्य को साधता है और छूटता हुआ लक्ष्य का वेधन करता है उसी प्रकार प्रतीकात्मक दृष्टि से यह मुद्रा मन को एकाग्र करती है तथा चित्त की चंचलता को दूर कर चेतना को साधती है।

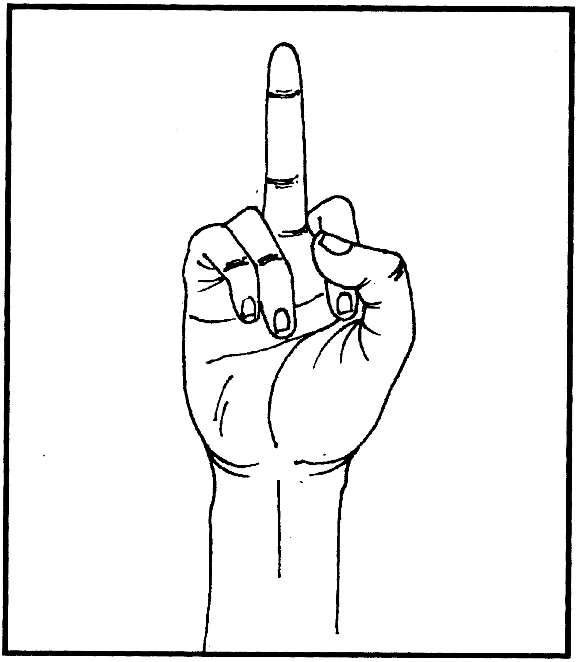

नाराच मुद्रा

चूंकि मन शरीराश्रित है अत: मनोवृत्तियों की अस्थिरता से शरीर भी अस्थिर होता है, जबकि शुभ अनुष्ठान में मनोदैहिक प्रवृत्तियाँ स्थिर रहनी चाहिए।

यह मुद्रा मन की शान्ति एवं शारीरिक स्थिरता के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

"दक्षिणांगुष्ठेन तर्जनीमध्यमे समाक्रम्य पुनर्मध्यमा मोक्षणेन नाराच मुद्रा।"

दाहिने हाथ के अंगूठे से तर्जनी एवं मध्यमा अंगुलियों को आक्रमित करके पुन: मध्यमा अंगुली को पृथक करने पर नाराच मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

इस मुद्रा के निम्नोक्त लाभ हैं–

• शारीरिक दृष्टि से यह शरीर में थायरॉइड ग्रन्थि पर रक्त संचार को नियमित करती है। शरीर के आधारभूत हार्मोन्स को संतुलित रखती है। आँख सम्बन्धी तकलीफों में राहत देती है।

यह मुद्रा आकाश तत्त्व एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए रक्त संचरण, श्वसन तंत्र एवं हृदय सम्बन्धी समस्याओं का निवारण करती है।

घुटने तथा जोड़ों में सन्धिवात से होने वाला दर्द ठीक होता है और कुपित वायु प्रशान्त होती है। इससे मन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

• भावनात्मक दृष्टि से मानसिक परेशानियाँ दूर होती हैं, मन:स्थिति प्रसन्न रहती है और बुद्धि कुशाग्र बनती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से इस मुद्रा का प्रयोग चेतना की निर्णय शक्ति को बढ़ाता है। इस मुद्रा से विशुद्धि चक्र एवं आज्ञा चक्र प्रभावित होते हैं जिससे अहंकार, मायाचारी आदि में कमी होती है तथा मानवीय संवेदनाएँ अनुभूति के स्तर पर उभरने लगती हैं।

एड्रीनल ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा रोग की प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करती है तथा अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन में सहयोगी बनती है।

विशेष

• इस मुद्रा का प्रयोग स्थान आदि की शुद्धि के निमित्त किया जाता है।

• जैसे वाण चमकीला एवं लक्ष्य वेधित करता है वैसे ही इस मुद्रा को दिखाने से स्थान, वातावरण आदि बाह्य मल से रहित होकर चमक उठते हैं और मनोचेतना इच्छित कार्यों को साध लेती है।

• एक्यूप्रेशर चिकित्सा के अनुसार यह मुद्रा कर्ण सम्बन्धी रोगों जैसे– कान से कम सुनना, कान में आवाजें आना, कान में सूजन आना, कान का पर्दा फटना, मवाद आना आदि में मुख्य रूप से लाभकारी है।

• वीर्य एवं अण्डकोश सम्बन्धित रोगों में लाभ पहुँचाती है।

• इससे मुख सम्बन्धी रोगों का भी निवारण होता है।

2. कुम्भ मुद्रा

सामान्यतया कुम्भ को कलश कहा जाता है। जल से भरा हुआ कलश मांगलिक एवं शकुनकारी माना गया है। शुभ प्रसंगों में प्राय: जलपूरित घट की स्थापना की जाती है।

यहाँ कुम्भ मुद्रा से दो प्रकार के प्रयोजन सिद्ध होते हैं। प्रथम तो प्रतिष्ठा आदि के समय यह मुद्रा दिखाई जाए तो मंगलकारी वातावरण निर्मित होता है तथा दूसरा, इस मुद्रा की परिकल्पना अथवा प्रयोग से स्थानादि की शुद्धि हो जाती है।

बाह्य जगत मनोजगत से निरन्तर प्रभावित होता रहता है। जैन दर्शन का कर्म सिद्धान्त इसी तथ्य को पुष्ट करता है। हमारा चेतन मन जब-जैसा विचार करता है बाह्य लोक में विद्यमान पुद्गल वर्गणाएँ तदरूप में परिणत हो आत्मप्रदेशों के साथ एकमेक हो जाती है, इसे ही कर्मबन्ध कहते हैं।

आचार्य जिनप्रभसूरि ने कुम्भ मुद्रा का उल्लेख शुद्धि के प्रसंग में किया है। विशिष्ट संशुद्धि के लिए कलश का नीर पवित्र माना गया है। अरिहंत परमात्मा एवं देवी-देवताओं का अभिषेक कलश के द्वारा ही किया जाता है। दूसरा तथ्य यह है कि बाह्य वस्तु की शुभाशुभता मनस केन्द्र पर भी उसी तरह का भाव पैदा करती है। कुम्भ शुभता और पवित्रता का द्योतक है। इस मुद्रा के कल्पना मात्र से शुभ वातावरण उपस्थित हो जाता है।

योगविज्ञान के अनुसार श्वास को रोकना कुम्भक कहलाता है। जब प्राण वायु को रोका जाता है तो हृदय की मांसपेशियाँ सिकुड़ती हैं साथ ही ऐन्द्रिक मनोप्रवृत्तियाँ शान्त और सुस्थिर हो जाती हैं। इस मुद्रा में भी हथेली की

अंगुलियाँ सिकुड़ी हुई रहती हैं और वह सांकेतिक दृष्टि से चित्त को बहिर्जगत से आभ्यन्तर जगत की ओर उन्मुख होने का संदेश देती है। यह अन्तर्मुखता, शान्ति एवं स्थिरता का प्रतीक है।

इस तरह कुम्भ मुद्रा अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

विधि

''किंचिदाकुंचितांगुलीकस्य वामहस्तस्योपरि शिथिलमुष्टि दक्षिणकर स्थापनेन कुम्भमुद्रा।''

अर्थात बायें हाथ की कुछ झुकी हुई अंगुलियों के ऊपर दाहिने हाथ की ढीली मुट्ठी स्थापित करने पर कुम्भ मुद्रा बनती है।

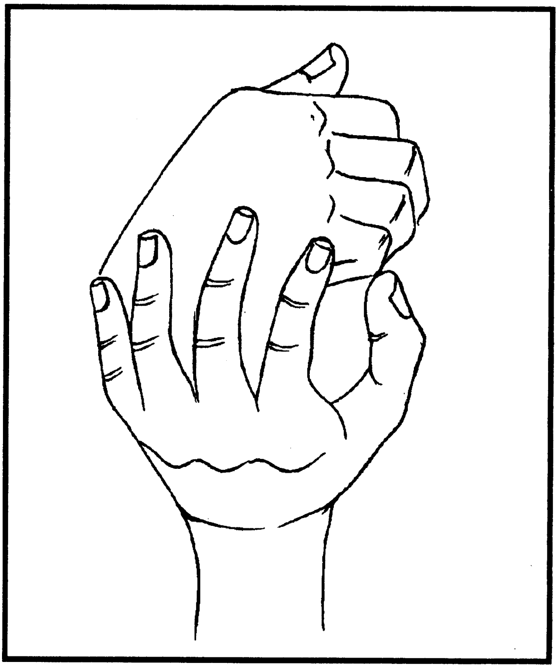

कुम्भ मुद्रा

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से देह की धारणा शक्ति बढ़ती है।

पाँचों अंगुलियों पर स्वाभाविक दबाव पड़ने से पाँचों तत्त्व संतुलित रहते

हैं। परिणामतः शरीर निरोगी बनता है। इस मुद्रा में अग्नि तत्त्व (अंगूठा) और जल तत्त्व (मध्यमा अंगुली) विशेष प्रभावित होते हैं। इससे हृदय शक्तिशाली बनता है, नाड़ियों की शुद्धि होती है तथा पाचन, मल-मूत्र एवं प्रजनन सम्बन्धी विकारों का शमन होता है। इससे शारीरिक समस्याएँ जैसे स्त्रियों का योनि में विकार, सूजन, खून की कमी, अल्सर, बुखार, बदबूदार श्वास आदि में भी फायदा होता है।

यह मुद्रा एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं गोनाड्स ग्रंथियों का संतुलन करते हुए ब्लड शुगर, रक्तचाप, सिरदर्द, कमजोरी, कामेच्छा, ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों का शमन करती है। इससे उदर सम्बन्धी अवयवों की क्षमता बढ़ती है और जठराग्नि प्रबल होती है।

इस मुद्राभ्यास से स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र सक्रिय बनते हैं जिनके प्रभाव से अस्थिरता, कामुकता, शंकालु प्रवृत्ति, लोभ, अकेलापन, भय, लालसा, आत्मविश्वास की कमी आदि पर नियंत्रण होता है।

- भावनात्मक स्तर पर मानसिक विकार नष्ट होते हैं, वैचारिक निर्मलता का उद्भव होता है और बुद्धि कुशाग्र बनती है।
- आध्यात्मिक स्तर पर जड़-चेतन का भेदज्ञान होता है तथा चेतना गूढ़ार्थक तथ्यों को जानने में सक्षम बनती है।

विशेष

- इस मुद्रा का प्रयोग स्थान आदि के शुद्धिकरण हेतु किया जाता है।
- एक्यूप्रेशर थेरेपी के अनुसार इस मुद्रा से मस्तिष्क एवं साइनस सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है।
- बेहोशी, दौरे पड़ना, सदमा लगना आदि में यह मुद्रा शीघ्र लाभ पहुँचाती है।

हृदय, मस्तक, शरीर आदि की शुद्धि एवं सुरक्षा हेतु प्रयुक्त मुद्राएँ

3. हृदय मुद्रा

मानव की शारीरिक संरचना में हृदय चक्र का प्रमुखतम स्थान है। हमारा शरीर विभिन्न प्रकार के तंत्रों द्वारा संचालित होता है, उनमें हृदय तन्त्र एक पम्प के समान कार्य करता है। सम्पूर्ण शरीर में रक्त परिसंचरण सम्बन्धी क्रियाएँ हृदय के द्वारा संचालित होती है। जब तक हृदय क्रियाशील रहता है शरीर के समग्र अवयव सुचारु रूप से कार्य करते हैं। हृदय की धड़कन देखकर ही व्यक्ति के जीवित और मृत होने का निर्णय किया जाता है। हमारे मनोभावों का हृदय पर तुरन्त असर होता है। यदि हम क्रोध से आविष्ट हैं तो हृदय वेग बढ़ जाता है और जब समत्व की गंगा में नहा रहे होते हैं तो हृदय गति धीमी हो जाती है। इस तरह हृदय तन्त्र और वैचारिक जगत का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

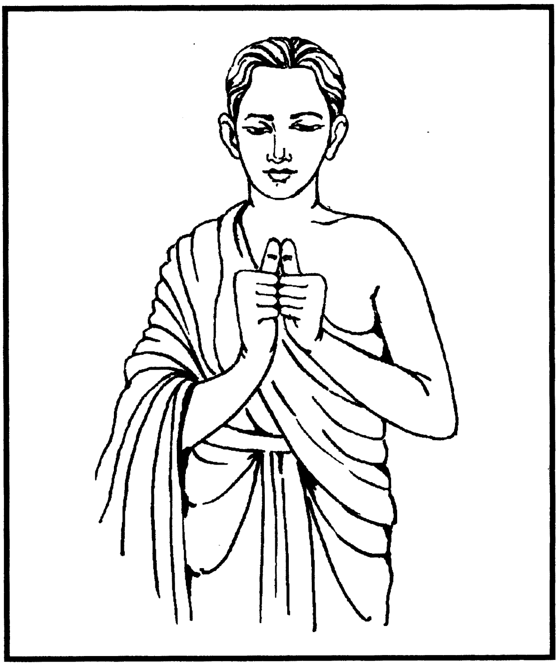

हृदय मुद्रा

यह मुद्रा हृदय शुद्धि एवं दुष्ट प्रभावों से संरक्षण करने हेतु की जाती है।

विधि

"बद्धमुष्टयोः करयोः संलग्नसंमुखांगुष्ठयोर्हृदयमुद्रा।"

अर्थात परस्पर मिले हुए दोनों हाथों की मुट्ठियों के अंगूठों को स्वयं के सम्मुख रखने पर हृदय मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

शारीरिक स्तर पर हृदय शरीर का सर्वाधिक शक्तिशाली अवयव है। यह मुद्रा हृदय गति को नियन्त्रित कर मन की चंचलता को शान्त करती है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है एवं पाचन क्रिया को सक्रिय बनाता है। इस मुद्रा में पंच तत्त्वों का पारस्परिक संयोग होने से देह स्थित सभी तत्त्व नियन्त्रित रहते हैं तथा शारीरिक स्वस्थता का अनुभव होता है।

- मानसिक दृष्टि से चित्त शान्त, स्थिर एवं एकाग्र बनता है।

हृदय मुद्रा को धारण करने से अनाहत चक्र एवं ब्रह्म केन्द्र सक्रिय होते हैं। इससे निर्ममता, उग्रता, अनुत्साह, निराशा, पागलपन आदि का निवारण होता है। धूम्रपान नियंत्रण में यह मुद्रा विशेष रूप से सहायक हो सकती है।

पुरानी बीमारी, ऊर्जा की कमी, पार्किन्संस, हृदय एवं श्वसन सम्बन्धी समस्याएँ, सुस्ती, दमा, मस्तिष्क सम्बन्धी रोग, कैन्सर आदि शारीरिक समस्याओं में भी यह मुद्रा विशेष लाभ पहुँचाती है।

वायु एवं आकाश तत्त्व का संतुलन करते हुए यह हृदय, फेफड़ें, रक्त चार प्रणाली, श्वसन तंत्र आदि का नियमन करती है तथा आनंद की अनुभूति करवाती है। थायमस, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थियों के स्राव को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा हड्डियों के विकास, घाव भरने, रक्त प्रवाह, कोलेस्ट्रॉल, कामवासना आदि का नियंत्रण करती है। यह मुद्रा आवाज नियंत्रण, स्वभाव नियंत्रण, मोटापा, वजन, दुर्बलता, ऑर्थराइटिस आदि में भी लाभकारी है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा विषय कषायों का शमन कर क्षमा आदि गुणों का उत्सर्जन करती है।

विशेष

• इस मुद्रा को बनाते समय हथेलियों एवं अंगुलियों का आकार हृदय की भाँति प्रतीत होता है तथा दोनों हाथों को हृदय के सम्मुख रखा जाता है इसलिए इस मुद्रा को हृदय मुद्रा कहते हैं।

• हमारे शरीर में हृदय ही एक ऐसा तंत्र है जो दूषित रक्त को शुद्ध रक्त के रूप में परिवर्तित करता है।

• हृदय ग्रहण शक्ति का स्रोत है। पूर्व जन्मों अथवा इस जन्म के संस्कारों के अनुरूप अच्छी-बुरी आदतों को ग्रहण करने का कार्य हृदय ही करता है।

• एक्यूप्रेशर रिफ्लेक्सोलोजी के अनुसार यह मुद्रा हृदय, लीवर, पेन्क्रियाज, एड्रीनल, फेफड़ें सम्बन्धी रोगों में लाभदायी है।

4. शिरो मुद्रा

शिर मस्तक को कहते हैं। मस्तिष्क मानव शरीर का सर्वोत्तम अंग है। यौगिक पुरुषों ने मस्तिष्क के अग्रभाग को शान्ति केन्द्र कहा है। यह चित्तशक्ति का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसका सम्बन्ध भावधारा से है। सूक्ष्म शरीर से प्रवहमान भावधारा मस्तिष्क के इसी भाग में आकर मन के साथ जुड़ती है। यहीं हमारे भाव मनोभाव बनते हैं। इस प्रकार यह सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का संगम बिन्दु है।

आयुर्वेद के आचार्यों ने इसे 'अधिपति मर्म स्थान' माना है। आधुनिक आयुर्विज्ञान में इसे अवचेतन मस्तिष्क (हायपोथेलेमस) कहा गया है। नाड़ी संस्थान और अन्त:स्रावी ग्रन्थि संस्थान का संगम भी यही होता है।

हठयोग के अनुसार यह ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार चक्र का स्थान है। प्राचीन साहित्य में 'हृदय' का भाव संस्थान के रूप में जो उल्लेख किया गया है वह शांति केन्द्र या अवचेतन मस्तिष्क ही है। यही भावधारा के उद्गम का मूल स्रोत है।

शिरोमुद्रा मस्तिष्क की सुरक्षा एवं हृदय परिवर्तन के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

"तावेव मुष्टी समीकृतौ ऊर्ध्वांगुष्ठौ शिरसि विन्यसेदिति शिरोमुद्रा।"

हृदय मुद्रा के समान ही दोनों हाथों को मुट्ठियों के रूप में संयोजित कर ऊर्ध्वाकार अंगुष्ठों को मस्तक से स्पर्श करवाना शिरो मुद्रा है।

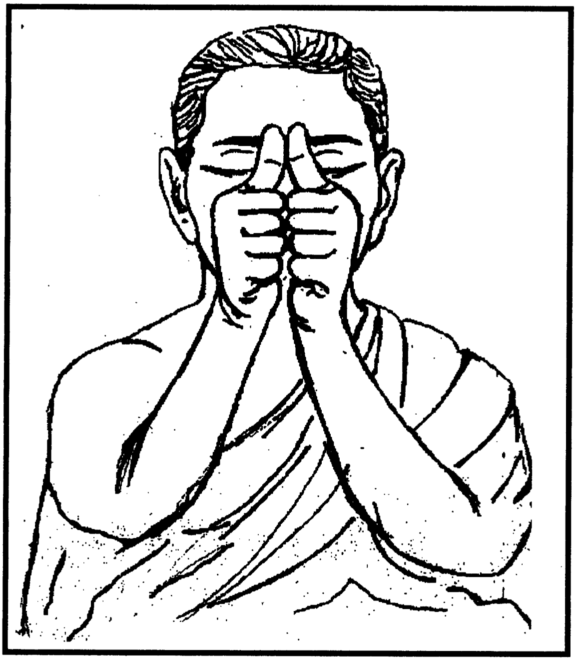

शिरो मुद्रा

सुपरिणाम

• शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा की मदद से दाहिनी ओर के मस्तिष्क की क्रियाएँ संतुलित रहती है। शिरो मुद्रा में पंच तत्त्वों को नियन्त्रित करने वाली पाँचों अंगुलियाँ परस्पर में मिलती हैं जिससे तत्त्वों का सन्तुलन बना रहता है। इस मुद्रा से अग्नि तत्त्व और आकाश तत्त्व अधिक प्रभावित होते है। फलस्वरूप हृदय तन्त्र सुदृढ़ एवं सक्रिय बनता है और उदर विकार दूर होते हैं।

• मानसिक स्तर पर विचारों की भाग दौड़ कम होती है। सोचने एवं समझने के तरीके में बदलाव आता है। इस मुद्रा के द्वारा बुद्धि, स्मृति, चैतन्य शक्ति आदि को प्रबल किया जा सकता है।

• आध्यात्मिक स्तर पर यह मुद्रा आज्ञाचक्र की जागृति में सहायक होती है जिससे साधक धारणा से ध्यान की ओर अग्रसर होता है। इस मुद्राभ्यास से थायरॉइड ग्रन्थि सक्रिय होकर कण्ठ विकारों को दूर करती है। व्यक्ति वाक्सिद्धि प्राप्त कर सकता है। यह मुद्रा इड़ा एवं पिंगला के प्रवाह को संतुलित करती हुई सुषुम्ना को जागृत करने में सहयोग करती है। इस मुद्रा का सम्यक प्रयोग करने वाला साधक शास्त्र का ज्ञाता एवं समदर्शी होकर अपूर्व सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है।

विशेष

• इस मुद्रा को बनाते समय द्वयांगुष्ठों को मस्तक से संस्पर्शित करवाया जाता है अत: इसे शिरोमुद्रा कहते हैं।

• शिरोमुद्रा के द्वारा मस्तक का कवच किया जाता है जिसके प्रभाव से किसी तरह की दुष्टशक्ति इस अंग को क्षति नहीं पहुँचा सकती।

• एक्यूप्रेशर मेरिडियनोलोजी के अनुसार इससे सिरदर्द, माइग्रेन, चक्कर आना आदि मस्तिष्कीय रोगों का उपचार होता है।

5. शिखा मुद्रा

शिखा चोटी को कहते हैं। भारतीय परम्परा में शिखा का अत्यधिक महत्त्व है। योग विज्ञान में शिखा स्थान को ज्ञानकेन्द्र कहा गया है। यह चैतन्य शरीर का सबसे बड़ा केन्द्र है। मनोजगत की समस्त वृत्तियाँ ज्ञान केन्द्र के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। सूक्ष्म शरीर से उतरने वाली शक्ति या उतरने वाला चैतन्य मस्तिष्क के माध्यम से स्थूल शरीर या जागृत मन में उतरता है। हमारी बुद्धि, स्मृति, चिन्तनशक्ति आदि इसी केन्द्र में है। इन्द्रियों के सारे संवेदन भी यहीं अनुभूत होते हैं। इन्द्रिय संवेदनाओं के सारे केन्द्र मस्तिष्क में हैं, जैसे आँख देखती है पर उसके संवेदन का केन्द्र आँख के पास नहीं है, वह मस्तिष्क में है। जीभ स्वाद लेती है किन्तु उसका संवेदन केन्द्र मस्तिष्क में है अत: जीभ, कान, आँख पर नियंत्रण की आवश्यकता नहीं है। शरीर का संचालन मस्तिष्क द्वारा होता है इसलिए मस्तिष्क को संतुलित रखना चाहिए।

केन्द्रीय नाड़ी संस्थान का भी यह प्रमुख स्थान है। लघु मस्तिष्क, बृहद मस्तिष्क एवं पश्च मस्तिष्क के विभिन्न हिस्से ज्ञानकेन्द्र से सम्बद्ध हैं।

शिखा मुद्रा तत्स्थानीय अंगों का संरक्षण एवं मानसिक ज्ञान (केवलज्ञान) की प्राप्ति हेतु की जाती है।

विधि

"पूर्ववन्मुष्टीबद्धा तर्जन्यौ प्रसारयेदिति शिखा मुद्रा।"

हृदय मुद्रा के समान ही दोनों हाथों की बंधी हुई मुट्ठी में से तर्जनी अंगुलियों को प्रसारित करना शिखा मुद्रा है।

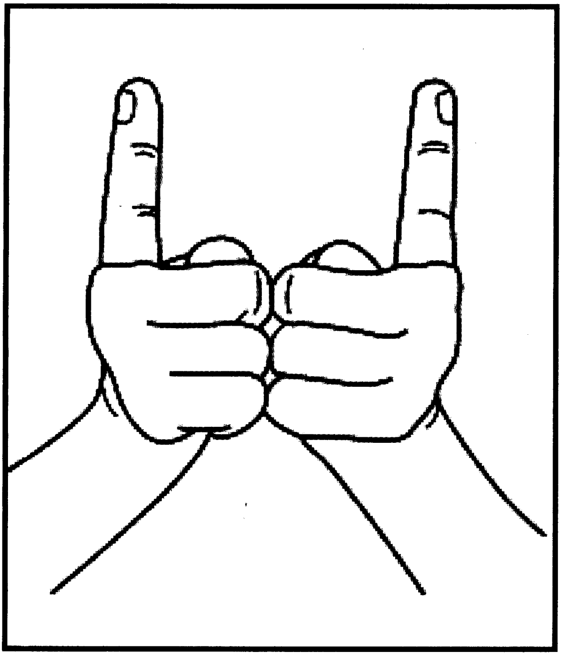

शिखा मुद्रा

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा के प्रयोग से मस्तिष्क का मूलभाग (शिखा भाग) प्रभावित होता है। इससे सूक्ष्म ज्ञान की प्राप्ति होती है।

योगी पुरुषों के अनुसार इस मुद्रा के द्वारा लघु मस्तक सक्रिय होकर विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति में सहयोग करता है।

इस मुद्रा में अग्नितत्त्व (अंगूठों) का पारस्परिक संयोग उस तत्त्व को संतुलित करता है।

इस मुद्रा के प्रयोग से आकाश तत्त्व की कमी हो तो आपूर्ति हो जाती है।

• मानसिक जगत की अपेक्षा यह मुद्रा श्वास को नियंत्रित कर मन की चंचलता को कम करती है।

• भावनात्मक स्तर पर इस मुद्रा का प्रयोग साधक को आध्यात्मिक स्थिरता प्राप्त करवाता है। मणिपुर चक्र प्रभावित होने से व्यक्ति अहिंसा, सत्य, अचौर्य, क्षमा आदि गुणों का अनुसरण करता हुआ उत्तरोत्तर प्रगति करता है।

विशेष

• इस मुद्रा के माध्यम से शिखा स्थान का स्वरूप दिखाया जाता है अत: इसे शिखा मुद्रा कहा गया है।

• हिन्दू मान्यतानुसार शिखा केन्द्र पर छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। उसमें से निरन्तर निर्धूम ज्योति प्रवाहित होती रहती है। सूक्ष्म अभ्यासी इस रहस्य का अनुभव कर सकते हैं।

• आयुर्वेद शास्त्रों के अनुसार यह मुद्रा मस्तिष्क एवं छाती सम्बन्धी अवयवों पर नियन्त्रण करती है।

• योग आचार्यों के अनुसार इससे यह मस्तिष्क भाग को संतुलित रखती है।

एक्यूप्रेशर यौगिक चक्र के अनुसार आज्ञा चक्र प्रभावित होता है तथा लीवर एवं मुख सम्बन्धी कुछ भाग विकृत होने से बचते हैं। यह मुद्रा पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र और रक्तसंचरण को भी संतुलित करती है।

6. कवच मुद्रा

यहाँ कवच का तात्पर्य शरीर के सुरक्षा आवरण से है।

यह मुद्रा प्रतिष्ठा जैसे शुभ प्रसंगों में शरीर को सुरक्षित रखने के प्रयोजन से की जाती है।

सामान्य तौर पर ऐसा कहा जाता है कि मिथ्याबुद्धि से ग्रसित देवी-देवता शुभ कार्यों में विक्षेप कर संतुष्ट होते हैं, वे स्वभावत: विघ्न संतोषी होते हैं। इस मुद्रा से विघ्नों का निवारण किया जाता है।

सैनिक बाह्य कवच धारण करते हैं जबकि साधक पुरुष आभ्यन्तर कवच धारण करते हैं। बाह्य कवच खंडित हो सकता है, किन्तु आत्म भावों के कवच

को कोई आघात नहीं पहुँचा सकता, उस पर किसी तरह के बन्दूक की गोली का असर नहीं होता।

प्रतीकात्मक अर्थ की दृष्टि से कहें तो इस मुद्रा के द्वारा न केवल बाहरी आक्रमणों से शरीर की रक्षा होती है, अपितु अन्तरंग क्रोधादि शत्रुओं से भी चैतन्य शरीर प्रभावित नहीं होता।

इस प्रकार कवच मुद्रा बाह्य और आभ्यन्तर दोनों तरह के आक्रमणों से शरीर एवं आत्मा का संरक्षण करती है।

विधि

"पुनर्मुष्ठिबन्धं विधाय कनीयस्यंगुष्ठौ प्रसारयेदिति कवच मुद्रा।"

हृदय मुद्रा के समान दोनों हाथों की मुट्ठी बांधकर एवं कनिष्ठिका अंगुली और अंगूठे को प्रसारित करने पर कवच मुद्रा बनती है।

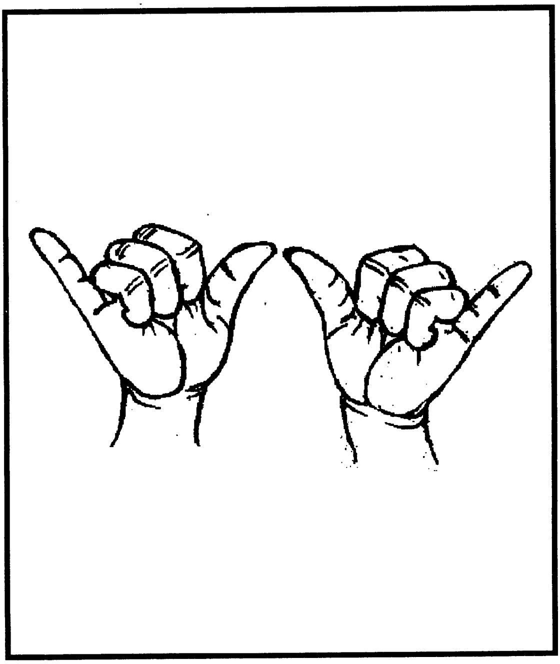

कवच मुद्रा

सुपरिणाम

- शारीरिक तौर पर इस मुद्राभ्यास से हमारा शरीर सुदृढ़ वज्र की भाँति कठोर बनता है जो प्राकृतिक विपदाओं से लड़ने में शक्ति प्रदान करता है।

इन्द्रियों की क्षीण होती शक्तियों की रक्षा करने में भी यह मुद्रा उत्यन्त उपयोगी है। स्वास्थ्य में आई गिरावट से लड़ने के लिए यह आत्म स्फुर्णा उत्पन्न करती है। प्राणमय कोष जागृत एवं सक्रिय बनता है।

यदि शरीर में वायुतत्त्व की कमी हो अथवा वायु तत्त्व असंतुलित हो तो इस मुद्रा से वह गड़बड़ी दूर हो जाती है।

- आध्यात्मिक स्तर पर इस मुद्राभ्यास से विशुद्ध भावनाओं का जागरण होता है। इच्छित कार्यों को क्रियान्वित करने की क्षमता बढ़ती है। स्वाधिष्ठान चक्र संप्रभावित होता है परिणामस्वरूप व्यक्तित्व हिमालय जैसा धवल और निर्मल बनता है तथा उदारता और सम्पन्नता बढ़ती है।

विशेष

- इस मुद्रा को बनाते वक्त हाथों का आकार कवच जैसा प्रतीत होता है। अत: इसे कवच मुद्रा कहते हैं।
- एक्यूप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार यह पेन्क्रियाज, अग्नाशय, एड्रीनल, फेफड़ें सम्बन्धी दोषों का निवारण करती है।
- यौगिक चक्र के अनुसार यह स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित करती है। इस मुद्रा से उदर सम्बन्धी असंतुलन दूर होता है तथा प्रसव क्रिया के अनन्तर होने वाले रोगों का निदान होता है।

7. क्षुर मुद्रा

बाण के नीचे का हिस्सा क्षुर कहलाता है। बाल काटने के अस्त्र को भी क्षुर कहते हैं।

विधिमार्गप्रपा में क्षुर मुद्रा का उल्लेख भृकुटि के मध्य तीसरे दिव्य नेत्र के रक्षण के सन्दर्भ में हुआ है।

जैसे क्षुर का अग्रभाग चमकीला, तीक्ष्ण, तेज और ओज गुण प्रधान होता है वैसे ही तीसरा (भाव) नेत्र अखण्डित तेज से युक्त होता है। इस मुद्रा के द्वारा उस अंतरंग शक्ति को अबाधित रखा जाता है और बाह्य उपद्रवों से त्रिनेत्र की रक्षा की जाती है।

प्रतीकात्मक दृष्टि से क्षुर केशों को दूर करता है। मांगलिक कार्यों में श्याम वर्ण को अशुभ मानते हैं अतः इस मुद्रा प्रयोग से काले केशों का अस्तित्व एक निश्चित समय के लिए समाप्त कर दिया जाता है। अभिप्रायानुसार इस मुद्रा के माध्यम से भीतर की गन्दगी और मन का कालापन दूर होता हैं, जिससे तीसरे नेत्र की दिव्यदृष्टि उद्घाटित हो सकें।

विधि

"कनिष्ठिकामंगुष्ठेन संपीड्य शेषांगुलीः प्रसारयेदिति क्षुरमुद्रा।"

अंगुष्ठ के द्वारा कनिष्ठिका अंगुली को आक्रमित कर शेष अंगुलियों को प्रसारित करने पर क्षुर मुद्रा बनती है।

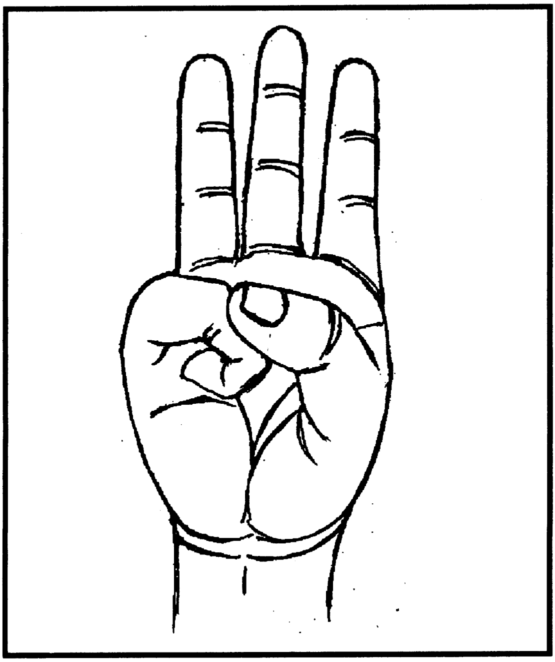

क्षुर मुद्रा

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा अशुद्ध रक्त को शुद्ध करती है। चर्म सम्बन्धी रोगों में लाभ पहुँचाती है। त्वचा को कोमल बनाती है। शरीर में पानी जमा करने

वाले गेस्ट्रोएटिस सदृश रोगों में विशेष लाभदायी है।

यह मुद्रा जल तत्त्व की कमी से होने वाले दुष्प्रभावों में राहत देती है। लघु मस्तिष्क को सक्रिय बनाती है। इस मुद्रा की मदद से पीयूष ग्रन्थि जागृत होकर अन्य ग्रन्थियों को उत्तेजित करती है ताकि वे अपना-अपना निर्धारित कार्य बराबर कर सकें।

- मानसिक दृष्टि से मनोविकार शान्त होते हैं और मन में शान्ति का अनुभव होता है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा शरीरस्थ पंच प्राणों के प्रवाह को नियमित करके मनुष्य का आध्यात्मिक विकास करती है तथा उसे चिन्तनशील बनाती है। इस मुद्रा से आज्ञा चक्र जागरूक होता है। जिससे दूसरों के मनोभावों को समझने की शक्ति प्रकट होती है।

विशेष

- यह मुद्रा तीसरे नेत्र की शक्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने के हेतु से कही गई है। योगी पुरुषों ने तीसरे नेत्र की परिकल्पना दोनों भौहों के मध्य भाग में की है और इसे शिवनेत्र कहा है।
- क्षुर मुद्रा में इस केन्द्र बिन्दु पर सर्वाधिक दबाव पड़ता है अतः इस मुद्रा की उपादेयता स्पष्टतः सिद्ध होती है।
- एक्यूप्रेशर रिफ्लेक्सोलोजी के अनुसार इससे पिच्युट्री ग्लैंड एवं मस्तिष्क प्रभावित होता है। इससे चरम एकाग्रता की प्राप्ति की जा सकती है। यह मुद्रा उच्च आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध रखती है।
- एक्यूप्रेशर मेरिडियनोलोजी के निर्देशानुसार यह मुद्रा शरीर में विद्यमान अनावश्यक कफ एवं वात दोष को दूर करती है। इससे भावात्मक आचरण में सुधार आता है।

8. अस्त्र मुद्रा

यहाँ अस्त्र का तात्पर्य तीर, आयुध, खड्ग आदि हथियार विशेष से है। आचार्य जिनप्रभसूरि ने अस्त्र मुद्रा का उल्लेख सुरक्षा के सन्दर्भ में किया है।

सामान्यतया शुभ प्रसंगों में विघ्न पैदा करने वाले दुष्ट देवों को अस्त्र मुद्रा दिखाकर भयभीत किया जाता है ताकि वे उपद्रव न कर सकें। अस्त्र मुद्रा दिखाने

पर दुष्ट देव निकट नहीं आते, वे दूर से ही अन्यत्र चले जाते हैं। अस्त्र मुद्रा दिखाते हुए विघ्न संतोषी देवों को यह संकेत भी किया जाता है कि इस अनुष्ठान के मध्य किसी तरह की बाधा उत्पन्न करने पर अथवा निर्धारित भूमि के निकट आने पर उन्हें प्रताड़ित किया जा सकता है। इस तरह मुद्राभिव्यक्ति के द्वारा उन्हें सचेत किया जाता है।

प्रतीकात्मक दृष्टि से यह मुद्रा न केवल बाहरी दुष्प्रभावों से व्यक्ति का बचाव करती है अपितु आन्तरिक दुर्भावनाओं से भी मुक्त करती है। इस प्रकार अस्त्र मुद्रा से लौकिक एवं लोकोत्तर दोनों प्रकार के शत्रुओं का निर्गमन होता है।

स्वरूपत: यह मुद्रा शुभ कार्यों को निर्विघ्न रूप से सम्पन्न करने के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

"दक्षिणकरेण मुष्टिं बद्धा तर्जनीमध्यमे प्रसारयेदिति अस्त्र मुद्रा।"

दाहिने हाथ को मुट्ठी के रूप में बांधकर, उसकी तर्जनी और मध्यमा अंगुली को प्रसारित करने पर अस्त्र मुद्रा बनती है।

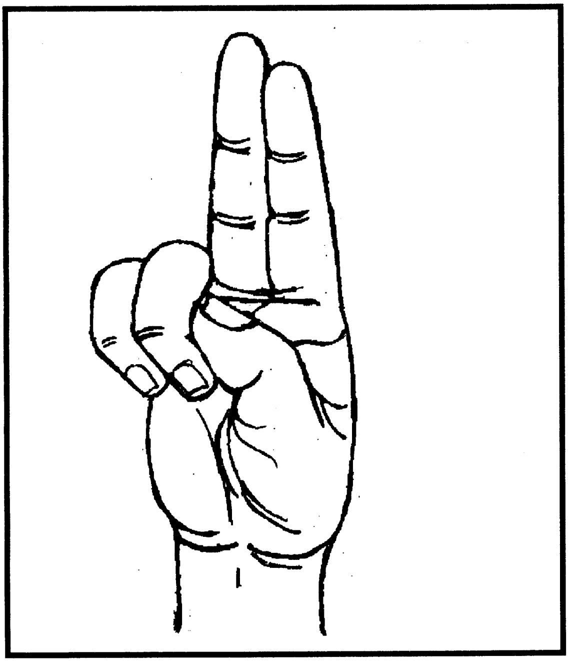

अस्त्र मुद्रा-1

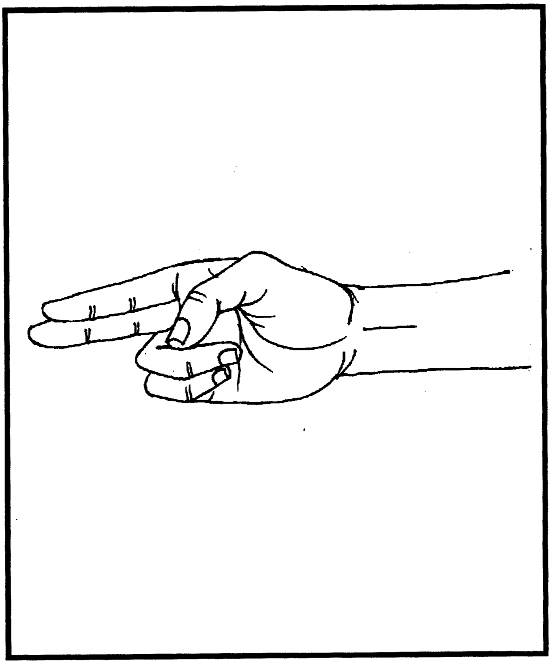

अस्त्र मुद्रा-2

सुपरिणाम

इस मुद्रा के अनेक लाभ देखे जाते हैं—

- शारीरिक स्तर पर यह शरीर की शिथिलता एवं थकान को दूर करती है। जैसे कुशल योद्धा के हाथ में रहा हुआ अस्त्र स्वयं के शरीर की सुरक्षा करता हुआ दुष्ट शक्तियों को उपशान्त करता है वैसे ही यह अस्त्र मुद्रा हमारी जीवनी शक्ति को बढ़ाती हुई दुर्भावों का नाश करती हैं। इस मुद्रा के प्रभाव से देहजनित नाड़ियों की शुद्धि होती है।

विविध धार्मिक अनुष्ठानों में उपयोगी यह मुद्रा स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित करते हुए अवचेतन मन की क्रियाओं को नियंत्रित करती है। प्रजनन तंत्र एवं युरिनरी सिस्टम को भी प्रभावित करते हुए अवसाद, कामुकता, अनिश्चय आदि की समस्या का निवारण करती है।

रक्त कैन्सर, मासिक धर्म की अनियमितता, गुर्दे की समस्या, अंडाशय, गर्भाशय आदि से सम्बन्धित समस्याएँ, अनिद्रा, पागलपन, कोमा आदि को नियंत्रित करने में यह मुद्रा अत्यंत उपयोगी है।

जल एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए श्वसन एवं प्रजनन तंत्र का नियमन करती है। इसी के साथ नाक, कान, मुँह, स्वर तंत्र, मल-मूत्र अंग, गुर्दे आदि के विकारों को दूर करने में भी अस्त्र मुद्रा उपयोगी है।

थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं प्रजनन ग्रन्थियों के स्राव को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा त्वचा में रूखापन, बालों का झड़ना, चेहरे के आकर्षण में कमी होना आदि में लाभ देती है। इससे कटिभाग स्वस्थ रहता है।

• मानसिक स्तर पर विचारों में निश्छलता, निर्दम्भता, निर्विकारता आदि गुणों का जन्म होता है तथा लघु मस्तिष्क की सक्रियता में अभिवृद्धि होती है।

• आध्यात्मिक स्तर पर इस मुद्रा का प्रयोग साधक में रहे अहंकार आदि विकारों का नाश करता है। इससे चित्तवृत्तियों के निरोध की अद्‌भुत क्षमता जागृत होती है।

विशेष

• इस मुद्राभिव्यक्ति के द्वारा एक अस्त्र विशेष का बाह्य स्वरूप निर्मित किया जाता है। इसलिए इस मुद्रा का अन्वर्थक नाम अस्त्र मुद्रा है।

• एक्यूप्रेशर के अनुसार यह मुद्रा पिच्युट्री ग्लैण्ड, पेन्क्रियाज एवं लीवर को प्रभावित करती है।

• एक्यूप्रेशर मेरिडियनोलोजी के अनुसार इस मुद्रा के द्वारा मस्तिष्क एवं ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियों का उपचार किया जा सकता है।

इससे वात दोष ठीक होता है, ज्ञानेन्द्रियाँ खुल जाती हैं और उग्रता घटती है।

सम्यक्त्वी देवी-देवताओं को आमन्त्रित आदि करने में प्रयुक्त मुद्राएँ

9. महामुद्रा

इस महामुद्रा का अभिप्राय विशिष्ट मुद्रा से है। यहाँ महा शब्द महानता, अधिकता, विशिष्टता के अर्थ में है। इस मुद्रा की परिभाषा के अनुसार साधक दोनों हाथों से अपने सर्वांग का स्पर्श करता है। यह मुद्रा देवी-देवताओं को आमन्त्रित करने के प्रयोजन से दिखाई जाती है। यहाँ प्रश्न होता है कि सर्वांग स्पर्श द्वारा देवों को किस प्रकार आमन्त्रित किया जाता है? सांकेतिक अर्थ के अनुसार कहा जा सकता है कि साधक सर्वांग का स्पर्श करते हुए यह भाव अभिव्यंजित करता है कि हम आपको साष्टांग प्रणाम एवं सर्वात्मना भावपूर्वक आमन्त्रित कर रहे हैं। प्रतीकात्मक दृष्टि से माना जा सकता है कि इसमें ऊपरी हिस्से के सभी अंग झुकते हैं जो विनयभाव को सूचित करता है। इसे मुद्रा का आन्तरिक स्वरूप कह सकते हैं।

इस तरह महामुद्रा के द्वारा सर्वात्मना समर्पण और लघुता भाव प्रदर्शित किया जाता है।

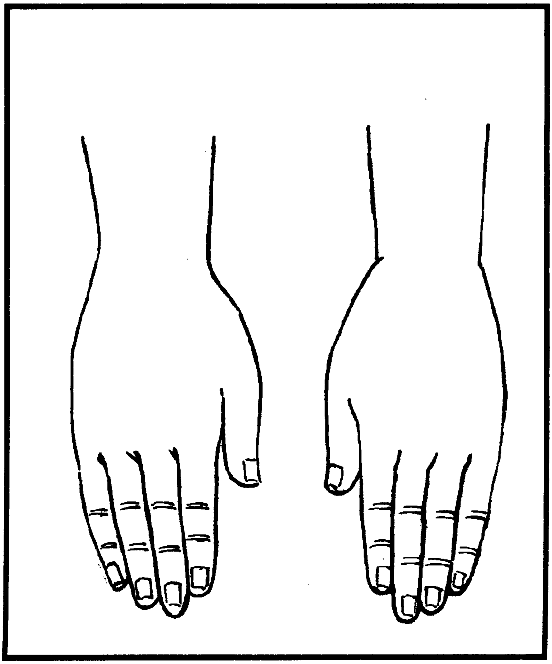

महा मुद्रा

यह देवी-देवता के आह्वान की पूर्व भूमिका रूप मुद्रा है।

विधि

"प्रसारिताधोमुखाभ्यां हस्ताभ्यां पादांगुलीतलामस्तकस्पर्शान् महामुद्रा।"

दोनों हाथों को नीचे की ओर प्रसारित करके पैरों के अंगुली तल से लेकर मस्तक पर्यन्त हस्तांगुलियों का स्पर्श करना महामुद्रा कहलाती है।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा हमारे प्राणमय कोष को जागृत करती है तथा व्यान नामक प्राणशक्ति को पूरे शरीर में प्रवाहित करती है इससे श्वास सम्बन्धी रोगों का सहजता से निवारण होता है।

चक्र अभ्यासी साधकों के अनुसार महामुद्रा से आज्ञा, अनाहत एवं ब्रह्म चक्र जागृत होते हैं, इससे ज्ञान पक्ष सुदृढ़ होता है, आत्मनियंत्रण एवं एकाग्रता में वृद्धि होती है तथा चित्रकला, नृत्य, संगीत, कविता एवं सृजनात्मक कार्यों में रुचि का विकास होता है।

शारीरिक समस्याएँ जैसे दुश्चिंता, सिरदर्द, पागलपन, मनोविकार, एलर्जी, हृदय सम्बन्धी रोग, ब्रेन ट्यूमर, फेफड़ों के विकार, मिरगी, अनिद्रा आदि में भी यह लाभदायी है।

इस मुद्राभ्यास से आकाश एवं वायु तत्त्व संतुलित होते हैं। यह मुख्य रूप से श्वसनतंत्र एवं रक्त संचरण प्रणाली को नियमित करती है तथा कंठ, हृदय, फेफड़ें एवं नाक, कान, मुँह से सम्बन्धित रोगों का निवारण करती है।

इस मुद्रा के द्वारा पीयूष एवं पिनियल ग्रंथियों पर प्रभाव पड़ता है। यह हमारी जीवन पद्धति, मनोवृत्ति, रक्त दबाव, मानसिक प्रतिभा, प्रजनन अंगों की क्रियाशीलता को नियंत्रित करती है। निर्णय एवं नियंत्रण शक्ति को विकसित करती है तथा वाचालता, तनाव, अनुत्साह, अप्रसन्नता, अस्थिरता आदि का निवारण करती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से इस मुद्रा का अभ्यासी साधक अशुभ विचारों से निवृत्त और शुभ विचारों से युक्त होता है।

विशेष

• इस मुद्रा का वैशिष्ट्य 'महामुद्रा' इस नाम से ही स्पष्ट हो जाता है।

• हठयोग में भी इस नाम की मुद्रा प्राप्त होती है किन्तु स्वरूप और प्रयोजन की दृष्टि से दोनों में भिन्नता है।

• एक्यूप्रेशर मेरिडियनोलोजी के अनुसार यह मुद्रा लिम्फेटिक सिस्टम (लसिका प्रणाली) को सक्रिय करती है जिससे कैन्सर जैसे असाध्य रोग नियन्त्रित होते हैं। यह मुद्रा कान, दाँत और कण्ठ सम्बन्धी रोगों के निदान में विशेष सहयोगी है।

10. सुरभि मुद्रा

सुरभि मुद्रा का दूसरा नाम धेनु मुद्रा है। हिन्दी शब्दकोश में सुरभि को कामधेनु भी कहा गया है। भारतीय परम्परा में 'धेनु' गाय को कहते हैं। कामधेनु का अभिप्राय वांछापूर्ति से है। जिस तरह कल्पवृक्ष मनोकामना पूर्ण करता है उसी तरह कामधेनु मुद्रा भी इच्छित कामनाएँ पूर्ण करती है। प्रतिष्ठा जैसे बृहद अनुष्ठानों में देवी-देवताओं की उपस्थिति से एक दिव्य वातावरण निर्मित होता है। सुरभि मुद्रा दिखाने से वे कामनाओं को शीघ्र पूर्ण करते हैं। यहाँ सुरभि मुद्रा देव आह्वान के सन्दर्भ में कही गई है। अतः इस मुद्रा के माध्यम से उपासक वर्ग देवी-देवताओं को तुष्ट करते हुए उनका सान्निध्य प्राप्त करता है।

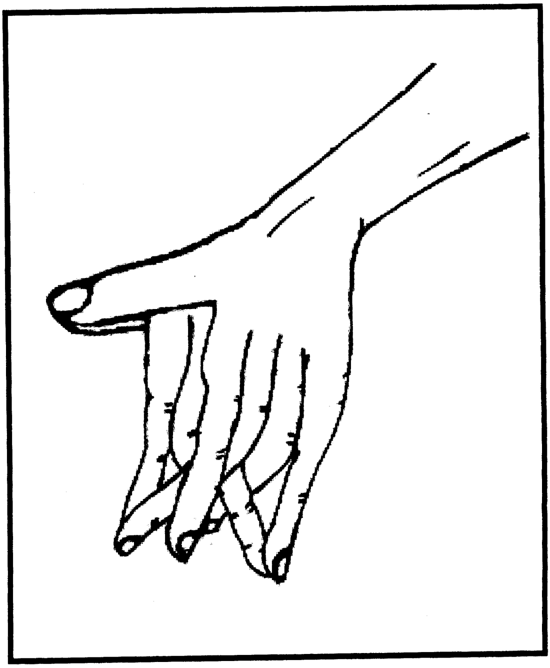

सुरभि मुद्रा

सुरभि मुद्रा इच्छित कामनाओं की परिपूर्ति एवं सहयोगी देवों की उपस्थिति के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

"अन्योऽन्यग्रथितांगुलीषु कनिष्ठिकानामिकयोर्मध्यमातर्ज्जन्योश्च संयोजनेन गोस्तनाकारा धेनुमुद्रा।"

दोनों हाथों की अंगुलियों को एक-दूसरे में गूंथकर दाहिने हाथ की तर्जनी के अग्रभाग को बाएँ हाथ की मध्यमा के अग्रभाग से स्पर्श करवाएँ तथा बाएँ हाथ की तर्जनी के अग्रभाग को दाहिने हाथ की मध्यमा के अग्रभाग से स्पर्श करवाएँ।

इसी तरह दाहिने हाथ की अनामिका के अग्रभाग को बाएँ हाथ की कनिष्ठिका के अग्रभाग से स्पर्श करवाएँ तथा बाएँ हाथ की कनिष्ठिका के अग्रभाग को दाहिने हाथ की अनामिका के अग्रभाग से स्पर्श करवाएँ। बताई निर्दिष्ट विधि के अनुसार अंगुलियों के अग्रभागों को परस्पर संयोजित कर उसे अधोमुख करना धेनु मुद्रा है।

सुपरिणाम

यह एक चमत्कारिक मुद्रा है। इसके मुख्य तौर पर निम्न लाभ देखे जाते हैं–

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा देह को स्वस्थ कर मानसिक शान्ति प्रदान करती है। रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है। शरीर को सुडौल एवं सुदृढ़ बनाती है। शरीरस्थ वात-पित्त-कफ को संतुलित रखती है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा मैत्री, करुणा, दया, सेवा, परोपकार आदि शुभ भावनाओं को जन्म देती है।

यदि शुभ संकल्प के साथ यह मुद्रा की जाए तो वह निश्चित रूप से इच्छित फल देती है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर मेरिडियनोलोजी के मुताबिक सुरभि मुद्रा लसिका ग्रन्थि में आयी हुई सूजन को ठीक करती है। इससे आँख, कान, गठिया सम्बन्धित रोगों का उपचार होता है।

11. आवाहनी मुद्रा

आवाहन का शाब्दिक अर्थ है- बुलाना, पुकारना, निमन्त्रण देना आदि। देवी-देवताओं के आह्वानार्थ जो मुद्रा बनाई जाती है उसे आवाहनी मुद्रा कहते हैं।

लौकिक जगत में भी देखा जाता है कि किसी व्यक्ति या अतिथि को सम्मानपूर्वक बुलाना है तो दोनों हाथों में चित्रानुसार मुद्रा बन जाती है। इस मुद्रा को बनाने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। किसी को आदर पूर्वक आमन्त्रित करने के भाव उत्पन्न होते ही यह मुद्रा सहज बन जाती है।

इस मुद्रा की खासियत यह है कि लोकव्यवहार में जब किसी का तिरस्कार करते हैं तब अंगूठा दिखाते हैं। इसमें अंगूठा झुका रहता हैं। 'जे नमे ते सहुने गमे' इस लोकोक्ति के अनुसार देवी-देवता इस मुद्रा के प्रति सहज आकृष्ट हो जाते हैं।

यह मुद्रा देवी-देवताओं को आमन्त्रित करने के उद्देश्य से ही दिखाई जाती है।

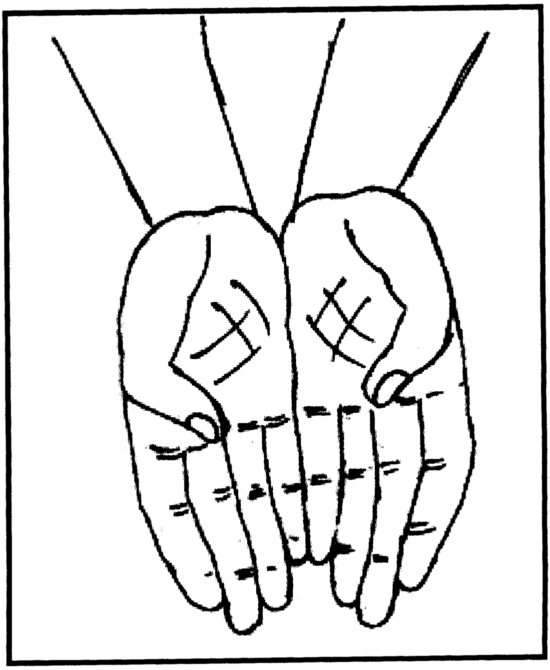

आवाहनी मुद्रा

विधि

"हस्ताभ्यामञ्जलिं कृत्वा प्राकामामूलपर्व्वांगुष्ठ संयोजनेन आवाहनी।"

दोनों हाथों से अंजलि बनाकर सभी अंगुलियों के मूल पर्व पर अंगूठों का अच्छी तरह संयोजन करने से आवाहनी मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा से मासिक धर्म सम्बन्धी अनियमितता, खून की कमी, सूखी त्वचा, हर्निया, दाद, कान-नाक-गले सम्बन्धित समस्या, नींद में बिस्तर गीला करना आदि पर नियंत्रण होता है।

वायु एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा रक्त संचरण एवं प्रजनन तंत्र के विकारों का शमन करती है। हृदय, फेफड़ें, भुजा, गुर्दे एवं मल-मूत्र संबंधी कार्यों को भी नियमित करती है।

यह मुद्रा थाइरॉयड, पेराथाइरॉयड एवं गोनाड्स के स्राव को संतुलित करती है। इससे शरीरस्थ ऑक्सीजन, कार्बन डाई ऑक्साइड का प्रवाह तथा कैल्शियम, आयोडिन और कोलेस्ट्रोल आदि का नियंत्रण होता है। आवाज मधुर बनती है। यह बच्चों के मानसिक विकास और स्वाभाविक ऋजुता में सहायक बनती है। इससे जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों का निवारण, कामेच्छा का नियंत्रण, बालों की वृद्धि तथा शरीर के तापमान पर नियमन होता है। इससे एड्रीनल ग्रंथि सक्रिय होती है जिससे शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमता का वर्धन होता है। यह व्यक्ति को साहसी, निर्भीक, सहनशील एवं आशावादी बनाती है तथा आत्मविश्वास जागृत करती है। शरीर को सभी प्रकार की एलर्जी एवं रोगों से भी बचाती है।

• मानसिक स्तर पर इस मुद्राभ्यास से विशुद्धि एवं स्वाधिष्ठान चक्र विशेष प्रभावित होते हैं इससे आह्वान क्रिया को पोषण मिलता है तथा तृष्णा, कामुकता, आत्महीनता, घबराहट आदि से बचाव होता है।

• आध्यात्मिक स्तर पर यह मुद्रा मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करती है। इस मुद्राभ्यास से साधक स्थूल एवं सूक्ष्म के बीच अन्तर समझने लगता है तथा परमात्म साक्षात्कार के निकट पहुँच सकता है।

विशेष

• भारतीय संस्कृति की लगभग सभी परम्पराओं में देवी-देवता के आह्वानार्थ यही मुद्रा दिखाई जाती है।

एक्यूप्रेशर मेरिडियनोलोजी के अनुसार यह मुद्रा ग्रहणी (आँत के नीचे का पतला भाग), चित्त और निकास भाग को संतुलित करती है।

इस मुद्राभ्यास से आँख, नाक, कान एवं गर्दन सम्बन्धी विकार तथा पीलिया, मधुमेह और वायुजनित बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं।

12. स्थापनी मुद्रा

स्थापनी मुद्रा का अर्थ है स्थापित करना। देवी-देवताओं को क्षेत्र विशेष में स्थापित करने हेतु जो मुद्रा दिखाई जाती है उसे स्थापनी मुद्रा कहते हैं।

आवाहनी मुद्रा को अधोमुख करने से स्थापनी मुद्रा बनती है। लौकिक व्यवहार में किसी व्यक्ति विशेष को बैठने या रुकने के लिए कहते हैं अथवा उस तरह के भाव प्रकट करते हैं तो चित्रांकित मुद्रा स्वत: बन जाती है। इसमें किसी

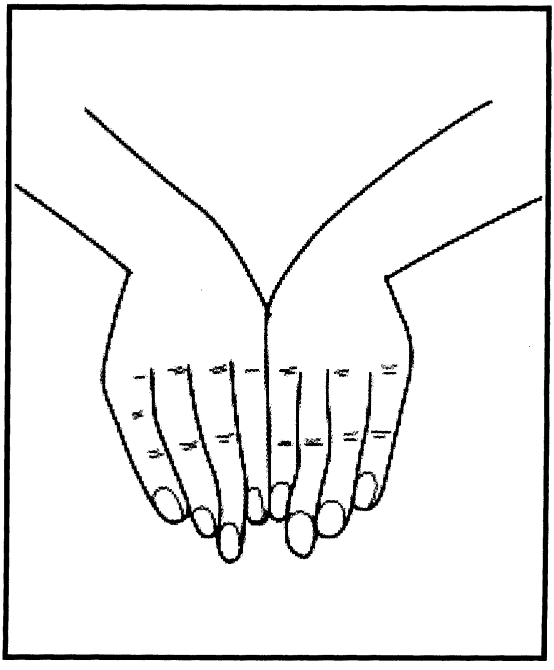

स्थापनी मुद्रा

तरह के प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। इसे स्वाभाविक एवं सहज मुद्रा भी कहा जा सकता है।

इस मुद्रा के माध्यम से प्रतिष्ठा आदि शुभ अनुष्ठानों को निर्विघ्नत: सम्पन्न करने हेतु देवी-देवताओं की उपस्थिति का भाव प्रकट किया जाता है तथा उनके उपस्थिति की मानसिक कल्पना की जाती है। भावनाओं की तरतमता के आधार पर यह कल्पना साकार भी बनती है। किन्तु उन अदृश्य शक्तियों को चर्मचक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। हाँ! अनुभूति के स्तर पर शक्तियों का आभास अवश्य किया जा सकता है और करते भी हैं।

विधि

''इयमेवाधोमुखा स्थापनी।''

आवाहनी मुद्रा को अधोमुख (उल्टा) करने पर स्थापनी मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से श्वासजनक रोगों पर नियंत्रण होता है। इस मुद्राभ्यास से दैवी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यह मुद्रा आकाश तत्त्व को अधिक प्रभावित करती है। इससे कर्णशक्ति अधिक संवेदनशील होने से साधक प्रत्येक बात को ध्यान से सुनता है। इससे कंठ सम्बन्धी रोगों में आराम मिलता है और वाणी प्रखर होती है।

चक्र विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत कर मानसिक रोगों के निवारण तथा क्रोध, पागलपन, घृणा, अति राग, अस्थिरता, उपेक्षा भाव, स्वयं पर अनियंत्रण आदि का निवारण करती है। शराब आदि नशा मुक्ति में भी यह सहायक हो सकती है।

शारीरिक समस्याएँ जैसे कैन्सर, कोष्ठबद्धता, घुटने एवं जोड़ों का दर्द पुरुष प्रजनन तंत्र सम्बन्धी समस्या, खून की कमी, गर्भाशय सम्बन्धी विकार में यह मुद्रा लाभ पहुँचाती है।

पृथ्वी एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा प्रजनन एवं विसर्जन के कार्यों को नियमित करती है। इससे विचारों के नियंत्रण एवं स्थिरता में सहायता मिलती है।

प्रजनन ग्रन्थियों के स्राव को नियंत्रित करते हुए यह कामेच्छा का नियंत्रण, प्रजनन अंगों का विकास तथा स्त्रियोचित एवं पुरुषत्व के लक्षणों का निर्माण

करने में सहायक बनती है। शरीर के तापमान का संतुलन करने बालों के बढ़ने एवं स्वर सुधारने में भी यह मुद्रा सहायक बनती है।

• मानसिक दृष्टि से यह मुद्रा स्मरण शक्ति बढ़ाती है। इससे वैचारिक प्रदूषण समाप्त होते हैं और प्रतिक्रिया की भावनाएँ दूर होती हैं।

• आध्यात्मिक दृष्टि से काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि विषय-कषायों का शमन होता है।

13. संनिधानी मुद्रा

संस्कृत का संनिधान शब्द संयोगवाची और निकटतावाची अर्थों को प्रकट करता है। संस्कृत कोश में इन्हीं अर्थों का उल्लेख है जैसे मिलाकर रखना, साथ-साथ रखना, सामीप्य, उपस्थिति आदि। प्रस्तुत सन्दर्भ में सामीप्यता या निकटता अर्थ अधिक उचित लगता है।

यह मुद्रा पूर्व प्रसंग से सम्बन्धित है। जैसे कि आवाहन मुद्रा के द्वारा देवी-देवताओं को आमन्त्रित किया जाता है, स्थापनी मुद्रा के द्वारा आमन्त्रित देवी-

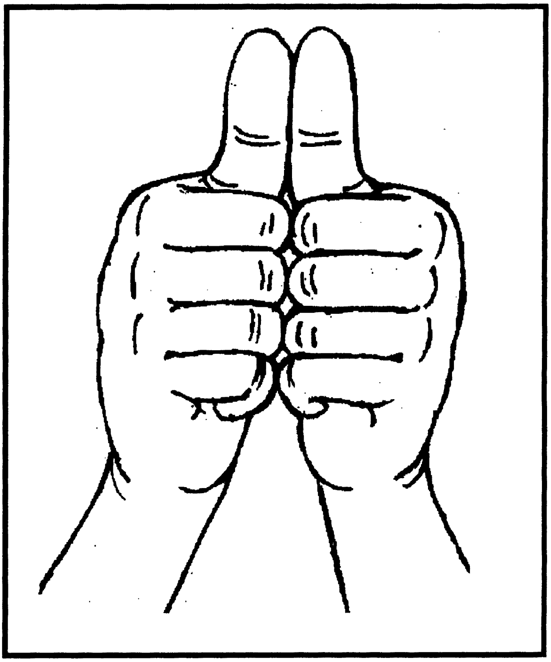

संनिधानी मुद्रा

देवताओं को समुचित स्थान पर बिठाया जाता है जबकि संनिधानी मुद्रा के माध्यम से पूजादि अनुष्ठानों की पूर्णाहुति तक उन्हें उपस्थित रहने की प्रार्थना की जाती है।

यदि आराधक शुद्ध मन से इस मुद्रा का प्रयोग करता है तो निःसन्देह बृहद अनुष्ठानों में देवी-देवताओं की समुपस्थिति रहती है।

संनिधानी मुद्रा में द्वयांगुष्ठ खड़े रहते हैं, यह देवताओं की उपस्थिति के सूचक हैं तथा इससे उपस्थित रहने का संकेत भी दिया जाता है। उपनिषदों में अंगुष्ठ को परम तत्त्व का प्रतीक माना गया है। 'अंगुष्ठ मात्रः पुरुषः' कहकर अंगुष्ठ को सर्वशक्ति सम्पन्न बताया है।

वैज्ञानिक दृष्टि से अंगुष्ठों का इस तरह खड़े रहना एकाग्रता का सूचक है। सम्यक्त्वी देवी-देवताओं की हाजरी से कोलाहल पूर्ण वातावरण शुभ में परिवर्तित हो जाता है और चित्त की स्थिरता सहज बढ़ जाती है।

इस प्रकार संनिधानी मुद्रा प्रतिष्ठा आदि मंगल प्रसंगों में देवी-देवताओं का दीर्घ सान्निध्य प्राप्त करने के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

"संलग्न मुष्ट्युच्छ्रितांगुष्ठौ करौ संनिधानी।"

दोनों हाथों की सम्मिलित मुट्ठियों में से अंगूठों को ऊपर करना संनिधानी मुद्रा है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा ऋतु परिवर्तन से होने वाले रोगों से लड़ने की क्षमता बढ़ाती है। इसके अभ्यास से शरीर में गर्मी बढ़ती है जो हमारे पित्त-कफ एवं चर्बी को जला डालती है। इस मुद्रा से शरीरस्थ पाँचों तत्त्व नियन्त्रित रहते हैं। इस मुद्रा के द्वारा मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्र सक्रिय बनते हैं। इससे जननांग सम्बन्धी रोगों को लाभ पहुँचता है तथा शरीर में कांति, तेज एवं ओज की वृद्धि होती है।
- मानसिक दृष्टि से यह मुद्रा वैचारिक चंचलता समाप्त करती है तथा मानसिक बल को सुदृढ़ करती है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से जैसे कुंजी (चाबी) से दरवाजा खुलता है, उसी प्रकार इस मुद्रा से मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर के अनुसार यह मुद्रा मांसपेशियों और नसों के उपचार में मदद करती है।

• मासिक धर्म की अनियमितता, प्रसव के अनन्तर होने वाले रोग एवं मूत्राशय की पथरी में इससे लाभ होता है।

14. निष्ठुर मुद्रा

निष्ठुर शब्द सामान्यत: कठोरता के अर्थ में प्रयुक्त होता है। लौकिक जीवन में भी कठोरता के लिए निष्ठुर शब्द का प्रयोग करते हैं। प्राय: कठोरता का भाव उदित होने पर शरीर की मांसपेशियाँ स्वत: निष्ठुर मुद्रा की भाँति संकुचित हो जाती हैं।

प्रतीकात्मक रूप से यह मुद्रा स्थिरता, एकाग्रता, दृढ़ता की द्योतक है। इस मुद्रा का प्रयोग पूजादि धार्मिक प्रसंगों में मन विचलित न हो, उस ध्येय से किया जाता है। इसी के साथ मन, वाणी एवं शरीर संयमित और सुस्थिर रहे, ऐसी

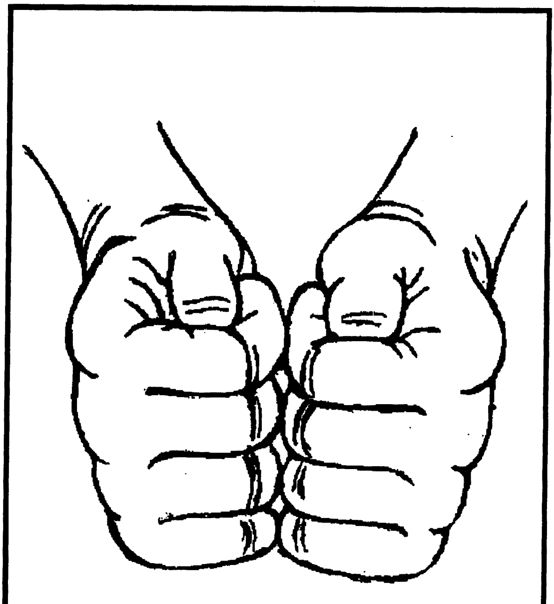

निष्ठुर मुद्रा

भावनाओं को चरितार्थ करने के लिए भी यह मुद्रा दिखाते हैं।

वस्तुतः इस मुद्रा के माध्यम से त्रियोग की अनावश्यक प्रवृत्तियों को रोकने का प्रयास किया जाता है तथा बाहरी दुनियाँ से सम्पर्क का विच्छेद किया जाता है।

विधि

"तावेव गर्भगांगुष्ठौ निष्ठुरा।"

संनिधानी मुद्रा की भाँति दोनों हाथों की सम्मिलित मुट्ठियों के गर्भगृह (मध्य स्थान) में अंगूठों को स्थिर करना अथवा रखना निष्ठुर मुद्रा कहलाती है।

सुपरिणाम

• भौतिक दृष्टि से यह मुद्रा शारीरिक बल, तेज एवं ओज में वृद्धि करती है। श्वास गति को धीमी एवं नियन्त्रित करती है। जठराग्नि प्रदीप्त कर उदर सम्बन्धी रोगों से मुक्त करती है। वायुतत्त्व की कमी से होने वाले रोग जैसे अंगों में हलन-चलन न होना, रक्त प्रवाह का रुक जाना, लसिका प्रवाह का अव्यवस्थित होना आदि का निदान करती है। इसे दीर्घायु प्रदान करने वाली भी माना गया है।

• भावनात्मक दृष्टि से यह मुद्रा संकल्प एवं निर्णय शक्ति को दृढ़ बनाती है। यह मन में उत्पन्न होने वाले निरर्थक संकल्प-विकल्पों को दूर करती हैं। इससे मनोनिग्रह की क्षमता बढ़ती है तथा हताशा, निराशा, उदासीनता जैसी निम्न वृत्तियों से बचाव होता है।

• अहिंसात्मक दृष्टि से साधक की चित्तवृत्ति तल्लिनता को प्राप्त होती है। चेतना निर्विकल्प स्थिति के निकट पहुँचती है। यह मुद्रा सहज समाधि की अवस्था प्राप्ति में भी सहायक बनती है।

विशेष

• हिन्दू क्रियाकाण्डों में निष्ठुर मुद्रा का प्रचलन है। परिभाषा की दृष्टि से विधिमार्गप्रपा एवं हिन्दू परम्परा में प्रचलित निष्ठुर मुद्रा में समानता है। उदाहरण के लिए स्वच्छन्द तन्त्र 2/101 की टीका द्रष्टव्य है।

"अंगुष्ठगर्भगौ मुष्ठी इति निष्ठुरा।"

• एक्यूप्रेशर प्रणाली के अनुसार इस मुद्रा से शारीरिक ऊर्जा की पूर्ति की जाती है। यह छाती के दर्द एवं एन्जाइमा के दर्द को ठीक करती है।

15. आवाहन मुद्रा

पूर्व निर्दिष्ट आवाहनी मुद्रा और आवाहन मुद्रा दोनों आमन्त्रण सूचक हैं। आवाहनी मुद्रा के समान आवाहन मुद्रा का प्रयोग भी पूर्णत: आह्वान के लिए ही किया जाता है। आवाहनी और आवाहन इन दोनों में मूल अन्तर लिंग सम्बन्धी ज्ञात होता है। आवाहनी शब्द स्त्रीलिंग है और आवाहन पुल्लिंग है। इस तरह प्रयोजन की दृष्टि से दोनों में साम्यता है किन्तु स्वरूप की दृष्टि से दोनों में भेद है।

आवाहनी मुद्रा में अंगूठे को सभी अंगुलियों के मूल पर्व पर रखा जाता है जबकि आवाहन मुद्रा में कनिष्ठिका अंगुली के मूल पर्व पर रखते हैं।

इस मुद्रा के विषय में गहराई से विचार करते हैं तो एक नवीन तथ्य यह सामने आता है कि संभवत: आवाहनी मुद्रा के द्वारा देवियों को निमन्त्रित किया जाता है तथा आवाहन मुद्रा से देवताओं को बुलाया जाता है। मुद्रा नामों में लिंगभेद होने के कारण यह विकल्प सत्य हो सकता है।

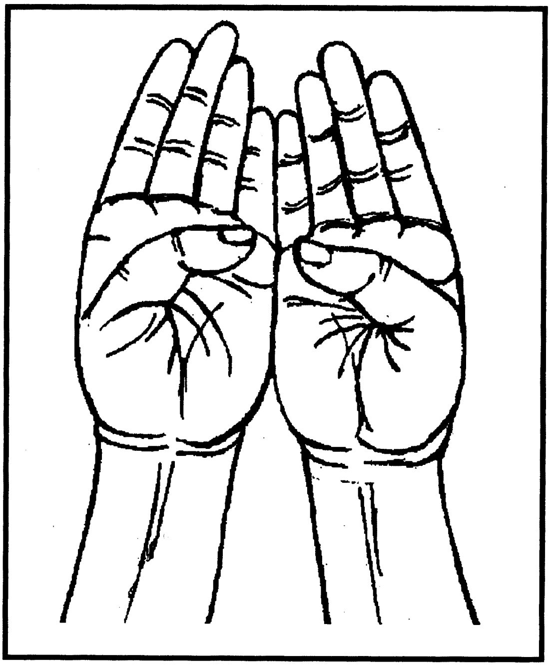

आवाहन मुद्रा

विधि

"उभय कनिष्ठिकामूलसंयुक्तांगुष्ठाग्रद्वय मुत्तानितं सहितं पाणियुगमावाहन मुद्रा।"

दोनों अंगूठों के अग्रभागों को दोनों कनिष्ठिका अंगुलियों के मूल पर्व पर संयोजित (स्पर्शित) कर उन हाथों को कुछ ऊपर उठाना आवाहन मुद्रा कहलाती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा कर्ण सम्बन्धी रोगों के निवारण में लाभदायक सिद्ध होती है। इससे कर्ण शक्ति का विकास होता है। दैहिक शक्ति में भी आशातीत वृद्धि होती है। इस मुद्रा से जल तत्त्व प्रभावित होता है, इस कारण पित्त से उत्पन्न होने वाली बीमारियाँ उपशान्त होती है। मूल दोष का परिहार होता है। यह गुर्दे को स्वस्थ बनाने में सहयोग करती है।
- मानसिक दृष्टि से इस मुद्रा के द्वारा बुद्धि तीव्र बनती है। मनोदोष दूर होते हैं। वैचारिक सात्विकता का अभ्युदय होता है।
- अध्यात्मिक दृष्टि से साधक की प्रमाद वृत्ति दूर होती है और वह बहिर्जगत के प्रति उन्मुख होता है।

विशेष

- एक्युप्रेशर मेरिडियन थेरेपी के अनुसार यह मुद्रा धारण करने पर चार बिन्दुओं पर दबाव पड़ता है। इससे शरीर की ऊर्जा का नियन्त्रण होता है। यह वॉल्व उपचार का मूल बिंदु (मास्टर पाइन्ट) है।
- इस मुद्रा से एपेन्डिक्स, सलाइवा, कर्ण रोग, आँख में जाला आना, गर्दन जकड़न, आंतों में कीड़े पड़ना आदि रोगों का उपचार होता है।
- यह दाब बिन्दु पित्त का सन्तुलन करता है।
- यह मुद्रा नस एवं मांसपेशियों को आराम पहुँचाती है तथा नाक से खून आना इसी तरह गर्दन, गला, कान, आँख आदि की तकलीफों को दूर करती है।

16. स्थापन मुद्रा

जिस प्रकार आवाहनी और आवाहन मुद्रा में भिन्नता है, स्थापनी और स्थापन मुद्रा के सम्बन्ध में भी वैसा ही अन्तर जानना चाहिए। स्पष्टीकरणार्थ कहा जा सकता है कि

● स्थापनी और स्थापन दोनों मुद्राएँ बिठाने एवं स्थिर करने के अर्थ में हैं। ● स्थापनी मुद्रा स्त्रीलिंग वाची और स्थापन मुद्रा पुल्लिंग वाचक है। ● स्थापनी मुद्रा देवियों के लिए और स्थापन मुद्रा देवताओं के लिए प्रयुक्त की जाती है।

विधि

"तदेव तर्ज्जनीमूलसंयुक्तांगुष्ठद्वयावाङ्मुखं स्थापन मुद्रा।"

आवाहन मुद्रा की भाँति दोनों हाथों को समान रूप से स्थिर करें। फिर तर्जनी अंगुली के मूल पर्व पर दोनों अंगूठों के अग्रभागों को संस्पर्शित करते हुए हथेलियों को अधोमुख कर देना स्थापन मुद्रा है।

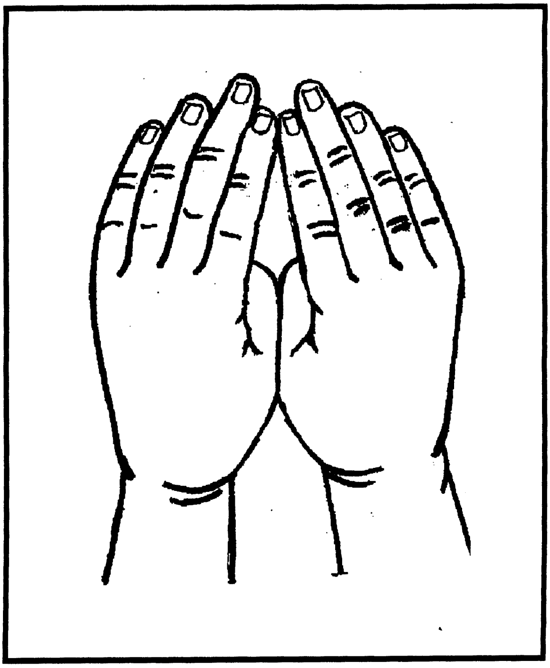

स्थापन मुद्रा

सुपरिणाम

• शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा आँख सम्बन्धी रोगों को दूर करने में लाभदायक मानी गई है। यह हृदय सम्बन्धी रोगोपचार में भी सहायक बनती है। पृथ्वी तत्त्व की कमी से होने वाले रोग जैसे दुर्बलता, कमजोरी, झुर्रियाँ पड़ना आदि इससे ठीक होते हैं।

• मानसिक स्तर पर इस मुद्रा प्रयोग से उच्चस्तरीय मनोभूमिका का निर्माण होता है। चंचल बुद्धि शान्त एवं स्थिर बनती है। लघु मस्तिष्क संतुलित रहता है।

• मौलिक स्तर पर यह साधक में आध्यात्मिक शक्ति का विकास करती है। असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था को प्राप्त करवा सकती है। इससे साधक दिव्य ज्ञान की अनुभूति के हिलोरे लेने लगता है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर प्रणाली के अनुसार इस मुद्रा में जो दाब केन्द्र बिन्दु हैं उससे जन्मजात गूंगेपन एवं बहरेपन का उपचार संभव है। यह इस रोग का मास्टर पाइन्ट है।

• स्थापन मुद्रा में जिन बिन्दुओं पर दबाव पड़ता है उससे हृदय एवं यकृत ऊर्जा में स्थायित्व आता है, ज्ञानेन्द्रियाँ खुलती है तथा अनावश्यक गर्मी कम होती है।

• चक्कर आना, गर्दन में दर्द होना, ऐंठन, बेहोशी के दौरे पड़ना, नाक से रक्त आना, जीभ का लकवा, सूनापन, मिरगी, मस्तिष्क की क्षति के कारण अपंग होना आदि तकलीफें ठीक होती हैं।

इस मुद्रा के दाब बिन्दु हृदय धड़कन की गति एवं वॉल्व का नियन्त्रण भी करते हैं। यह क्षायिक पदार्थों को उल्टी, खांसी, छींक आदि के माध्यम से बाहर निकाल देती है।

17. निरोध मुद्रा

निरोध का शाब्दिक अर्थ है रोकना। सांकेतिक अभिप्राय से निम्न अर्थ भी किये जा सकते हैं—

1. अनुष्ठान को सफल करने के लिए चित्त की समस्त वृत्तियों को रोकना।

2. सीमा निर्धारण करना यानी देवी-देवताओं के योग्य स्थान का निर्धारण करते हुए अन्य के लिए उस जगह में प्रवेश निषिद्ध कर देना।

3. तर्जनी अंगुली के द्वारा देवी-देवताओं के लिए अयोग्य क्षेत्र का प्रतिषेध करते हुए तद्योग्य स्थान का निर्धारण करना।

लौकिक व्यवहार में भी प्रतिष्ठित व्यक्ति को अच्छे स्थान पर बिठाते हैं जबकि सामान्य व्यक्ति के लिए ऐसा नहींवत होता है। देवता शक्तिशाली और समृद्धिशाली होते है तथा अवधिज्ञान के उपयोग से सुकृत कार्यों में सहयोगी भी बनते हैं। दूसरा तथ्य यह है कि जिन देवी-देवताओं का आह्वान किया जाता है। उनका स्थान निर्धारित हो तो फल आदि सामग्री भी चढ़ा सकते हैं अन्यथा

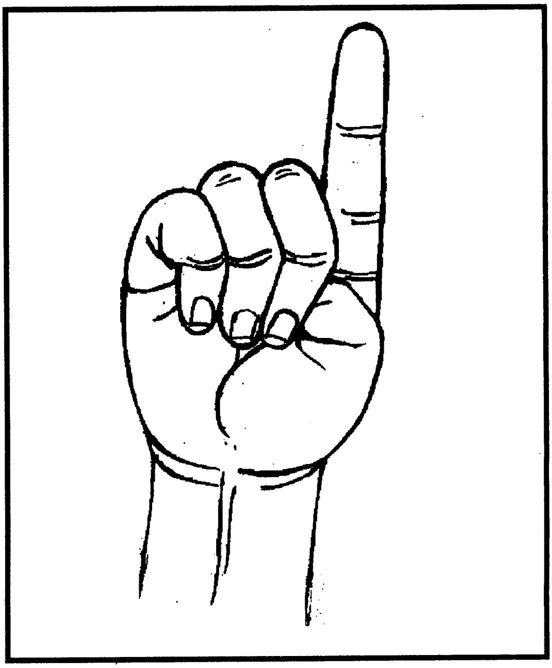

निरोध मुद्रा

अत्यन्त विस्तार वाली भूमि पर द्रव्य अर्पण (पुष्पादि अर्चन) कहाँ करें?

अतः इष्ट देवताओं का स्थान निर्धारण एवं भ्रमित बुद्धि का स्थिरीकरण करने के उद्देश्य से निरोध मुद्रा की जाती है।

विधि

"मुष्टिप्रसृतया तर्जन्या देवतामभितः परिभ्रमणं निरोध मुद्रा।"

बंधी हुई मुट्ठी से फैलायी गई तर्जनी अंगुली का देवता के चारों ओर परिभ्रमण करवाना निरोध मुद्रा है।

सुपरिणाम

- भौतिक दृष्टि से वायुविकार से जनित रोगों का शमन होता है। सम्पूर्ण शरीर का नाड़ीतन्त्र गतिशील बनता है। इस मुद्रा के द्वारा आकाश तत्त्व (मध्यमा अंगुली) की अभिवृद्धि होती है, जिससे आकाश तत्त्व की न्यूनता से होने वाले रोग ठीक होते हैं। हृदय सम्बन्धित रोगों जैसे रक्त चाप एन्जाइम पेन, अनियमित पल्स रेट में यह मुद्रा लाभदायक है। इस मुद्रा से कैल्शियम की पूर्ति होती है इसलिए हड्डियाँ मजबूत बनती हैं।
- भावनात्मक दृष्टि से इस मुद्रा का अभ्यास चित्त की वृत्तियों को शान्त करने हेतु किया जाता है। इस मुद्रा से चित्तवृत्ति में सत्त्व गुण की वृद्धि होती है। साधक उच्च आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त करता है। अनाहत चक्र जागृत होने से दया, करुणा, क्षमा आदि गुण विकसित होते हैं।

विशेष

- एक्यूप्रेशर मेरिडियनोलोजी के अनुसार निरोध मुद्रा में तीन अंगुलियों के द्वारा हथेली के मध्य भाग पर एवं अंगुलियों पर दबाव पड़ता है, उससे बेहोश होना, गिर पड़ना, मिरगी का दौरा पड़ना, उच्च ज्वर आना, गाल में सूजन, अंगुलियों में सूजन, हाथ-पैरों में ऐंठन, पेट में गैस बनना आदि समस्याओं का निवारण होता है।
- यह मुद्रा गले की घंटी एवं तालु उपचार के लिए अच्छा सहयोग करती है। यह बन्द गले को खोलती है तथा गले की घंटी सूजन को घटाती है।
- कर्ण सम्बन्धी किसी भी तरह की बीमारी को इस मुद्रा से ठीक किया जा सकता है।

18. अवगुण्ठन मुद्रा

अवगुण्ठन का सामान्य अर्थ होता है ढकना। संस्कृत कोश में निम्न अर्थ बताये गये हैं- घूंघट निकालना, छिपाना, आच्छादित करना आदि।

इन अर्थों के आधार पर अवगुण्ठन शब्द के अनेक अभिप्राय हो सकते हैं। जैसे-

1. अपने शरीर के चारों ओर विशेष सुरक्षा की भावना से आवरण करना, जिससे दुष्ट देवकृत उपद्रवों से किसी तरह का आघात न पहुँच सके।

2. सम्पूर्ण शरीर को आत्मशक्ति रूपी कवच से ढक लेना, ताकि भौतिक शक्तियाँ उस पर हमला न कर सकें।

3. आच्छादित करना या घूंघट निकालना बाहरी अवगुण्ठन है और शुभ भावना का कवच धारण करना आभ्यन्तर अवगुण्ठन है। इससे अध्यात्म की सुरक्षा भी होती है।

यह ध्यातव्य है कि देवी-देवताओं का वास पवित्र वातावरण में ही होता है। दूषित वायुमण्डल से अत्यन्त दूर रहते हैं। अत: जिस क्षेत्र में हम देवशक्ति को अवतरित करना चाहते हैं वह स्थान विशेष और अनुष्ठान में सम्मिलित होने वाला मानव समूह सब कुछ स्वच्छ होने चाहिए। अवगुण्ठन मुद्रा करते हुए यह संकल्प किया जाता है कि बाह्य धूल कणों से शरीर गन्दा न हो तथा क्रोधादि

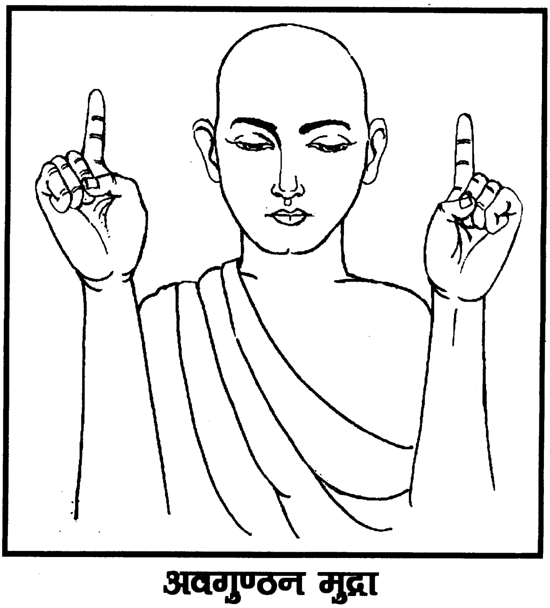

अवगुण्ठन मुद्रा

कषायों से मन दूषित न हो। इस तरह मुद्रा के माध्यम से बाह्य शरीर और आभ्यन्तर आत्मा को निर्मल एवं सुरक्षित रख सकते हैं।

इस तरह अवगुण्ठन मुद्रा के द्वारा शरीर एवं चेतन मन को बाह्य प्रभावों से अप्रभावित रखा जाता है।

विधि

"शिरोदेशमारभ्याप्रपदं पार्श्वाभ्यां तर्जन्योर्भ्रमणमवगुंठन मुद्रा।"

मस्तक के मूल भाग (शिखास्थान) से लेकर पैरों तक शरीर के दोनों पार्श्वों में तर्जनी अंगुली का परिभ्रमण करवाना अवगुंठन मुद्रा है।

सुपरिणाम

● अवगुण्ठन मुद्रा को धारण करने से मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र संतुलित रहते हैं इससे शारीरिक स्तर पर 72000 नाड़ियों की शुद्धि होती है, शरीरतन्त्र सशक्त बनते हैं और उदर सम्बन्धी अवयव शक्तिशाली बनते हैं।

शरीरस्थ विकार जैसे– मुँह आदि से दुर्गन्ध आना, पाचन समस्याएँ, बुखार, फुन्सी, लीवर, उदर, मांसपेशी आदि की समस्याएँ, अल्सर, वायु विकार, बवासीर, नपुंसकता, गुर्दे की समस्या आदि में इस मुद्रा का प्रयोग करने से लाभ होता है।

अग्नि, जल एवं पृथ्वी तत्त्वों में संतुलन करते हुए यह मुद्रा पाचन, प्रजनन एवं विसर्जन तन्त्र के कार्यों का नियमन करती है।

एड्रिनल ग्रंथि के स्राव का संतुलन करते हुए यह मुद्रा व्यक्ति को साहसी, निर्भयी, आशावादी, सहनशील बनाती है। रोगों की प्रतिकारक शक्ति में वृद्धि करती है, बच्चों के सकारात्मक विकास में सहायक बनती है और हृदयजनित रोगों में लाभदायी सिद्ध होती है।

● मानसिक स्तर पर इससे उत्साह में वृद्धि होती है तथा निर्णय लेने की शक्ति का विकास होता है।

● आध्यात्मिक स्तर पर चेतना में उत्पन्न विक्षोभों से लड़ने की शक्ति जागृत होती है। ध्यान साधना के क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति होती है।

विशेष

● अवगुण्ठन रक्षा कवच निर्माण की मुद्रा है। इसके माध्यम से भौतिक शरीर एवं आध्यात्मिक शक्तियों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाता है।

● यौगिक चक्र के अनुसार इस मुद्रा के द्वारा कर्ण, गला, मस्तिष्क एवं तालु सम्बन्धी तकलीफों का उत्तम उपचार हो सकता है।

जयादि देवताओं की पूजा करने में उपयोगी मुद्राएँ

19. गोवृष मुद्रा

गोवृष का सामान्य अर्थ है श्रेष्ठ वृषभ। पूजा-प्रतिष्ठा आदि के अवसर पर गोवृष मुद्रा दिखाने का प्रयोजन क्या हो सकता है यह विचारणीय है?

यदि इस मुद्रा के रहस्यात्मक अर्थ पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि मंगल प्रसंगों में आमंत्रित एवं सम्यक्त्वी गुणों से सुशोभित देवों को गोवृष की भाँति श्रेष्ठ माना गया है।

गोवृष मुद्रा के द्वारा देवों को सूचित करते हैं कि आप हमारे लिए सम्माननीय हैं। इस मुद्रा के माध्यम से यह भाव भी दर्शाते हैं कि आप अत्यन्त शूरवीर, शक्तिशाली, समृद्धिवन्त, विघ्नविनाशक और असीम ऐश्वर्य के स्वामी हैं। इस तरह प्रशंसक भावों की अभिव्यक्ति करके तुष्ट करते हैं और आशंकित विघ्नों का निवारण करते हैं।

लोकभाषा में भी शूरवीर को पुरुष सिंह, शक्ति सम्पन्न को पुरुषवृषभ आदि

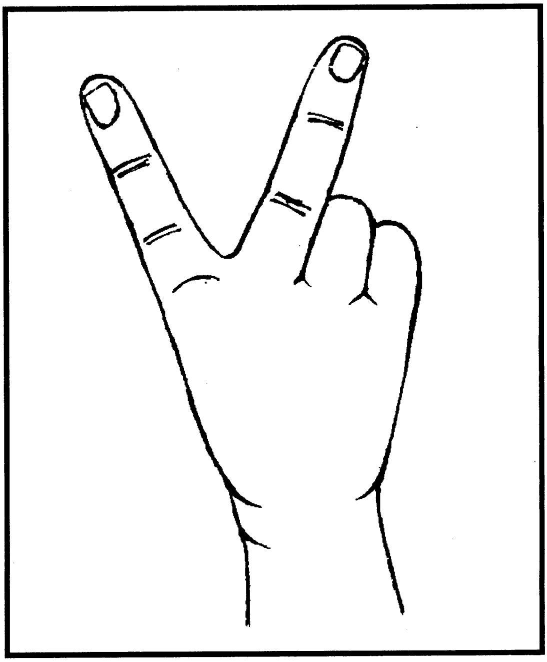

गोवृष मुद्रा-1

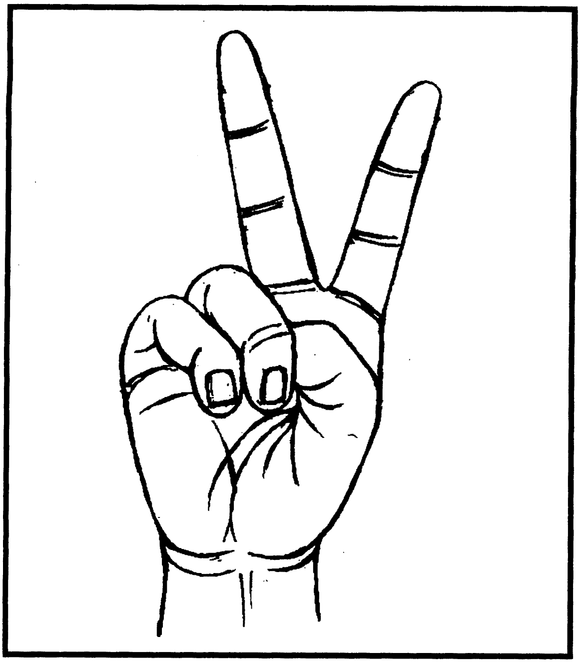

गोवृष मुद्रा-2

कहते हैं। जैन परम्परा के प्रचलित 'णमुत्थुणंसूत्र' में तीर्थंकर पुरुषों के लिए भी इस तरह के विशेषण प्रयुक्त कर उन्हें दुनिया में सर्वोच्च कोटि पर माना गया है।

यहाँ इस मुद्रा के द्वारा अन्य देवों की तुलना में उपस्थित देवों को सर्वोत्तम स्वीकार किया गया है।

प्रस्तुत मुद्रा का मूल प्रयोजन आराध्य देवी-देवताओं को प्रसन्न करते हुए मांगलिक कृत्यों को निर्बाध रूप से सम्पन्न करना है।

विधि

"बद्धमुष्टेर्दक्षिणहस्तस्य मध्यमातर्जन्योर्विस्फारित प्रसारणेन गोवृषमुद्रा।"

दाहिने हाथ की बंधी हुई मुट्ठी से मध्यमा और तर्जनी अंगुलियों को प्रसारित करने पर गोवृष मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा श्वास सम्बन्धी रोगों में लाभदायक है। यह

फेफड़ों को पुष्ट बनाकर दीर्घ आयु प्रदान करती है। हमारी पाँचों इन्द्रियों को अधिक सक्रिय करती है। इस मुद्राभ्यास से पीयूष ग्रन्थि जागृत होती है। परिणामस्वरूप इसके स्राव से उत्तेजित होकर अन्य ग्रन्थियाँ निर्धारित कार्य के प्रति सचेष्ट बनती हैं। इसके प्रभाव से सिर के बाल एवं हड्डियों के विकास में संतुलन बना रहता है।

- मानसिक तौर पर इस मुद्रा की निरन्तरता से बुद्धि तीक्ष्ण होती है। वैचारिक सन्तुलन बना रहता है और शान्ति प्राप्त होती है, यह मुद्रा मनोबल को दृढ़ करती है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा चेतना को ऐन्द्रिक विषयों से विमुक्त कर स्वयं के प्रति संलग्न करती है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर पद्धति के अनुसार इस मुद्रा से अनेक फायदे होते हैं। जैसे कि आँतों के रोग, डायरिया, स्पोन्डिलाइटिस, एलर्जी, मासिक धर्म का रुकना, लू लगना, मूत्राशय का संक्रमण, योनि का बाहर निकलना, मेरुदण्ड का वक्र हो जाना, भूख कम हो जाना, पतले दस्त होना, खाज-खुजली होना, सूजन होना इत्यादि रोगों से छुटकारा मिलता है।
- इस मुद्रा के बिन्दू रुकी हुई ऊर्जा को पुन: प्रवाहित करने में सक्षम हैं। यह मुद्रा नाभि से पाँव तक की गर्मी अथवा गर्मी की कमी से होने वाले रोगों में राहत देती है।

20. त्रासनी मुद्रा

त्रासनी संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है भयभीत करना। पूजा-प्रतिष्ठा आदि के शुभ अवसरों पर जो दुष्ट आत्माएँ सत्कर्मों में विघ्न डालती हैं, विक्षेप करती हैं, उनके लिए इस मुद्रा का उपयोग किया जाता है ताकि दुष्टात्माओं को भयभीत किया जा सके।

त्रासनी मुद्रा करते वक्त तर्जनी अंगुली से हथेली पर प्रहार किया जाता है। इसका भावार्थ है कि उन्हें पहले से ही अपने अनिष्ट का फल बताते हुए सावधान करते हैं कि यदि किसी ने इस कार्य में बाधा पहुँचाई या असन्तोष पैदा किया तो बुरी तरह से प्रताड़ित किया जाएगा।

इस मुद्रा में तर्जनी अंगुली से हथेली पर प्रहार करने का ध्येय यह है कि

लौकिक जीवन में भी किसी को डराने-धमकाने के लिए तर्जनी अंगुली ही दिखायी जाती है। सभी अंगुलियों का अपना-अपना कार्य है। यहाँ तर्जनी अंगुली का प्रयोग दुष्टों को भयभीत करने के प्रयोजन से किया जाता है।

विधि

"बद्धमुष्टेर्दक्षिण हस्तस्य प्रसारित तर्जन्या वामहस्ततलताडनेन त्रासनी मुद्रा।"

दाहिने हाथ की बंधी हुई मुट्ठी से प्रसारित तर्जनी अंगुली के द्वारा बायीं हथेली के मध्य भाग को पीटने पर त्रासनी मुद्रा बनती है।

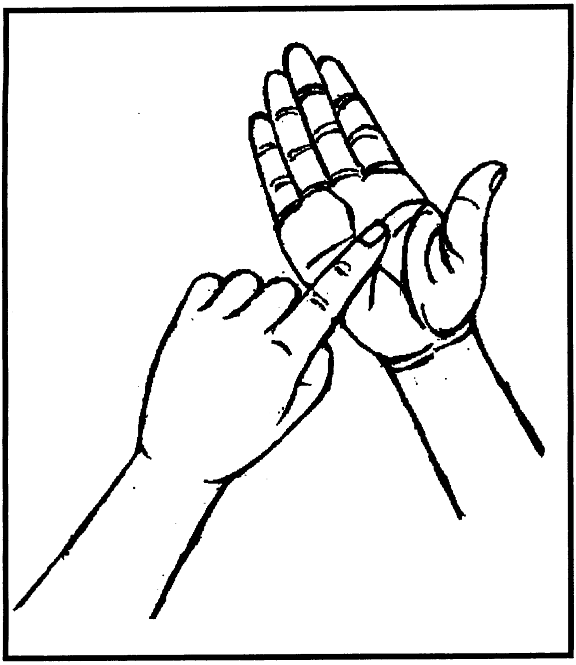

त्रासनी मुद्रा

सुपरिणाम

● शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा का अभ्यास पंच प्राणों के प्रवाह को नियमित करता है। यह मुद्रा जठराग्नि को प्रदीप्त कर साधक में सूर्य प्रकाश की भाँति तेज प्रकट करता है। शरीर की पीयूष ग्रंथि और पिनियल ग्रंथियों के स्राव

नियंत्रण में रहते हैं। इससे वायु जनित रोगों में फायदे होते हैं। गैस की तकलीफ होने पर वज्रासन में बैठकर यह मुद्रा करने से राहत मिलती है।

- मानसिक दृष्टि से मस्तिष्क के ज्ञान तंतु क्रियाशील होते हैं, मन शान्त होता है और स्मरण शक्ति बढ़ती है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से ध्यान में प्रगति होती है, निर्भीकता आदि गुणों का प्रकटन होता है और संसार में रहते हुए भी निष्पाप जीवन की भावना बलवती बनती है।

विशेष

- त्रासनी मुद्रा का उपयोग विघ्नों को दूर करने के लिए किया जाता है।
- यह आराध्य देवों के नेत्रयुगल की पूजा करने से सम्बन्धित मुद्रा है।

21. पाश मुद्रा

पाश शब्द बन्धन सूचक है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार 'पश्यते बध्यते जनेन इति पाश:' अर्थात जिसके द्वारा बांधा जाता है वह पाश कहलाता है। संस्कृत कोश में 'पाश' के अनेक पर्यायवाची कहे गये हैं जैसे डोरी, श्रृंखला, बेड़ी, फन्दा आदि। ये सभी बंधन के ही द्योतक हैं।

यहाँ पाश मुद्रा का रहस्य यह है कि जो डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत आदि क्रूर आत्माएँ प्रताड़ित या डराने-धमकाने के उपरान्त भी पुण्यकार्यों में बाँधा पहुँचाती हैं उन्हें बांधने के लिए यह मुद्रा की जाती है। स्पष्ट है कि इस मुद्रा को दिखाकर उन्हें बाँधने का मानसिक संकल्प किया जाता है। इससे आराधक धर्मानुष्ठान करते समय निश्चिंत रहता है।

यहाँ बांधने से तात्पर्य उन्हें पीड़ित अथवा दु:खी करना नहीं है प्रत्युत इतस्तत: परिभ्रमण करते हुए रोकने से है। इसके पीछे हेतु यह है कि निम्न कोटि की आत्माएँ एक जगह स्थिर (बंधी) रहेंगी तो चाहकर भी उपद्रव नहीं कर सकेंगी।

पाश मुद्रा एक तरह से लक्ष्मण रेखा का कार्य करती है जिससे भूत-प्रेत आदि आत्माएँ अपनी सीमा का लंघन कर शुभ क्षेत्र में नहीं आ सकतीं। पाश मुद्रा के द्वारा किया गया बंधन या घेरा इतना सशक्त होता है कि इस बन्धन को तोड़ना किसी के वश में नहीं होता।

विधि

''अंगुष्ठे तर्जनीं संयोज्य शेषांगुली प्रसारणेन पाशमुद्रा।''

अंगूठे के अग्रभाग से तर्जनी के अग्रभाग को संयोजित कर शेष अंगुलियों को प्रसारित करने पर पाश मुद्रा बनती है।

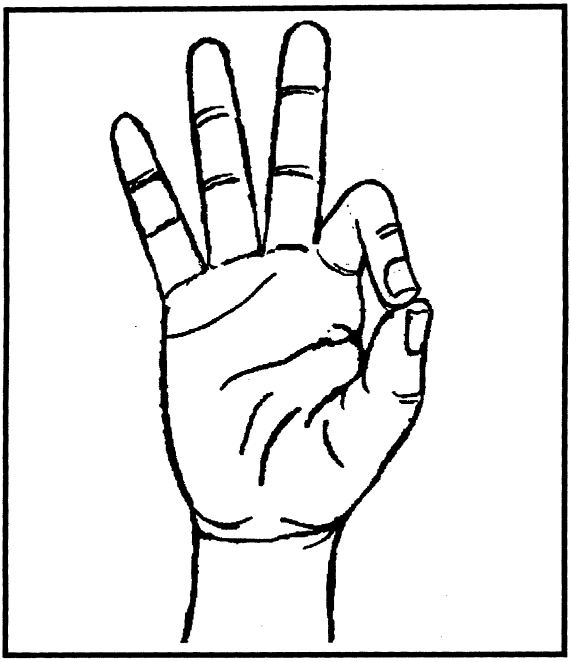

पाश मुद्रा

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा वायु तत्त्व को संतुलित रखती है। अभ्यासी साधकों के अनुसार यह श्वास गति को धीमाकर साधक को दीर्घायु प्रदान करती है। अनिद्रा के रोग में रामबाण औषधि की भाँति कार्य करती है। शरीर की मुख्य ग्रन्थियों को संयमित रखती है। मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों जैसे चिड़चिड़ापन, अस्थिरता, बैचेनी, विषाद, घबराहट आदि को दूर करती है।

• मानसिक दृष्टि से इसका अभ्यास मन की चंचलता को शान्त करता है। इस मुद्रा का मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मानसिक तनाव दूर होते हैं और स्मरण शक्ति बढ़ती है।

● मौलिक दृष्टि से इस मुद्रा के द्वारा अणाहारी पद की साधना सुगम बनती है। साधक को वाक् सिद्धि की प्राप्ति होती है। इन्द्रियाँ विषय-कषायों के बन्धन से मुक्त होती है। इससे अविकारी भावों का उद्भव होता है। मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र की ऊर्जा आत्मबल में अभिवृद्धि करती है।

विशेष

● एक्यूप्रेशर चिकित्सा के अनुसार पाश मुद्रा में अंगूठा एवं तर्जनी के अग्रभाग पर दबाव पड़ने से मस्तिष्क की क्षमता विकसित होती है और सिरदर्द दूर होता है।

22. अंकुश मुद्रा

अंकुश का शाब्दिक अर्थ है वश में करना। इस अर्थ के दो अभिप्राय हो सकते हैं—

बाह्य दृष्टि से विरोधी तत्त्वों या दुष्ट आत्माओं को वश में करना तथा

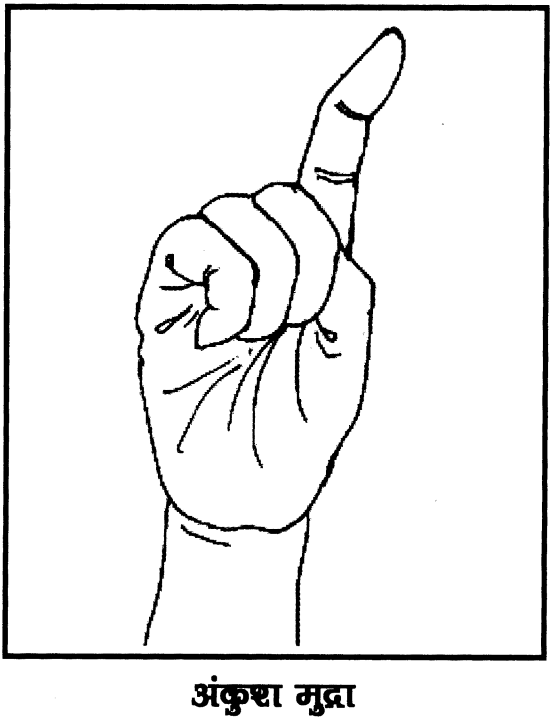

अंकुश मुद्रा

आभ्यन्तर दृष्टि से स्वयं की चंचल वृत्तियों को नियन्त्रित करते हुए मन, वचन, काया की दुश्चेष्टाओं का निरोध करना।

यहाँ दोनों अर्थ उपयुक्त प्रतीत होते हैं। तदनुसार अंकुश मुद्रा मनो संकल्पना पूर्वक बाधक तत्त्वों पर नियंत्रण प्राप्त करने अथवा दुष्ट शक्तियों को निरस्त करने के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

''बद्धमुष्टेर्वामहस्तस्य तर्जनीं प्रसार्य किंचिदाकुंचयेत् अंकुश मुद्रा।''

बाएँ हाथ को मुट्ठी रूप में बाँधें। फिर तर्जनी को प्रसारित करते हुए किंचित झुकाने पर अंकुश मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा नेत्र ज्योति को तेज करती है। आकाश तत्त्व की कमी से होने वाले रोगों में लाभ पहुँचाती है। थायरॉइड ग्रंथि के स्राव को संतुलित करती है। इस मुद्रा के नियमित प्रयोग से पाचन शक्ति का विकास होता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है और अग्नाशय सशक्त बनता है। यह वायुजनित बीमारियों का शमन कर शरीर को उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करती है।
- भावनात्मक स्तर पर यह मुद्रा मन को नियन्त्रित करती है, निराशाजन्य एवं कुंठित मानसिकता को समाप्त करती है और अपूर्व उत्साह का सर्जन करती है।
- आध्यात्मिक स्तर पर इन्द्रियों की भाग-दौड़ कम करती है। मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डलिनी की वक्रता को दूर कर उसे सहस्रार तक पहुँचाती है। यह मुद्रा अभ्यास साधक में प्रत्याहार शक्ति को भी बढ़ाती है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर चिकित्सकों ने तर्जनी अंगुली में मेरुदण्ड का स्थान माना है। इस मुद्रा में तर्जनी पर दाब पड़ने से मेरुदण्ड के विकार दूर होकर वह पुष्ट होता है।

23. ध्वज मुद्रा

ध्वज झंडे को कहते हैं। भारतीय धर्म की सभी संस्कृतियों में ध्वजा का आदरणीय स्थान है। ध्वजा आत्म उपासना की प्रतीक मानी गई है। सामान्यतया ध्वज मंगल, आनन्द, शुभता का सूचक है।

यहाँ ध्वज मुद्रा के अनेक अभिप्राय हैं। जैसे कि ध्वजा सम-विषम हर स्थिति में अनवरत लहराती रहती है, झंझावात के थपेड़ों को समभाव से सहती है। निष्प्रकम्प डंडे से संलग्न रहने पर भी हमेशा झुकी रहती है। इस मुद्रा को करते हुए प्रतीकात्मक रूप में तीर्थंकर देव के समक्ष यह प्रार्थना की जाती है कि हे भगवन्! हमारा ज्ञान रूपी दीपक सदैव प्रज्वलित रहें, अज्ञान रूपी झंझावतों से कभी बुझ न पाये। अनुकूल-प्रतिकूल समग्र परिस्थितियों में सन्मार्ग का अनुसरण करतें रहें, घबराये नहीं। यही साधना का सम्यक परिणाम है।

जैसे एक बांस में एक ध्वजा ही रह सकती है वैसे ही ध्वज मुद्रा को दिखाते हुए यह भाव प्रकट किया जाता है कि इस अनुष्ठान में सभी देवों को

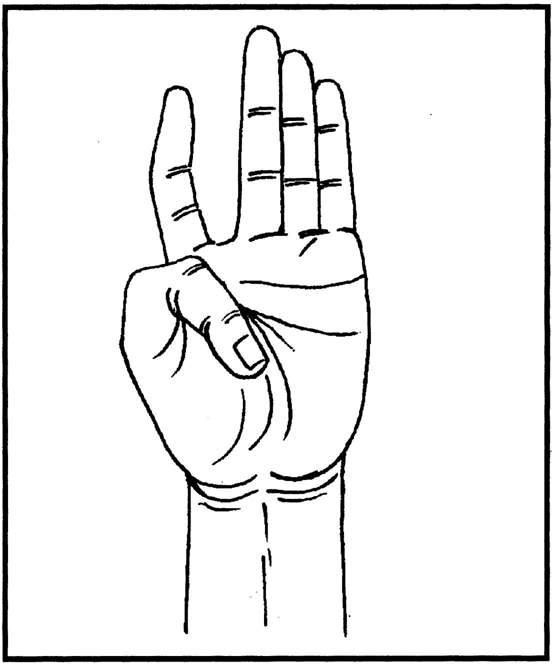

ध्वज मुद्रा

अपने-अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप में बुला रहे हैं, स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप में आमन्त्रित कर रहे हैं और स्वतन्त्र सत्ता के रूप में पुष्पादि सामग्री अर्पित कर रहे है अतः सर्वदेव प्रसन्न हों। जैसे ध्वजा उच्च स्थान पर रहती है वैसे ही हम सभी सर्वोच्च स्थानीय सिद्ध पद को उपलब्ध कर सकें। ध्वजा प्रगति का भी संकेत करती है। हे भगवन्! आपकी पूजा-आराधना से हमारी आत्मभावनाएँ भी चरम शिखर का स्पर्श करती हुई परमात्मपद की संप्राप्ति करवायें, ध्वज मुद्रा के माध्यम से इस तरह के मनोभाव अभिव्यक्त किये जाते हैं।

अतः ध्वज मुद्रा, पूजा के रूप में आमंत्रित देवी-देवताओं को प्रसन्न रखने तथा इष्ट कार्यों की सिद्धि पाने के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

''संहतोर्ध्वांगुलिवामहस्तमूले चांगुष्ठं तिर्यक् विधाय तर्जनी चालनेन ध्वजमुद्रा।''

बाएं हाथ की अंगुलियों को ऊपर की ओर करते हुए उन्हें मिलाएं, फिर अंगूठे के अग्रभाग को हथेली के मूल स्थान पर रखें तथा तर्जनी अंगुली को चलाते रहने से ध्वज मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से आकाश तत्त्व संतुलित रहता है। इससे नाक, कान, गला, मुँह एवं स्वर में आए हुए विकार दूर हो जाते हैं।

शरीरगत समस्याएँ जैसे- ब्रेन ट्यूमर, पार्किन्सन्स, कानों का संक्रमण, सिरदर्द, पागलपन, अनिद्रा आदि का निवारण इस मुद्रा के प्रयोग से हो सकता है।

प्रजनन सम्बन्धी अंग विकसित और सुचारु होते हैं। इस मुद्राभ्यास से शरीर कांतिवान बनता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा यह मुद्रा पाचन क्रिया में लाभ देती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा अन्तर्ज्ञान एवं अवचेतन मन को जागृत करती है। इसी के साथ यह दुष्टता के सर्पों को गरुड़ की तरह परास्त करने में भी समर्थ है।

साधक उच्च आध्यात्मिक अवस्था की ओर अभिमुख होता है।

विशेष

- यौगिक चक्र के अनुसार इस मुद्रा से ब्रह्म चक्र और आज्ञा चक्र प्रभावित होते हैं। इससे अवसाद, उन्मत्तता, स्मृति सम्बन्धी समस्याएँ, मानसिक विकार, पागलपन, निराशा आदि दूर होती है।
- पीयूष एवं पिनियल ग्रंथियों पर इस मुद्रा का विशेष प्रभाव पड़ता है। इनके स्राव का संतुलन करते हुए यह शरीरस्थ शर्करा, रक्त चाप, तापमान आदि का नियंत्रण करती है। इससे नेतृत्व शक्ति, निर्णयात्मक शक्ति एवं नियंत्रण शक्ति का भी विकास होता है।

24. वरद मुद्रा

वरद शब्द आशीर्वाद सूचक है। संस्कृत कोश में 'वरद' शब्द का विश्लेषण करते हुए उसे वरदान प्रदान करने वाला, वर देने वाला, मंगल प्रदाता आदि कहा गया है।

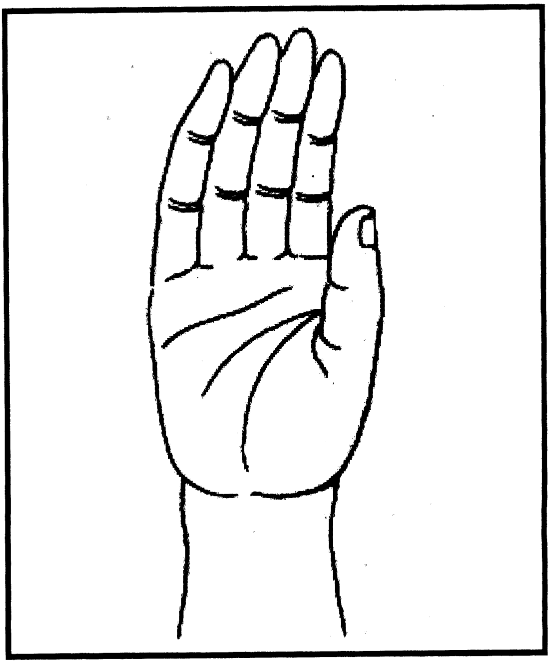

वरद मुद्रा

इन अर्थों के अभिप्रायानुसार कहा जा सकता है कि वरद मुद्रा देवी-देवताओं के समक्ष वरदान याचना के रूप में की जाती है। सामान्यतया अतिथि के रूप में आमन्त्रित देवताओं की पूजा-अर्चना सम्पन्न करने के पश्चात यह मुद्रा दिखाते हुए सांकेतिक रूप से इस तरह के भाव अभिव्यक्त किए जाते हैं कि आप सदैव कृपा बनाये रखें ताकि हम कल्याणकारी मार्ग का अनुसरण कर सकें, ऐसा इच्छित वर दें जिससे जीवन में आनन्द-मंगल होता रहे।

इस प्रकार वरद मुद्रा आशीर्वाद प्राप्ति की कामना से की जाती है।

विधि

''दक्षिणहस्तमुत्तानं विधायाधः करशाखाः प्रसारयेदिति वरदमुद्रा।''

दाहिने हाथ को सीधा खड़ा करते हुए अंगुलियों को आधा झुकाकर उन्हें प्रसारित करना वरद मुद्रा है।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा अनियन्त्रित ऊर्जा को नियन्त्रित करती है। हृदय रोग एवं तत्सम्बन्धी दोषों को दूर करने में सहयोग करती है। अस्थियों को मजबूत बनाती है। कर्ण से संबंधित विकारों में लाभ देती है। सुनने की शक्ति तीव्र करती है। सभी ग्रन्थियों एवं अवयवों को सन्तुलित रखती है तथा उनके आवश्यक कार्यों को सम्पादित करवाती है।

• मानसिक दृष्टि से चैतन्य केन्द्र को स्थिर करती है। इससे निर्णायक एवं नेतृत्व क्षमता का विकास होता है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से मानवीय भावनाओं जैसे परोपकार, निःस्वार्थ प्रवृत्ति, परदुःखकातरता, प्रेम, करुणा, मैत्री आदि का अभ्युदय होता है।

सोलह विद्यादेवियों की पूजा आदि में उपयोगी मुद्राएँ

25. शंख मुद्रा

विश्व के समस्त जल-जन्तुओं में एकमात्र 'शंख' ही ऐसा है जो रूपाकार में कुरूप होने पर भी सर्वाधिक पूज्य और मान्य है। हाँ, यह अवश्य है कि उसकी मान्यता और पूजा हिन्दू परम्परा में सर्वोच्च रूप से है। प्राचीन युग में भारतीय समाज वर्ण-व्यवस्था के अनुसार चार विभागों में वर्गीकृत था — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वर्ण (रंग) के आधार पर शंखों का भी वर्गीकरण कर दिया था और प्रत्येक वर्ग अपने वर्ण का शंख प्रयोग में लाता था। ब्राह्मण समुदाय के लिए श्वेतवर्णी शंख प्रयोज्य माना गया है। क्षत्रियों के लिए लालिमायुक्त शंख का विधान है। वैश्य समाज के लिए पीताभ शंख ग्राह्य बताया गया है और शूद्रों के लिए श्यामवर्णीय शंख प्रयोजनीय कहा जाता है।

शंख को विजय, सौख्य, समृद्धि, शुभ और यश प्राप्ति का प्रतीक माना गया है। सामाजिक जीवन में लगभग सभी अवसरों पर शंख ध्वनि को मान्यता

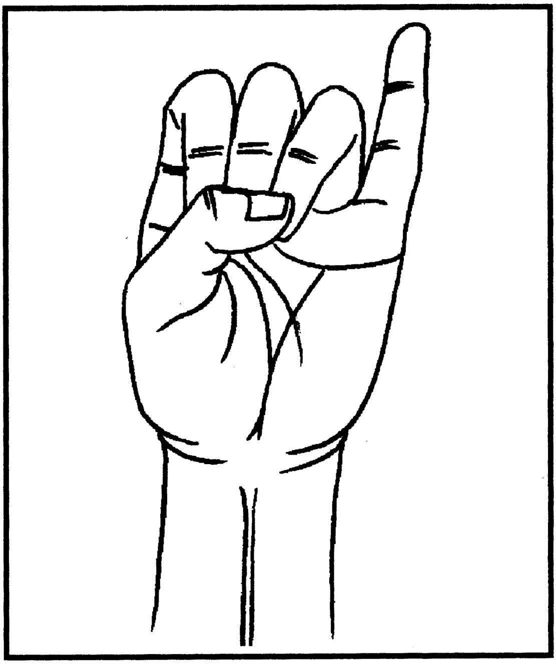

शंख मुद्रा

प्राप्त है। धार्मिक पर्व, पूजा, हवन, युद्धारम्भ, विजय-वरण, विवाह राज्याभिषेक, देवार्चन जैसे अवसरों पर शंख का प्रयोग (ध्वनि) शुभ और अनिवार्य माना जाता है। आज भी हमारे समाज में पूजा-पाठ, आरती, विवाह जैसे प्रसंगों पर विभिन्न वाद्यों के साथ-साथ 'शंखनाद' की प्रथा प्रचलित है।

सोलह विद्यादेवियों के पूजा आदि प्रसंगों पर शंख मुद्रा दिखाने के दो अभिप्राय ज्ञात होते हैं। प्रथम अभिप्राय के अनुसार उपासक के लिए सौख्य, समृद्धि एवं शुभता का सर्जन करने हेतु शंख मुद्रा दिखायी जाती है। द्वितीय अभिप्राय के अनुसार रोहिणी नाम की प्रथम विद्यादेवी को यह मुद्रा प्रिय है अथवा उसका अस्त्र विशेष होने से दिखायी जाती है।

विधि

"वामहस्तेन मुष्टिं बद्ध्वा कनिष्ठिकां प्रसार्य शेषांगुलीरंगुष्ठेन पीडयेदिति शंखमुद्रा।"

बाएं हाथ को मुट्ठी रूप में बाँधकर कनिष्ठिका अंगुली को प्रसारित करते हुए एवं शेष अंगुलियों को अंगूठे के द्वारा आक्रमित (पीड़ित) करने पर शंख मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा का प्रयोग अपान वायु को संयमित करता है, जिससे हृदयाघात का भयंकर दौरा भी कुछ क्षणों में सन्तुलित हो सकता है और रोगी मृत्यु संकट से बच सकता है। इस प्रकार यह मुद्रा हृदय रोगों में लाभ देती है तथा हृदय को बल प्रदान करती है।

यह मुद्रा एलर्जी, मनोविकार, पित्ताशय, तिल्ली, फेफड़ें एवं हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण करती है।

यह अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए आन्तरिक ऊर्जा का अनुभव करवाती है तथा पाचन तंत्र, आदि के कार्यों का नियमन करती है।

थायमस, एड्रिनल एवं पैन्क्रियाज को प्रभावित करते हुए यह बालकों के विकास में विशेष सहायक बनती है। संचार व्यवस्था, हलन-चलन, श्वसन, रक्त परिभ्रमण, अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह मधुमेह को नियंत्रित करने में भी विशेष सहायक मानी गई है। हृदय की धड़कन और कमजोरी में इस मुद्रा से राहत मिलती है।

इस मुद्राभ्यास से चित्रकला, नृत्यकला, संगीतकला एवं सृजनात्मक कार्यों में विशेष रुचि जागृत होती है।

● आध्यात्मिक स्तर पर इसके प्रयोग से अंतर्चेतना जागरूक बनती है। इससे दुर्भावनाएँ समाप्त होकर मन निर्मल बनता है। इस मुद्रा से साधक में अन्तरंग नाद सुनने एवं महसूस करने की क्षमता विकसित होती है। यह नादानुसन्धान की वृत्ति को प्रबल बनाती है।

● विविध धार्मिक कार्यों में प्रचलित यह मुद्रा मणिपुर एवं अनाहत चक्र की जागृति में सहायक है। इससे साधक में आत्मविश्वास, ऐन्द्रिक नियंत्रण, सकारात्मक सोच के साथ-साथ अनेक मानवीय गुणों का विकास होता है।

विशेष

● एक्यूप्रेशर रिफ्लेक्सोलोजी के सिद्धान्तानुसार शंख मुद्रा में अंगूठा एवं कनिष्ठिका को छोड़कर शेष अंगुलियों पर दबाव पड़ता है जिससे दाँतों का दर्द ठीक होता है तथा निम्न रक्तचाप, बड़ी आंत, छोटी आंत सम्बन्धी रोगों का निदान होता है।

26. शक्ति मुद्रा

यहाँ शक्ति का तात्पर्य शक्ति से ही है। चित्र में दर्शायी गई इस मुद्रा का स्वरूप देखकर यह अनुमान होता है कि इसमें मध्यमा अंगुली को बाधित कर सभी अंगुलियाँ एक-दूसरे से बंधी हुई हैं जो व्यापक शक्ति को इंगित करती है।

सामान्य रूप से एकाकी व्यक्ति के पराजय की कल्पना की जा सकती है किन्तु संगठित शक्ति को पराजित करना कठिन होता है। कहा भी गया है— "संगठन ही शक्ति है"।

इस मुद्रा में ऊर्ध्वाकार स्थित मध्यमा अंगुली ऊर्ध्वाभिमुखी बनने की प्रेरणा देती है।

प्रतीक रूप में यह मुद्रा आत्मा के अनन्त शक्तिमान होने की सूचना देती है।

चित्रानुसार शक्ति मुद्रा इस तथ्य को भी उद्घाटित करती है कि सोलह विद्या देवियों में दूसरी प्रज्ञप्ति नामक विद्यादेवी परम शक्तिशाली है और जो इसकी पूजादि करेगा वह भी शक्ति का स्रोत बन जायेगा और सुप्त शक्ति को जागृत कर लेगा।

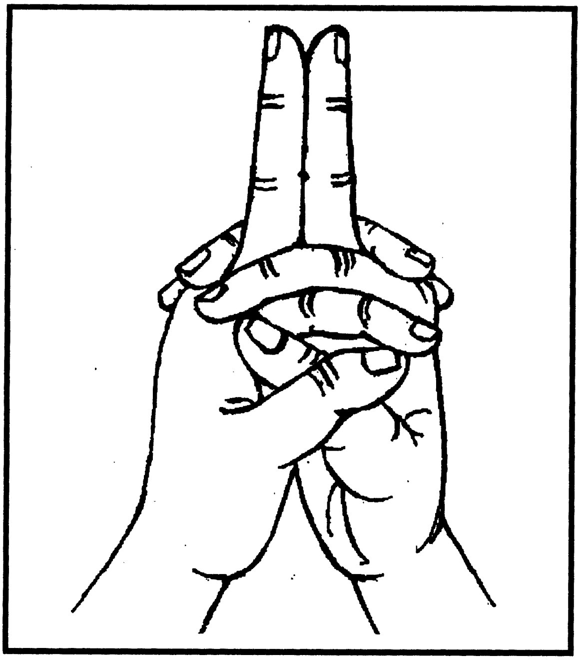

शक्ति मुद्रा

भौतिक दृष्टि से यदि देवी के बाल बिखरे हुए हों तो वे भयावह दिखती हैं। इस देवी की केशराशि विकीर्ण नहीं है, बंधी हुई है। शक्ति मुद्रा करते हुए इष्ट देवी के समक्ष कामना की जाती है कि आप भयावह रूप को कदापि प्रकट न करें, सज्जन व्यक्तियों के लिए सदैव मंगल मूर्ति के रूप में रहें।

इस तरह शक्ति मुद्रा अनेक हेतुओं से की जाती है।

विधि

''परस्पराभिमुखहस्ताभ्यां वेणीबन्धं विधाय मध्यमे प्रसार्य संयोज्य च शेषांगुलीभिर्मुष्टिं बन्धयेत् इति शक्ति मुद्रा।''

दोनों हाथों को आमने-सामने करके अंगुलियों को एक-दूसरे में गूंथें, फिर मध्यमा अंगुलियों को ऊर्ध्व प्रसरित कर उन्हें परस्पर मिलाएं तथा शेष अंगुलियों की मुट्ठी बांधने पर शक्ति मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा के द्वारा आकाश तत्त्व नियंत्रित रहता है

तथा इस तत्त्व की अधिकता या न्यूनता से उत्पन्न होने वाले रोगों का शमन होता है।

इससे शरीर में गर्मी बढ़ती है अत: ठंड के दिनों में राहत मिलती है। इस मुद्रा की गर्मी से खांसी, जुकाम, सायनस, अस्थमा, टी.बी. आदि सर्दी संबंधी रोग दूर होते हैं।

ऋतु परिवर्तन से जो तकलीफें होती हैं उसमें राहत मिलती है। यह मुद्रा रक्त शोधन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा ब्रह्मचर्य पालन में सहयोग करती है। इससे आत्म शक्ति का संग्रह होता है तथा स्वाधिष्ठान और मणिपुर चक्र अनावृत्त होने से उसके सभी फायदे होते हैं।

विशेष

- एक्यूप्रेशर विशेषज्ञों एवं योगाचार्यों के अनुसार इससे स्त्री सम्बन्धी समस्याओं, मूत्राशय सम्बन्धी तकलीफों, जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है।
- इस मुद्रा के दाब बिन्दुओं से जकड़ी हुई गर्दन, अंगुलियों का सूनापन, गठिया आदि रोगों का सम्यक उपचार होता है।

27. श्रृंखला मुद्रा

श्रृंखला बेड़ी को कहते हैं। सामान्यत: बेड़ी बाँधने का कार्य करती है। यहाँ श्रृंखला मुद्रा से तात्पर्य आभ्यन्तर बंधन से है। यह मुद्रा सांकेतिक रूप में बाह्य दशा से आभ्यन्तर दशा की ओर अभिमुख होने की प्रेरणा देती है, आत्म स्वभाव से बंधे रहने का संकेत करती है तथा स्वयं के अस्तित्व से परिचित होने का संदेश देती है।

जैसे सांकल से बंधी हुई श्रृंखला किसी वस्तु के बांधने में उपयोगी बनती है वैसे ही बंधा (सधा) हुआ मन आत्मा को परमात्म तत्त्व से जोड़ने का कार्य करता है। व्यक्ति का मन प्राय: विश्रृंखल रहता है ऐसी स्थिति में श्रृंखला मुद्रा उसे जोड़ने में मदद करती है।

चित्र में दर्शाये गए मुद्रा स्वरूप को देखकर यह विचार भी उत्पन्न होता है कि हम सभी बाह्य राग-द्वेष परिवार-कुटुम्ब आदि बंधनों से बंधे हुए हैं, लेकिन इन बन्धनों का कोई अर्थ नहीं है। ये सभी बंधन अनन्त संसार की परम्परा को

ही बढ़ाने वाले हैं जबकि विशुद्ध आत्मा का विशुद्ध आत्मा (परमात्मा) से होने वाला बंधन उसे अजर-अमर पद की प्राप्ति करवाता है।

इस तरह श्रृंखला मुद्रा विविध दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। इस मुद्रा का मुख्य लक्ष्य बाह्य मन को अन्तर्मन से संयुक्त करना है।

विधि

''हस्तद्वयेनांगुष्ठतर्जनीभ्यां वलके विधाय परस्परान्तः प्रवेशनेन श्रृंखलामुद्रा।''

दोनों हाथों के अंगूठों और तर्जनियों को झुकाकर उनका परस्पर में एक दूसरे के भीतर प्रवेश करवाने पर श्रृंखला मुद्रा बनती है।

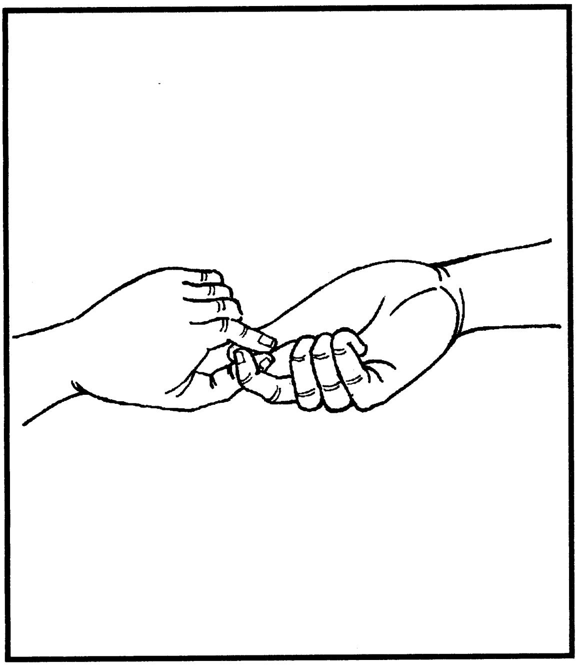

श्रृंखला मुद्रा

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर मधुमेह, पाचन समस्या, कैन्सर, लीवर समस्या, कोष्ठबद्धता, बदबूदार श्वास, शरीर में गन्ध, अल्सर, प्रजनन तंत्र आदि से सम्बन्धित समस्याओं के निवारण में यह मुद्रा विशेष रूप से सहायक बनती है।

इस मुद्रा से अग्नि तत्त्व और पृथ्वी तत्त्व संतुलित रहते हैं। इससे पाचन शक्ति एवं विसर्जन के कार्यों का नियमन होता है।

मानसिक स्तर पर इससे सत्य को स्वीकार करने की क्षमता विकसित होती है तथा अविश्वास, अस्थिरता, अहंकार, शंकालु वृत्ति आदि कषायों पर विजय प्राप्त होती है।

● आध्यात्मिक स्तर पर यह मुद्रा मणिपुर एवं मूलाधार चक्र में आई हुई रुकावटों को दूर करने में सहायक बनती है। इसकी जागृति से व्यक्ति का स्वयं के प्रति आत्मविश्वास बढ़ता है और शत्रु भाव समाप्त होता है। इसी के साथ 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावनाएँ उत्तरोत्तर विकसित होती हैं।

प्रजनन, एड्रिनल एवं पैन्क्रियाज को प्रभावित करते हुए यह रक्तचाप, कामेच्छा आदि को संतुलित रखती है और विकास करती है।

विशेष

● तीसरी विद्यादेवी का नाम वज्रश्रृंखला है। इस कारण इस मुद्रा का नाम श्रृंखला रखा गया हो, ऐसा प्रतीत होता है।

● एक्यूप्रेशर रिफ्लेक्सोलोजी के अनुसार इस मुद्रा में मस्तिष्क पर दबाव पड़ रहा है जो शरीर के विकास एवं मस्तिष्क के रोगों को ठीक करने में सहयोग करता है।

● एक्यूप्रेशर मेरेडियन थेरेपी के अनुसार इस मुद्रा के दाब बिन्दु से वात दोष ठीक होता है, ज्ञानेन्द्रियाँ खुल जाती हैं, उग्रता घटती है और ऊर्जा नीचे से ऊपर मस्तिष्क तक प्रवाहित होने लगती है।

● श्रृंखला मुद्रा से एक तरफ का लकवा, बेहोशी का दौरा पड़ना, कान में आवाजें आना, चलने या खड़े होने पर असन्तुलन के कारण डगमगाना, नसों में तनाव होना, निम्न रक्त चाप होना आदि स्थितियों में राहत मिलती है।

28. वज्र मुद्रा

वज्र एक प्रकार का शस्त्र कहलाता है। संस्कृत कोश में वज्र शब्द के अनेक अर्थ हैं, उनमें इन्द्र के शस्त्र को भी वज्र कहा गया है। यह अर्थ अधिक उपयुक्त मालूम होता है। इन्द्र सभी देवों में सर्वाधिक शक्तिशाली और समृद्धि युक्त माने जाते हैं। इसी कारण उनका शस्त्र भी अन्यों की तुलना में श्रेष्ठ होता है।

शस्त्र के दो स्वरूप होते हैं। वह किसी की सुरक्षा करता है तो किसी का संहार भी। यहाँ वज्र अस्त्र के दोनों अर्थ ग्राह्य हो सकते हैं। जैसे कि इन्द्र के शस्त्र को अमोघ शस्त्र कहते हैं, उसे किसी पर प्रक्षेपित किया जाये तो वह बच नहीं सकता। इसका निशाना कभी चूकता नहीं, सीधा आघात करता है। इस मुद्रा को प्रदर्शित करने से विरोधी तत्त्व दूर से ही लौट जाते हैं। इस तरह वज्र मुद्रा साधक के लिए रक्षा कवच का कार्य करती है तो अन्य देवों को भयभीत भी करती है।

अत: वज्र मुद्रा साधकों के संरक्षण एवं आसुरी शक्तियों के निवारण हेतु की जाती है।

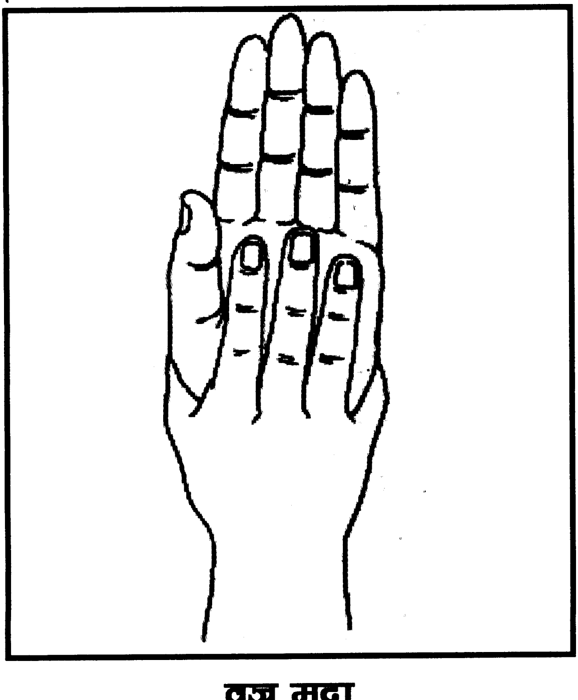

वज्र मुद्रा

विधि

''वामहस्तस्योपरि दक्षिणकरं कृत्वा कनिष्ठिकांगुष्ठाभ्यां मणिबन्धं संवेष्ट्य शेषांगुलीनां विस्फारितप्रसारणेन वज्रमुद्रा।''

बायीं हथेली के ऊपर दायें हाथ की अंगुलियों को रखें। फिर कनिष्ठिका अंगुली और अंगूठे के द्वारा बाएं हाथ की कलाई को संवेष्टित करें तथा शेष अंगुलियों को पृथक्-पृथक् करते हुए प्रसारित करने पर वज्रमुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा का प्रयोग शरीर को वज्र की भाँति शक्तिशाली बनाता है।

यह मुद्रा जल, आकाश एवं अग्नि तत्व को संतुलित रखती है तथा श्वसन, पाचन एवं प्रजनन तंत्र के कार्यों को समन्वित करते हुए उनमें उत्पन्न विकारों को दूर करती है। यह साधक में विशिष्ट ऊर्जा को बढ़ाते हुए आत्मबल, आत्मज्ञान आदि भावों में प्रवाह लाती है।

इससे शरीर की नाड़ियों का शोधन होता है। कब्ज की तकलीफ दूर होती है। जननांग सम्बन्धी स्थान शक्तिशाली एवं निरोग बनता है।

खून की कमी, खसरा, हर्निया, दाद-खाज, मासिक धर्म की अनियमितता, पाचन इन्द्रिय, यकृत, गर्भाशय, पित्ताशय आदि की समस्याओं का निवारण होता है। इस मुद्रा का प्रयोग नाड़ी शोधन एवं नाड़ियों में नवीन बल के संचार हेतु भी किया जाता है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से इस मुद्रा का अभ्यास आसुरी भावों का नाश करता है। पारस्परिक प्रेम, करुणा, दया एवं परोपकार की भावनाओं को विकसित करता है।

निरन्तर अभ्यास से साधक अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर सकता है। ब्रह्मचर्य पालन में यह मुद्रा अत्यन्त लाभदायक है। इससे आज्ञा एवं मणिपुर दोनों चक्र प्रभावित होते हैं जिसके फलस्वरूप ग्रंथियाँ रासायनिक स्राव करने लगती हैं।

इस मुद्रा को धारण करने से थायरॉइड, पेराथायरॉइड, एड्रीनल एवं प्रजनन ग्रन्थियों का स्राव संतुलित रहता है। इससे आवाज, स्वभाव, कामेच्छा के नियंत्रण में प्रभुत्व प्राप्त होता है। शारीरिक मोटापा, वजन, कैल्शियम,

फॉसफोरस आदि संतुलित रहते हैं।

इस मुद्राभ्यास से एकाग्रता, ज्ञान, स्मृति, ऊर्जा, आत्मनियंत्रण में विकास होता है तथा यह अवसाद, क्रोध, भय, अस्थिरता को कम करती है।

विशेष

- इस मुद्रा में हाथों का आकार कवच की भाँति प्रतीत होता है अत: इसका नाम वज्र मुद्रा है।
- चौथी विद्यादेवी का नाम वज्रांकुशा है इसलिए इस मुद्रा के नाम के साथ देवी के नाम का सम्बन्ध भी ज्ञात होता है।
- एक्यूप्रेशर चिकित्सा के अनुसार इस मुद्रा के दाब बिन्दु से रोगी की मन्द चल रही नब्ज का पता लग जाता है, नाड़ियाँ चलने लगती हैं।
- यह मुद्रा गले से सिर तक की सभी बीमारियों में लाभदायक है।
- इस मुद्रा के दाब बिन्दु से छाती का तनाव घटता है, हृदय धमनियों की बीमारी ठीक होती है तथा मांसपेशियाँ एवं नसें तनावमुक्त होती हैं। यह गर्मी का नियंत्रण कर कफ को दूर करती है।

29. चक्र मुद्रा

चक्र अर्थात पहिया। इस मुद्रा में रथ के पहिये जैसा आकार बनता है, इसलिए इस मुद्रा को चक्र मुद्रा कहा गया है। सामान्यत: चक्र गतिशीलता, निरन्तरता, चरैवेति-चरैवेति का प्रतीक है। इसलिए इस मुद्रा से गतिशील बने रहने की प्रेरणा मिलती है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से चक्र अनेक प्रकार के होते हैं जैसे- संसारचक्र, कर्मचक्र, नियमचक्र, सिद्धचक्र, धर्मचक्र आदि। इस मुद्रा को करते समय इन सभी चक्रों का स्वरूप चिन्तन किया जाए तो आत्मचक्र में प्रवेश किया जा सकता है।

चक्र मुद्रा की विशेषता यह है कि वह अभ्यासी साधक को तद्रूप चिन्तन के लिए तत्पर कर देती है। इस मुद्रा के आकार से स्वत: उस तरह के भाव उभर आते हैं।

यौगिक दृष्टि से हमारे शरीर में ऊर्जा स्रोत के रूप में सात चक्र हैं। इस मुद्रा के माध्यम से उन चक्रों को जागृत किया जाता है। इस मुद्रा में हथेलियों एवं अंगुलियों का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध होने से, एक-दूसरे पर दबाव

पड़ने से, उनमें तरंगें प्रवाहित होने से तथा उन तरंगों का परिपथ बनने से सप्तचक्र प्रभावित होते हैं और कुंडलिनी शक्ति जागृत होती है, जिससे चेतना ऊर्ध्वरेतस् बनती है।

इस तरह चक्र मुद्रा प्रतीक रूप में विभिन्न प्रयोजनों से की जाती है।

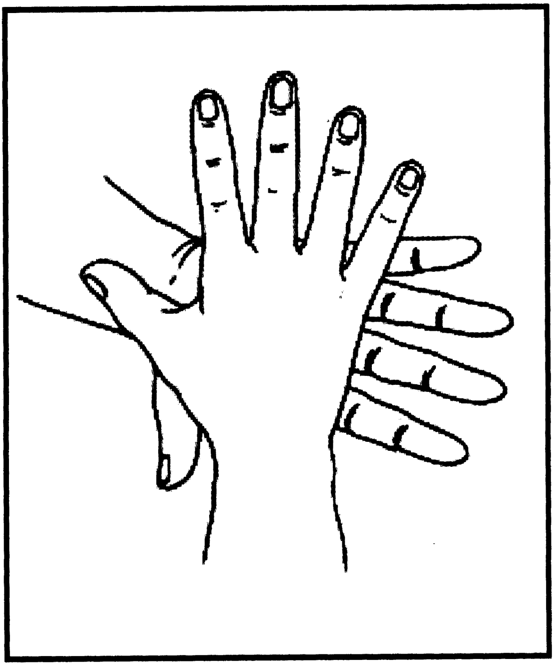

चक्र मुद्रा

विधि

"वामहस्ततले दक्षिणहस्तमूलं संनिवेश्य करशाखा विरलीकृत्य प्रसारयेदिति चक्रमुद्रा।"

बायीं हथेली के तल स्थान पर दायीं हथेली को अच्छी तरह रखते हुए एवं दोनों हाथों की अंगुलियों को पृथक-पृथक करते हुए फैलाने पर चक्र मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- दैहिक स्तर पर इसका अभ्यास प्राण शक्ति को नियन्त्रित करता है। इस मुद्रा का प्रयोग हृदय, उदर एवं फेफड़ें सम्बन्धी रोगों को दूर करने में परम उपयोगी है।

यह मुद्रा लिम्बिक सिस्टम एवं हाइपोथेलेमस को जागृत कर मस्तिष्क को सक्रिय करती है तथा तत्सम्बन्धी रोगों का शमन करती है। यह अनिद्रा, ब्रेन ट्यूमर, कैन्सर, पाचन की गड़बड़ी, अतिरिक्त वायु, बुखार आदि को भी कम करती है। इससे सूक्ष्म शरीर अनुभूति के स्तर पर उभरता है।

• योग साधना की दृष्टि से अहंकार आदि विकारों का नाश होता है। इसका अभ्यास साधक को सांसारिक बन्धनों से मुक्ति दिलाता है। इस मुद्रा से विद्यादायिनी देवी सरस्वती की कृपा प्राप्त होती है। ब्रह्मचर्य पालन में भी यह मुद्रा अति गुणकारी है।

विशेष

• सोलह विद्या देवियों में पाँचवीं देवी चक्रेश्वरी है। संभवतः इस मुद्रा का नाम इसी अधिष्ठायिका देवी के नाम पर रखा गया है।

• एक्यूप्रेशर यौगिक चक्र के अभिमत में इस मुद्रा से मणिपुर एवं आज्ञा चक्र आदि पर दबाव पड़ता है। इससे साधक को अन्तर्ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह संकल्पबल एवं पराक्रम को बढ़ाती है। इसी के साथ एकाग्रता, निश्चय एवं सफलता में वृद्धि करती है।

• एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रंथि को सक्रिय कर यह मुद्रा ब्लड प्रेशर, सिरदर्द, पेट की गड़बड़ी, कमजोरी, नपुंसकता, मधुमेह, मासिक धर्म आदि की गड़बड़ी को दूर करती है। स्वभाव एवं मनोवृत्तियों को भी यह नियंत्रित रखती है।

30. पद्म मुद्रा

पद्म कमल को कहा जाता है। इस मुद्रा को बनाते समय कमल की पंखुड़ियों जैसा आकार बनता है, इसलिए यह पद्म मुद्रा कहलाती है।

स्वभावतः कमल हमेशा खिला रहता है, सुगंध बिखेरता है, चित्त को आकर्षित करता है तथा कीचड़ में उत्पन्न होकर भी निर्लिप्त (कीचड़ से ऊपर) रहता है। उसी तरह प्राणी मात्र का जीवन विराट भावनाओं से विकसित रहे और सद्गुणों से महकता रहे, इस तरह की भावनाएँ पद्म मुद्रा के माध्यम से प्रकट की जाती हैं।

योग विज्ञान के अनुसार मानव शरीर में स्थित सप्तचक्र पद्माकार रूप में ही स्थित हैं। उनमें नीचे से ऊपर के चक्र क्रमशः अधिक-अधिक पंखुड़ियों वाले

हैं। जैसे मूलाधार चक्र चार कमलदलवाला है, स्वाधिष्ठान चक्र षट्दल से युक्त है, अनाहत चक्र ऊर्ध्वमुख द्वादशदलवाला है, मणिपुर चक्र दशदल से संयुक्त है। इस तथ्य को चित्रों के द्वारा भली भाँति समझ सकते हैं। प्रतीकात्मक रूप से यह मुद्रा सप्तचक्रीय पद्मों को प्रभावित करती है। इस तरह पद्म मुद्रा से अनेक प्रयोजन सिद्ध होते हैं।

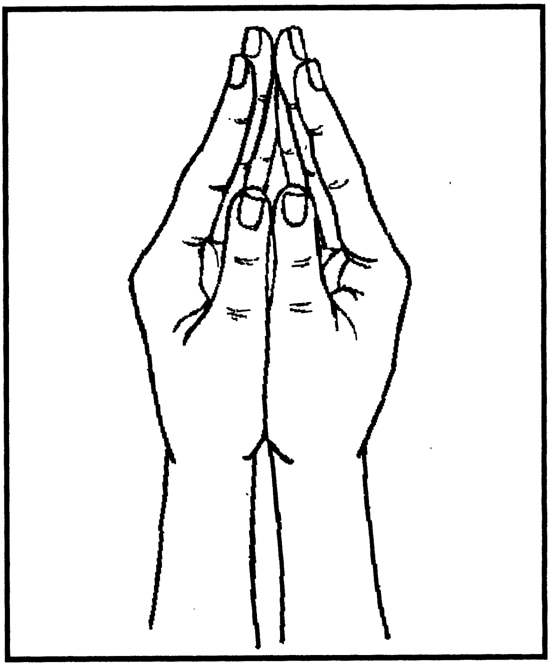

पद्म मुद्रा

विधि

"पद्माकारौ करौ कृत्वा मध्येऽङ्गुष्ठौ कर्णिकाकारौ विन्यसेदिति पद्ममुद्रा।"

अर्थात दोनों हाथों को कमल के आकार का बनाकर उसके मध्य भाग में दोनों अंगूठों को कर्णिका (कमल पर फल) की तरह स्थापित करने पर पद्म मुद्रा बनती है।

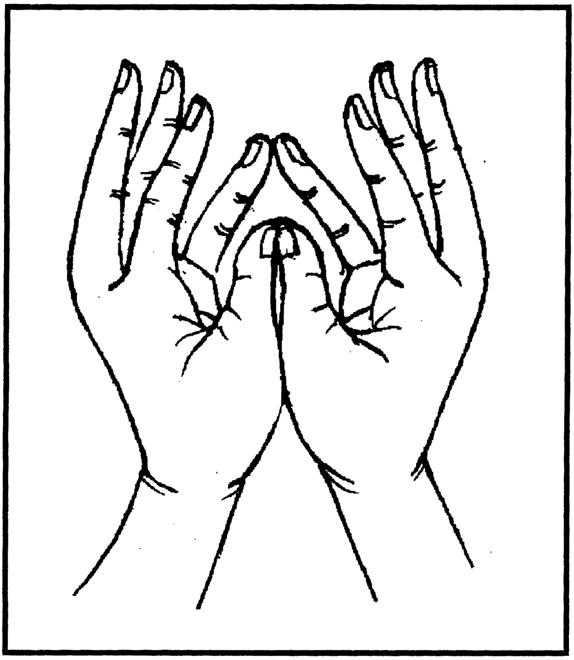

पद्म मुद्रा

सुपरिणाम

● शारीरिक दृष्टि से रचनात्मक एवं क्रियात्मक शक्ति प्राप्त होती है। इस मुद्रा से अग्नि तत्त्व एवं आकाश तत्त्व संतुलित रहते हैं तथा यह आन्तरिक ऊर्जा का अनुभव करवाकर जीवन प्रदान करती है। इससे नाक, कान, गला, मुँह आदि से सम्बन्धित समस्याओं एवं श्वसन, पाचन सम्बन्धी समस्याओं का निवारण होता है। जिससे थायरॉइड और पेराथायरॉइड ग्रंथियों के स्राव नियन्त्रित रहते हैं।

● भौतिक स्तर पर यह मुद्रा पाचनतंत्र, यकृत, चयापचय, पित्ताशय, तिल्ली, पाचक ग्रंथि को संयोजित करती है। पार्किन्सन्स रोग, मस्तिष्क की समस्या, पुरानी बीमारी आदि के निवारण में भी यह सहायक बनती है।

● मानसिक दृष्टि से यह मुद्रा बौद्धिक चंचलता को शान्त करते हुए मस्तिष्क को सदैव क्रियाशील रखती है।

● आध्यात्मिक दृष्टि से इस मुद्रा के द्वारा काम-क्रोध पर विजय प्राप्त होती है। यह मुद्रा धारण करने से मणिपुर एवं ब्रह्मचक्र सक्रिय होते हैं तथा

साधक में ज्ञान एवं ऊर्जा का प्रस्फुटन करती है। यह मुद्रा उन्मत्तता, विषाद, निराशा, अनुत्साह, आत्महीनता आदि दुर्गुणों का परिष्कार करने में भी सहायक बनती है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर प्रणाली के अनुसार इस मुद्रा में जिन बिन्दुओं के ऊपर दबाव पड़ता है उससे शरीर की अनावश्यक गर्मी निकल जाती है, फेफड़ें एवं लीवर में शक्ति का संचार होता है, शरीर के मुख्य केन्द्रों की ऊर्जा व्यवस्थित होती है तथा ऐंठन ठीक होती है।
- मुद्रा बिन्दु के उपचार से रक्त सम्बन्धी रोग भी ठीक होते हैं। वह रक्त की केमेस्ट्री (रसायन) को ठीक करती है। श्वास लेने में कठिनाई होने के कारण आक्सीजन की कमी, दौरे पड़ना, लू-लगना आदि रोग भी इससे ठीक होते हैं।

31. गदा मुद्रा

गदा का एक नाम मुद्‌गर भी है। गदा मुद्रा शक्ति की सूचक है। हनुमान के हाथ में हमेशा गदा रहता है। वे स्वयं तो शक्ति पुंज हैं ही, किन्तु गदा धारण करने से भी शक्तिशाली कहे जाते हैं।

गदा की एक विशेषता है कि वह शरणभूत की रक्षा करता है। सांकेतिक अर्थ के आधार पर कहा जा सकता है कि इस मुद्रा के द्वारा सोलह विद्यादेवियों में सातवीं काली नामक विद्यादेवी भी उसके आश्रितों की पूर्ण रूप से सुरक्षा करती है।

गदा, दुष्ट तत्त्वों को भयभीत करने का अमोघ शस्त्र है। अत: इसके माध्यम से विषम स्थितियों का निराकरण माना गया है एवं अनुकूल वातावरण उपस्थित किया जाता है ताकि पूजा-उपासना के सभी आयाम विधिवत सम्पन्न किये जा सकें।

निष्कर्ष रूप में गदा मुद्रा आत्म शक्तियों को संगृहीत करने एवं उनका सदुपयोग करने के भाव से की जाती है।

विधि

"वाम हस्तमुष्टेरुपरि दक्षिणमुष्टिं कृत्वा गोत्रेण सह किंचिदुन्नामयेदिति गदामुद्रा।"

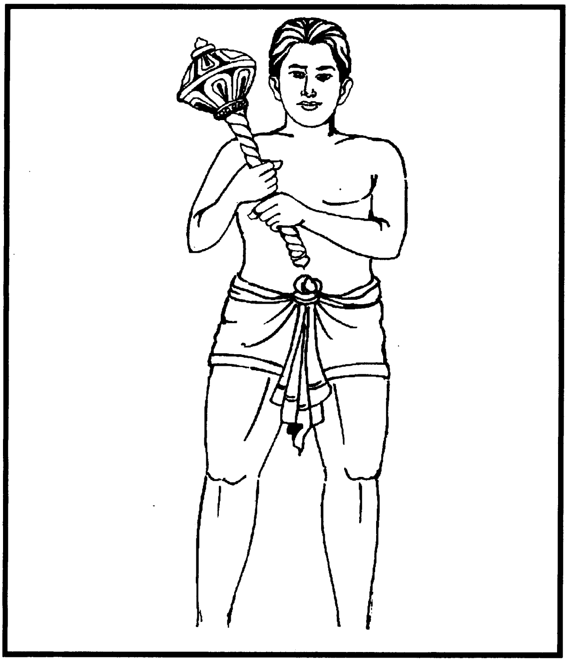

गदा मुद्रा

बायें हाथ की मुट्ठी के ऊपर दाहिने हाथ की मुट्ठी रखें। फिर मुट्ठियों को शरीर के साथ कुछ ऊपर की ओर उठाने पर गदा मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा शरीर को पौष्टिकता प्रदान करती हैं। इससे पृथ्वी तत्त्व और अग्नि तत्त्व के असंतुलन से होने वाले रोगों में राहत मिलती है। यह पाचन एवं विसर्जन क्रियाओं को नियंत्रित रखती है। इसी के साथ विभिन्न परिस्थिति को स्वीकार करने एवं उनमें प्रसन्न रहने के गुण का निर्माण करती है।
- यह मुद्रा कैन्सर, आर्थराइटिस, प्रजनन, आँख, वायु, पाचन सम्बन्धी समस्याओं के निवारण में अत्यन्त उपयोगी है।
- बौद्धिक स्तर पर इससे मनोबल में अभिवृद्धि होती है और यह मस्तिष्क को सदैव क्रियाशील रखने में सहायक बनती है।
- आध्यात्मिक स्तर पर साधक षड्रिपु पर विजय प्राप्त करता है। इसके निरन्तर प्रयोग से साधक सह अस्तित्व को स्पष्टत: समझ जाता है।

• इससे मणिपुर एवं मूलाधार चक्र सक्रिय बनते हैं। यह मुद्रा भावनात्मक स्तर पर क्रोध, पागलपन, घृणा, अनियंत्रण, अस्थिरता, अविश्वास, आलस्य, आत्महत्या आदि के भावों को कम करते हुए आन्तरिक ऊर्जा को जागृत एवं ऊर्ध्वारोहित करती है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार इस मुद्रा के दाब केन्द्र बिन्दु शरीर में ऊर्जा और तरल पदार्थों के संचार को सुधारते हैं तथा वात एवं कफ को निकालते हैं।

• इस मुद्राभ्यास से भय के कारण अकड़न, दौरा पड़ना, कंपन, हाथ-पैर में भारीपन, श्वास की तकलीफ, मांसपेशी में दर्द, भूख कम लगना, कफ में दुर्गन्ध, गले में सूजन आदि से राहत मिलती हैं।

• गदा मुद्रा के दाब बिन्दु मुख से गर्दन तक के सभी रोगों के उपचार में लाभकारी हैं।

• यह मल क्रिया को सुचारु रूप से करने में मदद करती है।

• एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रंथियों के स्राव को संतुलित कर यह मुद्रा रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास एवं बालकों में सद्गुणों का निर्माण कर आत्मविश्वास जागृत करती है।

32. घण्टा मुद्रा

पीतल अथवा कांसा से निर्मित एक पूजोपकरण घण्टा कहलाता है।

भारतीय परम्परा में घण्टानाद को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। प्राचीन ऋषियों ने इस नाद के रहस्यों को अनुभूत किया था। आधुनिक वैज्ञानिक भी नादानुसन्धान में वर्षों से प्रयासरत हैं। उन्होंने प्रैक्टिकल प्रयोगों के आधार पर सप्रमाण सिद्ध किया है कि घण्टानाद से विशिष्ट प्रकार की तरंगें प्रवाहित होती हैं जिससे कई तरह के असाध्य रोग भी ठीक हो जाते हैं।

प्राय: सभी मन्दिरों में घण्टा अवश्य होता है। दर्शनार्थी आते वक्त अथवा दर्शन के पश्चात लौटते वक्त घण्टानाद करते हुए अपूर्व आनन्द का अनुभव करते हैं। इससे स्पष्ट है कि घण्टानाद की ध्वनि आत्मिक सुख प्रदान करती है।

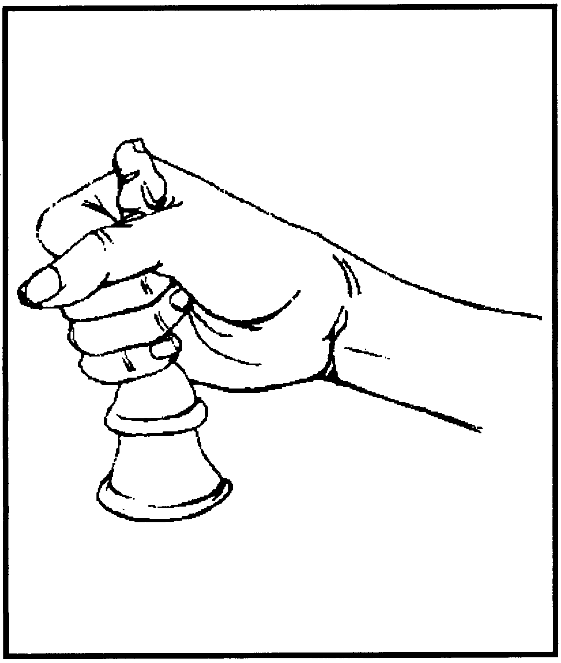

घण्टा मुद्रा

यहाँ प्रश्न उभर सकता है कि इस सृष्टि में अनेक वाद्य यन्त्र हैं, उच्चकोटि के वाद्यनिनादों का तो कोई तोल भी नहीं कर सकता है, उसके बावजूद मन्दिरों में घण्टानाद का ही प्रचलन क्यों? मन्दिर सर्वाधिक पवित्र-पावन स्थल होने से वहाँ अन्य वाद्यों का नाद भी किया जा सकता है? इसके समाधान हेतु यही कहा जा सकता है कि जैसे दुनिया में विभिन्नताएँ हैं, व्यक्तिगत रूचि में विविधताएँ हैं, वैसे ही किसी को हारमोनियम का स्वर तो किसी को तबले का स्वर या सितार का स्वर आदि अच्छे लगते हैं, देवी-देवताओं को घण्टानाद (स्वर) प्रिय है। इसी उद्देश्य से घण्टानाद किया जाता है। यदि प्रति प्रश्न किया जाये कि घण्टानाद ही प्रिय क्यों? इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। इस तथ्य के स्पष्टीकरणार्थ कोई पूछे कि आपको मिठाइयों में लड्डू ही क्यों भाते हैं, तो इसका प्रत्युत्तर नहीं दिया जा सकता। यह व्यक्ति की अपनी पसन्द है।

इस तरह घण्टा मुद्रा आत्मिक सुखानुभूति एवं मंगलमय वातावरण निर्मित करने के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

'अधोमुखवामहस्तांगुलीर्घण्टाकारा: प्रसार्य दक्षिणकरेण मुष्टिं बद्ध्वा तर्जनीमूर्ध्वां कृत्वा वामहस्ततले नियोज्य घण्टावच्चालनेन घण्टामुद्रा।''

बायें हाथ की अंगुलियों को अधोमुख कर उन्हें घण्टाकार के रूप में फैलायें, फिर दाहिने हाथ की मुट्ठी बांधकर उसकी तर्जनी अंगुली को ऊर्ध्वाभिमुख करें तथा उस तर्जनी को बायें हाथ के तल से संयुक्त कर घण्टा के समान चलाने पर घण्टा मुद्रा बनती है।

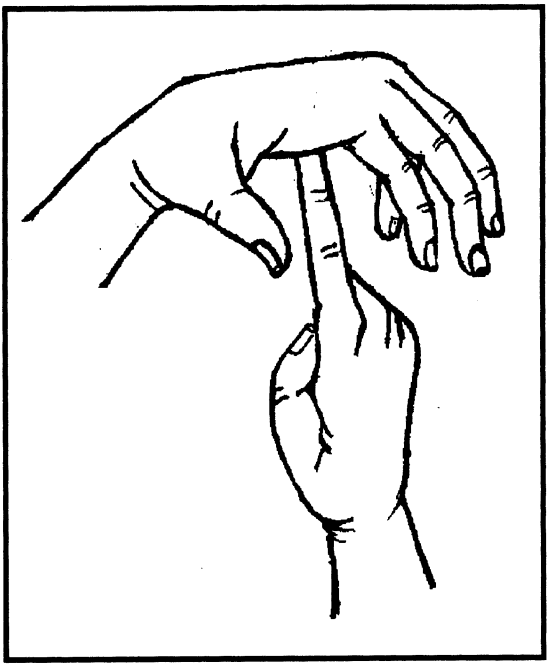

घण्टा मुद्रा

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा उदर सम्बन्धी रोगों में लाभ देती है। इससे पृथ्वी तत्त्व एवं अग्नि तत्त्व की कमी अथवा आधिक्य से होने वाली बीमारियों का उपचार होता है। वायुजनित तकलीफें दूर होती हैं। यह मुद्रा किडनी एवं मूत्राशय पर अच्छा प्रभाव डालती है।

यह मुद्रा कैन्सर, हड्डी की समस्या, कोकिक्स कठिनाईयाँ, कोष्ठबद्धता,

सिरदर्द, घुटने एवं जोड़ों की समस्या, मधुमेह, बुखार, पाचन समस्या आदि के निवारण में सहायक बनती है।

• मानसिक दृष्टि से यह अनियन्त्रित संवेगों को नियन्त्रित करती है। वैचारिक हीनताओं को समाप्त करती है। एकाग्रता के साथ श्रवण शक्ति को बढ़ाती है।

• आध्यात्मिक स्तर पर विश्वप्रेम की भावना विकसित करती है। अहंकार जैसे दुर्गुणों का निरसन कर ऋजुभाव उत्पन्न करती है। इससे कई तरह के आत्मलाभ प्राप्त होते हैं। साधक ब्रह्मनाद की अनुभूति कर सकता है।

एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा साधक को साहसी, निर्भीक, सहनशील एवं आशावादी बनाती है तथा कामेच्छाओं को नियंत्रित करती है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर मेरीडियनोलोजी एवं यौगिक चक्र के अनुसार घण्टा मुद्रा में मूलाधार एवं मणिपुर चक्र पर दबाव पड़ता है जिसके कारण नाभि से पाँव तक की गर्मी अथवा गर्मी की कमी से उत्पन्न रोग ठीक हो जाते हैं।

• इस मुद्रा के दाब बिन्दु आँतों के रोग, सूजन, एलर्जी, एपेन्डिक्स, मूत्र रोग, कमजोरी, थकान, डायबिटिज आदि से छुटकारा दिलाते हैं।

33. कमण्डलु मुद्रा

इस मुद्रा में कमण्डलु जैसा आकार बनता है इसलिए इसका कमण्डलु मुद्रा है।

संस्कृत कोश के अनुसार संन्यासियों के जल रखने के उपकरण विशेष को कमण्डलु कहते हैं जो लकड़ी अथवा मिट्टी से निर्मित होता है।

हिन्दू मन्दिरों में प्रसाद रूप में दिया जाने वाला जल कमण्डलु में ही रखा जाता है। भारत में प्राचीन संन्यासी, ऋषि-महर्षि कमण्डलु में जल रखते थे। वैदिक मान्यता है कि देवियों को कमण्डलु में जल रखना प्रिय है। वे जिन पर प्रसन्न होती हैं उन पर कमण्डलु से जल का छिड़काव करती हैं उससे सुख-समृद्धि फैलती है।

कहा जाता है कि नारद अपने कमण्डलु में विविध तीर्थों का जल रखते थे। एक बार तुष्टमान होकर कृष्ण के ऊपर उस जल को छिड़का था। इस तरह अनेक ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

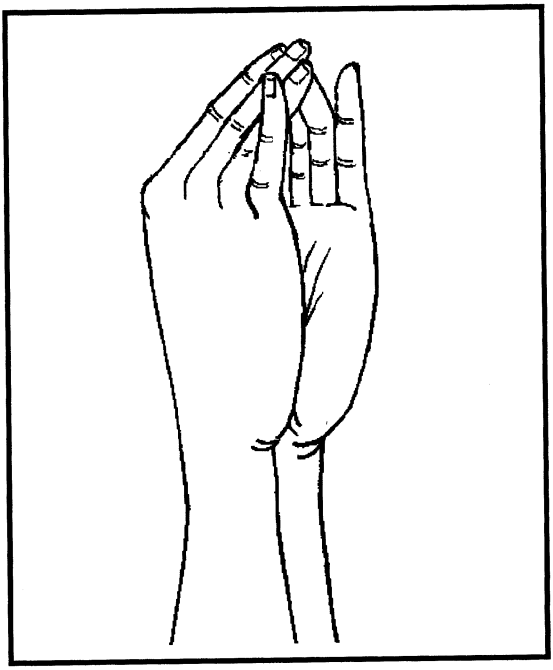

कमण्डलु मुद्रा

जैन परम्परा में दिगम्बर मुनि लिंग आदि स्थानों की शुद्धि के लिए इसी में रखे जल का उपयोग करते हैं।

यहाँ कमण्डलु मुद्रा अभिप्रायत: गौरी नामक नौवीं विद्यादेवी को प्रसन्न करने एवं देवी द्वारा आशीर्वाद प्राप्त करने के उद्देश्य से दिखायी जाती है।

विधि

''उन्नतपृष्ठहस्ताभ्यां संपुटं कृत्वा कनिष्ठिके निष्कास्य योजयेदिति कमण्डलु मुद्रा।''

पृष्ठ भाग की तरफ उठे हुए दोनों हाथों से संपुट बनायें। फिर कनिष्ठिका अंगुलियों को पृथक कर पुन: संयोजित करने पर कमण्डलु मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

● शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा के अभ्यास से हारमोन्स पर नियंत्रण और नाक सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है। अनहत एवं स्वाधिष्ठान चक्र संतुलित होने से थायमस एवं प्रजनन ग्रन्थियों के स्राव सुचारु रूप से कार्य करने लगते हैं।

यह मुद्रा हृदय को ऊर्जा देती है तथा हृदय, फेफड़ा, छाती, गर्भाशय, कामुकता आदि से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करती है। इससे मासिक धर्म, श्वास, योनि आदि में उत्पन्न विकारों का शमन होता है।

यह मुद्रा बालकों में सत्संस्कारों का विकास करते हुए स्फूर्ति को प्रवाहित करती है तथा स्वर सुधारने एवं तापमान नियंत्रित रखने में सहयोगी बनती है।

साइनस के केन्द्र बिन्दु प्रभावित होने से इससे सर्दी जनित रोगों में लाभ होता है।

जल एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह रक्त संचरण एवं प्रजनन के कार्यों में सहायक बनती है। यह प्राण धारण एवं इसे सुनियोजित करने में भी सहायक है। यह मुद्रा मल-मूत्र, यकृत, नाड़ी तंत्र, हृदय आदि के कार्यों को भी नियमित करती है।

इस मुद्रा से जीवन की प्राण शक्ति में वृद्धि होती है। इससे कलात्मक उमंगों, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं का उत्पादन तथा उदारता, कर्तव्यपरायणता एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भाव उत्पन्न होते हैं।

- आध्यात्मिक दृष्टि से इस मुद्रा का प्रयोग साधक में अपरिग्रह की भावना को बढ़ाता है। रसना एवं स्पर्श इन्द्रिय पर नियंत्रण करता है। इस मुद्रा का अभ्यासी चित्तवृत्ति निरोध की दिशा में अग्रसर होता है। इससे स्वाधिष्ठान चक्र अधिक सक्रिय बनता है।

34. परशु मुद्रा (प्रथम)

परशु एक अस्त्र का नाम है। इसे कुठार भी कहते हैं। सामान्यतः कुठार लकड़ी या वृक्ष काटने के लिए प्रयोग में आता है।

सांकेतिक रूप से कहा जा सकता है जिस प्रकार कुठार लकड़ी का मूल से छेदन करता है उसी तरह यह मुद्रा जड़मूल से बुराईयों का संहार करती है।

प्रस्तुत प्रकरण में संहार मुद्रा का तात्पर्य विरोधी तत्त्वों को दूर करने से है। प्रतिष्ठा जैसी शुभ क्रियाओं में अनिष्ट की संभावना बनी रहती है क्योंकि दुष्ट देव विघ्न संतोषी होते हैं, इसलिए कभी भी इष्ट कार्यों में बाधा डाल सकते हैं।

परशु मुद्रा दिखाकर अनिष्ट की आशंका को मूलतः समाप्त करने का संकल्प किया जाता है।

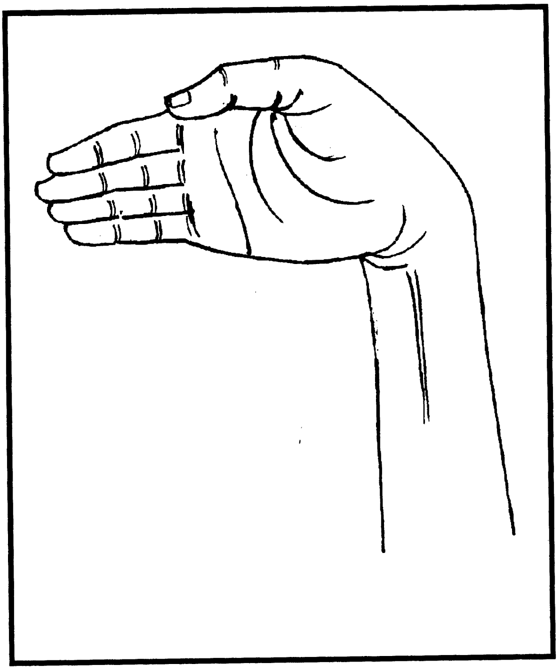

परशु मुद्रा-1

संभावना की जाती है कि यदि परशु गांधारी नामक 10वीं विद्यादेवी का प्रिय शस्त्र हो अथवा उसका चिह्न विशेष हो तो वह इस मुद्रा के प्रति अधिक सचेष्ट रहती हुई आगत बाधाओं का पहले से ही निवारण कर देती है।

इस तरह परशु मुद्रा बाह्यत: चैतन्य शत्रुओं का तथा आभ्यन्तरत: पौदगलिक क्रोधादि शत्रुओं का छेदन करने के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

"पताकावत् हस्तं प्रसार्य अंगुष्ठ संयोजनेन परशुमुद्रा।"

पताका के समान हाथ को प्रसारित करके अंगूठे का तर्जनी से संयोजन करने पर परशु मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा के द्वारा गले सम्बन्धी रोगों में फायदा होता है। उदर जनित समस्त प्रकार के तन्त्र सशक्त बनते हैं। पाचन शक्ति का विकास

होता है। गैस सम्बन्धित बीमारियों का उन्मूलन होता है। इससे आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र यथोचित रूप से कार्य करते हैं।

इस मुद्राभ्यास से ब्रेनट्यूमर, कोमा, मिरगी, सिरदर्द, अनिद्रा, गले, मुँह आदि की समस्याओं एवं थायरॉइड आदि में लाभ मिलता है।

यह मुद्रा आकाश एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए रक्त संचरण, श्वसन आदि को नियमित करती है।

- भावनात्मक स्तर पर अभ्यासी साधक अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र और अनन्त शक्ति को प्राप्त कर सकता है। यदि इस मुद्रा को त्रियोग पूर्वक किया जाए तो आहार, भय, मैथुन एवं परिग्रह इन चारों संज्ञाओं पर विजय प्राप्त होती है। इससे आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र की ऊर्जा उत्तम कार्यों के रूप में प्रवाहित होती है।

विशेष

- यह मुद्रा बनाते समय परशु शस्त्र जैसा आकार निर्मित होता है इस कारण इसे परशु मुद्रा कहते हैं।
- एक्यूप्रेशर प्रणाली के अनुसार परशु मुद्रा से बड़ी आंत सम्बन्धी ऊर्जा संतुलित रहती है। इस मुद्रा के प्रभाव से मानसिक शान्ति का प्रादुर्भाव होता है तथा रात्रि का अंधापन, कमर दर्द, कंधे का दर्द, गले की सूजन, तेज बुखार आदि में आराम मिलता है।

पीयूष, थायरॉइड एवं पेराथारॉइड ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए शरीर के तापमान, त्वचा, बाल, नाड़ी गति, मासिक धर्म आदि को नियमित करती है तथा कैल्शियम, आयोडीन, कोलेस्ट्रोल आदि को संतुलित रखती है।

35. परशु मुद्रा (द्वितीय)

द्वितीय परशु मुद्रा का प्रयोग विशिष्ट अतिथि के रूप में आमन्त्रित विद्यादेवी का समुचित सम्मान तथा अर्पण आदि के द्वारा उसे तुष्ट करने एवं आशंकित विघ्नों का निवारण करने के उद्देश्य से किया जाता है।

विधि

"पताकाकारं दक्षिणकरं संहतांगुलिं कृत्वा तर्जन्यांगुष्ठाक्रमणेन परशुमुद्रा द्वितीया।"

दाहिने हाथ की मिली हुई अंगुलियों को पताका के समान फैला करके एवं तर्जनी अंगुली को अंगूठे के द्वारा आक्रमित करने पर द्वितीय परशु मुद्रा बनती है।

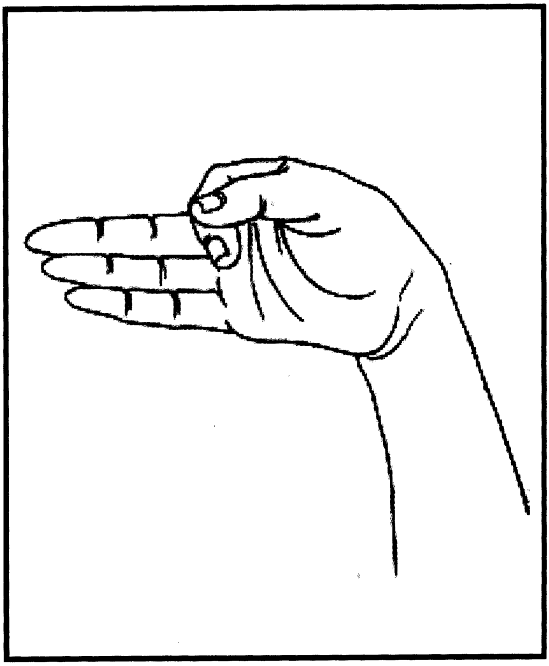

परशु मुद्रा-2

सुपरिणाम

● शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा श्वास पर नियन्त्रण करती है तथा श्वास को मन्द कर तत्सम्बन्धी रोगों का शमन करती है। यह पिट्युटरी एवं पिनियल

ग्रन्थि के स्राव को नियमित कर शारीरिक विकास को सन्तुलित रखती है।

यौन ग्रन्थि एवं शरीर में स्थित जल तत्त्व को सन्तुलित करती है। इस मुद्रा से अग्नि और वायु तत्त्व सम्बन्धित अवयव स्वस्थ रहते हैं। इससे चेहरे का आकर्षण एवं तेज बढ़ता है।

● आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मसजगता और स्वोन्मुखता का अभ्युदय होता है। कुंडलिनी शक्ति सर्पाकार रूप को छोड़कर ऊर्ध्वगामी बनती है। इससे अद्भुत शक्तियाँ अनुभूति के स्तर पर प्रकट होती हैं।

36. वृक्ष मुद्रा

वृक्ष अर्थात पेड़। पेड़ अनेक प्रकार के होते हैं जैसे बड का पेड़, पीपल का पेड़, नीम का पेड़, आम का पेड़ आदि। प्राय: सभी वृक्षों की कुछ विशिष्टताएँ समान होती हैं। जैसे वे किसी तरह के प्रतिफल की भावना रखे बिना उत्तम फल प्रदान करते हैं, बिना किसी प्रतिचाह के छाया देते हैं, तप्तमार्ग पर चलते हुए राहगीर को आश्रय देते हैं। ऋतु परिवर्तन एवं सर्दी, गर्मी या प्रकुपित

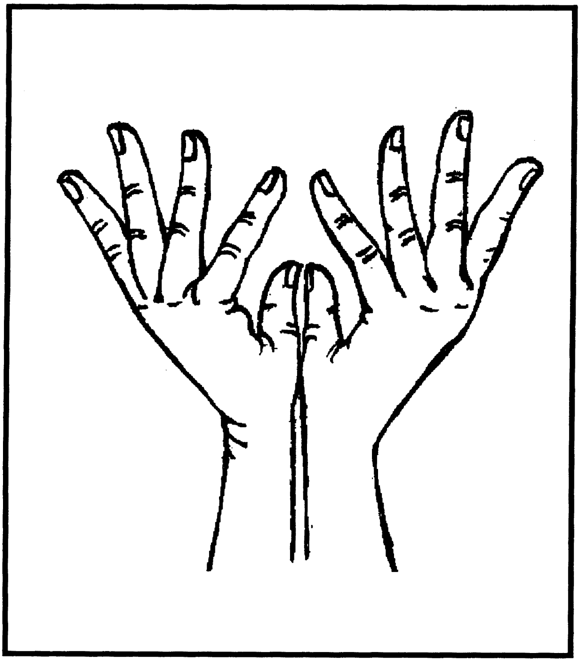

वृक्ष मुद्रा

वायु के थपेड़ों को समभाव से सहन करते हैं।

सांकेतिक रूप से इस मुद्रा का प्रयोग भी नि:स्वार्थ वृत्ति को जन्म देता है, शरीर एवं मन को समत्व योग की साधना के अनुकूल बनाता है तथा पीड़ित, त्रस्त एवं उग्रस्वभावी प्राणियों के प्रति मैत्री, दया और मध्यस्थ भाव जागृत करता है।

वृक्ष के सर्वाधिक महत्त्व का कारण यह भी कहा जा सकता है कि वह अविकसित बीज को विकसित करता है, परमाणु को पूर्णता देता है। वृक्ष मुद्रा का अभ्यास भी प्रतीक रूप से संकुचित वृत्तियों का त्याग कर हृदयागत शुभ भावों (भावनाओं) को विस्तार देने का सूचक है। इस तरह वृक्ष मुद्रा के पीछे कई सार्थक प्रयोजन स्पष्ट होते हैं।

विधि

"ऊर्ध्वदंडौ करो कृत्वा पद्मवत् करशाखाः प्रसारयेदिति वृक्षमुद्रा।"

दोनों हाथों को सीधा खड़ा करके, अंगुलियों को कमल की पंखुड़ियों के समान प्रसारित करने पर वृक्ष मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा आँख एवं गले सम्बन्धी बीमारियों में लाभ पहुँचाती है। इस मुद्रा से वायु तत्त्व संतुलित रहता है तथा तज्जनित रोगों का उपशमन होता है। वाणी माधुर्य युक्त बनती है। मनोमस्तिष्क के केन्द्र गतिशील बनते हैं।

यह मुद्रा गला, मुँह, कण्ठ, कंधा आदि की समस्याओं का निवारण करने तथा एलर्जी, दमा, हृदय सम्बन्धी समस्याओं का शमन करने में विशेष उपयोगी है।

- इस मुद्रा के द्वारा शरीरस्थ वायु तत्त्व संतुलित रहता है। यह रक्त संचरण प्रणाली को नियंत्रित रखती है तथा हृदय, फेफड़ें, भुजाओं आदि से सम्बन्धित रोगों का निवारण करती है।

यह मुद्रा थायमस, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए साधक को जागरूक बनाती है। शरीर का तापमान, नाड़ी गति, मासिक धर्म आदि से सम्बन्धित समस्याओं का भी निवारण करती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से इस मुद्रा का अभ्यास साधक में निष्काम कर्म की भावना को बढ़ाता है। जीवन में आगत उतार-चढ़ाव से लड़ने की क्षमता का

विकास करता है। इसके द्वारा अनाहत एवं विशुद्धि चक्र जागृत होने से कई तरह के अप्रत्याशित लाभ होते हैं।

विशेष

● इस मुद्रा में हाथों की आकृति वृक्ष जैसी बनती है, इसलिए इसका नाम वृक्ष मुद्रा है।

● एक्यूप्रेशर मेरीडियनोलोजी के अनुसार वृक्ष मुद्रा वात दोषों को ठीक करने के लिए महत्त्वपूर्ण है। इस मुद्रा के दाब बिन्दु से लकवा रोग, गला सूजन, मिरगी रोग, आत्मघात करने की सोच, पीलिया रोग, नाक से रक्त बहना आदि में आराम मिलता है।

● इस मुद्रा का विशेष प्रभाव थायमस ग्रंथि पर पड़ता है। यह मुख्य रूप से बालकों के विकास में सहयोगी बनती है। यह काम वासना पर नियंत्रण करते हुए साधक को क्रियाशील एवं स्फूर्ति युक्त बनाती है।

37. सर्प मुद्रा

भारतीय संस्कृति में आदिकाल से ही सर्पों का विशिष्ट स्थान रहा है। इस देश में सर्प को नागदेवता के रूप में माना एवं पूजा जाता है। भारत के विभिन्न भागों में अलग-अलग ढंग से नाग पूजा का त्योहार मनाने की भी प्रथा है। लोक कथानुसार श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन नागों को प्रसन्न करने के लिए दूध पिलाया जाता है। राजस्थान में तेजादशमी के नाम से सर्प पूजा की जाती है। जाट समुदाय के विशेष आराध्य तेजाजी के उपासक अपने गले में अश्वारूढ़ व्यक्ति हाथ में नंगी तलवार लिए जीभ पर सर्प चित्रित तेजाजी की लघु प्रतिमा बांधे रहते हैं। राजस्थान के भू-भाग में श्रावण-भाद्र मास में प्राय: जहरीले सर्प विचरते हैं। ऐसे में पशुपालक एवं व्यापारी पशुओं की स्वास्थ्य कामना हेतु तेजाजी की तांती (धागा) बांधते हैं। चौहान वंशज गोगाजी को राजस्थान के पाँच पीरों में से एक मानते हैं। इस तरह राजस्थान में नाग की विविध रूपों में मान्यता है।

कुछ देशों में धर्म का मूल तत्त्व सर्प को माना गया है। पौराणिक मान्यतानुसार शेषनाग के एक फण पर सम्पूर्ण पृथ्वी टिकी हुई है। यदि वह फण हिल जाये तो पृथ्वी हिल जायेगी। इस तरह सर्प को समग्र संसार और पृथ्वी का आधार माना गया है।

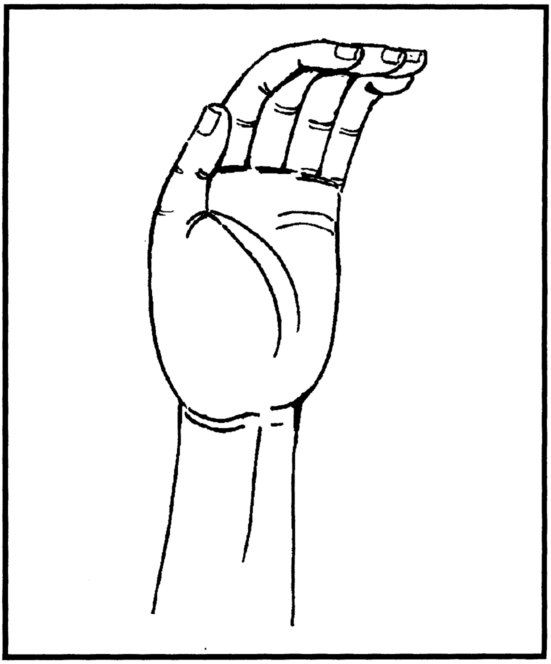

सर्प मुद्रा

सर्प को विषधर माना जाता है लेकिन उसकी खासियत यह है कि वह विष किसी के शरीर में चढ़ जाये तो, उसी के अन्य विष से दूर होता है जैसे चुभे हुए कांटे को कांटे से ही निकालना संभव है।

उक्त दृष्टि से कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण करने से सर्प मुद्रा असीम शक्ति का प्रतीक है। सकल जीवों को आश्रय देने से असाधारण उपकारक है। चराचर विश्व के लिए एक सदृश व्यवहार करने से एकता और अखंडता का प्रतीक है।

सर्प की सबसे विलग विशेषता यह देखी जाती है कि वह टेढ़ा-मेढ़ा चलते हुए भी अपने बिल में सीधा प्रवेश करता है। यह संकेत रूप में प्रेरणा देता है कि मन वक्री स्वभाव वाला है। उसका टेढ़ापन दूर किये बिना आत्म भवन में प्रवेश नहीं हो सकता। आत्मा ऊर्ध्व स्वभावी है, ऊपर की ओर उठना उसका निजी स्वभाव है, अशुभ कर्मों से प्रतिबद्ध होने के कारण ही वक्रगतियों में गमन करती है किन्तु जब सम्पूर्ण कर्म विनष्ट हो जाते हैं तब ऊर्ध्वारोहण करती हुई

सिद्ध शिला पर स्थिर हो जाती है।

इस तरह सर्प मुद्रा के पीछे अनेक प्रयोजन मालूम होते हैं।

विधि

''दक्षिणहस्तं संहतांगुलिमुन्नमय्य सर्प्पफणावत् किंचिदाकुंचयेदिति सर्प मुद्रा।''

दाहिने हाथ की अंगुलियों को परस्पर मिलाकर ऊर्ध्वाभिमुख करें। फिर सर्प फण की तरह किंचित झुकाने पर सर्प मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

● शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा अनियन्त्रित ऊर्जा को नियन्त्रित करती है। यह स्वर तंत्र एवं सुनने की क्रिया पर भी नियंत्रण रखती है। इसके द्वारा हृदय, छाती, भुजा आदि से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण सहज होता है।

इससे आकाश एवं वायु तत्त्व सम्बन्धी असंतुलन दूर होता है। संचरण, श्वसन तंत्र आदि के कार्य नियमित होते हैं। मस्तिष्क एवं प्रजनन सम्बन्धी रोगों की संभावनाएँ घट जाती हैं। चर्म रोग एवं जोड़ों के दर्द में राहत मिलती है। यह मुद्रा हृदय जनित रोगों के निदान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

● आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा साधक को आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करती है। इसी के साथ सत्य-असत्य का विवेक दर्शाते हुए जन्म-मरण के भय से मुक्ति दिलाती है।

इस मुद्रा से ब्रह्म एवं अनाहत चक्र अपने स्वरूप की ओर अभिमुख बनते हैं। जिससे आन्तरिक आनंद की अनुभूति होती है तथा कला, नृत्य, संगीत, कविता आदि में रुचि जागृत होती है।

पीयूष एवं थायमस ग्रंथियों के स्राव को संतुलित कर यह मुद्रा जीवन पद्धति, स्वभाव एवं प्रवृत्तियों को नियंत्रित करती है।

साधक को तनाव मुक्त, प्रसन्नचित्त एवं उत्साहित रखती है और कामुकता पर नियंत्रण करती है।

38. खड्ग मुद्रा

खड्ग तलवार को कहते हैं। भारतीय संस्कृति में तलवार को वीरता का सूचक माना गया है। पंजाबी लोग अपने धर्म नियम के अनुसार आज भी हमेशा तलवार रखते हैं तथा समग्र जातियों की तुलना में सर्वाधिक वीरता के धनी माने जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि तलवार के संयोग मात्र अथवा उसके प्रति श्रद्धा मात्र रखने से भी वीरत्व गुण प्रस्फुटित होता है।

हिन्दू धर्म में दुर्गा, काली इस तरह दस महाविद्या देवियों की अवधारणा है। सभी तलवार धारण की हुई हैं। इस विषय में कहा जाता है कि वे दुष्टों का विनाश करती हैं। प्रतीक रूप में खड्ग मुद्रा का यही उद्देश्य ज्ञात होता है।

मांगलिक प्रसंगों में दृश्य-अदृश्य रूप से विघ्न आते रहते हैं। खड्ग मुद्रा दिखाकर विघ्न करने वाली आसुरी शक्तियों को यह संकेत दिया जाता है कि धोखे से भी इस ओर नजर मत उठाइएगा।

इस तरह यह मुद्रा धर्म शत्रुओं से बचाव करती है।

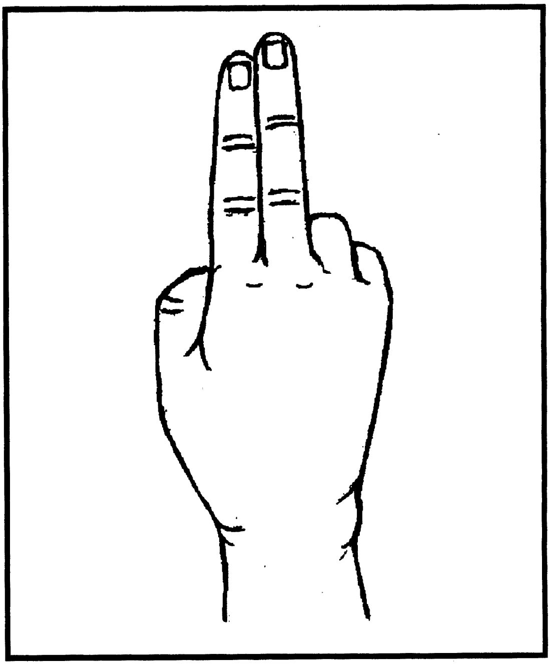

खड्ग मुद्रा

विधि

"दक्षिणकरेण मुष्टिं बद्ध्वा तर्जनी मध्यमे प्रसारयेदिति खड्गमुद्रा।"

दाहिने हाथ को मुट्ठी रूप में बांधकर उसकी तर्जनी और मध्यमा को प्रसारित करने पर खड्ग मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा श्वास एवं उदर सम्बन्धी रोगों में लाभदायी है। इससे आकाश तत्त्व एवं जल तत्त्व नियन्त्रित रहते हैं तथा हृदयजनित किसी भी तरह की तकलीफों में राहत मिलती है।

इस मुद्रा के अभ्यास से साधक की बुद्धि तलवार की भाँति तीक्ष्ण एवं प्रखर बनती है। इससे दैहिक समस्याएँ जैसे- रक्त कैन्सर, खसरा, बिस्तर गिला होना, हर्निया, नपुंसकता, प्रजनन तंत्र की समस्या, कामुकता, मस्तिष्क सम्बन्धी समस्या आदि का निवारण होता है।

- मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से साधक में आत्मरक्षा की भावना का जागरण होता है।

इस मुद्रा के द्वारा स्वाधिष्ठान एवं आज्ञाचक्र गतिशील बनता है, जिसे स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र कहते हैं। यह चैतन्य का बहुत बड़ा केन्द्र है, इसकी असीम क्षमताएँ हैं, वे सभी जागृत होती हैं। कुछ शरीर शास्त्रियों ने इसे एक प्रकार से सर्वज्ञता का केन्द्र कहा है। जो साधक दस-पन्द्रह मिनट दर्शन केन्द्र पर स्थिर होना शुरू कर देता है, उसका भटकाव मिट जाता है। इसी के साथ पूर्वाभास, अन्तर्दृष्टि आदि अतीन्द्रिय क्षमताओं का विकास होता है।

पीयूष एवं प्रजनन ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा साधक को तनावमुक्त, प्रसन्नचित्त, उत्साहित, समत्वशील, मधुर भाषी, शांत स्वभावी बनाती है। काम वासना को नियंत्रित कर चेहरे के आकर्षण, तेज एवं व्यक्तित्व को प्रभावी बनाती है। यह स्वर सुधारने एवं शरीर के तापमान को संतुलित रखने में भी सहयोगी बनती है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर पद्धति के अनुसार शरीर का कोई भी अंग गिर पड़े, जैसे आंख की पलक का गिर पड़ना अथवा कोई भी अंग अपना कवच छोड़कर बाहर निकल पड़े, जैसे योनि या गुदा का बाहर निकलना, इन दोनों रोगों के

उपचार हेतु खड्ग मुद्रा के दाब बिन्दु महत्त्वपूर्ण हैं।

- इस मुद्रा के दबाव बिन्दु यौगिक चक्रों को नियन्त्रित रखते हैं। इनसे मस्तिष्क रोग, शरीर का असन्तुलन, एक तरफ का लकवा, विस्मृति होना जैसे असामान्य रोग ठीक हो जाते हैं।

39. ज्वलन मुद्रा

ज्वलन शब्द अग्नि का प्रतीकात्मक है। संस्कृत कोश में ज्वलन के निम्न अर्थ बताये गये हैं— दहकता हुआ, जलता हुआ, चमकता हुआ आदि। यहाँ 'जलता हुआ' यह अर्थ अधिक इष्ट है। सूक्ष्मता से विचार करें तो जो जलता है वह चमकता भी है, दहकता भी है। चमकने वाला पदार्थ ज्वलनशील हो भी सकता है और नहीं भी, किन्तु ज्वलन स्वभावी पदार्थ अवश्य चमकता है।

अग्नि की अनेक विशेषताएँ हैं। जैसे अग्नि की लपटें सदैव ऊपर की ओर उठती हैं, वह ऊर्ध्वाभिमुख स्वभाववाली है। अशुद्धियों को दूर करती है, वातावरण को निर्मल बनाती है और तेज गुण से प्रकाश फैलाती है। उसी प्रकार

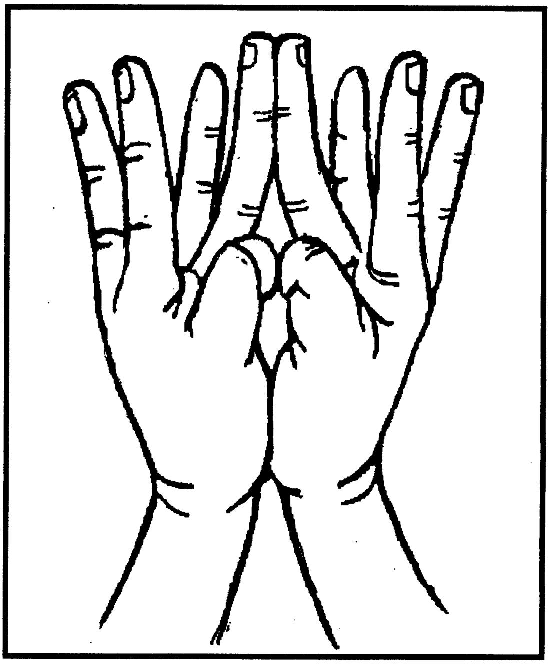

ज्वलन मुद्रा

इस मुद्रा के सम्यक प्रयोग से योगी पुरुषों की आत्माएँ ऊर्ध्वस्रोतस् बनती हैं। यह अन्तर्मन की कलुषिताओं को समाप्त करते हुए स्व-स्वरूप के प्रकाश से साधक को प्रकाशमान रखती है। सामान्यत: इस मुद्रा के माध्यम से बाह्य और आभ्यन्तर अशुद्धियों का निवारण किया जाता है।

विधि

"हस्ताभ्यां संपुटं विधायांगुलीः पद्मवत् विकास्य मध्यमे परस्परं संयोज्य तन्मूललग्नांगुष्ठौ कारयेदिति ज्वलन मुद्रा।"

दोनों हाथों का संपुट बनाकर अंगुलियों को कमल की पंखुड़ियों की भाँति विकसित करें। फिर मध्यमा अंगुलियों को परस्पर में संयोजित कर इन अंगुलियों के मूल भाग पर अंगूठों को स्पर्शित करने से ज्वलन मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

● शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा से अग्नि और आकाश तत्त्व प्रभावित होते हैं। परिणामस्वरूप आकाश तत्त्व की कमी से होने वाले रोगों में आराम मिलता है तथा अग्नि तत्त्व में रासायनिक परिवर्तन होता है।

यह मुद्रा शरीर की 73 हजार नस-नाड़ियों को पूर्ण नियन्त्रित करती है। इससे नाभि प्रदेश स्वस्थ रहता है।

● बौद्धिक एवं भावनात्मक दृष्टि से यह मुद्रा दूषित विचारों के प्रतिरोध की क्षमता को बढ़ाती है, वैचारिक निर्मलता प्रदान करती है तथा चेतना को दोष मुक्त बनाती है।

इस मुद्रा से पिच्युटरी ग्लैण्ड की सक्रियता बढ़ जाती है और एड्रीनल या गोनाड्स पर उनका नियन्त्रण स्थापित हो जाता है।

विशेष

● एक्यूप्रेशर चिकित्सज्ञों के अनुसार इस मुद्रा में जिन बिन्दुओं पर दबाव पड़ता हैं उससे सहानुभूति जनक स्नायुतन्त्र सक्रिय होते हैं।

● चाइनीज एक्यूपंचर का एक विशिष्ट बिन्दु इस मुद्रा में गर्भित है जो वात दोष को निकालकर दृष्टि एवं श्रवण शक्ति को बढ़ाता है।

● इस बिन्दु से सर्दी, इनफ्लूएंजा ज्वर, छींक आना, नाक से पानी बहना, बेचैनी, निम्न रक्त चाप आदि का निवारण होता है।

40. श्रीमणि मुद्रा

'श्री' शब्द समृद्धि और प्रतिष्ठा का तथा 'मणि' शब्द मूल्यवान रत्न का सूचक है। जिस विद्या देवी की सम्यक आराधना से समृद्धि और अमूल्य रत्न की प्राप्ति होती है, उसे श्रीमणि मुद्रा कहते हैं।

यहाँ मणि शब्द से चिन्तामणि रत्न भी ग्रहण होता है। जिस तरह चिन्तामणि रत्न सभी प्रकार के मनोरथ पूर्ण करता है उसी तरह श्रीमणि मुद्रा से समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है। यह मुद्रा जिस अनुष्ठान के निमित्त दिखायी जाती है वह समग्र दृष्टियों से सुफलदायी हो, इस तरह की भावना पूर्ण होती है। इससे बोध होता है कि श्रीमणि मुद्रा इच्छापूर्ति की सूचक है।

जब किसी व्यक्ति की अंतरंग इच्छा पूर्ण होती है तब वह स्वभावत: हर्षित होता है और उसे सन्तोष की अनुभूति होती है। इस तरह यह मुद्रा हर्ष और सन्तोष की प्रतीक है।

रत्न प्रकाशवान, निर्मल और स्वच्छ होता है। सांकेतिक रूप में यह मुद्रा

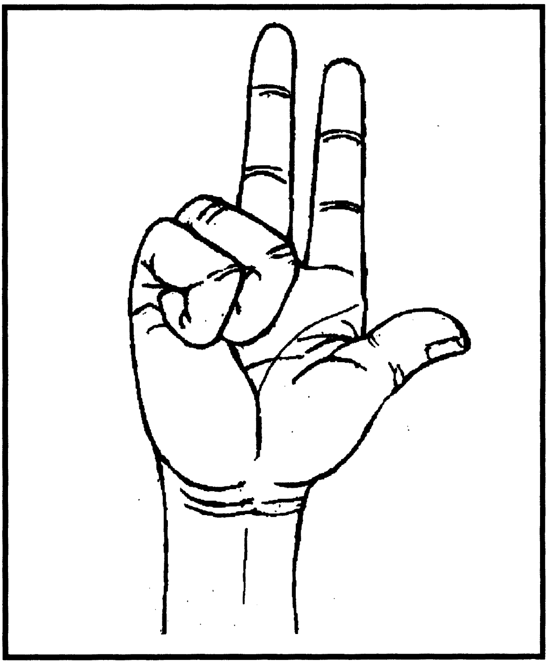

श्रीमणि मुद्रा

आभ्यन्तर प्रकाश को प्रकट करती है जिससे अन्तर्मन निर्मल एवं स्वच्छ रहता है।

इस तरह श्रीमणि मुद्रा के माध्यम से बाह्य समृद्धि और आभ्यन्तर समृद्धि को उपलब्ध किया जाता है।

विधि

"बद्धमुष्टेर्दक्षिणकरस्य मध्यमांगुष्ठ तर्जन्यौ मूलात् क्रमेण प्रसारयेदिति श्रीमणि मुद्रा।"

दाहिने हाथ की मुट्ठी बांधकर क्रमश: मध्यमा, अंगूठा और तर्जनी अंगुलियों को मूल स्थान से प्रसारित करना श्रीमणि मुद्रा है।

सुपरिणाम

• शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा से अग्नि एवं आकाश तत्त्व सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। जिससे तत्सम्बन्धी बीमारियों का निवारण होता है। यह मुद्रा ब्लडप्रेशर रोग में लाभ पहुँचाती है। इससे पाचन की क्रिया सुचारु रूप से प्रवर्तमान रहती है। इसका अभ्यास हृदय एवं उदर सम्बन्धी तकलीफों में विशेष लाभदायी है।

इस मुद्रा से मणिपुर चक्र और अग्नि तत्त्व दोनों का संयोग होने से उष्णता का तापमान बढ़ जाता है, जिसके फलस्वरूप सर्दी के सभी रोगों में फायदे होते हैं।

• आध्यात्मिक स्तर पर इसका प्रयोग साधक को इहलौकिक प्रपंचों से मुक्त रखता है। यह मुद्रा निरर्थक कर्म बन्धनों से बचाती है तथा निष्काम कर्म की भावना को उद्भूत करती है।

यह मुद्रा ब्रह्मचर्य पालन में भी सहायक है। इससे ज्योति केन्द्र सक्रिय होने से कषायों-नौकषायों का उपशमन होता है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर मेरीडियनोलोजी के अनुसार इस मुद्रा में मूलाधार चक्र पर दबाव पड़ता है जिससे मूत्राशय सम्बन्धी रोगों का शमन होता है, शरीर में तरल पदार्थों का प्रवाह बढ़ता है तथा किडनी की ऊर्जा बढ़ती है। इससे कमजोरी, अण्डकोष में सूजन, हाथ-पैर ठण्डे पड़ना, यौन रोग समस्या, अनियमित मासिक धर्म, नपुंसकता आदि दोष भी दूर होते हैं।

दस दिक्पालों को संतुष्ट करने हेतु उपयोगी मुद्राएँ

41. दण्ड मुद्रा

संस्कृत का 'दण्ड' शब्द अनेक अर्थों का बोध करवाता है। सामान्य तौर पर डंडा, घड़ी, यष्टिका को दंड कहते हैं।

इस प्रकरण में दण्ड मुद्रा दस दिशाओं के रक्षक देवताओं को दिखाने के सम्बन्ध में कही गई है।

संभवत: दस दिशाओं के रक्षक देवों के हाथों में दण्ड रहता है। वे दण्ड को माध्यम बनाकर पूरे ब्रह्माण्ड की रक्षा करते हैं तथा अनिष्ट शक्तियों से होने वाले उपद्रवों को शान्त करते हैं।

यह दण्ड मुद्रा दश दिक्पालों को अपने कर्तव्य का बोध करवाने एवं साधक मन को सबल बनाने के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

''दक्षिण हस्तेन मुष्टिं बद्ध्वा तर्जनीं प्रसारयेदिति दण्ड मुद्रा''।

दाएं हाथ को मुट्ठी रूप में बांधकर तर्जनी को प्रसारित करने से दण्ड मुद्रा बनती है।

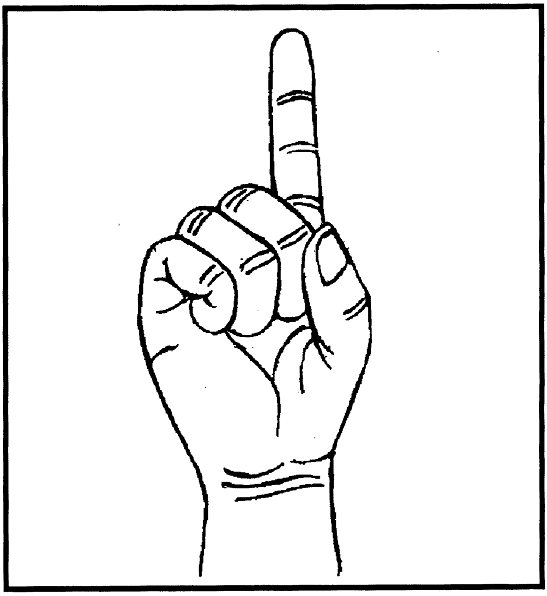

दण्ड मुद्रा

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा आँख, कान और उदर सम्बन्धी विकारों को ठीक करती है। इससे पृथ्वी, और जल तत्त्व पर्याप्त रूप से प्रभावित होते हैं, जिसके फलस्वरूप पृथ्वी या जल की कमी अथवा अधिकता से होने वाली आपदाओं से आराम मिलता है।

गुर्दों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है अर्थात रक्त की सफाई होती है तथा रक्त में सोडियम, पोटैशियम, लवण एवं जल आदि तत्त्वों की मात्रा का नियमन होता है।

• मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा बौद्धिक स्थिरता प्रदान करती है, ब्रह्मचर्य शक्ति का विकास करती है, क्रोधादि प्रभावों का शमन करती है और साधक को मूल ध्येय के प्रति सचेष्ट करती हैं।

इस मुद्राभ्यास से स्वाधिष्ठान और मूलाधार चक्र जो हमारी समस्त शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत का संचयगृह हैं, उनका ऊर्ध्वीकरण होता है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर के अनुसार दण्ड मुद्रा में जो बिन्दु प्रभावित होते हैं उनके माध्यम से अनावश्यक कफ दोष एवं वात दोष से मुक्ति मिलता है खाने सम्बन्धी आदतों में सुधार आता हैं, मस्तिष्क की गर्मी दूर होती है तथा मणिबन्ध से संबंधित रोग ठीक होते हैं।

42. पाश मुद्रा

पाश का सामान्य अर्थ है बंधन। संस्कृत कोश के अनुसार पाश एक शस्त्र है जो वरुण देवता द्वारा प्रयुक्त किया जाता है।

चिन्तन के आधार पर पाश मुद्रा के अनेक हेतु स्पष्ट होते हैं। जैसे इस मुद्रा को देखकर दिक्पाल देव अपने कर्तव्य के प्रति सचेत हो जाते हैं और रक्षा के निमित्त यौगिक बल का पूरा उपयोग करते हैं। इस मुद्रा के द्वारा दिक्पाल देवों को रक्षा करने का संकेत किया जाता है। जिससे ये देव विनाशकारी शक्तियों को बांधकर रखते हैं। इस मुद्रा को दिखाने से यदि कोई दुष्ट तत्त्व आराधना स्थल पर आ गया हो तो वह बंध जाता है और कार्य समाप्ति तक उपद्रव नहीं कर सकता।

अनुभवी साधकों के अनुसार यह मुद्रा बुरी शक्तियों को वश में करने एवं पराजित करने की भी ताकत रखती है, इसलिए इसे दृढ़ मनोबल का प्रतीक

माना गया है। योगी पुरुषों के अभिप्राय से यह मुद्रा निष्कारण बाधा पहुँचाने वाले देवी-देवताओं की दुष्टशक्तियों को निस्तेज कर देती है।

इस तरह पाश मुद्रा व्यवहारिक दृष्टि से दुष्ट शक्तियों को प्रभावहीन तथा आध्यात्मिक दृष्टि से क्रोधादि कषायों के बन्धन से छुटकारा पाने हेतु की जाती है।

विधि

''परस्परोन्मुखौ मणिबन्धाभिमुखकरशाखौ करौ कृत्वा ततो दक्षिणांगुष्ठ-कनिष्ठाभ्यां वाममध्यमानामिके तर्जनीं च तथा वामांगुष्ठकनिष्ठाभ्यामितरस्य मध्यमानामिके तर्जनीं समाक्रामेयदिति पाशमुद्रा।''

दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर में विपरीत और मणिबन्ध के अभिमुख (आमने-सामने) करें। फिर दाएं हाथ के अंगूठे और कनिष्ठिका के द्वारा बायें हाथ की मध्यमा, अनामिका एवं तर्जनी अंगुली को आक्रमित करें तथा बायें हाथ के अंगूठे और कनिष्ठिका के द्वारा दाएं हाथ की मध्यमा, अनामिका एवं तर्जनी को आक्रमित करने पर पाश मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा से अग्नि आदि पाँचों तत्त्व नियन्त्रित होते हैं। मुख भाग अधिक सक्रिय होता है। पाचन संस्थान की सभी ग्रन्थियाँ सशक्त बनती हैं। रक्त प्रवाह में किसी तरह के अवरोध पैदा नहीं होते हैं।
- आध्यात्मिक स्तर पर यह मुद्रा आभ्यन्तर विकारों का उपशमन करती है।

योग विज्ञान के अनुसार मूलाधार (गोनाड्स ग्रन्थि) एवं मणिपुर (एड्रीनल ग्रन्थि) के स्राव संतुलित होते हैं, आत्मा की तेजस्विता बढ़ती है, शक्ति का संचय होता है और वृत्तियाँ शान्त होती हैं।

विशेष

- एक्यूप्रेशर चिकित्सा के निर्देशानुसार पाश मुद्रा से हृदय एवं हृदय आवरण की ऊर्जा सकारात्मक होती है, शुद्ध रक्त धमनियों से शरीर में पहुँचता है, शरीर का उष्ण स्वभाव कम होता है, छाती का तनाव दूर होता है तथा धमनियों में आई रुकावट दूर होती है। इससे जननेन्द्रिय सम्बन्धी गड़बड़ियाँ दूर होती हैं तथा यह लघु मस्तिष्क नियन्त्रित रहत है।

43. शूल मुद्रा

संस्कृत कोश में शूल शब्द के अनेक पर्यायवाची बताये गये हैं। सामान्यत: शूल एक प्रकार का घातक हथियार है।

शूल को धर्म शत्रुओं के नाश का प्रतीक माना गया है तथा यह विघ्न-बाधाएँ आदि को समाप्त करता है। प्रस्तुत मुद्रा इन्हीं अर्थों के सन्दर्भ में कही गई मालूम होती है।

सार रूप में शूल मुद्रा धर्म शत्रुओं से बचाव करने एवं विघ्नों का अपनयन करने के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

"परस्पराभिमुखमूर्ध्वांगुलीकौ करौ कृत्वा तर्जनीमध्यमानामिका विरलीकृत्य परस्परं संयोज्य कनिष्ठांगुष्ठौ पातयेदिति प्रथम शूलमुद्रा।"

दोनों हाथों को एक-दूसरे के आमने-सामने रखते हुए अंगुलियों को ऊपर की ओर करें। फिर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को मूल स्थान से

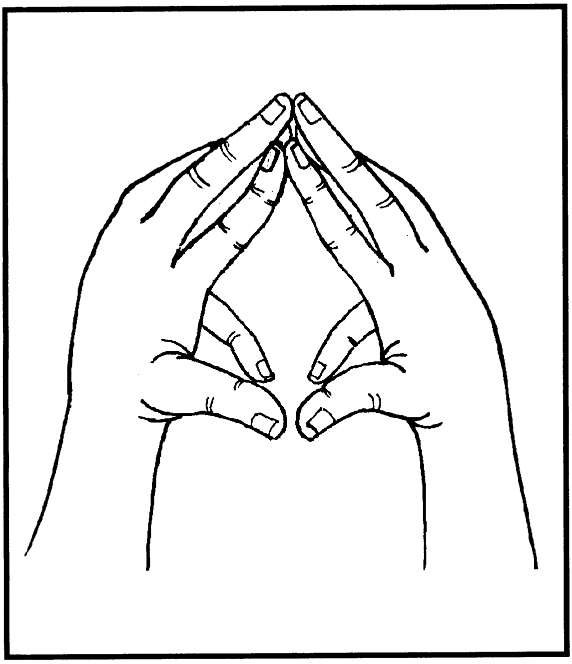

शूल मुद्रा-1

प्रसारित करें तथा कनिष्ठिका और अंगूठे को परस्पर में संयोजित कर नीचे की ओर गिराने से शूल मुद्रा बनती है।

विधिमार्गप्रपा में शूल मुद्रा दो प्रकार की कही गई है। द्वितीय प्रकारान्तर निम्न है—

''पताकाकारं करं कृत्वा कनिष्ठिकामंगुष्ठेनाक्रम्य शेषांगुलीः प्रसारयेदिति शूलमुद्रा द्वितीया।''

किसी भी एक हाथ को पताका के समान करके अंगूठे से कनिष्ठिका अंगुली को आक्रमित करते हुए शेष अंगुलियों को प्रसारित करने पर दूसरे प्रकार की शूल मुद्रा बनती है।

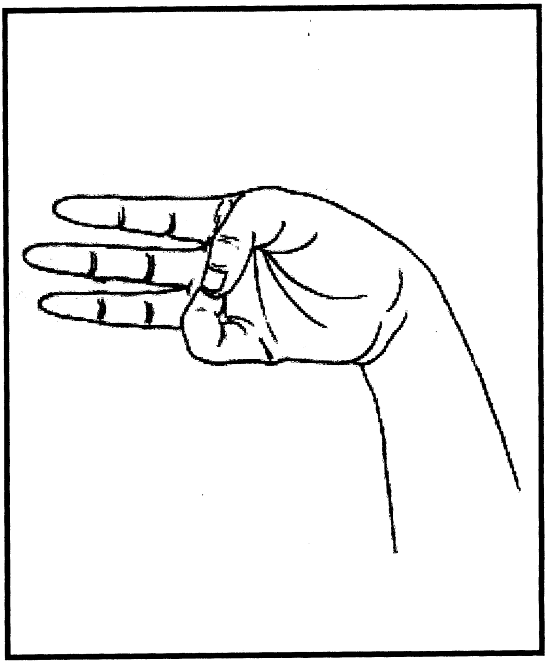

शूल मुद्रा-2

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से प्रथम प्रकार की शूल मुद्रा श्वास की गति को धीमा कर मन की चंचलता को शान्त करती है। सम्पूर्ण शरीर में रक्त संचालन की गति को संतुलित करती है जिससे शरीर में शक्ति का संचार होता है। इस मुद्रा के

द्वारा अग्नि एवं आकाश तत्त्व नियंत्रित होने से तत्सम्बन्धी बीमारियों से राहत मिलती हैं।

बुखार, सिरदर्द, अनिद्रा, कानों के संक्रमण, वायु, अपच, थकान, कमजोरी आदि में यह मुद्रा लाभ पहुँचाती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा तामसिक भावों का उच्छेद एवं राजसिक भावों पर नियन्त्रण करती है। यह मन की शक्ति को सक्रिय कर प्रमाद दशा को भी दूर करती है।

इसका अभ्यास बुद्धि को कुशाग्र बनाकर दर्शन केन्द्र के सभी लाभ प्राप्त करवाता है। यह मुद्रा क्रोधादि कषायों के नियंत्रण में एवं आत्मविश्वास, परोपकार, उदारता आदि भावों के जागरण में अत्यन्त उपयोगी है।

द्वितीय प्रकार की शूल मुद्रा बाह्य दृष्टि से त्वचा को कोमल बनाती है। त्रिदोषों का शमन करती हैं। जल तत्त्व की कमी से उत्पन्न विकृतियों, चेहरे पर होने वाली फुंसियों एवं कील-मुहासों में फायदा करती है।

यह मुद्रा रक्त विकार को दूर कर चर्म रोगों को मिटाने में भी लाभदायक सिद्ध हुई है।

आध्यात्मिक स्तर पर यह मुद्रा साधक को तेजस्वी बनाती है एवं उसे गुणातीत अवस्था की अनुभूति करवाती है। इससे आज्ञा चक्र और मणिपुर चक्र के प्राय: सभी लाभ प्राप्त होते हैं।

शूल मुद्रा के अभ्यास से पीयूष, एड्रिनल एवं पैन्क्रियाज के स्राव संतुलित होते हैं। यह जीवन पद्धति, स्वभाव एवं मनोवृत्ति को नियंत्रित रखती है और साधक को तनावमुक्त कर प्रसन्नता एवं समभाव का निर्माण करती है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर प्रणाली के अनुसार प्रथम शूल मुद्रा के दाब बिन्दु विष युक्त भोजन के प्रभाव को क्षीण करता है, सर्प विष को न्यून करता है एवं बदहजमी दूर करता है।

• बेहोशी, अर्द्ध बेहोशी, सदमा लगना, दौरे पड़ना, मस्तिस्क सम्बन्धी सभी रोगों में यह मुद्रा महत्त्वपूर्ण है।

• यह मुद्रा पीयूष ग्रन्थि, लघुमस्तिष्क, स्वसंचालित स्नायु तंत्र, नाक, बाईं आँख को नियंत्रित करती है।

• दूसरी शूल मुद्रा के दाब बिन्दु पीयूष ग्रन्थि, नाड़ी तन्त्र, अनुमस्तिष्क को नियन्त्रित करते हैं।

• यह मानसिक अवसाद, बौद्धिक क्षमता में कमी, कार्य में मन नहीं लगना आदि दोषों को सुधारने में सहयोग करती है।

• शूल मुद्रा श्वास नली की सूजन एवं बेचैनी को भी दूर करती है।

44. संहार मुद्रा

संहार शब्द 'सम्' उपसर्ग, 'हृ' हरणे धातु एवं 'घ' प्रत्यय से निष्पन्न है। संस्कृत कोश में संहार के अनेक अर्थ प्रज्ञप्त हैं। यहाँ संहार का अर्थ मिलाकर खींचना अथवा वापस लेना है।

इस मुद्रा को बनाते वक्त हाथ की पाँचों अंगुलियों को अपनी ओर खींचा जाता है तथा किसी वस्तु को अपनी ओर ले रहे हो, ऐसा आकार बनता है इसलिए इसे संहार मुद्रा कहते हैं।

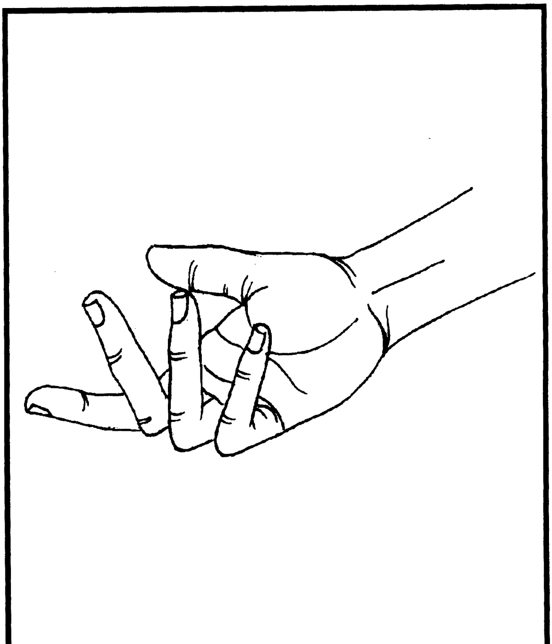

संहार मुद्रा-1

जैन परम्परा के अनुसार यह मुद्रा महापूजा आदि अनुष्ठान की समाप्ति पर की जाती है तथा पूर्वस्थापित नवग्रह पट्ट, दशदिक्पालपट्ट, कुंभकलश अथवा अर्पित मिष्टान्न-फल आदि सामग्री के ऊपर दिखायी जाती है।

संभवत: संहार मुद्रा करते हुए यह भाव उत्पन्न किया जाता है कि अमुक व्यक्ति अथवा श्रीसंघ ने आपको (देवी-देवता) उल्लास एवं बहुमानपूर्वक इस धर्मोत्सव में आमन्त्रित किया, सुयोग्य स्थान पर बिठाया तथा आपके दिव्य प्रभाव से इष्ट कार्य निर्विघ्नतया सम्पन्न भी हुआ। आपकी पुन: उपस्थिति की हरपल कामना करते हुए अमुक स्थान से उठने का निवेदन किया जा रहा है। उपर्युक्त भावपूर्वक इस मुद्रा से देवी-देवताओं का सम्मान होता है। हर सामान्य व्यक्ति सत्कार और सम्मान चाहता है और सम्मान पाकर आनन्दित ही नहीं, प्रत्युत सम्मान दर्शाने वाले के लिए यथाशक्ति सहयोग की भावना रखता है। उसी तरह देवी-देवतागण भी सम्मान प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं तथा श्रद्धालु साधकों की मनोकामना को पूर्ण करने हेतु तत्पर रहते हैं।

सिद्धचक्र, शांतिस्नात्र आदि महापूजनों में देवताओं को मिष्टान्न-फल आदि भी चढ़ाये जाते हैं। इस मुद्रा के माध्यम से अर्पित फल आदि को समेटने की आज्ञा दर्शायी जाती है। इसके पीछे तथ्य यह है कि जिस अतिथि को जो कुछ अर्पण किया है उसको वहाँ से हटाने के लिए आमंत्रित अतिथियों की आज्ञा आवश्यक है। कार्यक्रम समाप्ति की सूचक यह मुद्रा लौकिक जीवन में भी की जाती है।

इस तरह संहार मुद्रा अद्भुत रहस्य प्रधान है।

विधि

ग्राह्यस्योपरि हस्तं प्रसार्य कनिष्ठिकादि-तर्जन्यन्तानामङ्गुलीनां क्रमसंकोचनेनाङ्गुष्ठ मूलानयनात् संहार मुद्रा।''

उठाने योग्य वस्तुओं के ऊपर हाथ को प्रसारित करते हुए एवं कनिष्ठा से लेकर तर्जनी पर्यन्त अंगुलियों को क्रमश: सिकोड़ते हुए अंगूठे के मूल स्थान तक ले जाना संहार मुद्रा है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा से अग्नि, तत्त्व एवं पृथ्वी तत्त्व संतुलित अवस्था में रहते हैं। इससे गर्मी के प्रकोप से होने वाली तकलीफों में शान्ति मिलती है।

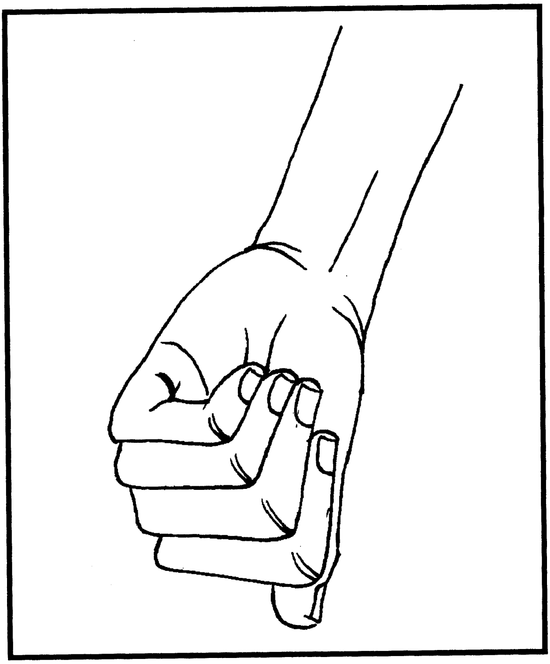

संहार मुद्रा-2

• भौतिक स्तर पर यह मुद्रा पाचन तंत्र, चयापचय, लीवर, पित्ताशय, तिल्ली और पाचक ग्रंथि का संचालन करती है। इसी के साथ मधुमेह, बवासीर, शारीरिक कमजोरी, अल्सर, प्रजनन तंत्र सम्बन्धी समस्याओं का निवारण करती है।

इससे वायु विकार शमित होते हैं। कर्ण एवं उदर सम्बन्धी रोगों में आराम मिलता है। पाचन तंत्र के सहायक अवयव जैसे आमाशय, पक्वाशय आदि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

यह पाचन तंत्र एवं विसर्जन तंत्र की समस्याओं के निवारण में विशेष उपयोगी है। यह नाड़ीतंत्र, आँतें, यकृत, तिल्ली, मेरूदण्ड, गुर्दे के कार्यों का भी नियमन करती है।

इस मुद्राभ्यास से थायराइड ग्रन्थि एवं एड्रीनल ग्रंथि सक्रिय होकर जीवन की क्षमता और तीव्रता को बढ़ाती है तथा शारीरिक शिथिलता को दूर करती है।

• आध्यात्मिक स्तर पर यह मुद्रा परिग्रह, ममत्त्व और आसक्ति भाव को न्यून करती है। इससे क्रोधादि कषायों में कमी आती है। इसी के साथ स्वनियंत्रण, व्यक्तित्व बोध, आत्मविश्वास का जागरण तथा हीन भावनाओं का नाश होता है।

यह मुद्रा लोभ कषाय को मंद करने में भी सहयोगी है। यह उच्चतर चेतना का विकास करती है। हमारी वृत्तियों को सहज रूप से शान्त रखती है। इससे मणिपुर एवं मूलाधार चक्र की ऊर्जा सन्मार्गगामी बनती है।

एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा साधक को साहसी, निर्भीक, सहनशील, आशावादी, तनावमुक्त, प्रभावशाली, आकर्षक एवं समताधारी बनाती है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर मेरिडियन थेरेपी के अनुसार संहार मुद्रा के द्वारा पाचन तन्त्र के विकार, वायुजन्य दोष, डायबिटिज, पित्ताशय एवं आमाशय की सूजन, गले की सूजन आदि का निवारण होता है।

• इस मुद्रा से प्रभावित दबाव केन्द्र शरीर की समस्त क्रियाओं को सुचारु रूप से गतिशील करते हैं।

• इससे हृदय, मस्तिष्क, श्वास, स्नायु तन्त्र के विकारों में कमी आती है।

देवदर्शन आदि करने में उपयोगी मुद्राएँ

45. परमेष्ठी मुद्रा (प्रथम)

जैन परम्परा में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु ये पाँच परमेष्ठी कहे जाते हैं। इस मुद्रा में परमेष्ठी की प्रतिकृति बनायी जाती है, इसलिए इसे 'परमेष्ठी मुद्रा' ऐसा नाम दिया गया है।

अर्हत् धर्म में पंच परमेष्ठी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। जैन धर्म में प्राणीमात्र के लिए समान रूप से आराध्य नवकारमन्त्र पंच परमेष्ठी का प्रतिनिधित्व करता है। उपासना का मुख्य आधार परमेष्ठी को माना गया है, जाप साधना का मुख्य अवलंबन परमेष्ठीपद है, मन्त्र स्मरण का मुख्य परमेष्ठी है, सिद्धचक्र का मूल परमेष्ठी है। प्रत्येक कार्य चाहे लौकिक हो या लोकोत्तर, पंच परमेष्ठी का स्मरण करके ही प्रारम्भ किया जाता है।

जिन आत्माओं ने चार घातिकर्मों (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय) का क्षय कर लिया है और राग-द्वेष की परम्परा का विच्छेद कर केवलज्ञान को उपलब्ध कर लिया है, वे अरिहंत कहलाती हैं। जिन आत्माओं ने चार घातिकर्म और चार अघातिकर्म (वेदनीय, आयुष्य, नाम, गौत्र) रूप अष्टकर्मों का अन्त कर दिया है तथा जन्म-मरण की परम्परा का विच्छेद कर स्वयं को शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित कर लिया है वे सिद्ध कहलाती हैं। जो साधक पुरुष, चतुर्विध संघ के नायक हैं, स्वयं पाँच आचार का पालन करते हैं और अन्यों को उत्प्रेरित कर उसका पालन करवाते हैं, वे आचार्य कहलाते हैं।

जो सन्त पुरुष अध्ययन-अध्यापन, पठन-पाठन में निरत रहते हैं वे उपाध्याय कहे जाते हैं। जो बाह्य परिग्रह के त्यागी और पाँच महाव्रतों का परिपालन करते हैं वे साधु कहलाते हैं।

यह परमेष्ठी मुद्रा, परमेष्ठी पद को प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

"उत्तानहस्तद्वयेन वेणीबन्धं विधायांगुष्ठाभ्यां कनिष्ठिके तर्जनीभ्यां च मध्यमे संगृह्यानामिके समीकुर्यात् इति परमेष्ठीमुद्रा।"

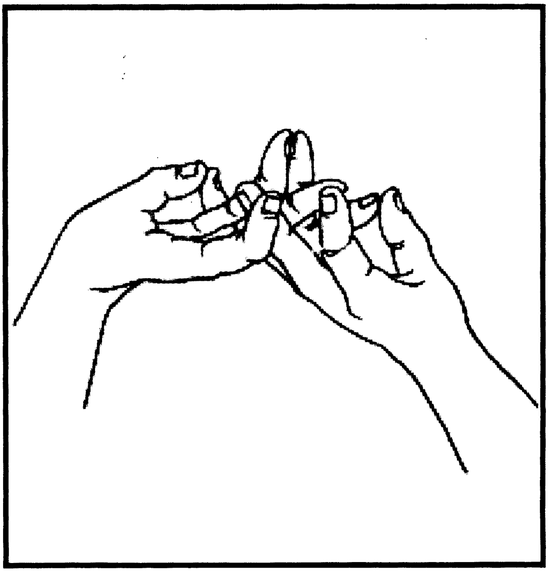

परमेष्ठी मुद्रा-1

दोनों हाथों को ऊपर उठाकर अंगुलियों को एक-दूसरे में गूंथ दें। फिर अंगूठों के द्वारा कनिष्ठिका अंगुलियों को और तर्जनियों के द्वारा मध्यमा अंगुलियों को अच्छी तरह से पकड़कर अनामिका अंगुलियों को एक-दूसरे से स्पर्शित करते हुए सीधा रखना परमेष्ठी मुद्रा है।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से शरीर के पंच तत्त्वों पर नियंत्रण होता है। शारीरिक थकान दूर होती है। इससे जल तत्त्व और आकाश तत्त्व संतुलित रहते हैं तथा तज्जन्य दोषों का परिहार होता है। मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों में लाभ पहुँचता है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से इसका अभ्यास साधक को उच्च स्तर की ओर अग्रसर करता है। जिससे साधक को पंचकोष का पूर्ण ज्ञान हो जाता है और चेतन मन सदैव आनन्दमय कोष में रहता है।

इस मुद्रा से स्वाधिष्ठान (गोनाड्स ग्रन्थि) और आज्ञा चक्र (पीयूष ग्रन्थि) सक्रिय बनते हैं। इससे व्यक्ति सही निर्णय लेने में सक्षम होता है, वह स्रावों को बदल कर काम से अकाम हो जाता है,

कामवृत्तियाँ अनुशासित हो जाती हैं, आवेग कम हो जाते हैं तथा ब्रह्मचर्य पालन की शक्ति प्राप्त होती है।

विशेष

• परमेष्ठी मुद्रा अभ्यास साध्य एवं आराधना योग्य है। इसे प्रतिदिन करना चाहिए।

• एक्यूप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार यह बेहोशी, गिर पड़ने, उच्च ज्वर, हृदय एवं श्वास सम्बन्धी रोगों को दूर करने में मुख्य रूप से कार्य करती है।

• यह गला, छाती एवं तालु के उपचार हेतु विशिष्ट मुद्रा है।

• इस मुद्रा से उदर विकार, अंगुलियों की सूजन, हथेली की गर्माहट शान्त होती है।

46. परमेष्ठी मुद्रा (द्वितीय)

परमेष्ठी मुद्रा दो तरह से बनायी जा सकती है। द्वितीय प्रकारान्तर में भी परमेष्ठी की प्रतिकृति निर्मित की जाती है अत: इसका नाम परमेष्ठी मुद्रा है।

विधि

"वामकरांगुलीरूर्ध्वीकृत्य मध्यमां मध्ये कुर्यादिति द्वितीया।"

बायें हाथ की अंगुलियों को ऊपर की ओर करके मध्यमा अंगुली को हथेली के मध्य में स्थिर करने पर द्वितीय परमेष्ठी मुद्रा बनती है।

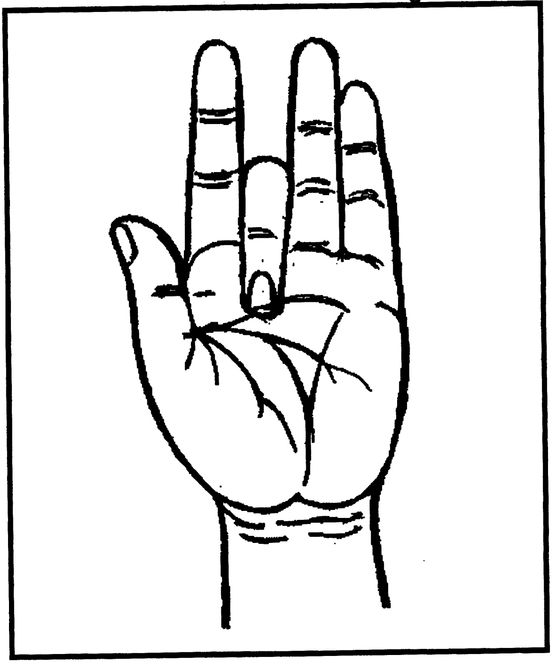

परमेष्ठी मुद्रा-2

सुपरिणाम

● बाह्य दृष्टि से यह मुद्रा शारीरिक एवं मानसिक संतुलन उत्पन्न कर रक्त संचार को नियमित करती है।

साधक को पूर्ण स्वस्थता प्रदान करती है। इससे पृथ्वीतत्त्व एवं आकाश तत्त्व सम्बन्धी विकार समाप्त होने के कारण इन तत्त्वों की सक्रियता बढ़ जाती है। शारीरिक ऊर्जा का उत्पादन होता है और वह ऊर्जा ऊर्ध्वगामी बनती है।

● आध्यात्मिक दृष्टि से अपरिग्रह भावना का आरोहण होता है। प्रेम, दया, करुणा, परोपकार, सेवा आदि मानवीय गुण अभिवृद्ध होते हैं। काम, क्रोध, मद, मोहादि षड्रिपु का शमन होता है।

इससे शक्ति केन्द्र (गोनाड्स ग्रन्थि एवं मूलाधार चक्र) प्रभावित होने से साधना का दर्जा उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। ज्योति केन्द्र (पीनियल ग्रन्थि-

आज्ञाचक्र) पर दाब होने से क्रोध-वासना आदि शान्त हो जाते हैं।

विशेष

- एक्यूप्रेशर मेरेडियन थेरेपी के अनुसार इस मुद्रा के प्रयोग से जननेन्द्रिय नियन्त्रण में रहती है तथा कामवासनाएँ समाप्त होती हैं। इससे उच्च रक्तचाप पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

47. पार्श्व मुद्रा

शरीर के दोनों तरफ का हिस्सा अर्थात काँख से नीचे के शरीर का भाग जहाँ पसलियाँ हैं, पार्श्व कहलाता है।

उपनिषद में दार्शनिकों ने एक गंभीर प्रश्न उठाया है कि आत्मा कहाँ रहती है? उन्होंने आत्मा को हृदय में प्रतिष्ठित माना है। हृदय हमारे शरीर के बाएं पार्श्व में स्थित है।

पार्श्व मुद्रा में आकाश तत्त्व सर्वाधिक प्रभावित होता है। इस तत्त्व का हृदय के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः इस मुद्रा के द्वारा हृदयस्थ आत्मा को जागृत किया जाता है।

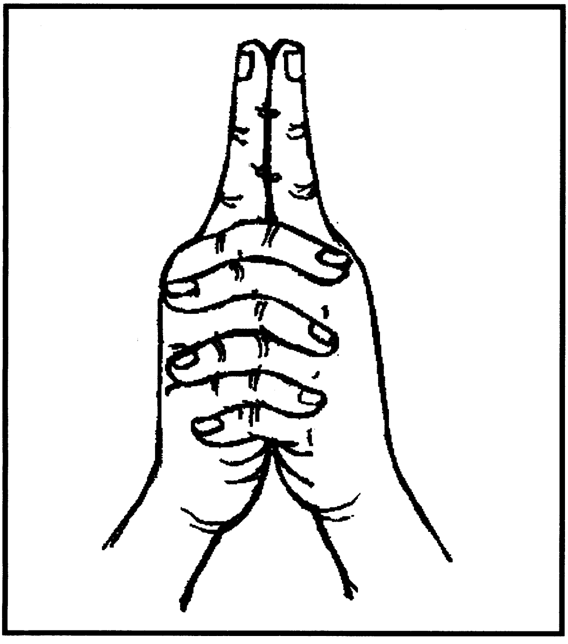

पार्श्व मुद्रा

आचार्य जिनप्रभसूरि ने प्रस्तुत मुद्रा को देवदर्शन की मुद्राओं के अन्तर्गत स्थान दिया है। इससे उपनिषदों का मन्तव्य सापेक्षतः सत्य मालूम होता है।

सांकेतिक रूप में यह मुद्रा संदेश देती है कि हर आत्मा स्वयं को देखें, बाहर न भटकें। जहाँ स्वयं की ओर देखने का प्रश्न खड़ा होता है वहाँ व्यक्ति अवचेतन मन को हृदय पर केन्द्रित करता है, हृदय की ओर निहारने लगता है। कोई मानव इस तरह का प्रयत्न नहीं करता कि मुझे आत्मानुभूति के लिए हृदय को टटोलना होगा, हृदय की ओर विचारों को आकृष्ट करना होगा, सब कुछ सहज और स्वतः होता है। अनेक तरह के ध्यान प्रयोग हृदयाश्रित हैं।

सार रूप में उच्च यह एक स्तरीय मुद्रा है। इस मुद्रा के माध्यम से बहिर्मुख वृत्तियों को अन्तर्मुखी किया जाता है।

विधि

"पराङ्मुखहस्ताभ्यां वेणीबन्धं विधायाभिमुखीकृत्य तर्जन्यौ संश्लेष्यः शेषांगुलिमध्येऽङ्गुष्ठद्वयं विन्यसेदिति पार्श्वमुद्रा।"

दोनों हाथों को एक-दूसरे से विपरीत रखते हुए अंगुलियों को गूंथें। फिर हाथों को स्वयं की ओर करें। फिर तर्जनी अंगुलियों को परस्पर में जोड़कर शेष अंगुलियों के मध्य भाग में दोनों अंगूठों को स्थिर करने पर पार्श्व मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा शरीर को शक्ति प्रदान करती है। इससे खांसी ठीक होती है। दमा और सर्दी का प्रकोप कम होता है। सायनस एवं लकवा जैसी बीमारियाँ ठीक होती हैं। इस मुद्रा के द्वारा पाँचों तत्त्व प्रभावित होते हैं किन्तु आकाशतत्त्व एवं जल तत्त्व अधिक शक्तिशाली बनते हैं।

यह मुद्रा विशुद्धि चक्र को प्रभावित करती है। इससे शरीर की सभी गतिविधियाँ सुचारु रूप से चलती हैं।

- आध्यात्मिक दृष्टि से उच्चतर चेतना और आत्मिक शक्तियों का विकास होता है। चित्त की एकाग्रता बढ़ती है और विषय-वासनाएँ मन्द होती हैं।

इससे मूलाधार चक्र की ऊर्जा का उत्पादन होता है जो साधना की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर रिफ्लेक्सोलोजी के अनुसार यह मुद्रा शारीरिक ऊर्जा प्रवाह को सन्तुलित रखती है। साथ अंगुलियों का सूनापन, गठिया, सन्धिवात, बेहोशी, सदमा लगना आदि स्थितियों में लाभदायक मानी गई है।

प्रतिष्ठा आदि में उपयोगी मुद्राएँ

48. अंजलि मुद्रा

संस्कृत के 'अंजलि' शब्द में मूल रूप से 'अञ्ज्' धातु एवं अलि शब्द का योग है। अञ्ज् धातु भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होती हैं। यहाँ सम्मानित करने के अर्थ में व्यवहृत है।

सामान्यत: दोनों हाथों का सम्पुटमय आकार अंजलि कहलाता है। इस मुद्रा को करते वक्त आदर सूचक प्रतिकृति निर्मित होती है। इसलिए इसका नाम अञ्जलि मुद्रा है।

यदि अंजलि मुद्रा के सम्बन्ध में गहन चिन्तन करें तो इस मुद्रा के अनेक प्रयोजन स्पष्ट होते हैं। जैसे कि

- लौकिक जीवन में किसी अतिथि विशेष को घर पर आमन्त्रित करने पर अथवा घर पर पधारे हुए अतिथि के सम्मानार्थ यही मुद्रा दिखायी जाती है।
- यह मुद्रा पूज्य पुरुषों एवं देवों के सम्मानार्थ की जाती है अत: यह सम्मानसूचक मुद्रा है।

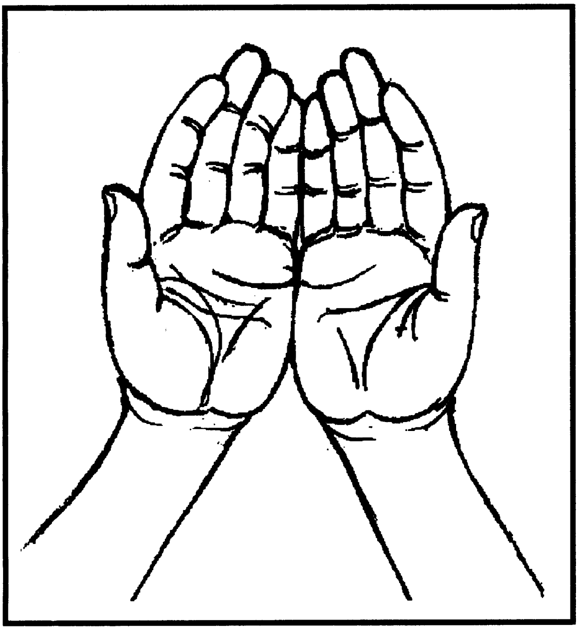

अंजलि मुद्रा

- इस मुद्रा के द्वारा अरिहंत परमात्मा आदि इष्ट तत्त्वों को आमन्त्रित किया जाता है। इसलिए यह आमन्त्रणसूचक मुद्रा है।
- इस मुद्रा का प्रयोग आदर-सत्कार के रूप में भी होता है, इस अपेक्षा से यह अभिवादन सूचक है।
- इस मुद्रा में शरीर का ऊपरी हिस्सा तथा दोनों हाथ झुके रहते हैं, इसलिए वह विनय और नम्रता का सूचक है।
- अंजलि मुद्रा से पूजा आदि सामग्री अर्पित की जाती है। इस कारण अन्य परम्पराएँ इसे आराधना और पूजा की मुद्रा मानती हैं।
- इस मुद्रा से वन्दन का भाव जागृत होता है। इस दृष्टि से यह वन्दन सूचक मुद्रा कही गई हैं।

इस तरह अंजलि मुद्रा के द्वारा विनय-सत्कार आदि भाव प्रदर्शित करते हुए इष्टदेवों को आमन्त्रित एवं उन्हें सन्तुष्ट किया जाता है।

विधि

''उत्तानां किंचिदाकुंचितकरशाखौ पाणी विधारयेदिति अंजलि मुद्रा।''

प्रसारित की गई एवं कुछ झुकी हुई अंगुलियों से युक्त हाथों को अच्छी तरह धारण करने पर अंजलि मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा का प्रयोग जठराग्नि को प्रदीप्त कर उदर सम्बन्धी रोगों में लाभ पहुँचाता है।

इस मुद्रा से पृथ्वी तत्त्व सम्बन्धी दोष दूर होते हैं। शारीरिक दुर्बलता दूर होकर व्यक्ति सबल बनता है। यह मुद्रा शक्ति केन्द्र (मूलाधार चक्र) को स्वस्थ बनाती है। इससे पर्याप्त शक्ति संगृहीत होती है और व्यक्ति तंदुरुस्त बनता है। शरीर की कान्ति एवं तेज भी बढ़ता है।

- मानसिक स्तर पर बौद्धिक क्षमता और स्मृति का विकास होता है। हृदय विशाल एवं उदार दृष्टिकोणवादी बनता है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा शुभ कार्यों के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना विकसित करती है। साधक को निष्काम कर्म हेतु उत्प्रेरित करती है। इससे कुंडलिनी शक्ति का ऊर्ध्वीकरण होता है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर मेरीडियनोलोजी के अनुसार अंजलि मुद्रा एपेन्डिसाइटिस, मुँह में थूक का अधिक बनना, छोटी अंगुली में जकड़न, दौरा पड़ना, आँख सम्बन्धी विकार, कर्ण सम्बन्धी विकार, पेट में कीड़े होना, गर्दन दर्द आदि के निवारण में उपयोगी मानी गई है।
- इस मुद्रा के दाब बिन्दु पित्ताशय को सन्तुलित रखते है।
- इससे हाथों का दर्द, चक्कर आना भी दूर होता है।

49. कपाट मुद्रा

दरवाजे को कपाट कहते हैं। द्वार का आवरण करने वाला दरवाजा कहलाता है। इस मुद्रा में किंवाड बन्द करने जैसी आकृति बनती है इसलिए इसका नाम कपाट मुद्रा है।

विधिमार्गप्रपा में उल्लिखित कपाट मुद्रा विविध रहस्यों को लिए हुए हैं।

लौकिक जीवन में ढोर-डांगर-कुत्ते आदि पशुओं से, धूल-वर्षा आदि

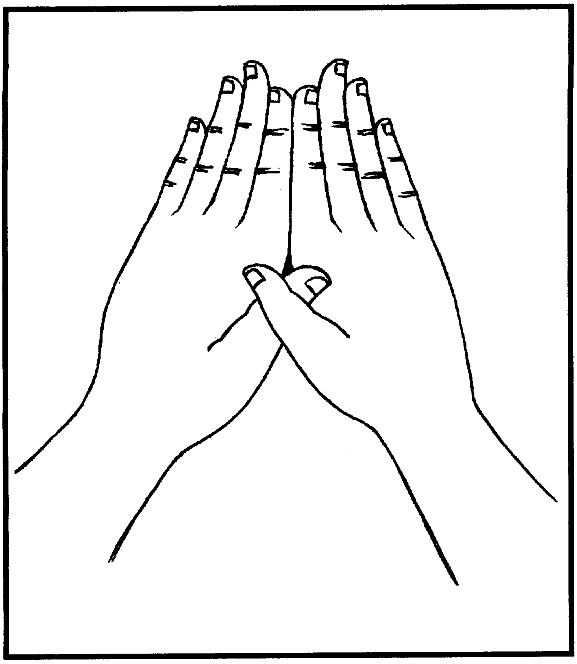

कपाट मुद्रा

प्राकृतिक उपद्रवों से अथवा चोर-लूटेरें आदि से अपना बचाव करने हेतु घर का दरवाजा बन्द करके रखते हैं। यह मुद्रा दिखाकर दुष्ट देवों के मार्ग को अवरुद्ध कर एवं दुष्ट तत्त्वों के आने की संभावना को खत्म कर दिया जाता है।

लौकिक स्तर पर अमूल्य वस्तुएँ कपाट के अन्दर रखी जाती हैं। उसी तरह इस मुद्रा के द्वारा दिव्य शक्ति सम्पन्न सम्यक्त्वी देवों को सुव्यवस्थित स्थान पर बिठाकर, अन्य देवों के लिए उस स्थान का वर्जन कर देते हैं।

कपाट मुद्रा दिखाकर ये भाव भी संप्रेषित किये जाते हैं कि जिन देवों को अंजलि मुद्रा के द्वारा आमन्त्रित किया, उन्हीं के लिए जिनालय में आरक्षित स्थान है। शेष अनिष्ट शक्तियाँ इस दरवाजे के भीतर नहीं आ सकतीं। कपाट मुद्रा के द्वारा आमन्त्रित इष्ट देवों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न भी किया जाता है।

सामान्यत: बन्द गृह में बैठा हुआ व्यक्ति बाहरी हलचलों से प्रभावित नहीं होता, वैसे ही यह मुद्रा प्रतीक रूप में मन की चंचल वृत्तियों को समाप्त करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कपाट मुद्रा प्रतिकूल शक्तियों के निरोध की सूचक है। इस मुद्रा के द्वारा बाह्यत: कायिक अशुभ तत्त्वों का एवं आभ्यन्तरत: मानसिक अशुभ वृत्तियों का निवारण किया जाता है।

विधि

"अभयाकारौ समश्रेणिस्थितांगुलीकौ करौ विधायाङ्गुष्ठयो: परस्पर ग्रथनेन कपाट मुद्रा।"

दोनों हाथों की अंगुलियों को समान श्रेणि में स्थिर रखते हुए उन्हें अभय मुद्रा के आकार में करें। फिर दोनों अंगूठों को परस्पर ग्रथित करने पर कपाट मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा पंच प्राणों के प्रवाह को नियमित करती है।

इस मुद्रा के दरम्यान अग्नि तत्त्व एवं जल तत्त्व अधिक प्रभावित होते है, जिसके परिणामस्वरूप हर्निया, खून की कमी, दाद, खाज, नपुंसकता, अंडाशय, गर्भाशय, पित्ताशय आदि की समस्या, कामुकता, रक्त कैन्सर, मधुमेह, बुखार आदि में राहत मिलती है और अनिद्रा की बीमारी दूर होती है।

शरीर की पिच्युटरी और पिनियल ग्रन्थों के स्राव नियंत्रण में रहते हैं। यह मुद्रा पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आंतों, मल-मूत्र अंग, प्रजनन

अंग आदि के कार्यों का नियमन करती है।

• मानसिक स्तर पर यह मुद्रा भीतरी चंचलता को शान्त कर कुंडलिनी शक्ति जागरण में सहायक बनती है। इससे मानसिक एकाग्रता, स्मरण शक्ति और प्रसन्नता बढ़ती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से साधक स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रवृत्त होता है। चेतना की क्षमता और ध्यान में प्रगति होती है। साधक की उच्च भावनाओं का परिपोषण होता है। मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र के द्वारों को खुलने का मार्ग मिलता है।

एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा तनाव नियंत्रण, रक्तशर्करा एवं रक्त चाप का नियंत्रण, कामेच्छा का संतुलन और बालकों में रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करती है।

विशेष– • विद्युत एक्यूपंक्चर सिद्धान्त के अनुसार इस मुद्रा से कान की सुनने वाली नलिका की रक्षा होती है। दाँतों के उपचार हेतु यह मुद्रा महत्त्वपूर्ण है। इस मुद्रा से तालू टांसिल, स्वरयंत्र सम्बन्धी टांसिल, जीभ टांसिल का सम्यक् उपचार होता है।

50. जिन मुद्रा

संस्कृत भाषा का 'जिन' शब्द विजेता का द्योतक है। जैन मान्यतानुसार राग-द्वेष को जीतने वाले तीर्थंकर पुरुष जिन कहलाते हैं। जैनागमों में जिन पुरुष को केवलज्ञानी, अरिहंत परमात्मा, तीर्थंकर आदि विशेषणों से भी सम्बोधित किया जाता है। जिनसे जैन शब्द की उत्पत्ति हुई है। 'जिन' का परिष्कृत रूप जैन है। जिन के आराधक जैन कहलाते हैं।

जिन मुद्रा केवलज्ञान को सूचित करती है। प्रतिष्ठादि उत्सव के दौरान केवलज्ञान कल्याणक के अवसर पर यही मुद्रा दिखायी जाती है। इस मुद्रा के माध्यम से प्रतिमा पर उस तरह के भावों का आरोपण किया जाता है। उससे केवलज्ञान की समग्र विशेषताएँ प्रतिमा में स्थानान्तरित हो जाती हैं। मनोविज्ञान एवं आधुनिक उपचारों, जैसे हीलिंग, रेकी आदि से भी स्पष्टत: सिद्ध होता है कि चैतन्य शक्ति जड़तत्त्व को प्रभावित करती है तथा जड़ तत्त्व चैतन्य तत्त्व को आकर्षित करता है। इस सिद्धान्त से जिन मुद्रा का सूक्ष्मभाव प्रतिमा में चैतन्य गुणों को प्रकट करता है।

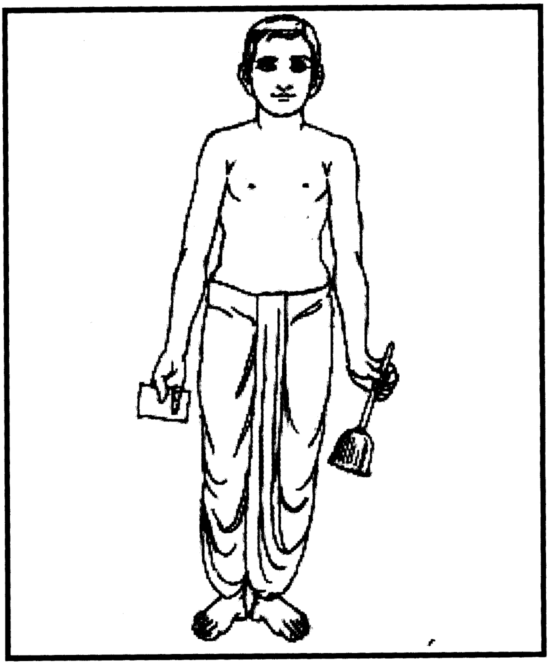

जिन मुद्रा

जिन मुद्रा में शरीर की आकृति जिन अवस्था की भाँति बनती है, इसलिए इसे जिन मुद्रा कहा गया है।

जिन मुद्रा का मूल उद्देश्य जिनेश्वर पद की प्राप्ति है।

विधि

"चतुरंगलमग्रतः पादयोरन्तरं किंचिन्न्यूनं च पृष्ठतः कृत्वा समपादः कायोत्सर्गेण जिन मुद्रा।"

दोनों पाँवों के मध्य अग्रभाग में चार अंगुल और पृष्ठ भाग में चार अंगुल से कुछ कम अन्तर रखकर समान पैरों द्वारा कायोत्सर्ग करने से जिन मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- भौतिक दृष्टि से यह मुद्रा शरीर की समस्त ऊर्जा को एकत्रित करती है। इसका अभ्यास सम्पूर्ण शरीर में रक्त संचालन की क्रिया को नियमित करता है। शरीर के वायु, अग्नि, पृथ्वी तत्त्व संतुलित एवं स्वस्थ बनते हैं। इस मुद्रा का

स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

- थायराइड, पेराथायराइड, एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित कर यह मुद्रा त्वचा, बाल, मासिक धर्म, नाड़ीगति, कमजोरी रक्तचाप, जननेन्द्रिय से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण करने में सहायक है।
- आध्यात्मिक स्तर पर इस मुद्रा से आत्मरमणता की स्थिति प्रकट होती है। विशेष रूप से पाचन एवं विसर्जन तंत्र के कार्यों को यह व्यवस्थित करने में सहयोगी बनती है। यह जीवन में सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करते हुए आत्मविश्वास, परोपकार आदि के भाव जागृत करती है।

इस मुद्रा से साधक का मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं भावनात्मक सन्तुलन बना रहता है। इससे सूक्ष्म शरीर का अनुभव होता है। विकार एवं वासनाजन्य प्रवृत्तियों का शमन होता है।

यह मुद्रा विशुद्धि, मणिपुर एवं मूलाधार चक्र को जागृत करते हुए स्वनियंत्रण, एकाग्रता, अनुशासन आदि में वृद्धि तथा क्रोधादि कषायों को कम करती है।

51. सौभाग्य मुद्रा

सौभाग्य यानी अच्छा भाग्य, अच्छी किस्मत। सौभाग्य शब्द अखंडता, शुभता, मंगल, यश, समृद्धि, प्रतिष्ठा का सूचक है। जैन आम्नाय में अक्षत, वासचूर्ण, नवीन दीक्षार्थी के उपकरण आदि इसी मुद्रा से अभिमन्त्रित करते हैं। इस मुद्रा के द्वारा अक्षत आदि में श्रेष्ठ भावों का आरोपण किया जाता है जिसका सुप्रभाव व्रतग्राही, पदग्राही, नूतन प्रतिमा आदि पर निःसन्देह पड़ता है। बाह्य दृष्टि से यह मुद्रा अखण्ड समृद्धि प्रदान करती है जिसे सामान्यतः कोई नष्ट नहीं कर सकता। आभ्यन्तर दृष्टि से शाश्वत सुख उपलब्ध करवाती है जिसे कोई भी शक्ति खण्डित नहीं कर सकती।

इस तरह सौभाग्य मुद्रा के माध्यम से भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है।

विधि

"परस्पराभिमुखौ ग्रथितांगुलीकौ करौ कृत्वा तर्जनीभ्यामनामिके गृहीत्वा मध्यमे प्रसार्य तन्मध्येऽङ्गुष्ठद्वयं निक्षेपेदिति सौभाग्य मुद्रा।"

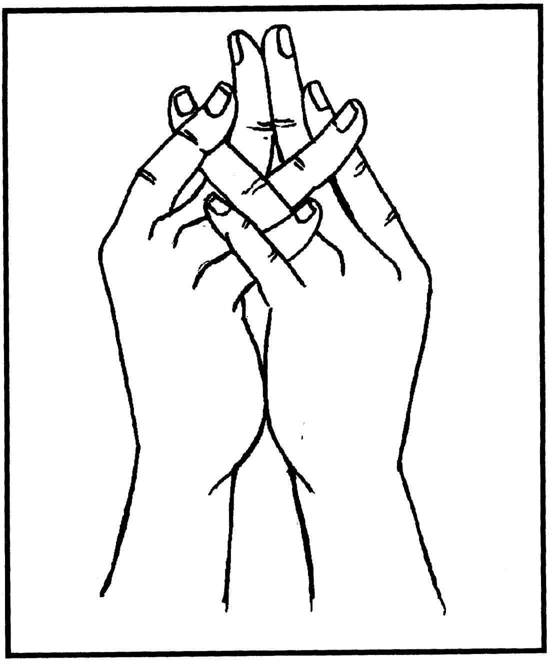

सौभाग्य मुद्रा

दोनों हाथों को आमने-सामने करके अंगुलियों को परस्पर गूंथें। फिर दोनों तर्जनी अंगुलियों के द्वारा दोनों अनामिका अंगुलियों को ग्रहण करवाएं तथा मध्यमा अंगुलियों को फैलाकर उनके बीच में दोनों अंगूठों को रखने पर सौभाग्य मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा वायु सम्बन्धी विकारों को नष्ट करने में सक्षम है।

इस मुद्रा से शरीर के समस्त जोड़ों में लचीलापन आता है। यह मुद्रा नाक, कान, गला, मुँह, स्वरतंत्र, हृदय, फेफड़ा, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली आदि में आए दोषों को दूर करती है। सृजनात्मक एवं सकारात्मक कार्यों में अभिवृद्धि करती है।

यह भौतिक शरीर को स्वस्थता प्रदान करती है। इससे वायुतत्त्व एवं आकाश तत्त्व सम्बन्धी दोष दूर होते हैं। इस मुद्रा के द्वारा मणिपुर चक्र अनावृत्त

अवस्था को प्राप्त करता है जिसके परिणाम स्वरूप पाचन क्रिया के समग्र रसों और स्रावों का समुचित रूप से वर्तन होता है।

• यह मुद्रा थायमस एवं पीयूष ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए आन्तरिक दिव्य शक्तियों का जागरण करती है। मनोवृत्तियों को नियंत्रित कर दुर्गुणों को दूर करती है। बालों से संबंधित किसी भी प्रकार की समस्या, अवसाद आदि में लाभ पहुँचाते हुए बालकों के विकास में सहयोगी बनती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से इस मुद्रा का सम्यक प्रयोगकर्ता उच्च आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त करता है।

यह मुद्रा मानसिक एकाग्रता को बढ़ाकर विशिष्ट लब्धियों की सिद्धि में सहयोग करती है।

चक्र विशेषज्ञों के अनुसार सौभाग्य मुद्रा अनाहत एवं ब्रह्म केन्द्र को कार्यशील करने में सहयोगी बनती है। यह मुद्रा प्रेम एवं भक्ति भाव में भी वृद्धि करती है तथा छल, कपट, सद्कार्यों में अनुत्साह, भय, निर्ममता आदि को कम करती है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर प्रणाली के अनुसार सौभाग्य मुद्रा में जिस बिन्दु के ऊपर दबाव पड़ता है उससे साँस फूलना, आवाज कमजोर होना, सर्दी लगकर बुखार आना, हृदय रोग, छाती दर्द आदि में न्यूनता आती है।

• यह मुद्रा नब्ज शोधन में सहयोग करती है।

• यह मानसिक उग्रता को घटाते हुए हृदय, धमनी सम्बन्धी रोगों का भी उपचार करती है।

52. सबीज सौभाग्य मुद्रा

बीज का अभिप्राय उस सूक्ष्म सत्ता से है जो सांसारिक प्राणियों के लिए अदृश्य है, चर्म चक्षुओं से अगोचर है। इस मुद्राभ्यास से वह सत्ता ज्ञानगोचर एवं आत्मदृश्य बनती है।

बीज को मूल भी कहते हैं इस अपेक्षा से यह सर्वसिद्धियों की मुख्य मुद्रा है।

बीज को उत्पादन शक्ति का मूल माना गया है। जिस प्रकार जीवाणु अथवा वृक्ष बीज तद्योग्य सामग्री का सहयोग पाकर क्रमशः उत्तरोत्तर विकास करता

हुआ पूर्ण स्वरूप को पा लेता है उसी प्रकार इस मुद्रा के प्रयोग से साधक स्वयं में निहित शक्तियों को उजागर कर लेता है, अविकसित आत्मसत्ता को मूल स्वरूप में रूपान्तरित कर देता है।

सबीज सौभाग्य मुद्रा सूक्ष्म तत्त्व की शक्ति को पहचानने, स्वयं के विराटता की अनुभूति करने एवं आत्मा की अनन्त सम्पदाओं को प्रकट करने के उद्देश्य से की जाती है।

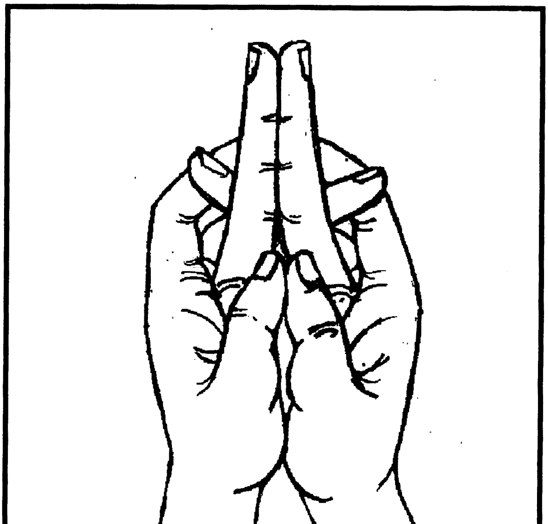

सबीज सौभाग्य मुद्रा

विधि

'अत्रैवांगुष्ठद्वयस्याधः कनिष्ठिकां तदाक्रान्ततृतीयपर्विकां न्यसेदिति सबीज सौभाग्य मुद्रा।''

यह मुद्रा सौभाग्य मुद्रा के समान ही बनायी जाती है। विशेष रचना है कि दोनों अंगूठों को नीचे की ओर करके कनिष्ठिका अंगुलियों का तृतीय पर्व जो आक्रान्त है उस स्थान पर द्वयांगुष्ठों को रखने से सबीज सौभाग्य मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा कर्म शक्ति प्रदान करती है। शारीरिक थकान को दूर करती है। मूत्र सम्बन्धी रोगों में लाभकारी सिद्ध होती है।

इस मुद्रा से वायुतत्त्व एवं आकाश तत्त्व सुचारु रूप से कार्य करते हैं। जिससे गैसजनित, वायुजनित एवं हृदयजनित समस्त बीमारियों से राहत मिलती है।

इससे विशुद्धिचक्र की ऊर्जा ऊर्ध्वाभिमुख बनती है।

• आध्यात्मिक स्तर पर इस मुद्रा के दीर्घाभ्यास से साधक को सबीज समाधि की प्राप्ति होती है जिससे साधक की आत्मा अहम तत्त्व से परे पहुँच जाती है तथा सांसारिक बन्धनों और मोह-माया से ऊपर उठ जाती है।

यह साधक के ब्रह्मचर्य तेज को वृद्धिमान करती है। मनोशक्ति को अभिवृद्ध करने एवं बाहर की ओर निरन्तर बहती हुई विक्षिप्त प्रवृत्तियों का निरोध करने के लिए अत्यन्त उपयोगी मुद्रा है। यह मुद्रा सद्प्रवृत्तियों के जागरण में भी निमित्तभूत बनती है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर के अनुसार इस मुद्रा में जिस बिन्दु के ऊपर दबाव पड़ता है उससे रक्त की अधिक गर्मी कम होती है तथा गुदा के समीपवर्ती क्षेत्र एवं मस्तिष्क में प्रवाहित रक्त संचरण और ऊर्जा संचरण नियमित होता है।

• यह मुद्रा कमर दर्द, घुटना दर्द, मेरुदण्ड के दोष, कब्ज एवं मस्से की बीमारी में लाभ पहुँचाती है।

• इससे सिर में रूसी (खोरा), बाल झड़ना, चर्म रोग, पित्ती आदि का निवारण होता है।

53. योनि मुद्रा (प्रथम)

संस्कृत भाषीय योनि शब्द अनेक अर्थों का बोधक है। योनि के मुख्य रूप से निम्न अर्थ हैं— गर्भाशय, जननेन्द्रिय, जन्म स्थान, मूलस्थान, उद्गम स्थल। यहाँ योनि से अभिप्राय मूल स्थान एवं उद्गमस्थल है।

इस मानव देह में नौ अशुचि स्थान हैं जहाँ से प्रतिसमय अशुचि द्रव्य बहते रहते हैं। इन द्वारों को अशुद्ध द्रव्यों का उद्गम या मूलस्थान कहा जा सकता है। इस मुद्रा के द्वारा नौ द्वारों को अवरुद्ध कर आभ्यन्तर शक्ति को जागृत किया जाता

है। इस मुद्रा में अशुचि के उद्गम स्थानों को आत्मशक्तियों से प्रतिषिद्ध कर देते हैं जिसमें योनि सदृश आकार की संयोजना होती है। इसलिए इसे योनि मुद्रा कहते हैं।

सार रूप में योनि मुद्रा बहिर्निसृत शक्ति प्रवाह को अन्तर्मुखी करने के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

"वामहस्तांगुलि तर्जन्या कनिष्ठिकामाक्रम्य तर्जन्यग्रं मध्यमया कनिष्ठिकाग्रं पुनरनामिकया आकुंच्य मध्येऽङ्गुष्ठं निक्षेपेदिति योनिमुद्रा।"

बाएं हाथ की तर्जनी अंगुली के द्वारा कनिष्ठिका अंगुली को आक्रमित करें। फिर तर्जनी के अग्रभाग को मध्यमा अंगुली के द्वारा तथा कनिष्ठिका के अग्रभाग को अनामिका अंगुली के द्वारा आकुंचित (पकड़) कर मध्य भाग में अंगूठे को रखने से योनि मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा शक्ति केन्द्र (मूलाधार चक्र) और स्वास्थ्य केन्द्र (स्वाधिष्ठान चक्र) को प्रभावित करती है। इससे उभय केन्द्रों का विकास सहज-सरल होता है। इसी के साथ जननेन्द्रिय का क्षेत्र सबल और सक्रिय होता है।

इस मुद्राभ्यास से पृथ्वी एवं जल तत्त्व संतुलित अवस्था को प्राप्त करते हैं तथा तत्सम्बन्धी रोगों से मुक्ति मिलती है।

- आध्यात्मिक स्तर पर इस मुद्रा के प्रभाव से बाह्य अनुराग मन्द होता है। साधक आभ्यन्तर वृत्तियों से परिचय करने में रुचि रखता है और विषय-वासनाएँ धीरे-धीरे समाप्त होती हैं।

विशेष

- एक्यूप्रेशर चिकित्सा के अनुसार यदि गर्भ में पल रहा बच्चा उल्टा हो जाये तो उसे सीधाकर दर्द रहित प्रसव करवाने में यह मुद्रा अत्यन्त उपयोगी है।
- यह मुद्रा सम्पूर्ण शरीर के ग्रन्थि स्राव को संतुलित करती है।
- आँखों से पानी निकलना, शरीर की मांसपेशियों में खिंचाव, पिंडलियों की ऐंठन, लकवा, पैरों के तलवों में जलन आदि विकारों को दूर करती है।
- शरीरस्थ कोलेस्ट्रोल एवं चर्बी को नियन्त्रित करती है तथा प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है।
- यह मुद्रा जलोदर रोग के उपचार में भी सहयोग करती है।

54. योनि मुद्रा (द्वितीय)

आचार्य जिनप्रभसूरि ने योनि मुद्रा के दो प्रकारान्तर बताए हैं। द्वितीय प्रकार का स्वरूप निम्न है–

विधि

"ग्रथितानामंगुलीनां तर्जनीभ्यामनामिके संगृह्य मध्यपर्वस्थांगुष्ठयोर्मध्यमयोः सन्धानकरणं योनिमुद्रा द्वितीया।"

दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर गूंथें। फिर दोनों तर्जनी अंगुलियों के द्वारा दोनों अनामिका अंगुलियों को सम्यक प्रकार से ग्रहण करें। फिर दोनों मध्यमा अंगुलियों के मध्य पर्व पर द्वयांगुष्ठों को स्थिर कर उन्हें एक-दूसरे से योजित करने पर दूसरी योनि मुद्रा बनती है।

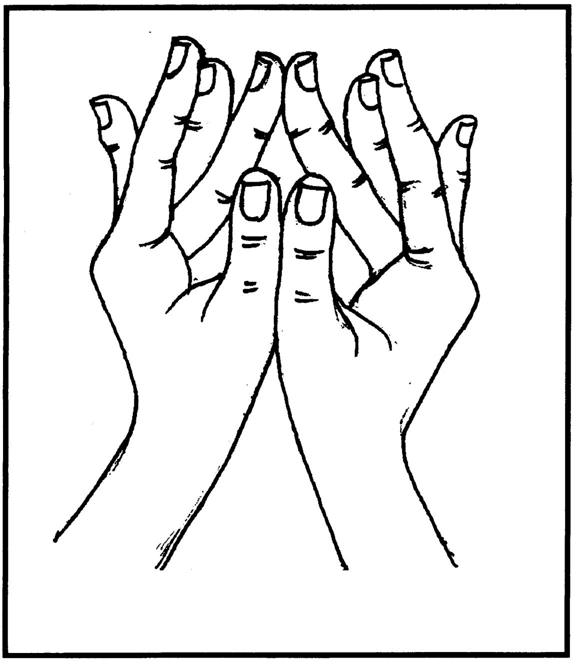

योनि मुद्रा (द्वितीय)

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा मूत्र सम्बन्धी एवं कर्ण सम्बन्धी रोगों में लाभ देती है। इस मुद्रा की मदद से साधक आकाशतत्त्व एवं अग्नि तत्त्व की

कमी या अधिकता से होने वाली बीमारियों से छुटकारा पाता है।

- आध्यात्मिक स्तर पर मन की चंचल वृत्तियाँ शान्त होती हैं। साधक बाह्य आकर्षणों से ऊपर उठकर विषय-विकारों एवं कामवासनाओं से मुक्त बन जाता है। साधना मार्ग में आने वाले विघ्नों से लड़ने की क्षमता प्राप्त होती है। ब्रह्मचर्य शक्ति का विकास होता है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर नियम के अनुसार इस मुद्रा के दाब बिन्दु पित्ताशय की अधिक ऊर्जा को यकृत में प्रवाहित कर लीवर की कमियों को दूर करते हैं।
- रक्तजन्य विकारों का निवारण करते हैं।
- जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों को ठीक करते हैं।

55. गरुड़ मुद्रा

गरुड़ को पक्षियों का राजा कहा गया है। यह सबसे अधिक ताकतवर पक्षी होता है। वैदिक परम्परा गरुड़ को विष्णु का वाहन मानती है जो सम्पूर्ण स्वर्गीय क्षेत्रों में परिवहन करता है। इसे साँपों का नैसर्गिक शत्रु भी माना गया है। कहते हैं कि गरुड़ साँपों को निगल जाता है, सर्प विष को अपने भीतर उंडेल देता है। यही वजह है कि विष संहारक वैद्यों को गारुड़िक कहते हैं। प्रतीकात्मक रूप में इस मुद्रा के प्रयोग से बाह्य या आभ्यन्तर समस्त प्रकार के रोगों का निवारण होता है।

गरुड़ मुद्रा श्रेष्ठता एवं उत्कर्षता की प्रतीक भी है, क्योंकि इस मुद्रा के प्रभाव से साधक हर तरह की शुभ क्रियाओं को अच्छी तरह सम्पन्न कर सकता है। इस मुद्रा को दिखाने का एक प्रयोजन यह भी है कि जैसे मच्छर, खटमल बहुत छोटे होते हैं फिर भी परेशान करते रहते हैं उसी तरह अदृश्य जीव-जन्तु अथवा व्यन्तर आदि देव उपद्रव कर सकते हैं। किसी तरह की हानि पहुँचाकर स्वस्थ चित्त को अस्वस्थ कर सकते हैं। गरुड़ मुद्रा दिखाने से उनके दुर्विचार रूपी विष समाप्त हो जाते हैं। फलत: अनिष्ट की संभावना टल जाती है।

प्रतिष्ठा आदि के अवसर पर मुख्य विधि सम्पन्न करने वाला साधक सर्पादि के बाह्य विष और राग-द्वेषादि के आभ्यन्तर विष से मुक्त रहें, इन उद्देश्यों की परिपूर्ति हेतु गरुड़ मुद्रा की जाती है।

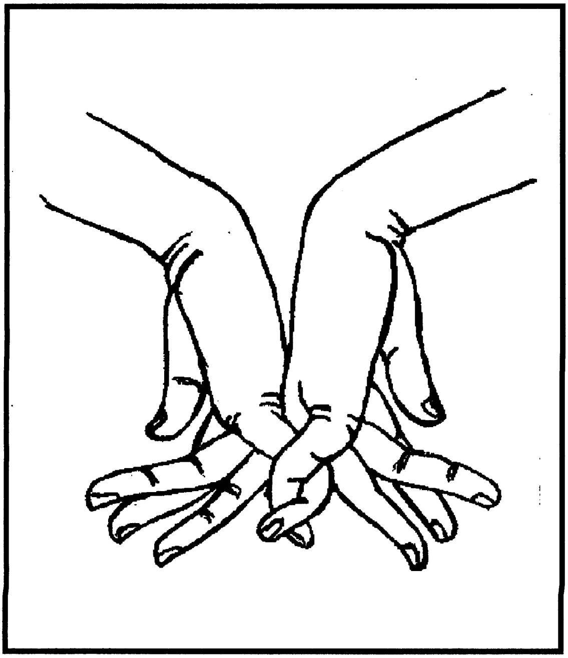

गरुड़ मुद्रा

विधि

"आत्मनोऽभिमुखदक्षिणहस्तकनिष्ठिकया वामकनिष्ठिकां संगृह्याधः परावर्त्तित हस्ताभ्यां गरुड़ मुद्रा।"

दोनों हाथों को स्वयं की ओर अभिमुख करते हुए दाएं हाथ की कनिष्ठिका अंगुली से बाएं हाथ की कनिष्ठिका अंगुली को अच्छी तरह पकड़ लें। फिर हाथों को नीचे की ओर परावर्तित करने पर गरुड़ मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा के अभ्यास से साधक का शरीर रूई की भाँति हल्का हो जाता है।

प्राणशक्ति सम्बन्धी अवरोधों को दूर करने की क्षमता जागृत होती है। जोड़ों में लचीलापन लाने के लिए एवं श्वास सम्बन्धी रोगों से मुक्ति पाने के लिए यह मुद्रा अत्यन्त लाभदायी है। इससे कण्ठ सम्बन्धित तकलीफें भी दूर होती हैं।

यह मुद्रा पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व के असंतुलन से होने वाले रोगों का उपचार करती है।

- मानसिक दृष्टि से मस्तिष्क में एक केन्द्र है जो सम्पूर्ण शरीर की गतिविधियों को नियंत्रण में रखता है उसे सेरेबेलम कहते हैं। यह गर्दन के ऊपर सिर के पिछले भाग में मेरुदंड के शीर्ष में स्थित है। यह मुद्रा उक्त केन्द्र का सन्तुलन बनाये रखने, विकास करने एवं शरीर की गतिविधि को प्रोत्साहित करने में सहायता प्रदान करती है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा अभ्यासी साधक को सांसारिक बन्धनों से मुक्ति दिलाकर उच्च साधना हेतु प्रवृत्त करती है तथा वैचारिक दृढ़ता में सहयोग करती है। इससे साधक को लघिमा सिद्धि की प्राप्ति होती है।

इस मुद्रा के प्रयोग से मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र की शक्तियों का आविर्भाव होता है।

विशेष

- इस मुद्रा में हाथों की आकृति गरुड़ सदृश दिखायी देती है अतः इसे गरुड़ मुद्रा कहते हैं।
- एक्यूप्रेशर चिकित्सा के अनुसार यह मुद्रा मानसिक तनाव, बौद्धिक क्षमता में मन्दता, इन्द्रियों की चंचलता आदि का निवारण करती है।
- हृदय सम्बन्धी रोग, बेहोशी, श्वास नली में सूजन, बेचैनी, एपेन्डिससाइटिस, स्तनों की सूजन में कमी लाती है।
- पित्ताशय को सन्तुलित कर शरीर को स्वस्थता प्रदान करती है।

56. नमस्कार मुद्रा

यहाँ संस्कृतवाची नमस्कार शब्द सादर प्रणाम, सादर अभिवादन का सूचक है। दोनों हाथों को वन्दन की मुद्रा में संयोजित करना, परस्पर मिलाना नमस्कार कहलाता है।

नमस्कार शब्द सुनने में जितना सरल है, उसका प्रयोग उतना ही कठिन है। हर व्यक्ति नमस्कार नहीं कर सकता। जो मान कषाय से रहित हो, पूज्यों के प्रति समर्पण रखता हो, गुणदृष्टि सम्पन्न हो, जिन मर्म को समझा हो, ऋजु परिणामी हो वही नमस्कार कर सकता है। लौकिक व्यवहार में भी यह अनुभव करते हैं कि आम आदमी हर जगह नहीं झुकता है। सामान्यतया नमस्कार अपनों

से बड़ों के प्रति अथवा समान स्तरीय व्यक्ति के प्रति किया जाता है।

नमस्कार श्रद्धा का प्रतीक है, क्योंकि श्रद्धेय के प्रति ही हाथ जुड़ते हैं। नमस्कार अभिवादन का भी प्रतीक है, क्योंकि अतिथि आदि के घर आने पर अथवा अपनों से सहज भेंट होने पर हाथ जोड़कर ही उनका सम्मान किया जाता है।

इस प्रकार यह मुद्रा अहं से अर्हं एवं लघुता से प्रभुता पाने के उद्देश्य से की जाती है।

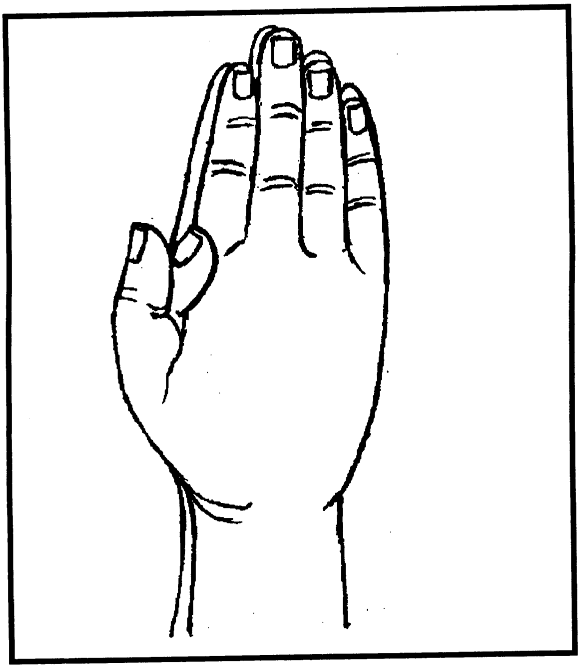

नमस्कार मुद्रा

विधि

"संलग्नौ दक्षिणांगुष्ठाक्रान्तवामांगुष्ठौ पाणी नमस्कृति मुद्रा।"

दोनों हाथों को परस्पर जोड़कर बायें हाथ के अंगूठे से दाहिने हाथ के अंगूठे को आक्रान्त करना नमस्कार मुद्रा है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा शरीर के पंच प्राणों के प्रवाह को नियमित एवं सन्तुलित करती है।

इस मुद्रा में हाथ-पैरों की बीसों अंगुलियों पर, मूलाधार चक्र पर, कुण्डलिनी शक्ति पर, पिंडली की नसों पर दबाव रहता है। इससे उक्त सभी स्थान सक्रिय हो जाते हैं।

इस मुद्रा में हथेलियों एवं अंगुलियों के मध्य पोलापन न रहने से विशेष ऊर्जा का उत्पादन होता है। उस ऊर्जा के द्वारा निसृत तरंगे साधक की भावधारा को अत्यन्त प्रभावी बना देती हैं। साधक के द्वारा निष्ठा और संकल्प शक्ति से किये जा रहे गुणस्मरण आदि का इन तरंगों के साथ समन्वय होने से वे बहुत शक्तिशाली हो जाते हैं, जो पलक झपकते ही सूक्ष्म तरंगों से ब्रह्माण्ड में अपना उद्देश्य प्रसारित कर देते हैं।

आज के इस युग में कम्प्यूटर, कैल्क्युलेटर, रिमोट कन्ट्रोल के भिन्न-भिन्न बटनों को दबाकर सूक्ष्म एवं अगोचर तरंगों का प्रमाण प्रत्यक्ष देख रहे हैं। जिस प्रकार इलेक्ट्रोमेगनेटिक तरंगों की शक्ति से अन्तरिक्ष में भेजे गये रॉकेट को पृथ्वी पर से नियंत्रित कर सकते हैं, लेसर किरणों की शक्ति से लोहे की चद्दरों में छेद कर सकते हैं, आसिलेटर यंत्र की तरंगों से समुद्री चट्टानों का पता लगा सकते हैं। उसी प्रकार हथेली एवं अंगुलियों के जुड़ने से उत्सर्जित तरंगों द्वारा अपनी भावनाओं को इष्ट तक पहुँचा सकते हैं।

इस मुद्रा के प्रभाव से उच्च भावनाएँ जागृत होती हैं। यह मुद्रा अग्नि तत्त्व सम्बन्धी रोगों का शमन कर इस तत्त्व को संतुलित रखती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा क्रोधादि कषाय भावों का शमन कर आपसी प्रेम एवं बन्धुत्व की भावना विकसित करती है।

यह मुद्रा अनाहत चक्र, आनन्द केन्द्र एवं थायमस ग्रन्थि पर विशेष प्रभाव डाल कर कामवासनाओं को मन्द करती है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर के अनुसार जीभ सम्बन्धी रोगोपशमन हेतु यह सर्वोत्तम मुद्रा है।
- इससे अनावश्यक गर्मी का निरसन होता है।
- लगातार लार गिरना, स्वर यन्त्र सम्बन्धी रोगों एवं बोलने सम्बन्धी रोगों में यह मुद्रा आराम देती है।

57. मुक्ताशुक्ति मुद्रा

मुक्ता अर्थात मोती, शुक्त अर्थात सीप। जैन ग्रन्थों के अनुसार सीप दो इन्द्रिय वाला सूक्ष्म जन्तु है। वह सामुद्रिक जल में उत्पन्न होता है। सीप के भीतर मोती की उत्पत्ति होती है। इस मुद्रा को करते वक्त हाथों की आकृति सीप के समान बनती है, इसलिए इसे मुक्ताशुक्ति मुद्रा कहते हैं।

अर्हत् परम्परा में मुक्ताशुक्ति मुद्रा का अत्यन्त महत्त्व है। विशेष तौर पर परमात्मा के दर्शन करते हुए इस मुद्रा का उपयोग होता है। जयवीयराय नाम का सूत्र इसी मुद्रा में बोला जाता है।

अध्यात्म ज्योतिष के अनुसार मोती चन्द्र ग्रह का कारक तत्त्व है। चन्द्र शीतलता का प्रतिनिधि है। इस मुद्रा के माध्यम से मोती का स्मरण करने पर साधक के परिणाम शीतल एवं, शान्त बनते हैं। मोती शुभ्रता-उज्ज्वलता का द्योतक है। अतः इस मुद्रा के प्रयोग से साधक का मन शुभ्र, निर्मल एवं उज्ज्वल बनता है।

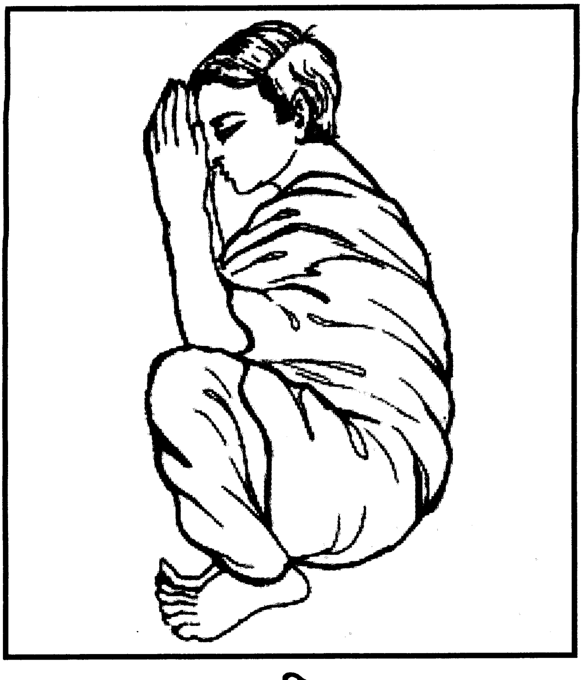

मुक्ताशुक्ति मुद्रा

जब स्वाति नक्षत्र की बूंद सीप में गिरती है तब मोती का उद्भव होता है। उसी तरह जब शुभ भावना रूपी जल से आत्म कल्मषों को दूर किया जाता है तब आत्मा मोती सदृश धवल एवं निर्मल परमात्म पद को वर लेती है।

मोती के सम्बन्ध में कहावत है 'गहरे पानी पैठ' अर्थात समुद्र के गहरे पानी में यह प्राप्त होता है तथा गहन खोज के बाद इसकी प्राप्ति होती है। वैसे ही अन्तर्मग्नता से प्रभु स्तुति करने पर दिव्य पद उपलब्ध होता है। इस तरह मुक्ताशुक्ति मुद्रा के द्वारा अनेक संदेश और प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं।

चेतना मूलतः उज्ज्वल, धवल, शुभ्र स्वरूपी है। किन्तु अभी हमारी आत्मस्थिति सीप में रहे हुए मोती के समान है। जब तक मोती सीप से आवृत्त रहता है उसका कोई मूल्य नहीं आंकता और न ही वह अपने मूल स्वरूप को देख पाता है, परन्तु सीप से अलग होते ही उसका मूल्य बढ़ जाता है। उसी तरह संसारी प्राणियों की आत्मा राग-द्वेषादि अशुभ कर्मों से आवृत्त है। इनसे पृथक होते ही चेतना का मूल रूप प्रकट हो जाता है और उसका मूल्य समझ में आने लगता है।

यह मुद्रा निज स्वरूप की प्रतीति एवं जिनत्व पद की प्राप्ति की भावना से की जाती है।

विधि

''किंचिद्गर्भितौ हस्तौ समौ विधाय ललाटदेशयोजनेन मुक्ताशुक्तिमुद्रा।''

दोनों हाथों को सीप की भाँति बनाकर एवं अंगुलियों के अग्र भागों को समान रूप से योजित कर ललाट प्रदेश पर स्थित करना मुक्ताशुक्ति मुद्रा है।

सुपरिणाम

- वैज्ञानिक दृष्टि से मुक्ताशुक्ति मुद्रा में नमस्कार मुद्रा की तरह अंगुलियों पर दबाव नहीं पड़ता, अतः ऊर्जा तरंगे प्रवाहित नहीं होतीं। नमस्कार मुद्रा में अपने द्वारा किये जा रहे गुणगान, स्तवन आदि के भावों को विश्व में प्रसारित (ट्रान्समीट) करने का कार्य किया जाता है जबकि मुक्ताशुक्ति मुद्रा में ग्रहण (रिसेप्शन) करने का कार्य होता है।

जयवीयराय सूत्र बोलते वक्त एक भक्त प्रभु के समक्ष प्रार्थना करता है कि आपकी कृपा से मुझे भवनिर्वेद, मार्गानुसारिता, इष्टफलसिद्धि, लोकविरुद्ध

कार्यों का त्याग, गुरुजनों की पूजा, सद्गुरु का योग, आज्ञानुसार प्रवृत्ति आदि की प्राप्ति हो।

इससे पृथ्वी, अग्नि एवं आकाश तत्त्व संतुलित रहते हैं परिणामत: हृदय सम्बन्धी रोगों में राहत मिलती है। इस मुद्रा के प्रभाव से मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष जागृत और पुष्ट होते हैं। पीयूष एड्रिनल एवं प्रजनन ग्रन्थियों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। फेफड़ा, उदर एवं मेरुदण्ड स्वस्थ रहता है। यह मुद्रा विसर्जन, पाचन एवं संचरण तंत्र को व्यवस्थित रखती है। इससे मनोविकार घटते हैं एवं परमार्थ में रुचि बढ़ती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से साधक को दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है। साधक सर्वशास्त्रों का ज्ञाता, समदर्शी एवं सर्वकल्याणकारी बनता है।

योगशास्त्रानुसार यह मुद्रा सकारात्मक ऊर्जा को उत्पन्न करते हुए संकल्पबल एवं पराक्रम को बढ़ाती है, आन्तरिक ज्ञान एवं विशिष्ट शक्तियों का जागरण करती है तथा व्यष्टि एवं समष्टि में समन्वय करती है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर चिकित्सा में इस मुद्रा के द्वारा रचनात्मक शक्तियों का संयोजन होता है।
- यह मुद्रा अति ऊर्जा को नीचे की ओर प्रवाहित कर वात दोष को ठीक करती है।
- स्व-संचालित नाड़ी तन्त्र, पीयूष ग्रन्थि, लघु मस्तिष्क, नाक एवं बाईं आँख को नियन्त्रित करती है।
- इससे ज्ञान शक्ति बढ़ती है।
- भौतिक स्तर पर यह मुद्रा पाचन तन्त्र, मस्तिष्क एवं जोड़ों से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण करती है तथा कैन्सर, अल्सर, ब्रेनट्यूमर, मिरगी, अनिद्रा आदि के निवारण में सहायक बनती है।

58. प्रणिपात मुद्रा

प्रणिपात संस्कृत व्याकरण का परिष्कृत रूप है। प्रणिपात का सामान्य अर्थ होता है झुकना। संस्कृत कोश में इसी अर्थ से सम्बन्धित अन्य पर्यायवाची भी कहे गये हैं जैसे- पैरों में गिरना, साष्टांग प्रणाम करना, अभिवादन करना, नमस्कार करना आदि।

प्रस्तुत मुद्रा में शरीर के पाँचों अंग झुकाये जाते हैं अत: इसका दूसरा नाम पंचांग प्रणिपात है। गुजराती में कहावत है "जे नमे ते सहु ने गमे" अर्थात जो व्यक्ति झुकता है वह सब को प्रिय लगता है। यहाँ प्रिय से तात्पर्य कृपा से है। इससे सद्गुरुओं का आशीर्वाद प्राप्त होता है। एक जगह कहा गया है कि "नम्रता से मनुष्य तो क्या देवताओं को भी वश में किया जा सकता है।" शरीर से एवं मन से झुके रहने में बहुत फायदे हैं। झुकने वाला हर तरह की बाधाओं से पार हो जाता है और पूज्यों के अन्त:आशीष से हर कामनाएँ सहज पूर्ण होती हैं।

वस्तुत: प्रणिपात मुद्रा विनय आदि गुणों का सर्जन, अहंकार आदि दुर्गुणों का मर्दन एवं सद्गुरुओं का आशीर्वचन प्राप्त करने हेतु की जाती है।

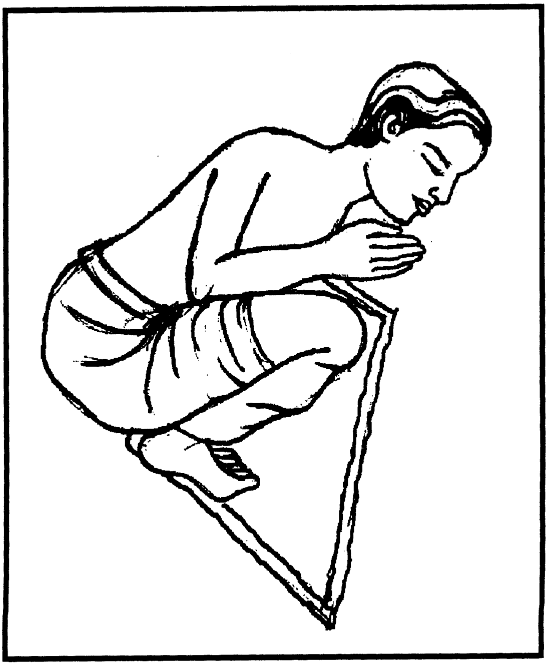

प्रणिपात मुद्रा

विधि

"जानुहस्तोत्तमांगादिसंप्रणिपातेन प्रणिपात मुद्रा।"

दोनों घुटने, दोनों हाथ एवं मस्तक इन पांच अंगों को अच्छी तरह झुकाने पर प्रणिपात मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा के अभ्यास से हमारी अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ स्वच्छ बनती हैं। मल-मूत्र सम्बन्धी विकार दूर होते हैं और वृद्ध भी युवा सदृश शक्ति सम्पन्न हो जाते हैं। उदर भाग की मांसपेशियाँ संतुलित अवस्था में रहती हैं।

इस मुद्रा में किंचित् वज्रासन का भी प्रयोग होता है। उससे जांघ, पिण्डलियों, रीढ़, कमर, पेट आदि के विकार दूर होते हैं और मल द्वार की शुद्धि होती है।

प्रातःकाल में यह मुद्रा करने से प्रमाद दूर होकर मन एकाग्र होता है। एड़ी पर दबाव पड़ने से बवासीर की बीमारी नहीं होती। इससे शरीर के सभी अवयव सक्रिय रहते हैं तथा यह मुद्रा पाँचों तत्त्वों को समान रूप से प्रभावित करती है।

- वैज्ञानिक दृष्टि से मस्तक को भूमि पर स्पर्श करवाने से रेटीकुलर फारमेशन (तांत्रिक जाल) प्रभावित होता है। इससे भय, क्रोध, तृष्णा आदि के भाव मन्द हो जाते हैं और हिंसात्मक उत्तेजनाएँ कम होती हैं।

- आध्यात्मिक स्तर पर मानसिक एकाग्रता एवं सहनशीलता का विकास होता है।

इससे मूलाधार चक्र विशेष प्रभावित होने के कारण इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों में प्राण प्रवाह सम्यक रूप से होता है। इससे व्यक्तित्व विकास में भी अपेक्षित सहयोग मिलता है।

इस मुद्रा में बार-बार मेरुदण्ड पर दबाव पड़ने से वह सुदृढ़, लचीला, स्वस्थ और प्राणवान बनता है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार पैरों के अंगूठों पर दबाव पड़ने से नाड़ियों के साथ मस्तिष्क की पिट्युटरी एवं पीनियल ग्रन्थियाँ भी प्रभावित होती हैं। पिट्युटरी ग्रन्थि शरीर की समस्त अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की अधिनायिका है।

यह कई प्रकार के हार्मोन्स उत्पन्न करती है तथा अन्य ग्रन्थियों का नियंत्रण भी करती है। अब तक की खोज के अनुसार यह ग्रन्थि अस्थियों की वृद्धि, अधिवृक्क, स्तन में दूध की उत्पत्ति, कार्बोहाईड्रेट, अग्नाशय की क्रियाशीलता, रक्तकणों की उत्पत्ति आदि के लिए हारमोन्स का निर्माण करती है।

- इस मुद्रा में विशुद्धि चक्र प्रभावित होने से हकलाना, गूंगापन, हिचकी आदि से राहत मिलती है।

59. त्रिशिखा मुद्रा

सामान्यतया शिखा चोटी को कहते हैं। सिर के ऊपर का भाग शिखा स्थान कहलाता है। शरीर विज्ञान के अनुसार इसे बृहन्मस्तिष्क कहा जाता है। योगशास्त्र के मतानुसार यह चैतन्य संस्थान का सबसे बड़ा केन्द्र है तथा इसे ज्ञानकेन्द्र के रूप में स्वीकारा गया है।

शिखा स्थान को शिखा ग्रन्थि, शिखर, शीर्ष बिन्दु भी कहते हैं। सम्यक ज्ञान का मुख्य स्रोत इसी स्थान पर है। सोलह संस्कारों में चूड़ाकरण नाम का

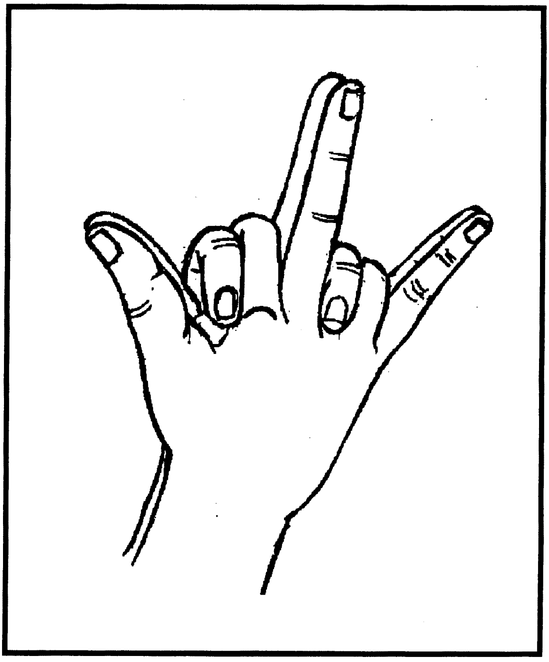

त्रिशिखा मुद्रा

संस्कार है, वह इसी स्थान से संबद्ध है। इस मुद्रा के माध्यम से शिखा स्थान को जागृत करते हैं जिससे अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति होती है।

यहाँ त्रिशिखा शब्द का उल्लेख तीसरे नेत्र की तुलना में किया गया मालूम होता है। जिस तरह दोनों भौंहों के मध्य तीसरे नेत्र का वास है उसी तरह मस्तिष्क पर भी दोनों शिखरों के मध्य इसका निवास है। इस स्थान पर दबाव पड़ने से अथवा इसके जागृत होने पर ब्रह्मनाद सुनाई देने लगता है और दिव्यज्ञान की अनुभूति होने लगती है।

इस मुद्रा को बनाते वक्त तीन शिखाओं जैसा आकार निर्मित होता है। उसमें मध्य शिखा दीर्घाकार बनती है। वह प्रतीक रूप में इस स्थान की उच्चता को दर्शाती है। मूलत: त्रिशिखा मुद्रा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के निमित्त की जाती है।

विधि

'संमुख हस्ताभ्यां वेणीबन्धं विधाय मध्यमांगुष्ठकनिष्ठिकानां परस्पर योजनेन त्रिशिखामुद्रा।''

दोनों हाथों को एक-दूसरे के आमने-सामने करके अंगुलियों को गूंथ दें। फिर मध्यमा को मध्यमा से, अंगूठे को अंगूठे से, कनिष्ठिका को कनिष्ठिका से परस्पर जोड़ने पर त्रिशिखा मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से अग्नि, आकाश एवं जल तत्त्व पर सम्यक् प्रभाव पड़ता है।

इससे पचन-पाचन की क्रिया सुचारु रूप से सम्पन्न होती है। शरीर में वात, पित्त एवं कफ सन्तुलित रहते हैं।

- आध्यात्मिक दृष्टि से मानसिक शान्ति का उद्भव होता है।

यह मुद्रा साधक को सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण से ऊपर उठाकर गुणातीत अवस्था की उपलब्धि में परम सहयोग करती है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर के अनुसार यह मुद्रा बवासीर रोग के उपचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।
- कब्ज, मसा, मिरगी, चक्कर आना, वीर्य मन्दता, कमर दर्द, पाँव और मांसपेशियों की जकड़न आदि को दूर करने में सहायता करती है।
- यह मुद्रा शारीरिक ऊर्जा को संतुलित रखती है।

60. भृंगार मुद्रा

भृंगार कलश एवं घटसूचक शब्द है। संस्कृत कोश के अनुसार सोने का कलश या घट, विशेष आकार का कलश, राज्याभिषेक के अवसर पर प्रयुक्त किया जाने वाला घड़ा भृंगार कहा जाता है।

जैन आम्नाय में इसे अत्यन्त मंगलसूचक माना गया है अत: प्रतिष्ठादि के अवसर पर इसी तरह के कलशों से प्रतिमा-ध्वजदंड आदि का अभिषेक किया जाता है।

यहाँ भृंगार मुद्रा मंगल सूचन के रूप में दिखायी जाती है ताकि अभिषेक क्रिया प्रारम्भ होने से पूर्व ही मंगलमय वातावरण उपस्थित हो जाये।

भृंगार मुद्रा

विधि

"पराङ्मुखहस्ताभ्यामंगुली विदर्भ्य मुष्टिं बद्ध्वा तर्जन्यौ समीकृत्य प्रसारयेदिति भृंगारमुद्रा।"

दोनों हाथों की अंगुलियों को अधोमुख करते हुए उन्हें अलग-अलग कर

दें। फिर दोनों हाथों की परस्पर मुट्ठी बाँधकर, तर्जनी अंगुलियों को आपस में सम्मिलित कर प्रसारित करने से भृंगार मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा के प्रयोग से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। उदर सम्बन्धी रोगों का शमन होता है। शरीर में ऊर्जा की कमी दूर होती है। इससे आकाश तत्त्व अधिक सक्रिय बनकर हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण करता है। यह मुद्रा श्वास पर नियन्त्रण कर श्वास गति को धीमा करती है।
- वैज्ञानिक स्तर पर लघु मस्तिष्क (ज्ञान केन्द्र) प्रभावित होने से ज्ञानतंतुओं को क्रियाशील बनाता है। इससे बौद्धिक क्षमता विकसित होती है तथा स्वास्थ्य केन्द्र समस्थिति में बना रहता है।
- आध्यात्मिक स्तर पर विवेक का दीपक प्रज्वलित होकर असाध्य समस्याओं का निराकरण होता है।

61. योगिनी मुद्रा

जैन परम्परा में चौसठ योगिनी की अवधारणा प्राप्त होती है। वर्तमान परम्परा में प्रतिष्ठा के समय, पूर्व निर्धारित पट्ट पर योगिनियों का नामोच्चारण करते हुए तिलक आदि द्वारा पूजा की जाती है। विधिमार्गप्रपा के कर्त्ता आचार्य जिनप्रभसूरि ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट कहा है कि योगिनियों की पूजा करने के पश्चात ही आचार्य को नन्दी, प्रतिष्ठा आदि कार्य करने चाहिए।

डॉ. सागरमलजी जैन के अनुसार योगिनी साधना-उपासना के उल्लेख प्रथमत: ब्राह्मण परम्परा में प्राप्त होते हैं। वहीं से यह जैन परम्परा में प्रविष्ट हुई है। लगभग 10वीं-11वीं शती से ब्राह्मण परम्परा के समान ही जैन परम्परा में भी चौसठ योगिनियों के उल्लेख मिलते हैं। जैन ग्रन्थों में ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं कि जैनाचार्य इन योगिनियों की साधना कर उन्हें अपने वश में कर लेते थे और उनसे धर्म प्रभावना के निमित्त इच्छित कार्य करवाते थे। नेमिचन्द्रसूरि विरचित आख्यानकमणिकोश (11वीं शती) में उल्लेख है कि राजा नन्द के रोग को दूर करने के लिए योगिनी पूजा की गई थी। निर्वाणकलिका में (11वीं-13वीं शती) तो योगिनीस्तोत्र भी मिलता है। विधिमार्गप्रपा (14वीं शती) में चौसठ योगिनियों को उपशान्त करने हेतु पूजा करने का उल्लेख है। खरतरगच्छ पट्टावली में जिनदत्तसूरि द्वारा योगिनियों को पराजित करने अथवा वश में करने

का स्पष्ट उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि भले ही योगिनी साधना का सम्बन्ध मूलतः ब्राह्मण परम्परा से रहा हो, किन्तु कालान्तर में जैन परम्परा में भी वह स्वीकृत हो गई।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि जैन परम्परा में सामान्यतया इन योगिनियों को आत्म साधना में बाधक या विघ्न उपस्थित करने वाली ही माना गया है, किन्तु सम्यक दृष्टि क्षेत्रपाल (भैरव) के माध्यम से इन्हें वशीभूत किया जा सकता है और यही कारण है कि जैन परम्परा में क्षेत्रपाल उपासना और योगिनी साधना साथ-साथ ही रही है। खरतरगच्छ पट्टावली के अनुसार जिनदत्तसूरि ने भैरव के माध्यम से ही 64 योगिनियों की साधना की थी। विधिमार्गप्रपा में योगिनी मुद्रा और क्षेत्रपाल मुद्रा की चर्चा साथ-साथ की गई है।

उक्त वर्णन से प्रमाणित होता है कि योगिनी मुद्रा उन्हें तुष्ट रखने एवं शुभ प्रसंगों में उपस्थित विघ्नों का उपशमन करने के निमित्त की जाती है।

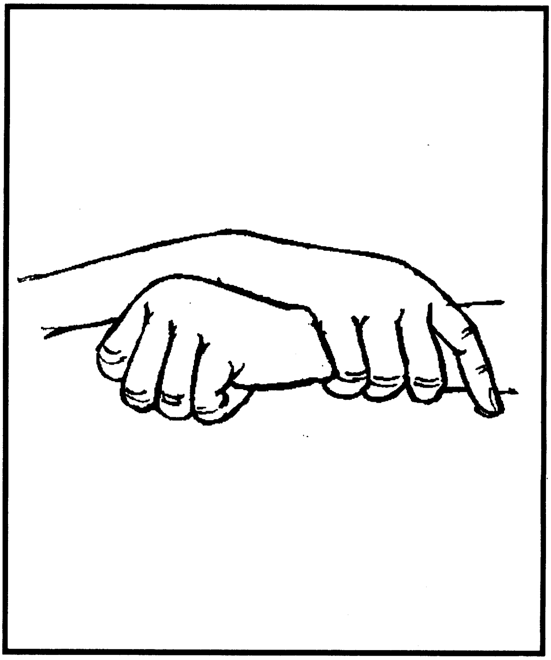

योगिनी मुद्रा

विधि

"वामहस्तमणिबन्धोपरि पराङ्मुखं दक्षिणकरं कृत्वा कर शाखा विदर्भ्य किंचिद्वामचलने नाधोमुखांगुष्ठाभ्यां मुष्टिं बद्ध्वा समुत्क्षिपेदिति योगिनी मुद्रा।"

बायें हाथ के मणिबन्ध के ऊपर दाहिने हाथ को उल्टा रखकर अंगुलियों को फैला दें। फिर बायें हाथ को कुछ चलाते हुए एवं अधोमुख किये हुए अंगूठों के द्वारा मुट्ठी बांधकर उन्हें अच्छी तरह ऊपर की ओर उठाने पर योगिनी मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा नाड़ी तंत्र को सक्रिय रखने के लिए श्रेष्ठ है। इस मुद्रा का प्रयोग मूत्र एवं श्वास सम्बन्धी रोगों में लाभ देता है। इसके प्रभाव से अग्नि एवं वायु तत्त्व संतुलित रहते हैं। जिससे शरीर में रक्तप्रवाह नियमित क्रम में रहता है।
- आध्यात्मिक स्तर पर इस मुद्राभ्यास से मन की एकाग्रता में वृद्धि होती है। यह मुद्रा मन की चंचलता को शान्त कर उसे साधना की ओर प्रवृत्त करती है। इससे संकल्प शक्ति दृढ़ होती है और चेतना जागृत हो जाती है।

इस मुद्रा के द्वारा मणिपुर चक्र और विशुद्धि चक्र जागृत होते हैं। उससे साधक में महाकवि, महाज्ञानी, शोकविहीन, और दीर्घजीवी होने का सामर्थ्य प्राप्त होता है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर विज्ञान के अनुसार योगिनी मुद्रा वाणी सम्बन्धी समस्याओं के निवारण हेतु परम उपयोगी है।
- यह मुद्रा अस्थमा रोग, मनोभ्रान्ति, लीवर एवं फेफड़े में वात के कारण उत्पन्न रोगों का शमन करती है।
- नाक से खून बहना, गला अवरुद्ध हो जाना, सिर दर्द, हृदयरोग, मानसिक उग्रता, सांस फूलना, छाती में भारीपन, कमजोरी आदि को ठीक करती है।

62. क्षेत्रपाल मुद्रा

क्षेत्र अर्थात अधिकृत क्षेत्र विशेष, पाल अर्थात रक्षा करने वाले। स्पष्टार्थ है कि क्षेत्र विशेष के रक्षक देव, क्षेत्र विशेष के अधिष्ठायक देव क्षेत्रपाल कहलाते हैं।

जैन आम्नाय के अनुसार पृथ्वी का सम्पूर्ण भू-भाग देवों से अधिष्ठित है। क्षेत्र विभाग के आधार पर भिन्न-भिन्न क्षेत्र के भिन्न-भिन्न अधिष्ठायक होते हैं। जो देव जिस क्षेत्र के अधिष्ठाता होते हैं उस पृथ्वी पर उनका सर्वाधिकार होता है। सामान्यतया सभी क्षेत्र के अधिष्ठायक जागरूक होते हैं और स्थान की विशेष ख्याति बढ़ाते हैं जैसे शिखरजी तीर्थ के क्षेत्रपाल भोमियाजी, नाकोड़ा तीर्थ के क्षेत्रपाल भेरूजी, महुड़ी तीर्थ के क्षेत्रपाल घण्टाकर्णजी आदि अपने क्षेत्र की प्रतिपल शोभा बढ़ा रहे हैं।

जैन मुनि कंकड़ जैसी तुच्छ वस्तु को भी **'अणुजाणह जस्सावग्गहो'** ऐसा कहते हुए क्षेत्रदेवता की अनुमति पूर्वक मार्ग की वस्तु ग्रहण करते हैं अन्यथा उन्हें सूक्ष्म चोरी का दोष लगता है। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा में

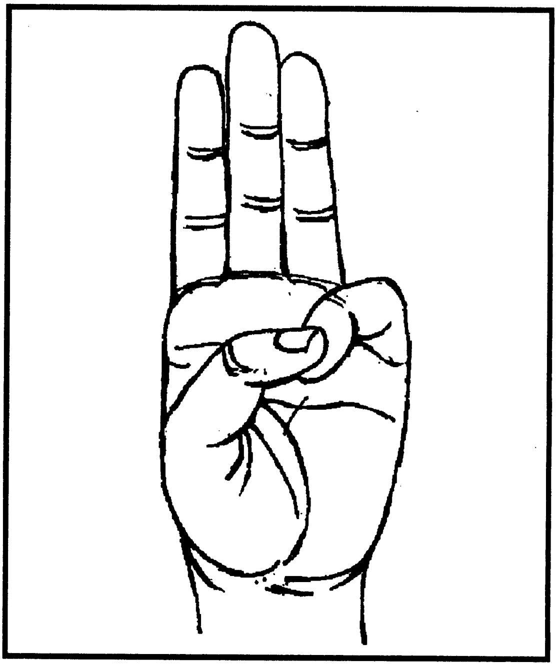

क्षेत्रपाल मुद्रा

सन्ध्याकालीन प्रतिक्रमण करते वक्त क्षेत्रदेवता की आराधना के निमित्त कायोत्सर्ग करते हैं। योगिनी मुद्रा में निर्दिष्ट वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि क्षेत्रपाल देव सम्यक्त्वी होते हैं और सदनुष्ठानों में सहयोग करते हैं। प्रतिष्ठा के प्रसंग पर इस मुद्रा को दिखाने का ध्येय यह है कि इससे जिनालय परिसर के अधिष्ठायक देव प्रसन्न रहें तथा उस क्षेत्र की रक्षा करने हेतु सदैव तत्पर रहें। तत्स्थानीय देवों को अपने कर्तव्य की स्मृति दिलाने के उद्देश्य से भी क्षेत्रपाल मुद्रा की जाती है।

विधि

"ऊर्ध्वशाखं वामपाणिं कृत्वाऽङ्गुष्ठेन कनिष्ठिकामाक्रमयेदिति क्षेत्रपालमुद्रा।"

बायें हाथ की अंगुलियों को ऊर्ध्व प्रसरित करते हुए अंगूठे के द्वारा कनिष्ठिका को आक्रमित करने पर क्षेत्रपाल मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा रक्त की शुद्धि करते हुए त्वचा को मुलायम बनाती है और चर्म रोगों में आराम देती है।

इस मुद्रा के दीर्घ प्रयोग से शरीर में जल तत्त्व घटता है तथा जल तत्त्व की अधिकता से होने वाले रोग जैसे सूजन, जलोदर आदि दूर हो जाते हैं।

• शरीर की दुर्बलता और विचारों की कठोरता दूर होती है। श्वासनली स्वस्थ रहती है। इससे वायु तत्त्व सम्बन्धी तकलीफों में भी राहत मिलती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा साधक की साधना को सफल बनाकर उसे मान- सम्मान एवं प्रतिष्ठा दिलाती है।

इससे उदार भावना का विकास होता है। सूक्ष्म तत्त्व का साक्षात्कार होता है।

यह मुद्रा अनाहत चक्र को जागृत करने में सहयोग करती है। इस चक्र के जाग्रत होने पर साधक में अद्‌भुत कवित्वशक्ति और वाक्‌सिद्धि प्राप्त होती है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर रिफ्लेक्सोलोजी के अनुसार यह मुद्रा मानसिक अवसाद, बौद्धिक क्षमता में कमी, कार्य में मन का न जुटना आदि दोषों का निवारण करती है।

• हृदय सम्बन्धी रोग, धड़कन बढ़ना, श्वास नली में सूजन, बेचैनी, कर्ण सम्बन्धी रोग, गर्दन की अकड़न दूर करती है।

• इस मुद्रा के द्वारा प्रभावित दबाव बिन्दु से शारीरिक ऊर्जा एवं पित्ताशय सुचारु रूप से क्रियाशील रहते हैं।

63. डमरूक मुद्रा

एक प्रकार का अव्यक्त शब्द वाला बाजा डमरू कहलाता है। इस वाद्य यन्त्र को प्राय: कापालिक साधु बजाया करते हैं। वैदिक मान्यतानुसार भगवान शिव के हाथ में हमेशा डमरू रहता है। इस परम्परा में शिव को नृत्य का देवता भी माना गया है। इससे यह रहस्य प्रकट होता है कि शिव भगवान नृत्य के समय डमरू का उपयोग करते हैं। शिव, संहारक शक्ति के देवता भी माने जाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि भगवान शिव क्रोधावेश के समय डमरू का प्रयोग करके प्राणी मात्र को भयभीत करते हों अथवा संहार लीला की सूचना देते हों।

मदारी भी बन्दर, सूअर आदि को नचाने के लिए डमरू ही बजाते हैं।

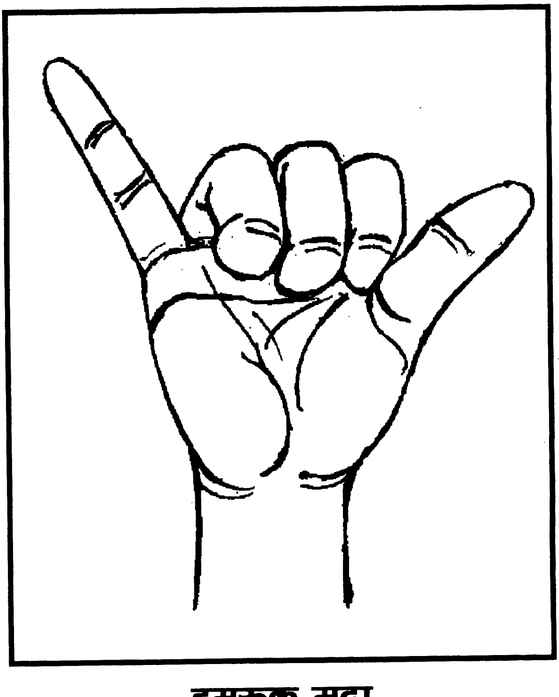

डमरूक मुद्रा

लौकिक दृष्टि से किसी नगर आदि में अथवा नगर के बाह्य भाग में बाघ आदि हिंसक जानवर प्रवेश कर जाए तो उन्हें भगाने के लिए ढोल बजाते हुए जाते हैं। उक्त वर्णन से यह प्रमाणित होता है कि डमरू एक ऐसा वाद्य है जिसकी ध्वनि को सुनने से किसी तरह का भय उपस्थित हो तो उसका निवारण होता है।

प्रतिष्ठा आदि के अवसर पर आमन्त्रित देवी-देवताओं के द्वारा वातावरण को नृत्यमय एवं अधिक मनोहर बना दिया जाए संभवत: इसी प्रयोजन से डमरू मुद्रा दिखाई जाती है।

विधि

"दक्षिणकरेण मुष्टिं बद्ध्वा कनिष्ठिकांगुष्ठौ प्रसार्य डमरू कवच्चालयेदिति डमरूक मुद्रा।"

दाहिने हाथ की मुट्ठी बांधकर तथा कनिष्ठिका और अंगूठे को प्रसारित करके डमरू के समान हाथ को चलाने पर डमरूक मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

● शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा के प्रभाव से त्रिदोषों का नाश होकर शरीर स्वस्थ रहता है।

यह मुद्रा आकाशतत्त्व और जलतत्त्व को नियन्त्रित रखती है।

इससे ग्रीवा सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है।

● आध्यात्मिक स्तर पर यह मुद्रा नादानुसन्धान की प्रवृत्ति को विकसित करती है, जिससे साधक नाद ब्रह्म की ध्वनि को स्पष्ट सुन सकता है। यह मुद्रा सुषुप्त शक्तियों को जागृत करती है।

इससे स्वाधिष्ठान और आज्ञा चक्र जाग्रत होते हैं।

आज्ञा चक्र के सक्रिय होने से चेतना नियन्त्रण की सामर्थ्य शक्ति विकसित हो जाती है।

स्वाधिष्ठान चक्र के जागृत होने पर व्यक्ति में उत्साह और स्फूर्ति आती है तथा सुस्तीपन आदि दूर होते हैं।

विशेष

● एक्यूप्रेशर चिकित्सज्ञों के अनुसार डमरूक मुद्रा बनाते समय मूलाधार चक्र पर दबाव पड़ता है जिसके कारण जननेन्द्रिय तन्त्र स्वस्थ रहता है। इससे अनियमित मासिक धर्म, लैंगिक विकार, कमर के नीचे के हिस्से के रोग, नपुंसकता आदि विकार शान्त होते हैं।

64. अभय मुद्रा

जिस मुद्रा के द्वारा समस्त प्रकार के भयों को दूर किया जाता है उसे अभय मुद्रा कहते हैं। भगवान महावीर ने अभय मुद्रा का प्रयोग कर चण्डकौशिक जैसे हिंसक प्राणी का उद्धार किया था।

अभय मुद्रा को देखकर चित्त शुद्धि का संकेत मिलता है। इस मुद्रा के प्रयोग से आत्मतुला का सिद्धान्त पुष्ट होता है। प्रतीकात्मक दृष्टि से यह मुद्रा मैत्री-दया आदि भावों का सूचक है। यह मुद्रा निश्छल प्रेम की संवाहक है। इस मुद्रा के माध्यम से अभय गुण को प्रकट किया जा सकता है।

प्रतिष्ठा आदि के प्रसंग पर प्राणी मात्र को भयमुक्त करने एवं अरिहंत परमात्मा के सर्वोत्तम गुण को प्रकाशित करने के उद्देश्य से अभय मुद्रा दिखाई जाती है।

विधि

''दक्षिणहस्तेनोर्ध्वांगुलिना पताकाकरणादभय मुद्रा।''

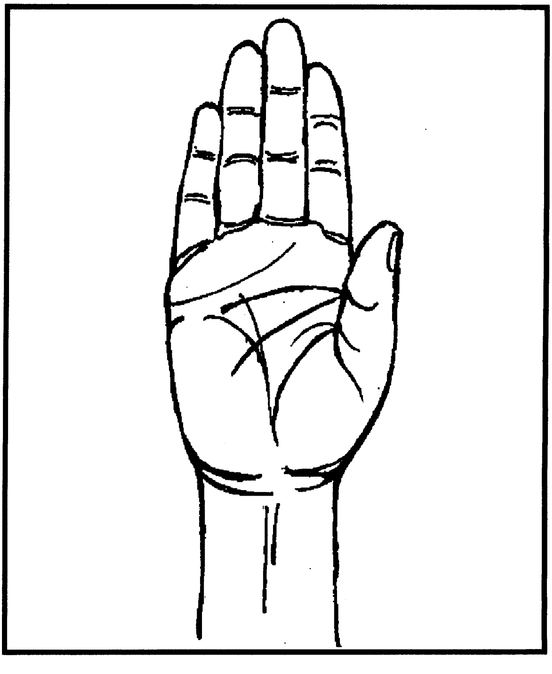

अभय मुद्रा

दाएं हाथ की अंगुलियों को ऊपर की ओर करके उन्हें पताका के आकार के समान करने पर अभय मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा का प्रयोग अनियन्त्रित ऊर्जा को नियन्त्रित करता है।

इससे वायु और आकाश तत्त्व सर्वाधिक रूप से प्रभावित होते हैं। परिणामत: हृदय सम्बन्धित एवं वायु सम्बन्धित तकलीफों से आराम मिलता है। इच्छाशक्ति का विकास होता है।

• आध्यात्मिक स्तर पर यह मुद्रा साधक के उद्वेगों को शान्त कर प्रेम, करुणा, दया और अपरिग्रह की भावना को बढ़ाती है।

इस मुद्रा के द्वारा अनाहत चक्र जागृत होने के कारण सहानुभूति, सेवा, सहकारिता और उदारता जैसे सद्गुणों का आविर्भाव होता है।

इस मुद्रा की मदद से आज्ञा चक्र भी प्रभावित होता है उससे शुभाशुभ वृत्तियों का निरोध होने लगता है।

65. वरद मुद्रा

वरद आशीर्वाद सूचक शब्द है। 'वर' अर्थात श्रेष्ठ, 'द' अर्थात देने वाला – जिस मुद्रा के द्वारा श्रेष्ठ वस्तु की प्राप्ति हो उसे वरद मुद्रा कहते हैं। संस्कृत कोश के अनुसार वर देने वाला, वरदान प्राप्त करने वाला, वरद कहलाता है। यहाँ वर से तात्पर्य मंगल आशीर्वाद से है।

भारतीय संस्कृति में किसी भी शुभ कार्य का प्रारम्भ करने से पूर्व पूज्यजनों का आशीर्वाद ग्रहण करते हैं। साथ ही इष्ट देवों का स्मरण भी किया जाता है ताकि उनकी सद्भावनाओं का हमें बल मिल सकें। आशीर्वाद प्राप्ति से न केवल वांछित सिद्धि होती है प्रत्युत असाध्य विघ्नों का निवारण भी होता है।

वरद मुद्रा के माध्यम से श्रेष्ठ कार्य अबाधित रूप से सम्पन्न होते हैं अत: यह मुद्रा प्रासंगिक है।

विधि

''तेनैवाधो मुखेन वरद मुद्रा।''

अभय मुद्रा को अधोमुख करने पर वरद मुद्रा बनती है।

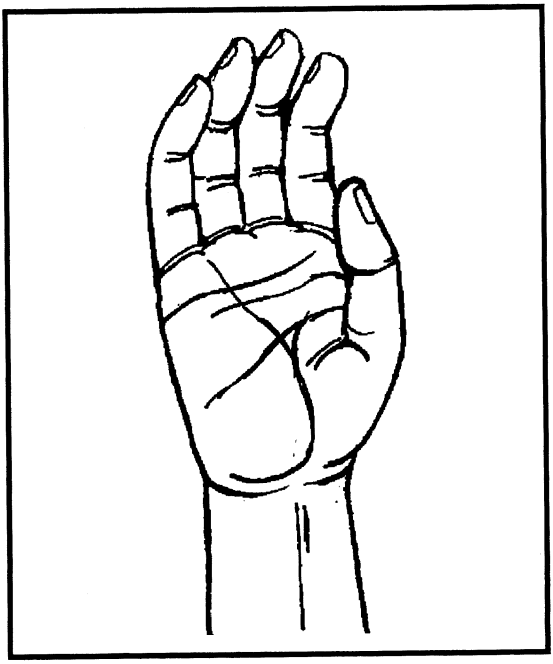

वरद मुद्रा

सुपरिणाम

● शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा के द्वारा अभय मुद्रा के सभी लाभ प्राप्त होते हैं।

इस मुद्रा से अग्नि तत्त्व और जलतत्त्व अधिक सक्रिय बनते हैं तथा इनमें रासायनिक परिवर्तन होता है।

इस मुद्रा के परिणामस्वरूप शरीर में अधिक सर्दी या अधिक गर्मी हो तो वह समस्थिति में हो जाती है, परिणामत: चित्तवृत्तियाँ शान्त एवं निराकुल बनती हैं जो आशीर्वाद के रूप में अन्य को लाभ पहुँचाती है।

● आध्यात्मिक स्तर पर साधक के मन में उच्च भावनाओं का वेग बढ़ता है।

मणिपुर चक्र जागृत होने से साधक की समस्त मनो-दैहिक व्याधियाँ और मनोविकृतियाँ नष्ट हो जाती हैं। इससे स्वाधिष्ठान चक्र सक्रिय होने के कारण साधक को वाक्सिद्धि की प्राप्ति होती है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर अनुभवियों के अनुसार प्राणिक ऊर्जा की प्राप्ति हेतु यह मुख्य मुद्रा है।
- इस मुद्रा के दाब बिन्दु निमोनिया, टी.बी., सफेद दाग, मुँह से खून आना, खाली पेट उल्टी होना, लघु श्वास, छाती दर्द, कन्धा दर्द, सन्धिवात, गठिया आदि बीमारियों से छुटकारा दिलाते हैं।

66. अक्षसूत्र मुद्रा

संस्कृत भाषा का अक्ष शब्द विविध अर्थों में प्रयुक्त होता है। अक्ष का एक अर्थ रुद्राक्ष है तथा सूत्र का मतलब डोरी (धागा) से है। धागे में पिरोये गये रुद्राक्ष को अक्षसूत्र कहा जाता है। अक्षसूत्र पहनने अथवा जाप करने में उपयोगी बनता है। यहाँ अक्षसूत्र के द्वारा जाप करने का प्रयोजन सिद्ध होता है।

प्रतिष्ठा के अवसर पर जाप का प्रसंग बहुत बार उपस्थित होता है। दूसरे, रुद्राक्ष के मणके इष्ट कार्यों की सिद्धि हेतु उत्तम माने गये हैं। फिर अक्षसूत्र मुद्रा

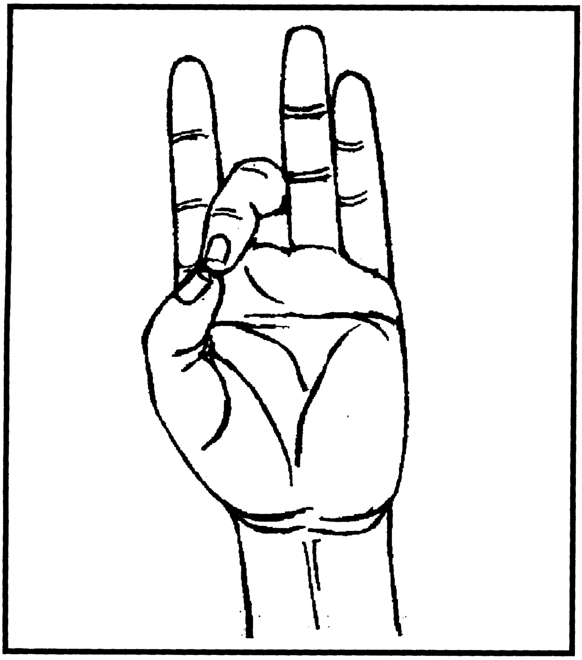

अक्षसूत्र मुद्रा

में मध्यमा जाप की मुद्रा का आकार भी निष्पन्न होता है।

वैज्ञानिक भी रुद्राक्ष को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने अनुसंधान के आधार पर सिद्ध किया है कि इसे धारण करने से अथवा जाप आदि में इसका प्रयोग करने से हृदय की गति स्थिर रहती है। इस तरह रुद्राक्ष मुद्रा बाह्य और आभ्यन्तर समृद्धि का प्रतीक है।

विधि

"वामहस्तस्य मध्यमांगुष्ठयोजनेन अक्षसूत्रमुद्रा।"

बायें हाथ की मध्यमा अंगुली और अंगूठे का संयोजन करने पर अक्षसूत्र मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से इसका प्रयोग श्रवण शक्ति को बढ़ाता है। यह मुद्रा वात रोगों में लाभदायी है। इससे आकाश तत्त्व संतुलित रहता है। इसी कारण हृदय गति रूकने की स्थिति नहीं बनती।

शरीर और नाड़ी तन्त्र की शुद्धि होती है। उदर के विविध अवयवों की क्षमता बढ़ती है। नाभि प्रदेश के विकार दूर होकर मल-मूत्र के दोष विसर्जित हो जाते हैं तथा शरीर निर्मल बनता है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से निर्णय क्षमता विकसित होती हैं।

साधक उदार हृदयी बनता है। साधक की समस्त गतिविधियाँ आत्म सजगता से अनुपूरित होती है तथा उसे परमार्थ में रस आने लगता है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर प्रणाली के अनुसार नाक सम्बन्धी विकारों से राहत पाने हेतु यह अत्यन्त उपयोगी मुद्रा है।

• यह मुद्रा जल तत्त्व की अधिकता को दूर करती है।

• शरीर के तरल पदार्थों के प्रवाह को नियमित करती है।

• इससे आँख सम्बन्धी दोष, टांसिल, मानसिक पिछड़ापन एवं मासिक धर्म सम्बन्धी विकारों का निवारण होता है।

67. बिम्ब मुद्रा

बिम्ब, यह प्रतिमा का सूचक शब्द है। जैन आम्नाय में जिन प्रतिमा को बिम्ब भी कहते हैं। संस्कृत कोश में भी बिम्ब का एक अर्थ 'प्रतिमा' किया गया है। इस आधार पर अरिहंत परमात्मा की प्रतीकात्मक मुद्रा बिंब मुद्रा कहलाती है।

प्रतिष्ठा प्रसंग पर यह मुद्रा स्थापना निक्षेप का आरोपण करने अथवा अरिहंत शक्ति को बिम्ब में संक्रमित करने के उद्देश्य से दिखायी जाती है।

विधि

"पद्ममुद्रैव प्रसारितांगुष्ठसंलग्नमध्यमांगुल्यग्रा बिंबमुद्रा।"

दोनों हाथों की अंगुलियों को पद्म मुद्रा की भाँति प्रसारित करते हुए मध्यमा अंगुली के अग्रभाग को अंगुष्ठ से संलग्न करने पर बिम्ब मुद्रा बनती है।

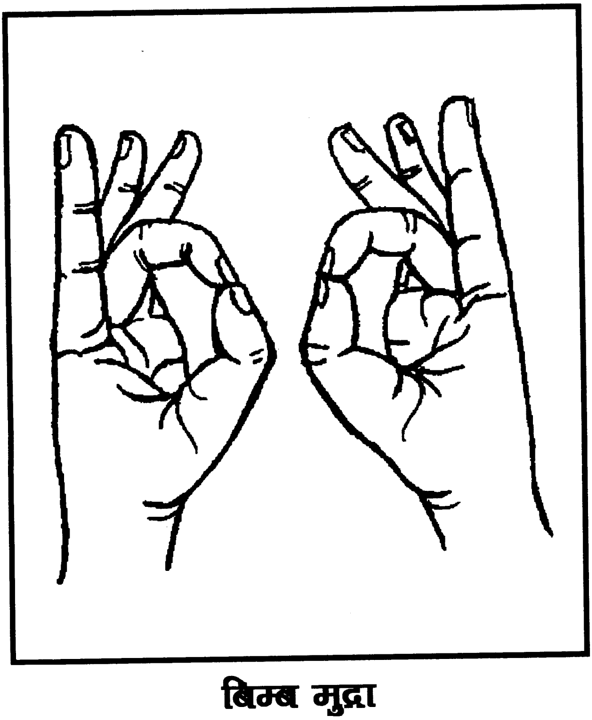

बिम्ब मुद्रा

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा हृदय की सुरक्षा के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह जठराग्नि को प्रदीप्त कर उदर सम्बन्धी विकारों का शमन

करती है। यह प्राण, अपान एवं उदान वायु के प्रवाह को सन्तुलित करती है। इससे दैहिक दौर्बल्य का निर्गमन होता है। इस मुद्रा के प्रभाव से वायु और आकाश तत्त्व निरोग अवस्था में रहते हैं। यह नेत्र शक्ति में भी लाभ पहुँचाती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से साधक के मन में उच्च भावनाओं का प्रस्फुटन होता है।

यह मुद्रा मस्तिष्क शक्ति को बढ़ाकर मन को ध्यान की ओर प्रवृत्त करती है और वैचारिक द्वन्द्व समाप्त कर मैत्री भावना विकसित करती है।

इस मुद्राभ्यास से अनाहत चक्र और आज्ञाचक्र का जागरण होता हैं। परिणामत: मोहदशा न्यून होती है और अहंकार, कपट, दुराग्रह जैसे दुर्गुण नष्ट हो जाते हैं।

विशेष

- एक्यूप्रेशर के अनुसार यह मुद्रा अक्षसूत्र मुद्रा के समान लाभकारी है।
- इसके अतिरिक्त बिंब मुद्रा में सहस्रार चक्र पर दबाव पड़ता है। इससे आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है।
- यह ऐच्छिक नाड़ी तन्त्र, हाइपोथेलेमस ग्लान्ड, पीनियल ग्लान्ड के स्रावों को नियन्त्रित करती है।
- मानसिक गड़बड़ियों को दूर करने में भी सहयोग करती है।

68. प्रवचन मुद्रा

प्रवचन का शाब्दिक अर्थ होता है प्रकृष्ट वचन, उत्तम वचन, श्रेयस्कारी वचन। सामान्यतया साधु-सन्तों, ऋषि-साधकों द्वारा दिये गये उपदेश को प्रवचन कहते हैं। उपदेश दान की भी एक विधि होती है। जैन परम्परानुसार उपदेश करते हुए दाहिने हाथ के अंगूठे को तर्जनी के अग्रभाग से संयुक्त करके रखना चाहिए। क्योंकि यह मुद्रा करने पर अग्नि तत्त्व (अंगूठा) और वायु तत्त्व (तर्जनी) का संयोग होता है उससे मस्तिष्क स्थानीय पीनियल एवं पीयूष ग्रन्थियाँ जागृत होकर ज्ञान तंतुओं को क्रियाशील करती हैं। वैसे भी मस्तिष्क ज्ञान का केन्द्र है अत: बौद्धिक क्षमता का उत्पादन होता है।

प्रतिष्ठा के अन्तिम दिन आचार्य भगवन्त के द्वारा प्रतिष्ठा की महिमा के सम्बन्ध में मार्मिक प्रवचन दिया जाता है। इसीलिए प्रवचन मुद्रा का उल्लेख है। इस मुद्रा के माध्यम से गणधर परम्परा को भी बल मिलता है क्योंकि गणधर

आदि पूर्वाचार्य भी इसी मुद्रा में उपदेश देते हैं। गौतम गणधर आदि की प्रतिमाएँ प्रवचन मुद्रा में भी देखी जाती हैं।

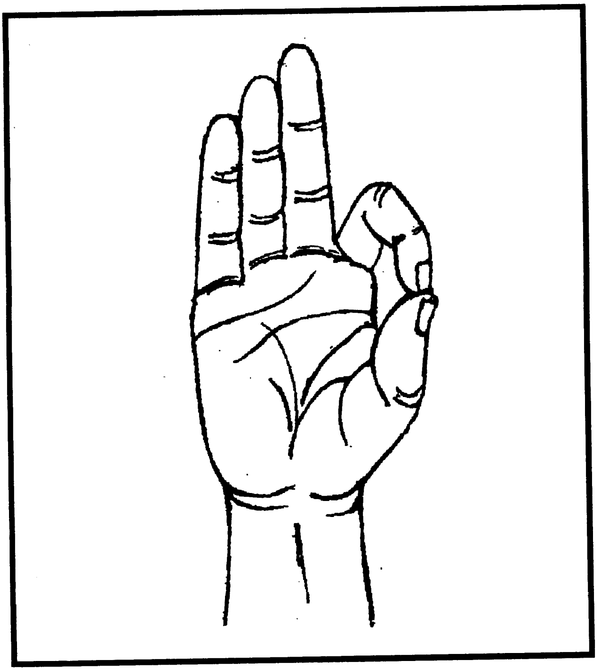

प्रवचन मुद्रा

विधि

'दक्षिणांगुष्ठेन तर्ज्जनीं संयोज्य शेषांगुलीप्रसारणेन प्रवचन मुद्रा।''

दाएं हाथ का अंगूठा और तर्जनी को संयोजित करते हुए शेष अंगुलियों को प्रसारित करने पर प्रवचन मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा अनिद्रा और तनाव को दूर करती है। श्वास गति को धीमा एवं नियन्त्रित कर श्वास सम्बन्धी रोगों का शमन करती है। इस मुद्रा का सम्पूर्ण स्नायु मण्डल और मस्तिष्क पर हितकारी प्रभाव पड़ता है। यह मुद्रा पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को संतुलित रखती है। इस मुद्रा के निरन्तर अभ्यास से पागलपन, उन्माद, विक्षिप्तता, अस्थिरता, अन्यमनस्कता,

व्याकुलता आदि का शमन होता है।

● मानसिक स्तर पर यह मुद्रा स्मरणशक्ति को बढ़ाती है। मानसिक तनाव के कारण होने वाले दुष्प्रभावों को दूर कर ज्ञान तंतुओं को सबल बनाती है। इससे मन शान्त एवं मुखमण्डल सदा प्रसन्न रहता है।

● आध्यात्मिक स्तर पर साधक के ज्ञान नेत्र उद्घाटित होते हैं।

इस मुद्रा से मूलाधार चक्र जागरुक स्थिति को प्राप्त करता है, जिसके फलस्वरूप वीरता का भाव उत्पन्न होता है और आनन्द की अनुभूति होती है।

विशेष

● एक्यूप्रेशर मेरिडियन थेरेपी के अनुसार इस मुद्रा के द्वारा आज्ञा चक्र पर दबाव पड़ता है। इससे भाव जगत उच्चस्तरीय विचारों से अभिभूत हो उठता है एवं कषायादि प्रवृत्तियाँ मन्द हो जाती हैं।

● यह मुद्रा वात दोष और कफ दोष का भी निवारण करती है।

69. मंगल मुद्रा

मंगल शब्द सामान्यतया मंगल अर्थ को ही प्रकाशित करता है। शब्द विच्छेद के आधार पर विश्लेषण करें तो मम्=अहं या मेरापन, गल=नष्ट हो जाना अर्थात अहंकार का नष्ट होना मंगल कहलाता है।

यह मुद्रा प्रतिष्ठा प्रसंग पर दिखायी जाती है। प्रतिष्ठा एक महा मंगलकारी अनुष्ठान है। अभिप्रायत: मंगल मुद्रा के द्वारा मंगलमय वातावरण निर्मित किया जाता है।

दूसरे अभिप्राय से जिनमूर्ति स्वयं मंगल रूप होती है। मूर्ति के दर्शन मात्र से अमंगल दूर हो जाते हैं और जीवन मंगलकारी बनता है। अत: मूर्ति के मांगल्यत्व को सूचित करने के उद्देश्य से भी यह मुद्रा दिखायी जा सकती है।

विधि

''हस्ताभ्यां संपुटं कृत्वा अंगुलीः पत्रवद्विकास्य मध्यमे परस्परं संयोज्य तन्मूललग्नावंगुष्ठौ कारयेदिति मंगल मुद्रा।''

दोनों हाथों को संपुटमय बनाकर अंगुलियों को पत्ते के समान विकसित करें, फिर मध्यमा अंगुलियों को परस्पर में संयोजित कर उन दोनों के मूल भाग पर अंगूठों को स्थिर करने से मंगल मुद्रा बनती है।

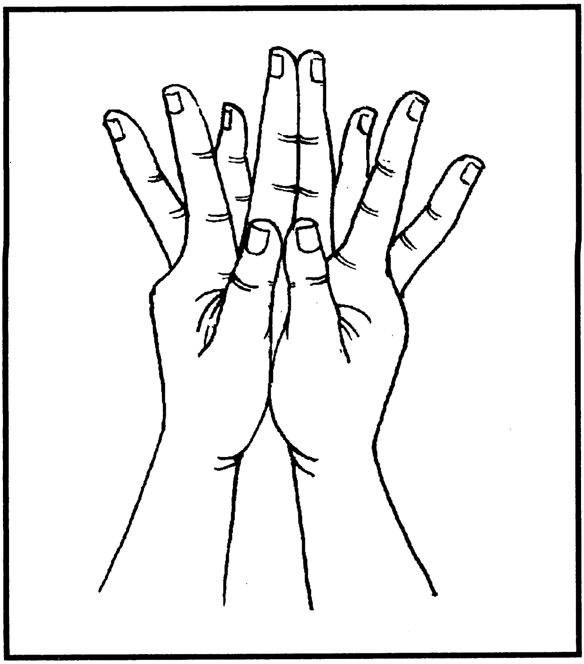

मंगल मुद्रा

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से अग्नि तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर में तीनों अग्नियों को जागृत कर ऊर्ध्वगमन में सहायक बनती है।

हृदय शक्तिशाली एवं तंदुरुस्त बनता है।

इससे पचन-पाचन की क्रिया सम्यक् रूप से संचालित होती है।

यह मुद्रा पाचन विकारों, शरीर आदि में दुर्गन्ध, मधुमेह, अल्सर, लीवर, पित्ताशय, आँखों की समस्या, बुखार आदि में फायदा करती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा तामसिक वृत्तियों को दूर कर सात्त्विकता प्रदान करती है।

अन्तर्द्वन्द्वों को समाप्त कर दीर्घायु बनाती है। इससे साधक निरन्तर अध्यात्म अभिमुख रहता है।

इससे मणिपुर चक्र के कार्य सक्रिय हो उठते हैं। यह शरीर को ऊर्जा प्रदान कर सह नियंत्रण एवं आत्मविश्वास में वृद्धि करती है। मनोविकारों का शमन एवं परमार्थ में रमण करवाती है।

विशेष

● एक्यूप्रेशर पद्धति में इस मुद्रा का दाब बिन्दु वात रोग के शमन हेतु उपयोगी माना गया है।

● यह दृष्टिदोष तथा कर्णदोष का निवारण करती है।

● मस्तिष्क रोग, गर्दन दर्द, संक्रमण के कारण छींक आना, नाक से पानी बहना, आधा शरीर का लकवा, अनिद्रा, उच्च रक्त चाप जैसी बीमारियाँ ठीक होती हैं।

● पीयूष एवं एड्रीनल ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करती है। साहस, निर्भयता, सहनशीलता, आत्मविश्वास आदि गुणों का सर्जन करती है। इसी के साथ तनावमुक्ति, जीवन निर्माण एवं व्यवहार नियंत्रण में विशेष सहायक बनती है।

70. आसन मुद्रा

आसन स्थिरता का प्रतीक है। योग प्रधान ग्रन्थों में आसन की परिभाषा बताते हुए कहा है 'स्थिरमासनम्' अर्थात स्थिरता ही आसन है। आसन के दो रूप हैं- बाह्य और अन्तरंग। काया का स्थिर रहना एवं वाणी का मौन रहना बाह्य आसन है तथा मनोवृत्तियों का शान्त होना अन्तरंग आसन है।

जब कायिक प्रवृत्तियाँ रुकती हैं तब अन्तर्द्वन्द्व भी समाप्त होने लगते हैं और उस स्थिति में ध्यान का जन्म होता है।

आसन मुद्रा में हाथों की जो स्थिति बनती है, ध्यान मुद्रा में भी लगभग उसी तरह की अवस्था रहती है। तीर्थंकर की प्रतिमाएँ भी इसी तरह की मुद्रा में देखी जाती है। इस आधार पर आसन मुद्रा को ध्यान मुद्रा और वीतराग मुद्रा भी कह सकते हैं।

प्रतिष्ठा प्रसंग पर यह मुद्रा साधक को निज स्वरूप की प्रतीति हो इस उद्देश्य से दिखायी जाती है। वस्तुत: आसन मुद्रा वीतरागत्व प्राप्ति की मुद्रा है। इस मुद्रा से वीतरागमय भावों का पोषण होता है।

विधि

''अंजल्याकारहस्तस्योपरिहस्त आसन मुद्रा।''

दोनों हाथों को अंजलि आकार में करते हुए एक के ऊपर दूसरा हाथ रखना आसन मुद्रा है।

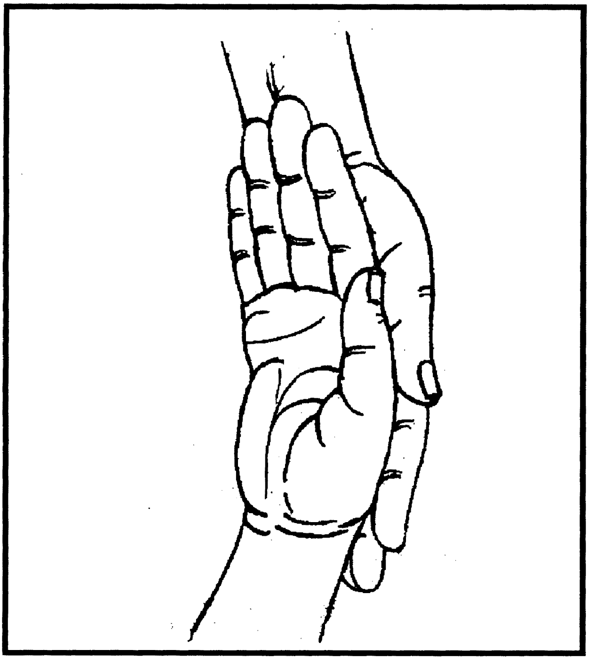

आसन मुद्रा

सुपरिणाम

● शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा से जठराग्नि प्रदीप्त होती है और उदर सम्बन्धी विकारों का शमन होता है।

यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व को नियन्त्रित करती है। परिणामत: वायु एवं हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है।

● आध्यात्मिक स्तर पर साधक ऊर्ध्वगामी बनता है।

इससे इच्छाशक्ति का विकास होता है। साधक जितेन्द्रिय होकर अनाहत ध्वनि को अनुभूत करता है।

कुंडलिनी शक्ति ऊर्ध्वगामी होकर सहस्रार चक्र का भेदन करती है।

71. अंग मुद्रा

यहाँ अंग शब्द का अभिप्राय लगभग शारीरिक अंगों से है। प्रश्न होता है कि प्रतिष्ठा प्रसंग पर अंग मुद्रा करने का प्रयोजन क्या हो सकता है?

सिद्ध परमात्मा तो अष्ट कर्मों से मुक्त अशरीरी होते हैं, अत: इस मुद्रा का सम्बन्ध सिद्ध जीवों से तो हो नहीं सकता। तब कहा जा सकता है कि अरिहंत परमात्मा केवलज्ञान अवस्था में सशरीरी एवं सांगोपांग दोनों से युक्त होते हैं। जिनालय में मूलनायक भगवान के रूप में अरिहंत परमात्मा की प्रतिमा ही स्थापित की जाती है। प्राण प्रतिष्ठा के समय अंग मुद्रा दिखाकर प्रतिमा पर अंगों का आरोपण किया जाता है, ऐसा संभाव्य है। अंग मुद्रा की परिभाषानुसार प्रतिमा का लेपन करते वक्त जो हस्तमुद्रा बनती है वह अंग मुद्रा है। तदनुसार प्रतिमा लेपन के निमित्त भी यह मुद्रा करते हैं।

अभिप्रायत: तीर्थंकर परमात्मा की केवलज्ञान अवस्था को उद्भासित एवं प्रतिमा में सजीवत्व का आरोपण करने के उद्देश्य से अंग मुद्रा की जाती है।

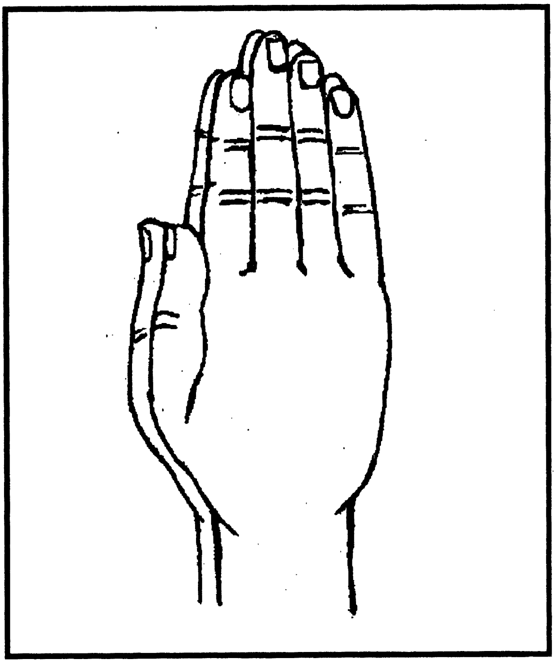

अंग मुद्रा

विधि

"वामकरधृतदक्षिण कर समालभने अंगमुद्रा।"

बायीं हथेली पर दाहिनी हथेली को रखकर परस्पर में अच्छी तरह स्पर्शन करना अंग मुद्रा है।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा पंच प्राणों के प्रवाह को नियमित कर स्वस्थता प्रदान करती है।

व्यान प्राण के प्रवाह को तीव्र कर कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने में सहायक बनती है।

श्वास पर नियन्त्रण कर मन की चंचलता को शान्त करती है।

इससे जल एवं आकाश तत्त्व संतुलित स्थिति में रहते हैं।

• आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा मानसिक आवेगों को शान्त करती है।

विश्रृंखलित मानस को एकाग्रचित्त करती है।

इससे साधक में अद्भुत शक्तियों का जागरण तथा उच्च भावनाओं का अभ्युदय होता है।

72. योग मुद्रा

साधारणत: योग का अर्थ होता है- संयोग अथवा जोड़। जैन ग्रन्थों में योग की विभिन्न परिभाषाएँ उल्लिखित हैं। तत्त्वार्थसूत्र में मन, वचन, काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति को योग कहा गया है। आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की चर्चा करते हुए बतलाया है कि जो मोक्ष का कारण हो वही योग है।

पातञ्जल योगशास्त्र के अनुसार **"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"** चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है। इसके लिए उन्होंने आठ अंग बताये हैं- 1. यम, 2. नियम 3. आसन 4. प्राणायाम 5. प्रत्याहार 6. धारणा 7. ध्यान 8. समाधि।

भगवद्गीता के अनुसार सफलता और असफलता दोनों को समान भाव से देखना ही योग है। कर्मों में कुशलता ही योग है। जीवन का चरम रहस्य योग है। योग शान्ति है। योग कष्ट निवारक है।

लौकिक व्यवहार में किसी घटना के घटित होने पर कहते हैं योग था। अंकगणित में दो संख्याओं के जोड़ने को योग कहते हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न आसनों को योग कहते हैं।

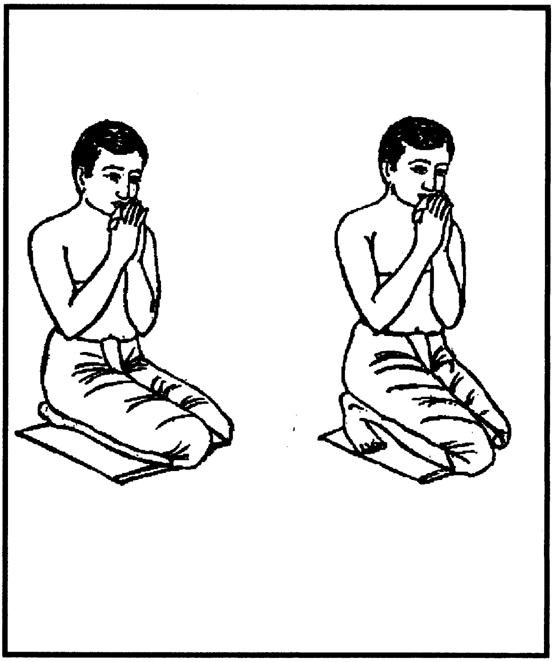

योग मुद्रा

अध्यात्म दृष्टि से योग व्यक्ति के चेतन, अवचेतन एवं अचेतन स्तरों पर नियंत्रण रखता है। इसे व्यक्तित्व विकास का विज्ञान कह सकते हैं, व्यक्तित्व के गहन पक्षों को आवृत्त करने का विज्ञान कह सकते हैं, सम्पूर्ण जीवन का, चेतना का विज्ञान कह सकते हैं। मूलत: योग का सम्बन्ध शरीर, मन और चेतना जैसे जीवन के अति गहन एवं सारभूत तत्त्वों से है।

योग मुद्रा में प्रयुक्त योग शब्द आत्मा से परमात्मा का योग करवाता है। यह मुद्रा ध्याता, ध्यान और ध्येय की सकारात्मकता स्थापित करने में सहयोगी बनती है। यह भक्त को आराध्य से जोड़ने का कार्य करती है। इस मुद्रा के माध्यम से भक्त का भावात्मक योग अपने आराध्य से किया जाता है। जैन परम्परा में इस मुद्रा का अत्यधिक महत्त्व है। तीर्थंकर परमात्मा को वंदन करते समय नमुत्थुणं सूत्र योग मुद्रा में ही बोला जाता है। जैन गृहस्थ के लिए अहोरात्रि में 12 अथवा 17 बार और जैन मुनि के लिए 13 अथवा 18 बार नमुत्थुणं सूत्र बोलने का उल्लेख है। इस तरह योग मुद्रा का पुन: पुन: उपयोग किया जाता है।

विधि

"अन्योऽन्यान्तरिताङ्गुलिकोशाकार हस्ताभ्यां कुक्ष्युपरि कूर्प्परस्थाभ्यां योग मुद्रा।"

दोनों हाथों की अंगुलियों को एक-दूसरे के बीच में डालते हुए हाथों को कोशाकार रूप में बनायें। फिर हाथों की कोहनियों को कुक्षि (उदर भाग) के पर स्थिर करने पर योग मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

यह मुद्रा बनाते समय वज्रासन में बैठकर, बाएं पैर को थोड़ा सा आगे बढ़ाते हुए घुटने को ऊँचा करते हैं, दाहिना घुटना भूमि को छूता हुआ रहता है, एड़ी का हिस्सा गुदा के स्थान पर दबाव देता हुआ रहता है, एड़ी के कुछ ऊपर का उठा हुआ हिस्सा कुण्डलिनी को दबाव देता हुआ रहता है। कोहनियाँ पेट के समीप एवं हथेलियाँ नमस्कार मुद्रा में रहती हैं। इस मुद्रा को धारण करते समय बीसों अंगुलियों, मूलाधार चक्र, कुण्डलिनी, पिंडली की नसों एवं बायें हाथ के अंगूठे पर दबाव पड़ता है तथा शरीर का भार दाहिने घुटने की ओर रहता है।

शरीर की उपर्युक्त स्थिति के आधार पर विश्लेषण करें तो अवगत होता है कि जब शरीर का अधिकांश भार दाहिने हिस्से पर आ जाता है तो बायें हिस्से का भार कम हो जाता है। बाएं हिस्से में हृदय रक्त प्रक्षेपक यन्त्र है। इस ओर के हिस्से का भार कम हो जाने से रक्त प्रक्षेपक यंत्र का कार्य सरल होने लगता है, जिससे शरीर में रक्त प्रवाह अच्छा हो जाता है और प्रसन्नता, उल्लास एवं कार्य क्षमता में अभिवृद्धि होती है।

इस मुद्रा में दाहिना घुटना नीचा और बायां घुटना ऊँचा रहता है। लौकिक *जीवन में हम देखते हैं कि दौड़ने वालों की मुद्रा लगभग इसी प्रकार की रहती* है। एन.सी.सी. सेना में भी आगे बढ़ने में बायां पैर आगे रहता है। योग मुद्रा में अरिहंत परमात्मा की महिमा, आदि के द्वारा उनसे जुड़ना चाहते हैं, आत्म क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहते हैं अतः यह प्रगति सूचक मुद्रा है।

इस मुद्रा में एड़ी का हिस्सा गुदा स्थान पर दबाव देता हुआ रहता है। योगशास्त्र के अनुसार मूलाधार चक्र गुदा द्वार पर अधोमुख कमल दल के रूप में अवस्थित है। अपने नाम के अनुसार यह चक्र सुषुम्ना नाड़ी के मूल में है।

यह सम्पूर्ण शरीर का मूल स्थान है। इसी स्थान से ऊपर की यात्रा प्रारम्भ होती है। आत्म शक्तियों के उत्पादन एवं ऊर्ध्वारोहण हेतु इस चक्र को जागृत करना अत्यावश्यक है। मूलाधार चक्र के जागृत होने पर मनुष्य मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ रहता हुआ ऊर्ध्वा रेतस् बनता है, अपनी शक्ति को भिन्न-भिन्न चक्रों में लय करता हुआ शिव सुख प्राप्त कर लेता है।

पाँच तत्त्वों की दृष्टि से मूलाधार चक्र में पृथ्वी तत्त्व है। इस तत्त्व में पुद्गल के पाँचों सामान्य गुण शब्द, रूप, स्पर्श, रस, गन्ध विद्यमान हैं। एक अपेक्षा से पृथ्वी में शेष चार तत्त्व भी समाहित हैं। मूलाधार जागृत होने से समग्र शरीर निरोग रहता है। इसके असंतुलित रहने पर चित्त का चलायमान होना, अस्थिर रहना, मानसिक तनाव का बना रहना आदि कई विपरीत परिणाम आते हैं।

इस मुद्रा में एड़ी का उठा हुआ हिस्सा कुण्डलिनी शक्ति पर दबाव दिया हुआ रहने से अग्निदीप्त होती है, मूलाधार से शक्ति का उत्थान होता है यह प्रथम आभ्यन्तर अग्नि है जिसके योग से सुख की ऊर्ध्व गति होती है। वह स्वाधिष्ठान की अग्नि से सूक्ष्म होकर मणिपुर चक्र में और सूक्ष्म होकर ऊर्ध्वगति रूप होती है। इस तरह कुण्डलिनी पर दबाव मोक्ष रूपी कपाट को खोलकर मोक्ष मार्ग दिखाता है। गुदा द्वार पर दबाव एवं संकुचन होने से बवासीर नहीं होता। यदि बवासीर हो तो उसे ठीक करने में सहयोग करता है।

योग मुद्रा में हाथ जोड़ने की स्थिति है वह भी रहस्यप्रद है। यह मुद्रा विनय सूचक तो है ही, हथेलियों के मध्य पोलापन न रहने से ऊर्जा का निर्माण भी होता है, प्रभावी तरंगों का नि:सरण होता है। नमस्कार मुद्रा में प्रवाहित तरंगें अपने द्वारा की जा रही प्रार्थना एवं स्तुति को बहुत प्रभावी बना देती हैं, आत्म निष्ठा व एकाग्रता पूर्वक किया गया गुणगान इन तरंगों से समन्वित होकर बहुत शक्तिशाली हो जाते हैं जो पलक झपकने भर में समस्त विश्व (14 राजलोक) में अपना उद्देश्य प्रसारित कर देते हैं। विशेष स्पष्टीकरण के लिए समझ सकते हैं कि जिस प्रकार समुद्री जहाज में ओसिलेटर यंत्र के द्वारा कर्ण अगोचर नाद की तरंगों को समुद्र तल की ओर भेजा जाता है और वह तरंग चट्टान से टकराकर लौटती है तथा लौटकर आने के समय से चट्टान की दूरी का बोध कराती है उसी प्रकार वीतराग प्रभु की महिमा को श्रद्धा और भक्ति के स्पन्दन द्वारा हथेलियों से उत्पन्न तरंगों के माध्यम से वातावरण को तरंगित करते हुए

ब्रह्माण्ड में भेजा जाता है तथा उन तरंगों से साधक आत्माएँ स्वयं को तद्रूप बनाने (भगवत्ता को प्राप्त करने) में सफल हो जाती है।

यह मुद्रा उदर सम्बन्धी रोगों में भी अत्यन्त लाभदायक है।

73. पर्वत मुद्रा

ऊँचे-ऊँचे पहाड़ पर्वत कहलाते हैं। पर्वत उच्चता, स्थिरता एवं संकल्प दृढ़ता का प्रतीक है। पर्वत मुद्रा के द्वारा जिनेश्वर प्रतिमा के महत्त्व को दर्शाया जाता है। जिस तरह भयंकर तूफान में भी पर्वत अचल रहता है, उसी तरह वीतराग पुरुष अनुकूल-प्रतिकूल अवस्थाओं में दृढ़ लक्षी बने रहते हैं। उनका जीवन पर्वत की भाँति उत्तुंग एवं विकास की अन्तिम अवस्था को स्पर्श किया होता है।

पर्वत मुद्रा के माध्यम से वीतराग परमात्मा के अनभिव्यक्त जीवन को अनुभूति के स्तर पर प्रत्यक्षीभूत करने का प्रयास किया जाता है।

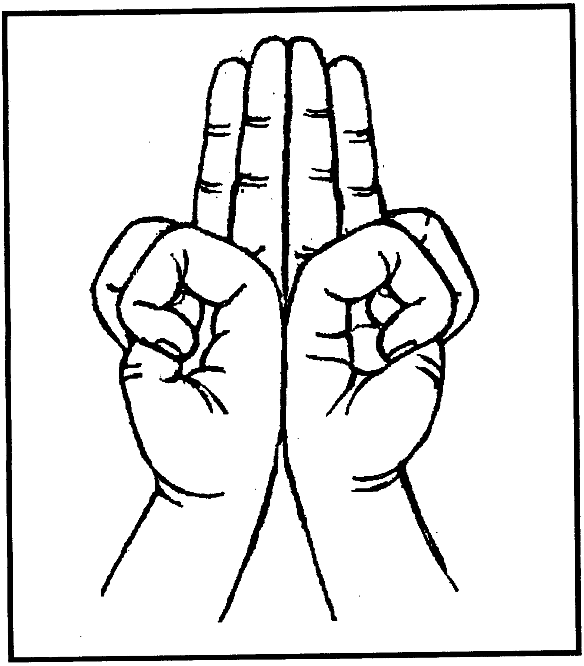

पर्वत मुद्रा

विधि

"उभयोः करयोरनामिका मध्यमे परस्परानभिमुखे ऊर्ध्वीकृत्य मीलयेच्छेषांगुलीः पातयेदिति पर्वत मुद्रा।"

दोनों हाथों की अनामिका एवं मध्यमा अंगुलियाँ, जो परस्पर एक-दूसरे से विमुख हैं, उन्हें ऊपर की ओर करके मिलाने पर तथा शेष अंगुलियों को नीचे गिराने पर पर्वत मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा बुद्धि को प्रखर एवं नेत्र ज्योति को तेज करती है।

इससे अग्नि और आकाश तत्त्व नियंत्रित रहते हैं तथा तत्सम्बन्धी दोषों का निवारण होता है।

शरीर का पृष्ठ भाग मजबूत एवं सक्रिय बनता है।

• आध्यात्मिक स्तर पर यह मुद्रा साधक में स्थिरता एवं दृढ़ता गुण को अभिवृद्ध करती है।

आवेगों को शान्त करने की शक्ति प्रदान करती है।

इससे विशुद्धि चक्र प्रभावित होता है फलत: साधक का मन निरभ्र आकाश के समान विशुद्ध हो जाता है।

साधक की मन:स्थिति सम-विषम परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होती।

विशेष

• एक्यूप्रेशर चिकित्सकों के अनुसार यह मुद्रा पीयूष ग्रन्थि के स्रावों का नियन्त्रण करती है।

• वात दोष अथवा कफ दोष के कारण एकाएक गंभीर सदमा लगने से शारीरिक स्थिति बिगड़ जाये तो इस मुद्रा के दाब बिन्दुओं से ऊर्जा प्रवाह पुन: सामान्य हो जाता है।

• यह क्रोध, भय एवं मानसिक तनाव को घटाती है।

• यदि अचानक सुनने की शक्ति, देखने की शक्ति, सूंघने की शक्ति घट जाये, नाक से खून बहना, गले में रुकावट, सांस घुटना, आँखों में दर्द, गर्दन का कड़ापन आदि रोग ठीक हो जाते हैं।

74. विस्मय मुद्रा

आश्चर्यजनक स्थितियों में विस्मय भाव उत्पन्न होते हैं। जैसे भाव होते हैं वैसी ही मुद्रा बन जाती है। विधिमार्गप्रपा में उल्लिखित विस्मय मुद्रा गूढ़ार्थ को लिए हुए हैं।

अनुसंधान कर्त्ताओं के अनुसार जब अंजनशलाका (केवलज्ञान कल्याणक) के द्वारा नवीन बिंब में द्रव्य एवं भाव प्राणों का आरोपण कर उसे शुभ मुहूर्त्त में वेदिका पर स्थापित करते हैं उस समय प्रतिमा के रूप-लावण्य में अतिशय वृद्धि हो जाती है। उस अलौकिक स्वरूप को देखकर साधक का मन विस्मित हो उठता है। उसके आश्चर्य का कोई माप नहीं होता, तब शरीर की भाव भंगिमा भी सहज ही तद्रूप हो जाती है। यहाँ जिनप्रतिमा के अद्भुत रूप को सूचित करने एवं उनके सौन्दर्य की तुलना में अन्य कोई नहीं इस भाव को व्यक्त करने के उद्देश्य से विस्मय मुद्रा का निर्देश है।

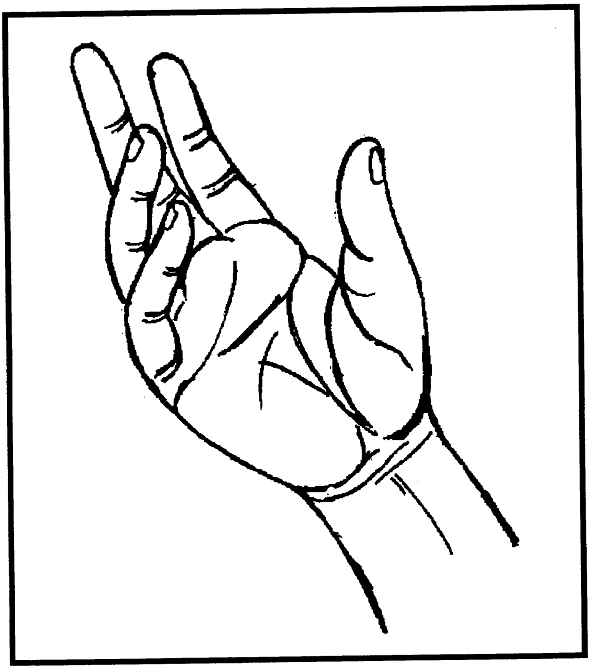

विस्मय मुद्रा

विधि

"करस्य परावर्त्तनं विस्मय मुद्रा।"

हाथ का परावर्तन करना अर्थात हाथ को आश्चर्य से परावर्तित करना, घुमाना विस्मय मुद्रा है।

सुपरिणाम

- यह मुद्रा जीवन में गतिशीलता प्रदान करती है।
- इससे लघुमस्तिष्क (ज्ञान केन्द्र) सक्रिय होता है।
- इस मुद्रा का आज्ञा चक्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

75. नाद मुद्रा

संस्कृत के 'नाद' शब्द का अर्थ प्रवाह होता है। यहाँ प्रवाह से तात्पर्य सजगता से है। साधारणत: नाद का आशय ध्वनि समझा जाता है। यह आंतरिक ध्वनि है, जिसे सजगता के केन्द्र-बिन्दु के रूप में प्रयोग किया जाता है।

कबीरदास ने कहा है—नाद अंतर्निहित है। यह शरीर के भीतर तार रहित

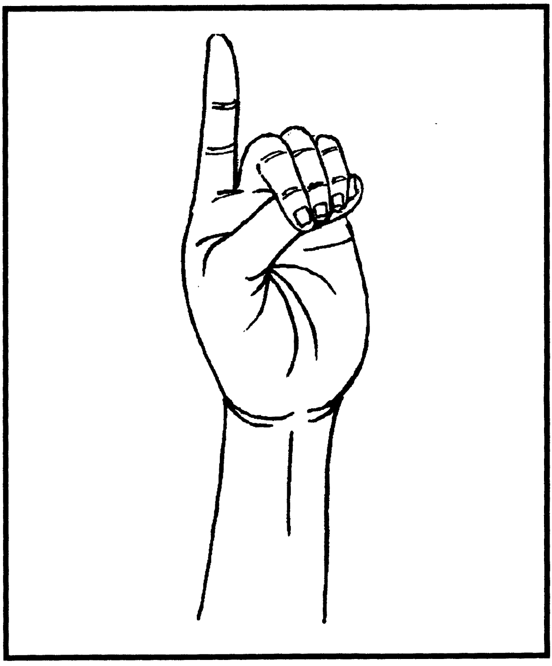

नाद मुद्रा

अनुनादित संगीत है। यह अंदर-बाहर व्याप्त है और माया से मुक्त करता है। उपनिषद्कारों ने कहा है– नाद यथार्थ में अमृत (दिव्यानन्द) है, परन्तु इसके विषय में और कुछ नहीं कहा जा सकता। केवल वही, जो इसमें विलीन होता है, अमृतपान कर सकता है और वही उसका ज्ञाता है।

जिस प्रकार फूल में सुगंध और दर्पण में प्रतिबिम्ब है, उसी प्रकार नाद स्वयं में समाहित है। पारम्परिक योग शास्त्रों के अनुसार ब्रह्म नाद इस सृष्टि का स्थूल से सूक्ष्म तक और दृश्य से अदृश्य तक सृष्टि बीज के रूप में मूल कारण है। जड-चेतन सभी में नाद प्रवहमान है, अनुनादित है।

तरंगों से निर्मित इस दृश्य जगत को महाकाश कहते हैं। नादयोग का सम्बन्ध आंतरिक आकाश अर्थात चिदाकाश से है। नाद चिदाकाश की ध्वनि है। यह बाह्य जगत में सुनाई पड़ने वाली ध्वनियों की अपेक्षा अधिक गहन, व्यापक और सूक्ष्म है।

नादयोग लययोग का एक अंश है। नादयोग में साधक आंतरिक ध्वनि के प्रति पूर्ण सजग रहता है। अन्य शास्त्रों ने नाद को परम तत्त्व (ब्रह्म) माना है। विधिमार्गप्रपा में निर्देशित नाद मुद्रा अन्तर्ध्वनि से ही सम्बन्ध रखती है तथा अपने स्वरूप के अनुसार साधक को अन्तर्मुख बनने की प्रेरणा देती है, अन्तर्नाद के प्रति सजग रहने का बोध देती है।

विधि

''अंगुष्ठरुद्धे तरांगुल्यग्रायास्तर्जन्या ऊर्ध्वीकारो नाद मुद्रा।''

मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठिका के अग्रभागों से अंगूठे को अवरुद्ध करना तथा तर्जनी को ऊपर की ओर करना नाद मुद्रा है।

सुपरिणाम

● शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा पंच प्राणों के प्रवाह को नियमित एवं सन्तुलित करती है। जठराग्नि को प्रदीप्त कर वायु विकारों का शमन करती है।

इससे पृथ्वी तत्त्व और जल तत्त्व संतुलित स्थिति में रहते हैं तथा तज्जन्य रोगों से राहत मिलती है। यह मुद्रा कैन्सर, कोष्ठबद्धता, मासिक धर्म, बवासीर, शारीरिक कमजोरी, नपुंसकता, कामुकता आदि का निवारण करती है।

प्रजनन ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा कामेच्छाओं का

नियंत्रण करती है तथा लैंगिक समस्याओं एवं शारीरिक तापमान आदि से जुड़ी समस्याओं का शमन करती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा ईड़ा व पिंगला के प्रवाह को संतुलित कर सुषुम्ना को जागृत करने में सहायक बनती है।

इसके सम्यक प्रयोग से साधक अन्तरंग नाद को स्पष्ट रूप से सुन सकता है।

- नाद मुद्रा को धारण करने वाला साधक मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जाग्रत एवं नियंत्रित कर सकता है। यह साधक को बलशाली ऊर्जा एवं भावात्मक सुरक्षा प्रदान करती है तथा व्यक्तित्व बोध करवाते हुए क्रोध, घृणा, भय, लालसा आदि नकारात्मक भावों का दमन करती है।

विशेष

- एक्यूप्रेशर मेरीडियनोलोजी के अनुसार यह मुद्रा मस्तिष्क के वात दोष, कफ दोष एवं पित्त दोष को दूर करती है।
- इसके दाब बिन्दु से लीवर तथा प्लीहा में ऊर्जा का स्थायित्व होता है।
- यह गर्दन से लेकर मस्तिष्क पर्यन्त रोगों में लाभकारी है।
- इस मुद्रा के द्वारा पीलिया, कम दिखाई देना, बेचैनी, अनिद्रा, पागलपन, लार अधिक गिरना, मिरगी, बुखार, कपकपी आदि को शान्त किया जा सकता है।

76. बिन्दु मुद्रा

संस्कृत के बिन्द शब्द से बिन्दु बना है, जिसका अर्थ तोड़ना या विभाजन करना है। बिन्दु व्यक्तिगत चेतना का मूल केन्द्र है। यह वह मूल बिन्दु है, जहाँ से परम तत्त्व स्वयं को विभिन्न रूपों में प्रकट करता है।

बिन्दु का कोई विस्तार नहीं है, यह विस्तार रहित केन्द्र है। इसे संस्कृत ग्रन्थों में चिद्घन कहते हैं। असीम चैतन्यमय चेतना ही इसका मूल है।

बिन्दु का अर्थ शून्य या रिक्त भी होता है। बिन्दु का अर्थ और भी स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो यह शून्य का प्रमुख द्वार है। यह शून्य पूर्ण रिक्त नहीं है। इसमें सब शक्तियों का निवास है।

योग विज्ञान में बिन्दु को बिन्दु विसर्ग भी कहते हैं क्योंकि यह बिन्दु अमृत की बूँदों में से एक बूंद है। इसका उद्गम स्थान सहस्त्रार में है तथा जो सतत्

नीचे टपकता रहता है। यह अमृत जीवनदायिनी शक्ति है, जीवन का वास्तविक रस है।

सभी चक्रों में आज्ञा चक्र अति सूक्ष्म है और उससे भी अधिक सूक्ष्म बिन्दु है। चक्र मानव की सूक्ष्म संरचना से संबंधित माने जाते हैं लेकिन बिन्दु वह केन्द्र है जहाँ से मानव संरचना का उदय होता है, अत: बिन्दु स्वयं में पूर्ण तथा सभी चक्रों का उद्‌गम स्थान है। चक्र मन के क्षेत्र में है तथा मन के बन्धनों में बंधा है लेकिन बिन्दु मन से परे है।

बिन्दु का विषय सांकेतिक, गूढ़ और कल्पनातीत है। अन्य रहस्यमय

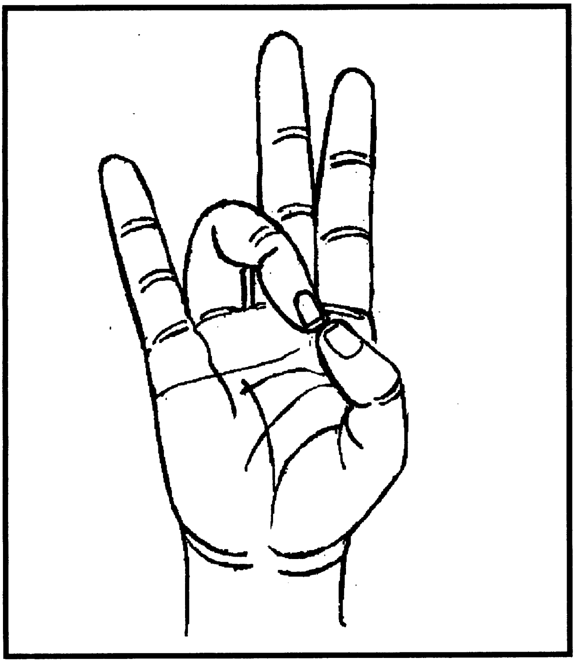

बिन्दु मुद्रा

प्रणालियों के समान यह भी अत्यधिक रहस्यपूर्ण है। यौगिक साधनाओं का मूल उद्देश्य बिन्दु के प्रति सजगता उत्पन्न करना है। वास्तव में यह पूर्णत: अवर्णनीय एवं तर्क से परे है। यह सीमित को असीमित से जोड़ता है। इसे चक्रों के सदृश पुस्तकीय ज्ञान अथवा कल्पना से नहीं समझा जा सकता।

सारांश रूप में कहें तो यह व्यक्तिगत चेतना का मुख्य केन्द्र है, मूल रूप का सूचक है, बीज का समवाचक है। यह ब्रह्माण्डीय बीज है, जिससे सभी जीव प्रकट एवं विकसित होते हैं। यह असीम शक्तियों का अति सूक्ष्म स्वरूप है।

बिन्दु मुद्रा व्यक्ति को प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग की ओर प्रेरित करती है। इस मुद्रा के माध्यम से साधक निराकार स्वरूपी चेतन सत्ता का अनुभव करता हुआ तद्रूपमय हो जाता है।

विधि

"अनामिकयांगुष्ठाग्रस्पर्शनं बिन्दु मुद्रा।"

अनामिका अंगुली से अंगूठे के अग्रभाग का स्पर्श करना बिन्दु मुद्रा है।

सुपरिणाम

• शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से हृदय और शरीर की कमजोरी दूर होती है तथा पूरे शरीर में एक नवीन चेतना का अविर्भाव होता है।

इस मुद्रा से हृदय की रक्त संचार क्षमता में लाभ होता है।

गुर्दे और मूत्रावरोध सम्बन्धी दोष दूर होते हैं।

इससे पृथ्वी तत्त्व और जल तत्त्व की कमी से होने वाली बीमारियों का शमन होता है।

• मानसिक स्तर पर मन स्फटिक के समान स्वच्छ, एकाग्र और ग्रहणशील हो जाता है।

• आध्यात्मिक स्तर पर इस मुद्रा से चेतना शक्ति का उद्भव होता है।

भावनात्मक स्तर पर आत्मा में प्रसन्नता बनी रहती है।

यह मुद्रा मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को अधिक प्रभावी बनाती है जिसके फलस्वरूप अपूर्व शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है।

विशेष

• एक्यूप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार इस मुद्रा का दबाव जिस बिन्दु पर पड़ता है, उससे ऊर्जा ऊर्ध्वगामी बनती है।

• इससे अवांछित कार्य करना, बेहोशी के दौरे पड़ना, मिरगी, कान में आवाजें आना, खड़े होने में असन्तुलन आकर डगमगाना, नसों में तनाव, बवासीर, सिरदर्द, भूलने की आदत, जीभ में स्वाद न आना, निम्न रक्तचाप आदि रोगों का उपशमन होता है।

जैन धर्म मूलत: निवृत्तिमूलक धर्म है। परन्तु क्षणै:-क्षणै: क्रिया मूलक विधि-विधानों का भी इसमें प्रवेश होता रहा है। इन विधानों का एक मुख्य अंश है मुद्रा प्रयोग। पूजा-उपासना सम्बन्धी विधान हो अथवा व्रत ग्रहण सम्बन्धी विधान या फिर प्रतिष्ठा, आमंत्रण आदि सभी को मुद्रा प्रयोग द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। 'विधिमार्गप्रपा' जैन विधि-विधानों की आधारशिला है। प्राय: हर प्रकार के विधान का उल्लेख इसमें प्राप्त होता है। वर्तमान प्रचलित अधिकांश क्रिया-अनुष्ठान इसी के अनुसार करवाए जाते हैं। चर्चित अध्याय में उसी ग्रन्थ में उल्लेखित समस्त मुद्राओं के विस्तृत वर्णन किया गया है। आराधक वर्ग इस जानकारी के माध्यम से क्रिया-आराधनाओं में मनोयोगपूर्वक जुड़ सकें एवं यथेच्छ फल की प्राप्ति कर सकें यही आन्तरिक प्रयास।

●

अध्याय-3

आचारदिनकर में उल्लिखित मुद्रा विधियों का रहस्यपूर्ण विश्लेषण

जैन वाङ्मय के इतिहास में मध्यकाल एक Golden Period रहा। आचार्य हरिभद्रसूरि, आचार्य हेमचंद्र, आचार्य ज़िनप्रभसूरि आदि अनेक ज्ञान धुरंधर आचार्य इसी समय में हुए। विविध विषयों पर लेखनी निरंतर चलती रही एवं जैन साहित्य समृद्ध होता रहा। इसी श्रृंखला में आचार्य वर्धमानसूरि हुए जिन्होंने जैन विधि-विधानों में कई नए आयामों का समावेश किया। आचार दिनकर उन्हीं की एक सुप्रसिद्ध क्रियाकांड निर्देशक रचना है। इसमें कुल 23 मुद्राओं का उल्लेख है। यह मुद्राएँ साधना-उपासना के क्षेत्र में विशेष महत्त्व रखती है। इनका स्वरूप निम्न रूप में प्राप्त होता है।

1. मुद्गर मुद्रा

मुद्गर एक प्रकार का शस्त्र है। इसे हथौड़ा, मूसल, गदा भी कहते हैं। यहाँ मुद्गर का तात्पर्य गदा से है।

तन्त्र विधि के अनुसार शरीर को शक्तिशाली बनाने हेतु इसका प्रयोग करते हैं। निम्न दर्शाये मुद्रा चित्र के अनुसार भी यह शक्ति चिह्न का प्रतीक मालूम होती है। गायत्री जाप में प्रयुक्त 24 मुद्राओं में से यह एक है। कुछ परम्पराएँ इस मुद्रा को रोगादि निवारण का प्रतीक मानती है। यह मुख्य रूप से कैन्सर रोग दूर करती है।

आचार दिनकर के उल्लेखानुसार इस मुद्रा का प्रयोग विघ्न विघातनार्थ किया जाता है।

विधि

"वामकलाचिकाया उपरि दक्षिणकलाचिकां निधाय पराङ्मुखहस्ताभ्यामङ्गुली विदर्भ्य तथास्थितावेव हस्तौ परिवर्त्य अंगुलीमध्ये विदध्यात् सा मुद्गर मुद्रा।"

दोनों हाथों के पृष्ठभाग को मिलाते हुए अंगुलियों का वेणीबंध करें। फिर दोनों हाथों को स्वयं की तरफ सीधा करने पर मुद्‌गर मुद्रा निष्पन्न होती है।

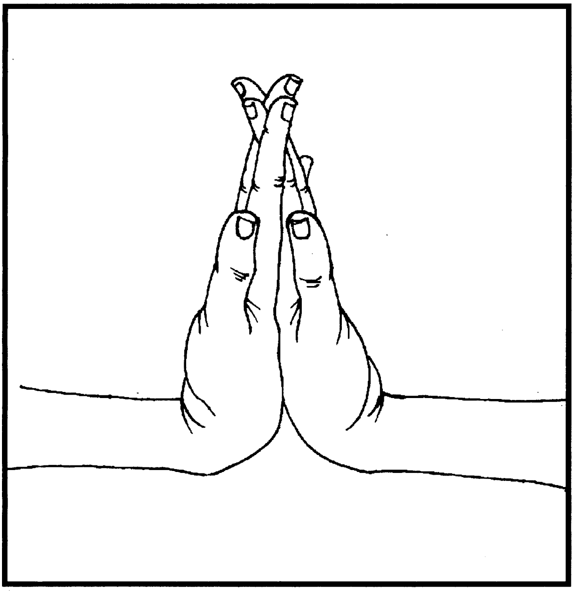

मुद्‌गर मुद्रा

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा दैहिक ऊर्जा को संवर्द्धित करती है।

शरीर को निरोग और हृष्ट-पुष्ट बनाती है।

इससे अग्नि एवं वायु तत्त्व विशेष प्रभावित होते हैं। यह मुद्रा रक्त संचरण एवं पाचन क्रिया को सुचारु रूप से कार्यान्वित करती है। शरीरस्थ तीनों अग्नियों को जागृत कर ऊर्ध्वगमन में सहायक बनती है।

शारीरिक समस्याएँ जैसे कि श्वास-शरीर आदि में दुर्गन्ध, मधुमेह, पाचन समस्या, बुखार, पित्ताशय कैन्सर, अल्सर, सुस्ती आदि कई रोगों का निवारण इस मुद्रा के प्रयोग से हो सकता है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से इस मुद्राभ्यास द्वारा मणिपुर एवं अनाहत चक्र जागृत होते हैं। इन चक्रों के प्रभाव से संकल्पबल, पराक्रम एवं कोमल संवेदनाएँ जागृत होती हैं।

साधक बाह्य जगत से छूटकर अन्तरंग जगत में प्रवेश पा जाता है। भाव धाराएँ निर्मल एवं परिष्कृत बनती हैं।

थॉयमस, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज के स्राव को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा सृजनात्मक एवं कलात्मक कार्यों में रुचि जागृत करती है। बालकों के विकास एवं संस्कारों के निर्माण में सहयोगी बनती है। रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करते हुए रोगों से बचाव करती है तथा तनाव मुक्त रखती है।

2. यथाजात मुद्रा

यथा- तद्रूप, जात- उत्पन्न अर्थात जन्म लेते वक्त बालक जिस स्थिति में होता है उस रूप में शरीर की आकृति निर्मित करना यथाजात मुद्रा कहलाती है। हमारी आत्मा शुभाशुभ कर्मों का संयोग पाकर जब मानव का चोला धारण करती है, नये शरीर के रूप में जन्म लेती है तब से बाल्यावस्था तक उसे भगवान का रूप माना जाता है। जैसे भगवान निश्छल हृदयी होते हैं वैसे बालक भी एक अवस्था तक उसी रूप में देखा जाता है। यद्यपि प्रत्येक जीव पूर्वगत

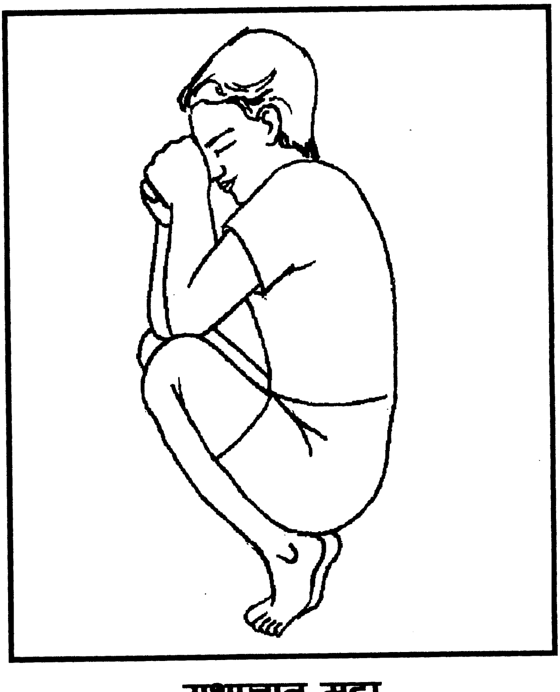

यथाजात मुद्रा

संस्कारों से आबद्ध हो नवीन पर्याय धारण करता है फिर भी एक निश्चित अवधि पर्यन्त मोह-माया, राग-द्वेष के संस्कार सुप्त रहते हैं, अत: बालक की हर क्रिया में भगवद् स्वरूप की प्रतीति होती है।

भगवान का रूप ही हमारा मूल स्वरूप है। उस स्वरूप का चिन्तन करने से विपुल कर्मों की निर्जरा होती है तथा आत्मा स्व-अस्तित्व से परिचित बनती है।

आचार दिनकर के अनुसार यह मुद्रा दुष्कर्मों के क्षय निमित्त की जाती है।

विधि

"हस्तद्वयस्य शिप्राकारकृतस्य यमलरीत्या स्थापितस्य मुखोपरि स्थापनं वन्दनवत् यथाजातमुद्रा।"

दोनों हाथों को शिप्राकार करते हुए एवं मिलाते हुए ललाट के ऊपर स्थापित करना यथाजात मुद्रा है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा ब्रेन ट्युमर, मिरगी, सिरदर्द, अनिद्रा, शारीरिक कमजोरी, बवासीर आदि में फायदा करती है।

इस मुद्राभ्यास से पाँवों के जोड़ मजबूत बनते हैं। हाथों की मांसपेशियाँ सशक्त बनती हैं। इससे पृथ्वी तत्त्व अधिक स्वस्थ और सक्रिय बनता है।

- आध्यात्मिक स्तर पर शक्ति केन्द्र (गोनाड्स ग्रन्थि एवं मूलाधार चक्र) का प्रभाव बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप प्राण ऊर्जा का निम्न प्रवाह ऊर्ध्वाभिमुख बनता है।

यह मुद्रा आज्ञा चक्र (पिच्युटरी ग्रन्थि) को भी प्रभावित करती है तथा दर्शन केन्द्र की शक्ति को अनावृत्त करती है। इन चक्रों के जागरण से भावात्मक अभिव्यक्ति, व्यक्तित्व बोध, समझ और स्मृति स्थिर होती है। मानसिक एवं वैचारिक हीनता, अनियंत्रण, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि के भाव नियंत्रित रहते हैं।

पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा श्वसन एवं विसर्जन के कार्य को सुचारु करती है। इससे सत्य एवं परिस्थिति स्वीकार की शक्ति मिलती है। सहजानन्द एवं दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है।

पीयूष एवं प्रजनन ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर की आन्तरिक हलन-चलन, रक्त शर्करा, रक्तचाप, तापमान, कामेच्छा आदि को नियंत्रित रखती है।

3. आरात्रिक मुद्रा

संस्कृत कोश के अनुसार भगवान के समक्ष आरती उतारना आरात्रिक कहलाता है। आरती उतारने का दीपक भी आरात्रिक कहा जाता है। आरात्रिक का अपभ्रंश रूप है आरती।

सामान्यतया आरती में पाँच दीपक होते हैं। जैन विज्ञान के अनुसार ये दीपक पाँच ज्ञान के सूचक हैं। इससे मिथ्यात्व रूपी अंधकार का क्षय होकर क्रमशः सम्यक्त्व रूपी सद्ज्ञान का आलोक प्रसरित होता है।

इसे प्रतीकात्मक दृष्टि से प्रकाश का द्योतक और अंधकार का नाशक कहा जा सकता है। आरती शब्द का एक अर्थ यह भी किया जाता है आ- नहीं हो, रति-ममत्त्व भाव अर्थात जिस क्रिया से ममत्त्व (आसक्ति) भाव नहीं टिकता हो

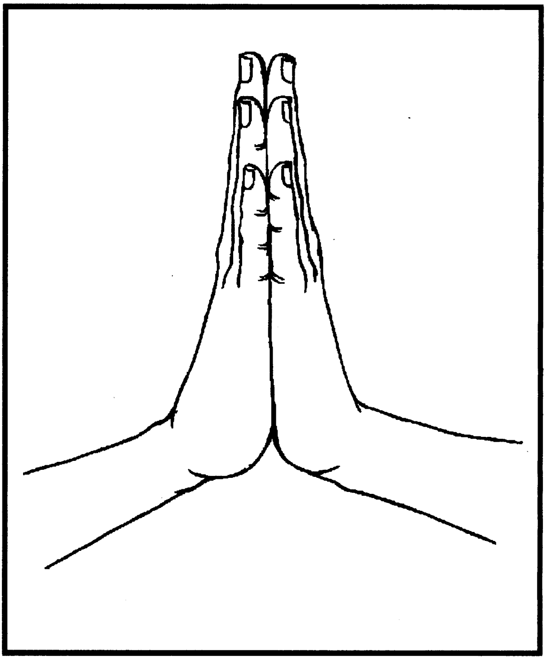

आरात्रिक मुद्रा

वह आरती कहलाती है। जहाँ राग होता है वहीं द्वेष जन्मता है। इसलिए बोलते वक्त 'राग-द्वेष' इस क्रम से ही कहा जाता है न कि द्वेष-राग। जब राग-द्वेष की परम्परा का उन्मूलन होता है तब मिथ्या भासित प्रकाश सत्य स्वरूप में उपस्थित होता है और आत्मा परमात्म स्वरूप को साध्य मानकर उसकी उपासना में प्रवृत्त होती है तथा अबाधित लक्ष्य को उपलब्ध करती है।

इस मुद्रा के माध्यम से अरिहंत भगवान का आदर-सत्कार किया जाता है जिससे साधक भी तदयोग्य बन सकें।

विधि

"करद्वयाङ्गुल्योः परस्परमीलितयोः पञ्चसु स्थानेषु शिखावत्स्थापनं आरात्रिक मुद्रा।"

दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर मिलाकर शिखा के समान पाँच स्थानों पर स्थापित करना आरात्रिक मुद्रा है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर नमस्कार मुद्रा से होने वाले सभी लाभ इसमें मिलते हैं जैसे कि एलर्जी, दमा, सिरदर्द, पागलपन, अनिद्रा, कानों का संक्रमण, हृदय रोग, छाती में दर्द आदि को यह मुद्रा कम करती है।

वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित कर यह मुद्रा हृदय, श्वसन एवं मस्तिष्क सम्बन्धी समस्याओं का शमन करती है। प्राण धारण एवं इसके सुनियोजन में सहायक बनती है। इससे व्यष्टि सत्ता समष्टि चेतना का सम्बन्ध जुड़ जाता है।

वायु जनित रोगों का शमन होता है। मन स्वस्थ एवं सक्रिय बना रहता है।

- आध्यात्मिक स्तर पर विवेक चेतना का जागरण होता है। अवचेतन मन से सम्पर्क स्थापित होता है।

अनाहत एवं आज्ञा चक्रों पर स्थित ऊर्जा का उत्पादन होता है तथा कलात्मक उमंगों, रसानुभूति, कोमल संवेदना, उदारता, सहकारिता, परोपकार, करुणा आदि की भावना जागृत होती है। इससे दिमाग शांत, एकाग्र एवं स्थिर बनता है।

पूज्यों के प्रति आस्था का दीपक प्रगटता है।

पीयूष एवं थायमस ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा सुस्ती, आलस्य, जड़ता को दूर कर स्फूर्ति लाती है। जीवन पद्धति, स्वभाव एवं मनोवृत्तियों को नियंत्रित रखती है।

4. वीर मुद्रा

वीर शब्द शौर्य, पराक्रम, साहस, धैर्य, निर्भीकता, उत्साह का सूचक है। वीर मुद्रा से वीरत्व भाव का आविर्भाव होता है। यह अनुभूत सत्य है कि "जैसी मुद्रा वैसा भाव" "जैसा भाव वैसी मुद्रा" बनती है।

योगासनों में वीरासन नाम का एक आसन है उसका स्वरूप वीर मुद्रा से भिन्न है। आचार दिनकर में वर्णित वीर मुद्रा अभय मुद्रा के समान परिलक्षित होती है। अभय मुद्रा से प्राणीमात्र भयरहित अवस्था का अनुभव करते हैं उन्हें किसी तरह का भय नहीं सताता, अतः यह मुद्रा सर्व जीवों की रक्षा करती है। इसे सर्व रक्षाकारी मुद्रा कहा गया है।

वीर मुद्रा

विधि

"सुखासनस्थस्य वरदाकारौ हस्तौ वीरमुद्रा।"

सुखासन में बैठकर दोनों हाथों को आशीर्वाद की मुद्रा में रखना वीर मुद्रा है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा का प्रयोग कैन्सर, कोष्ठबद्धता, मधुमेह, पाचन समस्या, अल्सर, शारीरिक कमजोरी, बुखार, आँखों की समस्या में लाभकारी है।

यह मुद्रा मेरुदण्ड को प्रभावित कर स्वस्थता प्रदान करता है। गैस सम्बन्धी तकलीफों में शीघ्र लाभ देती है।

यह मुद्रा अग्नि, पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को संतुलित रखती है। पाचन, विसर्जन, श्वसन आदि की क्रियाओं का नियमन करती है। मेरुदण्ड, गुर्दे , पैर, पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, नाक, कान, मुँह, गले आदि की समस्या का शमन करते हुए ऊर्जा को ऊर्ध्वारोहित करती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा उच्च भावनाओं का सर्जन करती है।

इसके अभ्यास से साहस, धैर्य और शक्ति का अविर्भाव होकर अनिद्रा एवं अति निद्रा जैसे रोगों से मुक्ति मिलती है।

- इससे मूलाधार एवं आज्ञा चक्र जागृत होते हैं। यह मुद्रा ज्ञान, ऊर्जा एवं संकल्प शक्ति को प्रकट करती है। मनोविकारों को घटाती है एवं परमार्थ में रुचि को बढ़ाती है।

मनुष्य की विलक्षण क्षमता विकसित होती है।

5. विनीत मुद्रा

विनीत अर्थात झुका हुआ। इस मुद्रा में हाथ जुड़े हुए और मस्तक झुका रहता है इसलिए इसे विनीत मुद्रा कहा गया है। लौकिक व्यवहार में अतिथि के सत्कार-सम्मान हेतु इसी मुद्रा का प्रयोग करते हैं। यह मुद्रा प्रयत्न साध्य नहीं है। इसमें भावनात्मक पक्ष की प्रबलता रहती है। जहाँ, जिसके प्रति अपनापन हो, पूज्य भाव हो वहाँ हाथ एवं मस्तक स्वयमेव जुड़ जाते हैं। कई बार औपचारिक प्रवृत्तियों का निर्वहन करने हेतु भी इस मुद्रा का प्रयोग करते हैं और सूक्ष्मता से वह भी लाभकारी होती है।

आचारदिनकर के अभिमतानुसार विनीत मुद्रा पूजा आदि के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

"नम्रःशिरसः करयोजने कृते विनीत मुद्रा।"

दोनों हाथ जोड़ते हुए मस्तक झुकाना विनीत मुद्रा है।

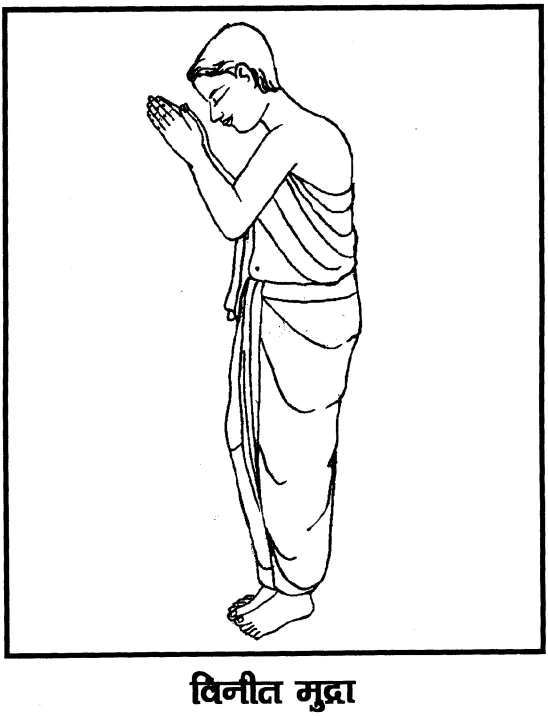

विनीत मुद्रा

सुपरिणाम

● शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा से ब्रेन ट्युमर, मिरगी, सिरदर्द, पागलपन, अनिद्रा, दमा एवं हृदय आदि से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण होता है।

नमस्कार मुद्रा से होने वाले सभी लाभ इससे भी मिलते हैं।

शरीर विज्ञान के नियमानुसार इस मुद्रा से वायु तत्त्व और आकाश तत्त्व संतुलित रहते हैं।

यह पीयूष ग्रन्थि एवं थाइमस ग्रन्थि के स्राव को नियमित करती है।

● आध्यात्मिक स्तर पर अहं तत्त्व का विसर्जन और ऋजुता भाव का उन्मेष होता है। यह मुद्रा काम ग्रन्थियों एवं डिम्बाशय की क्रियाओं का निरोध करती है। व्यक्ति को सदा सुखानुभूति का आस्वाद करवाती है।

अनाहत मुद्रा को धारण करने से अनाहत एवं आज्ञा चक्र सक्रिय होते है। यह मुद्रा आन्तरिक चक्षुओं को उद्घाटित करते हुए हृदय में प्रेम, करुणा एवं परोपकार भावना उत्पन्न करती है। व्यक्ति और समिष्टि के सम्बन्ध संयोजन में भी सहायक बनती है।

6. प्रार्थना मुद्रा

इष्ट देव के समक्ष अथवा इष्ट तत्त्व को आधार बनाकर अन्तर्भावनाओं को अभिव्यक्त करना प्रार्थना कहलाता है। विशिष्ट प्रकार की अभ्यर्थना/याचना प्रार्थना है। दृढ़संकल्प कृत प्रार्थना निःसन्देह फलदायी होती है। जैन विज्ञान में मन पुद्गल रूप है, मन से उठे विचार भी पौद्गलिक हैं। जैसे वचन पुद्गल सम्पूर्ण लोक में प्रसरित होते हैं वैसे मनोविचार भी पूरे ब्रह्माण्ड में फैलते हैं। उससे साधक की भावनाएँ इष्ट तक पहुँचती है। सिद्धान्ततः सम्यक प्रार्थना से बाधक कर्म निर्जरित होते हैं और फलस्वरूप इष्ट वांछा की प्राप्ति होती है।

आचार दिनकर में यह मुद्रा वांछित फल प्रदान करने वाली कही गई है। प्रार्थना मुद्रा मनोवांछित कार्य की सिद्धि हेतु की जाती है।

विधि

"प्रसारितौ करौ योजितकरभौ प्रार्थना मुद्रा।"

दोनों हाथों को फैलाते हुए हथेलियों को सम्मिलित करना प्रार्थना मुद्रा हैं।

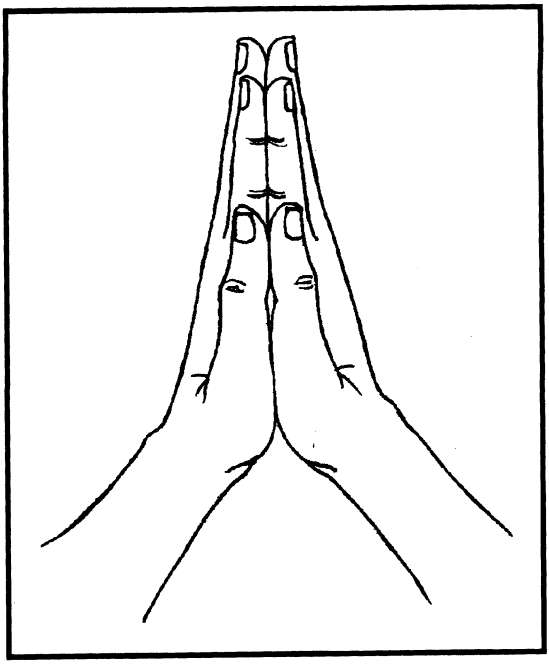

प्रार्थना मुद्रा

सुपरिणाम

● भौतिक स्तर पर इस मुद्रा के द्वारा अंजलि मुद्रा एवं नमस्कार मुद्रा के सभी लाभ हासिल होते हैं।

इसके सिवाय मुद्रा स्वरूप के अनुसार स्कन्ध, हाथों के जोड़, पैरों के जोड़, सम्पूर्ण शरीर की मांसपेशियाँ मजबूत बनती हैं। प्रार्थना मुद्रा का प्रयोग करने वाला अनाहत एवं स्वाधिष्ठान चक्र में आई हुई रुकावटों को दूर कर अपनी शक्तियों को जागृत करता है। यह मुद्रा तनाव से जूझने एवं प्रतिकूलताओं से लड़ने की क्षमता जागृत करती है तथा बलिष्ठता, स्फूर्ति, सहकारिता, प्रेम एवं सहयोग की भावना बढ़ाती है।

यह मुद्रा खून की कमी, बिस्तर गीला होना, हर्निया, सुस्ती, गुर्दे, गर्भाशय, हृदय आदि से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण करती है।

● आध्यात्मिक स्तर पर इस मुद्राभ्यास से आन्तरिक शुद्धि होती है। शरीर का शक्ति संस्थान जो अवरुद्ध हो रहा है, दुष्कर्मों से प्रताड़ित हो रहा है वह फिर सक्रिय हो सकता है और उसकी ज्योति प्रज्वलित हो सकती है।

पीयूष एवं पिनियल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा रक्त के दबाव को नियंत्रित करती है और प्रजनन अंगों के विकास को प्रभावित करती है। विषाद, बालों की समस्या, रक्त शर्करा, रक्तचाप आदि से सम्बन्धित विकारों को दूर करने में भी यह सहायक बनती है।

वायु एवं जल तत्त्व को संतुलित कर यह मुद्रा रक्त संचरण एवं प्रजनन सम्बन्धी दूषणों को दूर करती है। सृजनात्मक एवं कलात्मक कार्यों हेतु प्रेरित करती है। इससे हृदय में सद्भावों का विकास होता है।

7. परशु मुद्रा

आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा में भी परशु मुद्रा का उल्लेख है किन्तु आचार दिनकर में वर्णित परशु मुद्रा का स्वरूप किंचिद भिन्न है। ऐतिहासिक किंवदन्तियों के अनुसार विष्णु का एक अवतार परशुराम था, उस समय वे हमेशा अस्त्र को साथ रखते थे। यह अस्त्र उन्हें भगवान शंकर से प्राप्त हुआ था। भगवान शंकर के ज्येष्ठ पुत्र कार्तिकेय और उनके साथी एक तरफ थे

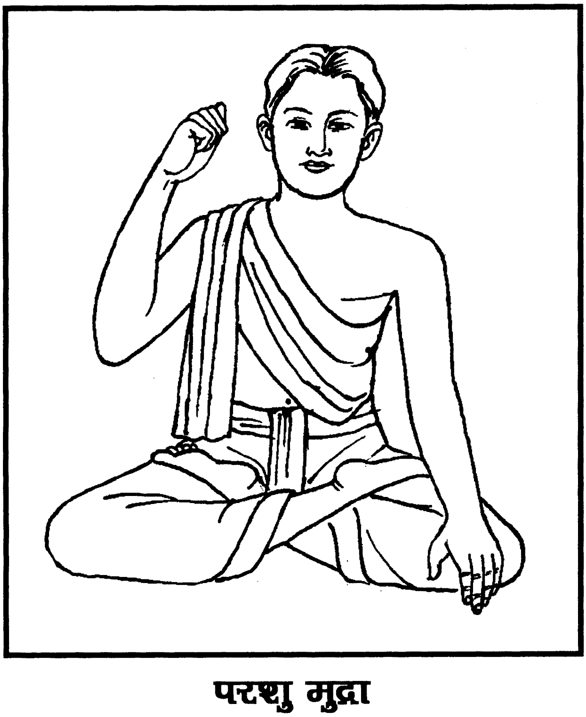

परशु मुद्रा

और परशु अकेले थे। दोनों के बीच युद्ध हुआ तब परशु ने उन्हें हरा दिया। भगवान शंकर ने यह सब देख कर एवं उनके शौर्य से प्रभावित होकर उन्हें परशु अस्त्र दिया जो उनके नाम के साथ जुड़ गया।

पुराणों की कथा के अनुसार परशुराम ने इस अस्त्र के प्रभाव से 21 बार क्षत्रियों का वध किया था। प्रतीक रूप में यह मुद्रा आत्मशत्रुओं का हनन करती है। आचार दिनकर के मत से विघ्नों का अपहरण करती है।

विधि

''आकुञ्चिते दक्षिणहस्ते प्रसारिते भूसंमुखंकृते वामहस्तेन धृते परशु मुद्रा।'

दाएँ हाथ को थोड़ा आकुञ्चित करके तथा बाएँ हाथ को फैलाकर भूमि की तरफ करने से जो मुद्रा निष्पन्न होती है उसे परशु मुद्रा कहते हैं।

सुपरिणाम

- इस मुद्रा से सम्पूर्ण शरीर प्रभावित होता है। साधक का शरीर रूई की भाँति हल्का और आत्मा बलशाली बनती है।
- प्राण सम्बन्धी अवरोध दूर होते हैं।
- शरीर, मन एवं चेतना स्वस्थ और निर्मल दशा को प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त सुपरिणाम वीर मुद्रा के समान जानने चाहिए।

8. छत्र मुद्रा

संस्कृत व्युत्पत्ति के अनुसार ''छादयतीति अनेन इति छत्रः'' अर्थात जिसके द्वारा आच्छादित किया जाता है उसे छत्र कहते हैं। छत्र को सुरक्षा का प्रतीक माना गया है। लौकिक दृष्टि से छत्र सर्दी-गर्मी, धूप-वर्षा आदि बाह्य उपद्रवों से बचाता है तथा लोकोत्तर दृष्टि से आत्म गुणों की रक्षा करता है।

जैन धर्म में यह मुद्रा तीर्थंकर के अतिशय को सूचित करती है। तीर्थंकर पुरुष सदैव तीन छत्र के धारक होते हैं। यह तीर्थंकरों के प्रभुत्व को दर्शाती है।

आचार्य वर्धमानसूरि ने कहा है कि छत्र मुद्रा के प्रभाव से तीन लोक की प्रभुता संप्राप्त होती है। अतः आत्मिक संपदा की प्राप्ति निमित्त यह मुद्रा की जाती है।

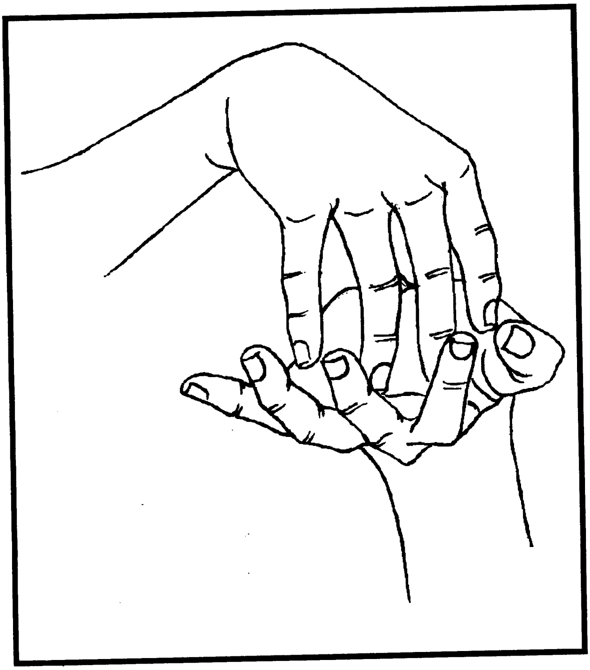

छत्र मुद्रा

विधि

"मुकुलीकृत पञ्चाङ्गुलौ वामहस्ते प्रसारित दक्षिण करस्थापनं छत्रमुद्रा।"

बाएँ हाथ की पाँचों अंगुलियों को कली का आकार देकर उसे फैले हुए दाएँ हाथ पर रखने से जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे छत्र मुद्रा कहते हैं।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा पंच प्राणों के प्रवाह को नियमित करती है।
- भौतिक स्तर पर यह मुद्रा कैन्सर, हड्डी की समस्या, कोष्ठबद्धता, सिरदर्द, जोड़ों की समस्या, घुटनों की समस्या, शारीरिक कमजोरी, पाचन समस्या, उदर, मांसपेशी की समस्या आदि का निवारण करती है।

यह मुद्रा पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित करते हुए पाचन एवं विसर्जन तंत्र से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण करती है। शरीरस्थ तीनों अग्नियों का जागरण कर ऊर्ध्वगमन में सहायक बनती है। जिससे भावों एवं विचारों में स्थिरता आती है।

यह सर्दी, कफ, दमा, खांसी आदि रोगों को शान्त करती है। शरीर के विभिन्न भागों में स्थित अन्त:स्रावी एवं बहिस्रावी ग्रन्थियों को प्रभावित करती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से संकल्प शक्ति दृढ़ होती है। साधक की समस्त गतिविधियाँ आत्म सजगता से अनुपूरित होने लगती है।

वह परमार्थ रस में आनन्द की अनुभूति करता हुआ अगोचर प्रभुता का वरण कर लेता है।

- इस मुद्रा की साधना मूलाधार एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित करती है। इससे व्यक्तित्व बोध, भावनात्मक सुरक्षा, दृढ़ आत्मविश्वास एवं ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण होता है।

- एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा रक्तचाप (B.P.),पेट की गड़बड़ी, कमजोरी, त्वचा में रूखापन, नपुंसकता, मासिक धर्म, कामुकता आदि पर नियंत्रण कर साधक में साहस, निर्भयता, सहनशीलता, आशावादिता आदि गुणों का निर्माण करती है।

9. प्रियंकरी मुद्रा

सर्वजन को आनन्दित करने वाली, सर्वसाधकों को तुष्ट करने वाली मुद्रा प्रियंकरी मुद्रा कहलाती है।

आचार दिनकर के अनुसार इस मुद्रा के माध्यम से दुष्ट शक्तियों को स्तम्भित किया जाता है।

तात्पर्य है कि यह मुद्रा देखकर किसी तरह के अनिष्ट तत्त्व मर्यादित भूमि में आकर उपद्रव नहीं कर सकते। वे शक्तियाँ दूरवर्ती क्षेत्र में ही स्थिर हो जाती हैं। निम्न दर्शाये चित्र में हाथों की स्थिति स्तम्भन तुल्य है। इस मुद्रा के द्वारा किन्हीं अशुभ तत्त्व को स्तम्भित करने हेतु प्रेम पूर्वक वर्तन किया जाता है। इसलिए इस मुद्रा का प्रियंकरी नाम सर्वथा उचित है।

विधि

''वज्राकारकृतयोर्भुजयोः स्कन्धद्वये हस्तस्थापनं प्रियंकरी मुद्रा।''

दोनों भुजाओं को वज्राकार बनाकर दोनों कंधों पर हाथ स्थापित करने से जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे प्रियंकरी मुद्रा कहते हैं।

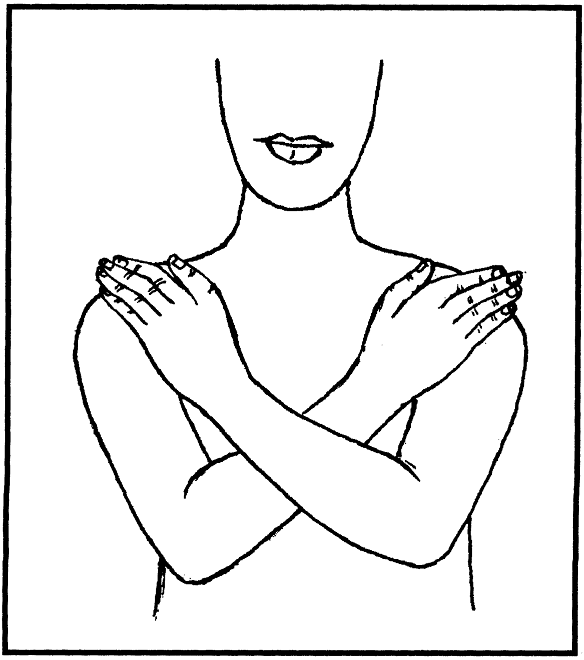

प्रियंकरी मुद्रा

सुपरिणाम

● शारीरिक स्तर पर हाथ एवं अंगुलियाँ सशक्त बनती हैं तथा खून की कमी, सूखी त्वचा, बिस्तर गीला होना, हर्निया, दाद-खाज, मासिक धर्म, योनि विकार, रक्त कैन्सर, मस्तिष्क की समस्या आदि का निवारण होता है।

यह मुद्रा जल और आकाश तत्त्व से संभावित रोगों में आराम पहुँचाती है तथा प्रजनन, श्वसन एवं मस्तिष्क सम्बन्धी समस्याओं का निवारण करती है।

प्रजनन, पिनीयल एवं पीयूष ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह शरीर तापमान और हड्डियों की समस्या का शमन करती है। मानसिक प्रतिभा का जागरण करते हुए जीवन पद्धति, मनोवृत्ति एवं स्वभाव को नियंत्रित रखती है।

इससे प्राणशक्ति सम्बन्धी अवरोधों को दूर करने की क्षमता जागृत होती है।

● आध्यात्मिक स्तर पर अतीन्द्रिय चेतना का विकास होता है।

इस मुद्रा को धारण करने से स्वाधिष्ठान एवं ब्रह्मकेन्द्र सक्रिय होते हैं। यह मुद्रा विशेष रूप से यौन उत्तेजना को नियंत्रित करने एवं प्रतिकूलताओं से जूझने की शक्ति प्रदान करती है। यह आवरित आन्तरिक ज्ञान को उद्घाटित कर एकाग्रता, स्थिरता एवं ज्ञान वृद्धि में भी सहयोग करती है।

10. गणधर मुद्रा

जैनागम कल्पसूत्र के अनुसार एक ही गुरु परम्परा के साधुओं का समूह गण कहलाता है। उस गण को धारण (संचालन) करने वाले गणधर कहलाते हैं। प्रत्येक तीर्थंकर के शासनकाल में गणधर व्यवस्था जीवन्त रहती है। एक परिभाषा के अनुसार तीर्थंकर उपदिष्ट अर्थ रूप प्रवचन को सूत्र रूप में संकलित करने वाले मुनि गणधर कहलाते हैं। यह शाश्वत नियम है कि तीर्थंकर का उपदेश अर्थ रूप होता है, गणधर उसे सूत्रबद्ध करते हैं। दूसरी परिभाषा के अनुसार तीर्थंकरों के हाथ से प्रथम दीक्षित अथवा प्रमुख शिष्य गणधर कहे जाते हैं। गणधर चौदह पूर्वों के ज्ञाता और तद्भव मोक्षगामी होते हैं।

शास्त्रों में गणधर को लब्धि सम्पन्न-लब्धिदाता कहा गया है। गौतम गणधर के जीवन चरित्र में तो इस विषयक घटनाएँ भी प्राप्त होती हैं। एक कवि ने कहा है, "अंगूठे अमृत बसे लब्धि तणा भंडार"।

आचार दिनकर में गणधर मुद्रा को लब्धि प्रदाता कहा गया है। स्पष्ट है कि इस मुद्रा से विशिष्ट लब्धियाँ प्राप्त होती हैं।

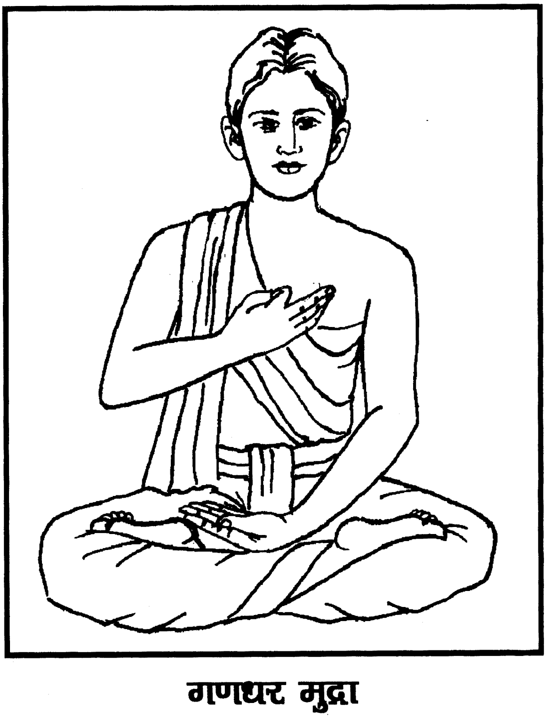

गणधर मुद्रा

विधि

''पद्मासनस्थितस्य वामहस्तस्य उत्सङ्ग स्थापनं दक्षिणहस्तस्य सजापस्य हृदि निधानं गणधर मुद्रा।''

पद्मासन में बैठकर बाएँ हाथ को उत्संग (गोद) में स्थापित करके दाएँ हाथ को जाप की मुद्रा में हृदय पर रखने से गणधर मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा का निरन्तर अभ्यास कब्ज, बदहजमी या वायु की शिकायत दूर करता है।

इससे पाचन शक्ति बढ़ती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। जंघा और पिंडलियों को अत्याधिक शक्ति मिलती है। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार यह मुद्रा समस्त प्रकार की व्याधियों का सर्वनाश करती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से साधक प्राणायाम करने का अधिकारी बन जाता है। इसमें हाथों को गोद में रखने पर लघिमा सिद्धि प्राप्त होने से शरीर हल्का होता है।

इस मुद्रा का दीर्घ अभ्यास करने से साधक भूमि से ऊपर उठता है तथा उच्च स्थिति को प्राप्त करता है।

इस गणधर मुद्रा को धारण करने से अनाहत, मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र जागृत होते हैं। इन चक्रों के जागरण से संकल्पशक्ति, आत्मविश्वास, एकाग्रता, पराक्रम, प्रेम, परोपकार, परमार्थ आदि के भाव जागृत होते हैं। भावात्मक समस्याएँ जैसे कि भय, असन्तुष्टि, अविश्वास, क्रोधादि आवेगों पर अनियंत्रण, अस्थिरता, कामेच्छा, नशे की लत आदि को कम करने में यह मुद्रा सहायक बनती है।

थायमस, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज के स्राव को नियंत्रित रखते हुए यह मुद्रा बालकों के विकास में सहयोगी बनती है।

11. कच्छप मुद्रा

कछुआ तिर्यञ्च गति के जलचर जीवों का एक प्रकार है। यह समुद्र तट पर रहता हैं। कछुए के जीवन की कुछ विशेषताएँ मानव को भी नयी प्रेरणा देती है। जैसे कि यह सर्वाङ्ग को सिकोड़कर बैठता है जो प्रतीक रूप में यह संदेश देता है कि आत्मार्थियों को ऐन्द्रिक चंचलता का त्याग करना चाहिए एवं मन को स्थिर रखते हुए अंगों को गुप्त (संयमित) रखना चाहिए।

कछुआ धीरे-धीरे चलता है किन्तु निरन्तर गतिशील रहता है रुकता नहीं, इसी तरह साधक को उत्तरोत्तर आगे बढ़ते रहना चाहिए। उसकी गति में भले ही धीमापन हो, पर उसमें नैरन्तर्य होना आवश्यक है। नियमित अभ्यास साधारण पुरुष को श्रेष्ठता की श्रेणी में पहुँचा देता है। इस सम्बन्ध में कछुआ और खरगोश की कहानी जगप्रसिद्ध है। कछुंआ गहरी एवं दीर्घ निद्रा लेता है जो जिन्दगी के श्वासों के नियन्त्रण का सूचक है।

गायत्री जाप में कच्छप मुद्रा का उपयोग होता है। इसे भगवान विष्णु का पाँचवां अवतार माना जाता है। चौबीस तीर्थंकरों का एक लंछन है। मूल नायक

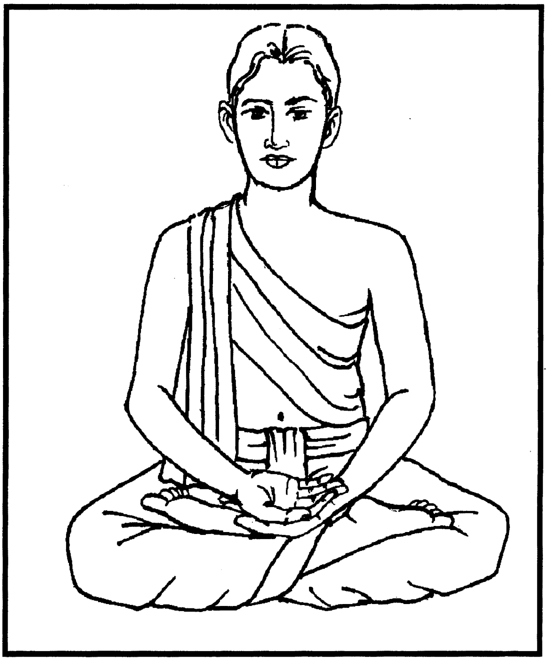

कच्छप मुद्रा

प्रतिमा के ठीक नीचे स्वर्ण या रजत निर्मित कछुएं की आकृति रखी जाती है। इस तरह कच्छप अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

इस मुद्रा में कछुएं जैसी आकृति बनाई जाती है इसलिए इसका नाम कच्छप मुद्रा है।

आचार्य वर्धमानसूरि के अनुसार यह मुद्रा दुष्ट शक्तियों अथवा मनोदैहिक वृत्तियों का निरोध करने हेतु की जाती है।

विधि

"स्वेच्छासुखासनासीनस्य वामहस्ते प्रसारिते उत्सङ्गधृते तदुपरि दक्षिणहस्ते कच्छपाकार धृते कच्छप मुद्रा।"

स्वेच्छापूर्वक सुखासन में बैठकर एवं पालथी के बीच बाएँ हाथ को फैलाकर उसके ऊपर दायां हाथ रखने से जो कच्छपाकार आकृति निष्पन्न होती है, उसे कच्छप मुद्रा कहते हैं।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा नीचे के अंगों को अधिक प्रभावित करती है। इससे खून की कमी, सूखी त्वचा, खसरा, हर्निया, मधुमेह, नपुंसकता, कामुकता, योनि विकार, रक्त कैन्सर, पाचन गड़बड़ी आदि में लाभ होता है। यह नशा मुक्ति में विशेष सहायक हो सकती है।

इस मुद्रा से अग्नि और जल तत्त्व संतुलित रहते हैं। यह पाचन, प्रजनन एवं रक्त विकार का शमन करती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मिक आनन्द की अनुभूति होती है। साधक में अद्‌भुत सामर्थ्य प्रकट होता है। व्यक्ति के विचारों में स्थिरता-एकाकारता का गुण पनपता है।

इससे मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र सक्रिय होते है। इन चक्रों के जागरण से संकल्प बल एवं पराक्रम बढ़ता है। सकारात्मक ऊर्जा का ऊर्ध्वीकरण होता है। मनोविकारों का शमन तथा परमार्थ, परोपकार एवं प्रेम में उत्कर्ष होता है।

एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करती है तथा कामेच्छाओं को नियंत्रित करने में सहायक बनती है।

12. धनुःसंधान मुद्रा

धनु: – धनुष, संधान-जोड़ना, ठीक से बिठाना अर्थात धनुष की डोरी पर बाण को अच्छी तरह साधना धनु:संधान कहलाता है। धनुष एक प्रकार का शस्त्र है, जिसके द्वारा बाण को प्रक्षेपित किया जाता है।

प्राचीन भारत में सबसे बड़ा शस्त्र यही माना जाता था। महाभारत आदि में अधिकांश धनुष बाण का ही उल्लेख है, बिना धनुष के बाण चलाना असंभव होता है। उस युग में ब्रह्मास्त्र, पार्श्वपथ अस्त्र आदि भी होते थे, किन्तु उनका प्रयोग हमेशा नहीं होता था। ये शस्त्र कठोर परीक्षा के बाद मिलते थे, किसी वीर की तपस्या से प्रसन्न होकर ही दिये जाते थे। इन शस्त्रों की खासियत यह थी कि ये कभी निष्फल नहीं जाते। रामायण में प्रसंग आता है कि जब हनुमान लंका गये, उन पर बहुत से अस्त्रों का प्रयोग किया गया, सब निष्फल हुए। अन्तत: रावण के ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, तब हनुमान बंधन में आ पाये। इस तरह धनुष-बाण का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है।

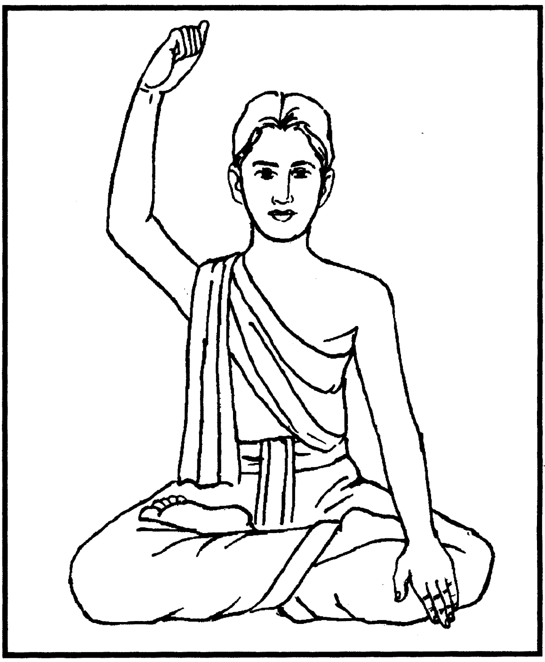

धनुःसंधान मुद्रा

आचारदिनकर के अनुसार धनु:संधान मुद्रा समस्त प्रकार के भयों को दूर करने के निमित्त की जाती है। इस मुद्रा से सर्व प्रकार के भयों का हरण होता है।

विधि

"पद्मासनस्थस्य वामबाहौ प्रलम्बिते भूमावलग्ने दक्षिणे करे च दक्षिणाशागते बद्धमुष्टौ ऊर्ध्वस्थितस्य सा सैव स्थितिः धनुःसंधान मुद्रा।

पद्मासन में स्थित होकर बाएँ हाथ से भूमि का स्पर्श करें तथा दाएं हाथ की मुट्ठी बांधकर उसे आकाश में ऊपर की ओर स्थिर करने पर जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे धनु:संधान मुद्रा कहते हैं।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा के द्वारा गणधर मुद्रा के अधिकांश लाभ प्राप्त होते हैं।

इस मुद्रा के अनवरत अभ्यास से हाथों के सभी जोड़ शक्तिशाली बनते हैं। मेरूदण्ड पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

इससे अग्नि, वायु और आकाश तत्त्व संतुलित रहते हैं जिससे पाचन, रक्त संचरण एवं श्वसन तंत्र सुचारु रूप से कार्यान्वित होते हैं। यह मुद्रा पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, हृदय, फेफड़ें, रक्त संचरण प्रणाली, नाक, कान, मुँह आदि में उत्पन्न दोषों को दूर करती है।

• भौतिक समस्याएँ जैसे कि गला, मुँह, कंठ, कान आदि की समस्या तथा ब्रेन ट्यूमर, मिरगी, सिरदर्द, पेट, लीवर, पित्ताशय आदि की समस्या निवारण में यह मुद्रा लाभकारी है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से चेतना की अन्तरंग शक्तियाँ जागृत होती है।

चेतना के सभी स्तरों पर नियन्त्रण का सामर्थ्य विकसित हो जाता है।

चेतना का अतीन्द्रिय तत्त्वों से सम्पर्क स्थापित होता है।

यह मुद्रा मणिपुर, विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र पर सम्यक प्रभाव डालती है। यह अतीन्द्रिय क्षमता के बीजांकुरों का प्रस्फुटन करते हुए संकल्पबल, पराक्रम, आत्मविश्वास एवं ज्ञान में वृद्धि करती है। अचेतन मन एवं चित्त संस्थान को प्रभावित कर दायें मस्तिष्क के 'सायलेन्ट एरिया' को जगाती है तथा स्मृति समस्या, मानसिक विकार, अविश्वास एवं कषायों का उपशमन करती है।

• थायरॉइड, पेराथायरॉइड, थायमस, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा रोग प्रतिरोधक क्षमता में विकास करती है। भय, घबराहट, निराशा, आत्म विश्वास की कमी आदि को दूर करती है।

13. सिंह मुद्रा

सिंह को जंगल का राजा माना जाता है अत: इसे वनराज कहते हैं। सिंह पशु श्रेणी के अन्तर्गत होने के बावजूद भी उसमें अनेक विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं।

• यह शूरवीर, पराक्रम एवं निर्भीकता जैसे गुणों का प्रतीक है।

• इसकी गर्जना मात्र सुनकर जंगली पशु-पक्षी अपने प्राण रक्षार्थ सावधान हो जाते हैं।

• यह भूख लगने पर ही शिकार करता है, यदि उदर तृप्त हो तो अनावश्यक वध नहीं करता। इसकी यह प्रवृत्ति अपरिग्रह सिद्धान्त को पुष्ट करती है तथा लोभ के मोह में फँसे हुए को त्याग की प्रेरणा देती है।

• सिंह मृत पशु का भक्षण नहीं करता। वह स्वयं के पराक्रम से उपलब्ध आहार का ही सेवन करता है। यह वृत्ति व्यक्ति को स्वावलम्बी जीवन जीने एवं निरन्तर परिश्रम करने का संकेत करती है।

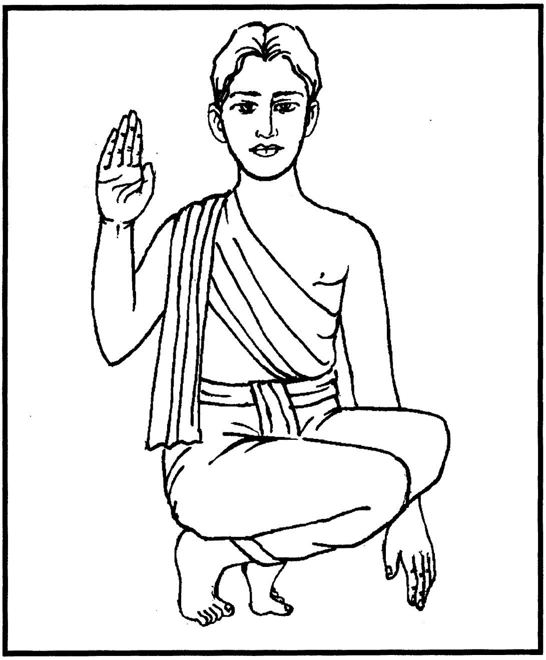

सिंह मुद्रा

• सिंह पीछे मुड़कर कभी प्रहार नहीं करता। इसका रहस्य है कि यह साधक की भाँति परित्यक्त साधनों अर्थात भोजन को पीछे मुड़कर नहीं देखता। आगे बढ़ते हुए उदर पूर्ति हो गई तो ठीक, अन्यथा परवाह नहीं करता।

• सिंह अपने भोजन को जहाँ-तहाँ से झूठा भी नहीं करता। एक तरफ का खाने के बाद ही दूसरी तरफ बढ़ता है। इससे वह भक्ष्य अन्य पशुओं के लिए भी उपयोगी बन सकता है। यह प्रवृत्ति परोपकार गुण को इंगित करती है। इस तरह सिंह मानव के लिए प्रेरणास्रोत पशु है।

प्रतिष्ठा आदि के अवसर पर सिंह मुद्रा सर्व भयों से मुक्त होने के प्रयोजन से दिखाई जाती है।

विधि

"उत्कटिकासनस्थस्य वामकरे भूमौ स्थापिते दक्षिण करे च अभयवत्कृते सिंह मुद्रा।"

उत्कटिकासन में स्थित होकर बाएँ हाथ को भूमि पर स्थापित करें तथा दाएँ हाथ को अभय मुद्रा में रखने पर जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे सिंह मुद्रा कहते हैं।

सुपरिणाम

• शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा से अंगुलियों के जोड़ों सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। यह कैन्सर, हड्डी की समस्या, कोष्ठबद्धता, फोड़े, जलने के दाग, सिरदर्द, पाचन समस्या, अल्सर, शारीरिक कमजोरी आदि को कम करती है।

इससे वीर्य विकार, पेट के विकार एवं मस्तिष्क विकार भी उपशान्त होते हैं।

यह मुद्राभ्यास पृथ्वी और अग्नि तत्त्व को संतुलित रखते हुए साधक के संकल्प बल एवं पराक्रम को बढ़ाता है। यह क्रोध, घृणा, पागलपन, अनियंत्रण, अस्थिरता, अविश्वास आदि के दमन में भी सहायक बनती है। इससे व्यक्ति स्वस्थता का अनुभव करता है।

• आध्यात्मिक स्तर पर ब्रह्मचर्य रक्षा में सहयोग मिलता है।

सिंहत्व भावना का प्रस्फुटन होता है। हृदय में वीरता एवं बल का सुयोग होने से डर भाग जाता है।

इस मुद्रा से मूलाधार एवं मणिपुर चक्र की जागृत अवस्था के सभी लाभ हासिल होते हैं।

• एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रंथियों के स्राव को संतुलित रखते हुए संचार व्यवस्था, हलन-चलन, श्वसन, अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन, ब्लड शूगर, ब्लड प्रेशर आदि के संतुलन में तथा कामेच्छा के नियंत्रण में यह मुद्रा सहायक बनती है।

14. शक्ति मुद्रा

शक्ति शब्द सामर्थ्य एवं क्षमता वाचक है। संभवत: शक्ति मुद्रा से आत्मिक शक्ति का अभ्युदय होता है और सुषुप्त शक्तियाँ अपने मूल स्वरूप को प्राप्त करती हैं। इसलिए इसका नाम शक्ति मुद्रा है।

आचारदिनकर के अनुसार यह मुद्रा प्रतिष्ठा आदि कार्यों में उपयोगी बनती है।

विधि

"करद्वयमध्यमासावित्र्योरग्राग्रयोजितयोः शक्ति मुद्रा।"

दोनों हाथों की मध्यमा एवं तर्जनी अंगुलियों को आगे-आगे योजित करने

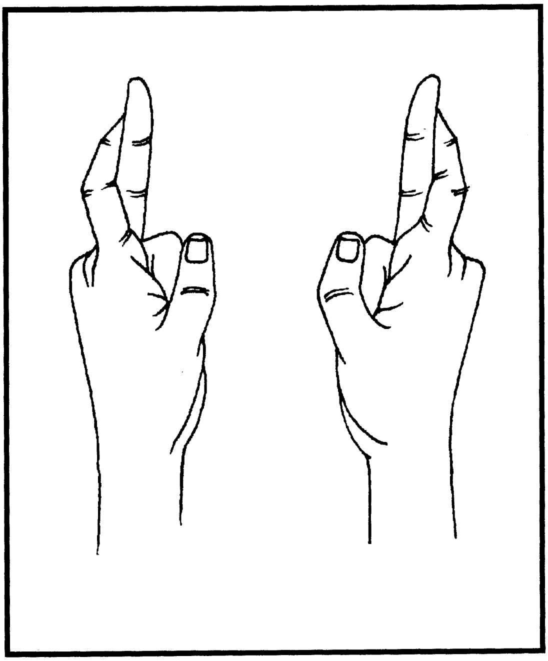

शक्ति मुद्रा

पर जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे शक्ति मुद्रा कहते हैं।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर हस्तांगुलियों के सन्धि सम्बन्धी रोग दूर होते हैं।

हाथों की अंगुलियाँ लचीली बनती हैं जिससे दु:साध्य कार्य को भी सहज सम्पन्न किया जा सकता है।

इससे हाथों के अवयवों की क्षमता बढ़ती है।

यह मुद्रा पृथ्वी और अग्नि तत्त्व के असंतुलन से संभावित रोगों का शमन करती है।

- आध्यात्मिक दृष्टिकोण से चैतसिक शक्तियाँ अभिव्यक्त होती हैं।

इससे शक्ति और तैजस केन्द्र अपने मूल स्वरूप की प्राप्ति हेतु सक्रिय हो उठते हैं।

यह मुद्रा अन्त:करण में परिवर्तन करती है। इससे सिंह मुद्रा के सुफल भी प्राप्त होते हैं।

15. पाश मुद्रा

पाश का सामान्य अर्थ बंधन है। विधिमार्गप्रपा में भी पाश मुद्रा कही गई है किन्तु आचारदिनकर में उल्लिखित पाश मुद्रा इससे भिन्न स्वरूपवाली है।

आचारदिनकर में वर्णित पाश मुद्रा दुष्ट तत्त्वों को स्तम्भित करने के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

''कनिष्ठातर्जन्योर्वज्राकृतीकृतयोर्मध्यमासावित्र्योर्वक्री करणं पाश मुद्रा।'

दोनों कनिष्ठिका एवं दोनों तर्जनी अंगुलियों को वज्राकृति में करके दोनों मध्यमा एवं दोनों अनामिका अंगुलियों को वक्र करने से जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे पाश मुद्रा कहते हैं।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा मस्तिष्क सम्बन्धी रोग, पागलपन, अस्थिरता, शंकालु वृत्ति आदि का निवारण करती है।

इससे हस्तांगुलियों का लचीलापन बढ़ता है।

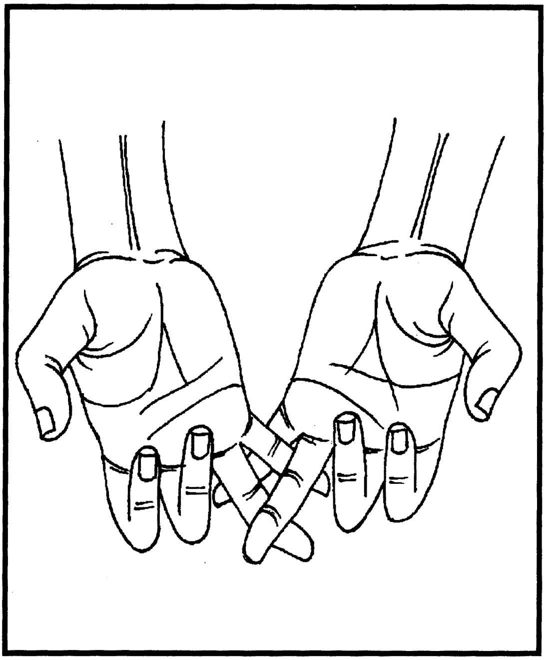

पाश मुद्रा

अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित रखते हुए यह मुद्रा पाचन एवं श्वसन प्रक्रिया को संतुलित करती है तथा तत्सम्बन्धी विकारों का उपशमन करती है। हृदय में सद्भावों का जागरण एवं ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन करती है।

- आध्यात्मिक स्तर पर आत्मिक परिणामों में बदलाव आता है। चिन्तन शक्ति विकसित होती है।

इस मुद्रा प्रभाव से दर्शन एवं तेजस केन्द्र की ऊर्जा सम्यक दिशा में प्रवृत्त होती हैं।

पीयूष, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक एवं शारीरिक हलन-चलन, मानसिक विकास, अस्थि तंत्र सम्बन्धी समस्या तथा स्वभाव एवं मनोवृत्तियों को नियंत्रित रखती है।

16. कुन्त मुद्रा

कुन्त, प्राचीन भारत में निशाना साधने का एक अस्त्र विशेष माना जाता है। इसे भाला, बाण, बर्छी भी कह सकते हैं। आदिवासी लोग पशु शिकार के लिए आज भी इस तरह के अस्त्रों का प्रयोग करते हैं।

इस मुद्रा को बनाते वक्त कुन्त के समान आकृति निर्मित होती है, अतः इसे कुन्त मुद्रा कहा गया है। इस मुद्रा का प्रयोग जन सामान्य की रक्षा हेतु किया जाता है। आचारदिनकर में इसे जन रक्षाकारी बतलाया गया है।

विधि

"कर्णपार्श्वे बद्धमुष्टौ दक्षिणकरे धारिते कुन्त मुद्रा।"

दाएँ हाथ को मुष्टिबद्ध करके उसे कानों के समीप रखना कुन्त मुद्रा हैं।

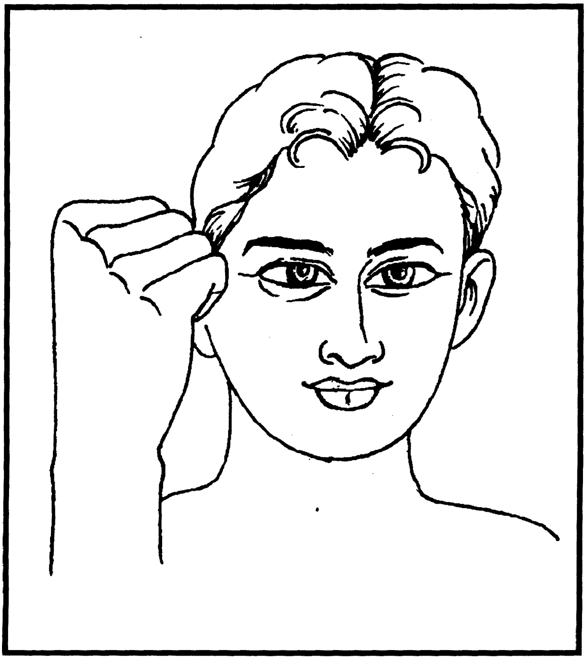

कुन्त मुद्रा

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा लीवर पर अच्छा प्रभुत्व स्थापित करती है। पाचन क्रिया मुख्य सहायक अंगों में यकृत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। यकृत

शरीर में सबसे बड़ा कारखाना है और यह लगभग 500 प्रकार के विविध कार्यों का सम्पादन करता है।

यह मुद्रा जल, पृथ्वी और आकाश तत्त्व को संतुलित रखते हुए विसर्जन, प्रजनन, श्वसन, मस्तिष्क से सम्बन्धित कार्यों को नियमित एवं नियंत्रित रखती हैं। इससे विचारों एवं भावों में स्थिरता, व्यापकता एवं प्रवाह आता है।

भौतिक स्तर पर यह मुद्रा कैन्सर, हड्डी की समस्या, कोष्ठबद्धता, सिरदर्द, आर्थराइटिस, मासिक धर्म, प्रजनन अंग, मस्तिष्क आदि से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण करती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से इस मुद्रा के द्वारा एकाग्रता और ज्ञान पाने की क्षमता का विकास होता है।

इस मुद्रा से चैतन्य केन्द्रों का निर्मलीकरण होता है।

इसके प्रभाव से पीयूष ग्रन्थि का स्राव नियन्त्रित रहता है।

यह मुद्रा स्वाधिष्ठान, मूलाधार एवं आज्ञा चक्र को आन्दोलित करते हुए सकारात्मक ऊर्जा का उत्पादन करती है। तनाव एवं प्रतिकूलताओं से लड़ने की क्षमता उत्पन्न करती है।

17. शाल्मली मुद्रा

शाल्मली, यह सेमल नाम से प्रसिद्ध एक वृक्ष का नाम है। यह वृक्ष बहुत घटादार होता है। इसमें बड़े आकार और मोटे दलों के लाल फूल लगते हैं और जिसके फलों में केवल रूई होती है गुदा नहीं होता। सेमल की रूई रेशम सी मुलायम और चमकीली होती है तथा गद्दा-तकियों में भरने के काम आती है, क्योंकि काती नहीं जा सकती। इसकी लकड़ी पानी में खूब तैरती है और नाव बनाने के काम में आती है।

आयुर्वेद में सेमल को उपकारी औषधि रूप माना गया है। सेमल के नए पौधे की जड़ अत्यन्त पुष्टिकारक और नपुंसकता को दूर करने वाली मानी जाती है। इस वृक्ष के कांटो में फोड़े, फुंसी, घाव आदि दूर करने का गुण होता है।

आचार दिनकर में शाल्मली वृक्ष की तुलना सम्यकज्ञान के प्रकाश के साथ की गई है। जिस तरह सेमल वृक्ष व्यापक, बृहद आकार वाला और फूलों से लदा होता है, उसी तरह सम्यक ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण एवं सदगुण रूपी फूलों से समन्वित हैं।

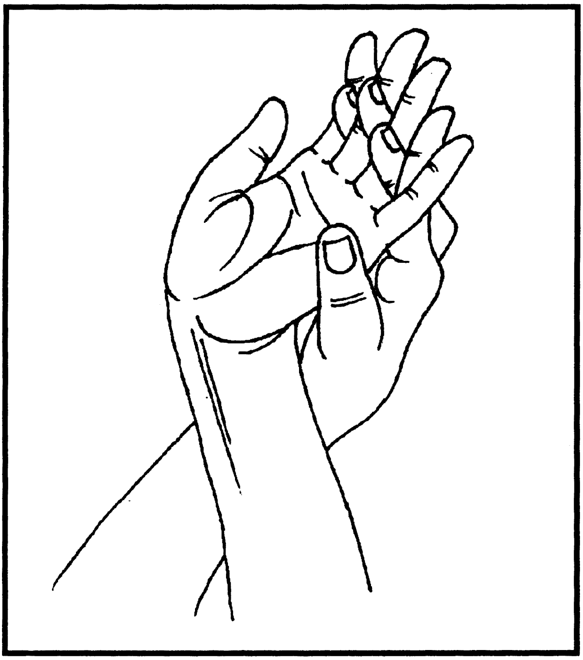

शाल्मली मुद्रा

इस मुद्रा के प्रभाव से आत्मज्ञान स्वयं को प्रकाशित करता है अत: शाल्मली मुद्रा ज्ञान प्रकाशिनी है।

विधि

"बाहुद्वये परस्परं वल्लीवद्वेष्टिते कराङ्गुलीनां कंकतीकरणं शाल्मली मुद्रा।"

दोनों बाहों को परस्पर लता सदृश वेष्टित करके हाथ की अंगुलियों को कंकती (कंघा) बनाने से जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे शाल्मली मुद्रा कहते हैं।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा से साइनस सम्बन्धी समस्या दूर होती है।

यह मुद्रा श्वास आदि की दुर्गन्ध, आखों की समस्या, शारीरिक कमजोरी आदि में लाभकारी है।

इससे हृदय सम्बन्धी रोग ठीक हो जाते हैं।

अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक अग्नि को प्रदीप्त कर भावों एवं विचारों को स्थिर करती है। इसी के साथ विसर्जन एवं पाचन तंत्र से सम्बन्धित कार्यों को नियमित एवं नियंत्रित रखती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से चैतन्य केन्द्रों पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है। इससे तैजस और शक्ति केन्द्र अधिक क्रियाशील होते हैं।

इस मुद्रा की मदद से मस्तिष्क केन्द्रीय नाड़ी संस्थान सुचारू रूप से संचालित होते हैं।

शाल्मली मुद्रा को धारण करने से मणिपुर एवं मूलाधार चक्रों का जागरण होता है। यह मुद्रा ऊर्जा का उत्पादन कर उसे ऊर्ध्वरोहित करने में सहायक बनती है। यह संकल्प शक्ति, पराक्रम एवं परमार्थ में रुचि को जागृत करते हुए एकाग्रता, विश्वास, स्फूर्ति, आत्मविश्वास आदि में वृद्धि करती है।

एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शारीरिक संचरण रक्त संचरण, अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन में सहायक बनती है। साधक को साहसी, निर्भयी, सहनशील एवं आशावादी भी बनाती है तथा कामेच्छाओं पर नियंत्रण करती है।

18. कन्दुक मुद्रा

क्रीड़ा योग्य गेंद को कन्दुक कहते हैं। कन्दुक की एक खासियत है कि उसे कितना ही ऊपर उछाला जाये, वह तुरन्त नीचे की ओर गमन करती है। इसी प्रकार किसी के आक्रोश को शान्त करने के लिए हाथ की मुद्रा भी वैसी ही होती है अर्थात हाथ को गेंद की तरह ऊपर-नीचे करते हैं।

आचार्य वर्धमानसूरि के अनुसार यह मुद्रा द्वेष का शमन करती है। इस मुद्रा का प्रयोजन कन्दुक मुद्रा के गुण से पूर्ण मेल खाता है।

विधि

''दक्षिणकरे अधोमुखे प्रसारिताङ्गुलौ निरालम्बे स्थापिते कन्दुक मुद्रा।''

दाएँ हाथ को अधोमुख करके और अंगुलियों को बिना किसी आधार के स्थापित करने पर जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे कन्दुक मुद्रा कहते हैं।

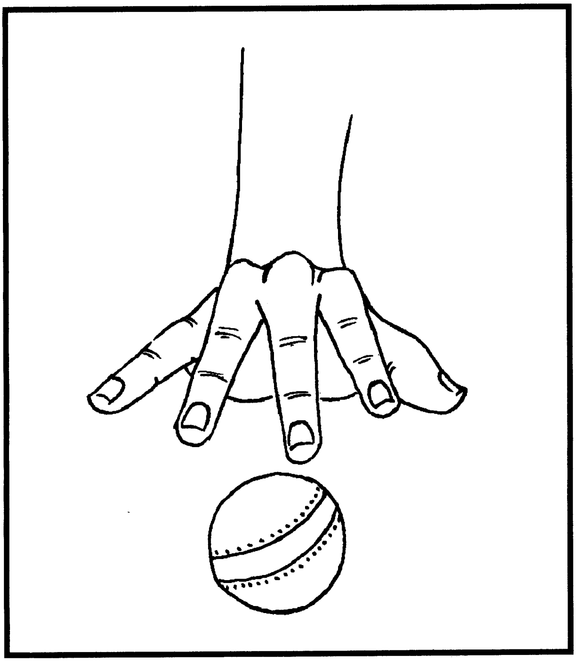

कन्दुक मुद्रा

सुपरिणाम

• शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा में पाँचों तत्त्वों का संयोजन होने से अद्भुत शक्तियों का आविर्भाव होता है, परिणामत: शरीर निरोग एवं स्वस्थ रहता है।

शरीर में उष्णता बढ़ गई हो अथवा जल तत्त्व की कमी हो गई हों तो इस मुद्रा से जल तत्त्व और उष्ण तत्त्व समान स्थिति में आ जाते हैं।

• आध्यात्मिक दृष्टि से विषय-वासनाओं का साम्राज्य संकुचित होता है।

यह मुद्रा परिवार एवं समाज को शान्ति प्रदान करती है। प्रबल शत्रु भी इस मुद्रा को देखकर पानी जैसा ठंडा हो जाता है।

इस मुद्रा के अतिरिक्त फायदे शाल्मली मुद्रा के समान जानने चाहिए।

19. माला मुद्रा

जाप करने के साधन को माला कहते हैं। माला अनेक प्रकार की होती हैं। सामान्यतया सूत की माला श्रेष्ठ मानी गई है। प्रसंगानुसार रत्न, चंदन, स्फटिक, मोती, रजत निर्मित मालाओं का भी उपयोग होता है। प्लास्टिक की माला सर्वथा वर्ज्य है। जैन योग तन्त्र में जाप करने के सम्बन्ध में भी भिन्न-भिन्न

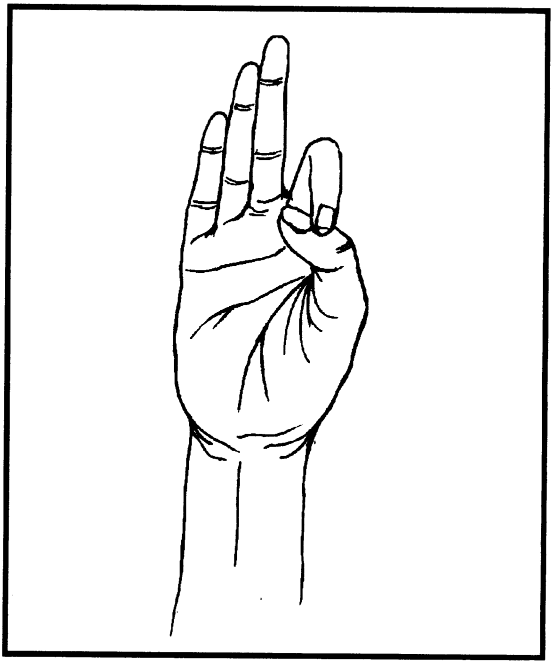

माला मुद्रा

पद्धतियाँ प्रचलित हैं तथा उनके पीछे पृथक-पृथक प्रयोजन भी रहे हुए हैं। यहाँ जाप करने की एक पद्धति का उल्लेख है, उसे तर्जनी जाप मुद्रा कह सकते हैं।

यह मुद्रा पूजा कर्म को अतिशय प्रभावी बनाने के उद्देश्य से प्रयुक्त की जाती है।

विधि

"दक्षिणेकरे योजितप्रदेशिन्यङ्गुष्ठे निरालम्बधारिते मालामुद्रा।"।

दाहिने हाथ की अंगुलियों को मिलाकर तर्जनी अंगुली को झुकाकर उसे अंगूठे के ऊपर स्थापित करने से तर्जनी मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर यह ब्रेन ट्यूमर, कोमा, मिरगी, गला, मुँह, कान आदि की विविध समस्याओं को न्यून कर शरीर को स्वस्थ रखती है।

यह मुद्रा अनिद्रा एवं अति निद्रा की बीमारी का निवारण करती है। अधिकांश व्यक्तियों को जाप आदि के वक्त निद्रा आ जाती है। इस मुद्रा से जाप करने पर निद्रा रोग से बचा जा सकता है।

शरीर की पीयूष, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थियों के स्राव नियंत्रण में रहते हैं।

इससे वायु सम्बन्धी और हृदय सम्बन्धी समस्त कष्टों में आराम मिलता है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से ध्यान के क्षेत्र में प्रगति होती है।

क्रोध, उत्तेजना, आवेश, चिड़चिड़ापन जैसी अशुभ वृत्तियों का शमन होता है।

यह मुद्रा विशुद्धि और आज्ञा चक्र की मूल स्थिति को व्यक्त करने का प्रयत्न करती है। यह आन्तरिक दिव्य ज्ञान को जागृत कर स्मृति को स्थिर करती है। हृदय में पवित्र प्रेम का जागरण करती है। भाव अभिव्यक्ति में भी यह मुद्रा सहायक बनती है।

20. प्रायश्चित्त विशोधिनी मुद्रा

प्रस्तुत मुद्रा अपने नाम के अनुसार पापों का शोधन करती है, चैतन्य जगत को परिशुद्ध करती है, चित्त केन्द्र को निर्मल करती है, इसलिए प्रायश्चित्त विशोधिनी मुद्रा कहलाती है। यह पूर्णत: आध्यात्मिक मुद्रा है।

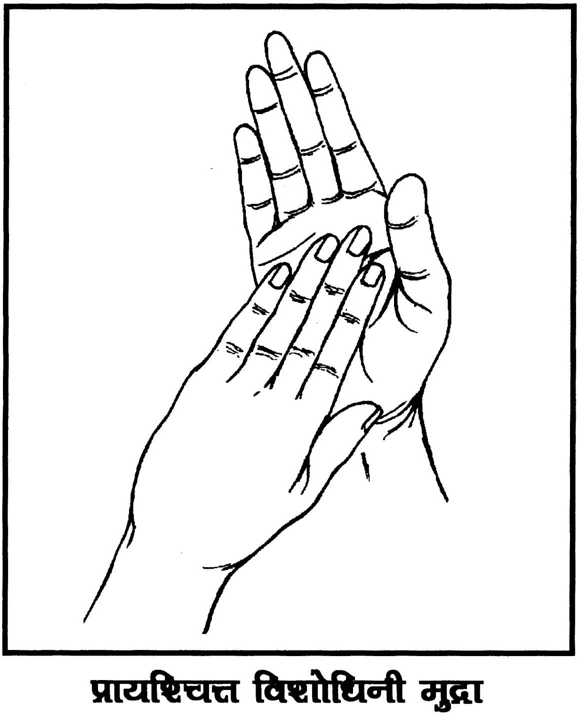

प्रायश्चित्त विशोधिनी मुद्रा

निम्न दर्शाये चित्र एवं विधि स्वरूप के अनुसार इस मुद्रा में दाएँ हाथ से बाएँ हाथ की अंगुलियों को चटकाया जाता है, वह दुष्कर्मों को चूर करने का संकेत करती है। अत: प्रायश्चित्त विशोधिनी यह नाम सार्थक एवं सुसंगत है।

इस मुद्रा का प्रयोग पाप कर्मों से मुक्त होने के लिए उसके प्रतीक रूप में किया जाता है।

विधि

"दक्षिणकरस्य वामकराच्छोटनं प्रायश्चित्त विशोधिनी मुद्रा।"

बाएँ हाथ से दाहिने हाथ की अंगुलियों को चटकाने पर जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे प्रायश्चित्त विशोधिनी मुद्रा कहते हैं।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से इसका अभ्यास पंच प्राणों के प्रवाह को नियमित करता है। यह मुद्रा शरीर आदि की दुर्गन्ध, छाती, हृदय, फेफड़ें, भुजा, एलर्जी आदि से सम्बन्धित समस्याओं का शमन करती है। इसके अतिरिक्त वायु प्रकोप, आखों की समस्या, कैन्सर, पाचन समस्या आदि में सहायक बनती है।

इसके प्रभाव से वायु रोग, हृदय रोग एवं रक्त रोग धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं।

• आध्यात्मिक दृष्टि से यह मुद्रा अनाहत और मूलाधार चक्र को अधिक प्रभावित करती है। इसी के साथ यह संकल्प शक्ति, पराक्रम, परमार्थ, सहकारिता आदि में रुचि जागृत करती है। क्रोध, अत्यधिक भय, अविश्वास, असंतोष एवं धूम्रपान आदि की समस्याओं का शमन करती है।

इससे पापभीरुता का गुण उत्पन्न होता है। अनभिव्यंजित आनन्द की अनुभूति होती है।

थायमस, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा सम्पूर्ण शरीर में स्फूर्ति का संचरण करती है। संचरण व्यवस्था, रक्त परिभ्रमण, उत्सर्जन एवं विसर्जन आदि में आई गड़बड़ियों को दूर करती है।

21. ज्ञान कल्पलता मुद्रा

प्रस्तुत मुद्रा में 'ज्ञान' शब्द केवलज्ञान का सूचक है एवं 'कल्पलता' शब्द कल्पवृक्ष का बोधक है। जिस तरह सामान्य कल्पवृक्ष भौतिक जगत की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करता है उसी तरह केवलज्ञान रूपी कल्पवृक्ष अध्यात्म जगत की सकल ऋद्धि-समृद्धियों को प्रदान करता है।

इस मुद्रा के माध्यम से अनन्त गुणपुंज केवलज्ञान की स्थिति को प्रकट करने का प्रयत्न किया जाता है।

विधि

''नासाग्रे दक्षिणाङ्गुष्ठ तर्जन्योः स्थापनं नाभौ वा भाले वा भ्रूमध्ये वा ज्ञानकल्पलतामुद्रा''

नासिका के आगे, नाभि पर, मस्तक पर अथवा भौंहों पर दाहिने हाथ का अंगूठा एवं तर्जनी को स्थापित करने से जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे ज्ञान कल्पलता मुद्रा कहते हैं।

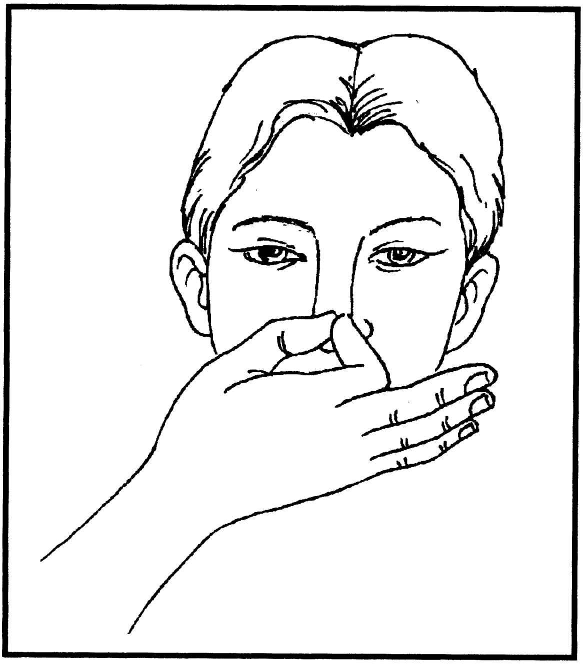

ज्ञान कल्पलता मुद्रा

सुपरिणाम

• शारीरिक स्तर पर ज्ञान मुद्रा से होने वाले अधिकांश फायदे इस मुद्रा में भी होते हैं। इस मुद्रा के प्रभाव से पेट के विभिन्न अवयवों की क्षमता बढ़ती है।

शारीरिक समस्याओं जैसे कंठ, कन्धे, कान आदि का संक्रमण तथा मस्तिष्क सम्बन्धी रोग जैसे मिरगी आदि का निवारण होता है।

यह मुद्रा आकाश एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए हृदय, श्वसन आदि के कार्यों का नियमन करती है तथा विचारों को स्थिर एवं सम्यक बनाती है।

इससे हृदय जनित सभी तरह के विकार उपशान्त होते हैं। शरीर एवं नाड़ी तन्त्र की शुद्धि होती है। यह मुद्रा गैस जनित बीमारी में तुरन्त लाभ पहुँचाती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से दर्शन एवं विशुद्धि केन्द्र के सक्रिय होने की पूर्ण शक्यता रहती है। अतिन्द्रिय क्षमता एवं ज्ञान जागरण में यह मुद्रा सहायक बनती है। अचेतन मन एवं चित्त संस्थान को प्रभावित करती है तथा दायें मस्तिष्क के निष्क्रिय अंश को जागृत करती है।

साधक अज्ञान से सम्यक्ज्ञान की ओर अभिमुख होता है तथा मिथ्यात्व की दशा से ऊपर उठता हुआ समस्त मिथ्या जालों से छुटकारा पा लेता है।

जिस तरह 'लता' किसी भी वस्तु का आलम्बन पाकर ऊपर की ओर चढ़ जाती है, उसी तरह इस मुद्रा से अभ्यासी का ज्ञान अभिवृद्ध होता रहता है।

22. मोक्ष कल्पलता मुद्रा

यहाँ मोक्ष शब्द सम्पूर्ण कर्मों के क्षय का प्रतीक है तथा कल्पलता शब्द कल्पवृक्ष का सूचक है। जिस मुद्रा के द्वारा सकल सिद्धियों के निवास रूप निर्वाण पद की प्राप्ति होती है, उसे मोक्ष कल्पलता मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा कल्पवृक्ष की भाँति निर्वाण रूपी श्रेष्ठ पद को उपलब्ध करवाने में सहयोग करती है। वस्तुतः यह मुद्रा नाम के अनुरूप फल प्रदान करने वाली है।

विधि

''अङ्गुष्ठे अङ्गुलीसमूहात्पृथक्कृते अङ्गुली समूहे चलिते नाभेरारभ्य द्वादशान्तनयनं मोक्षकल्पलता मुद्रा।''

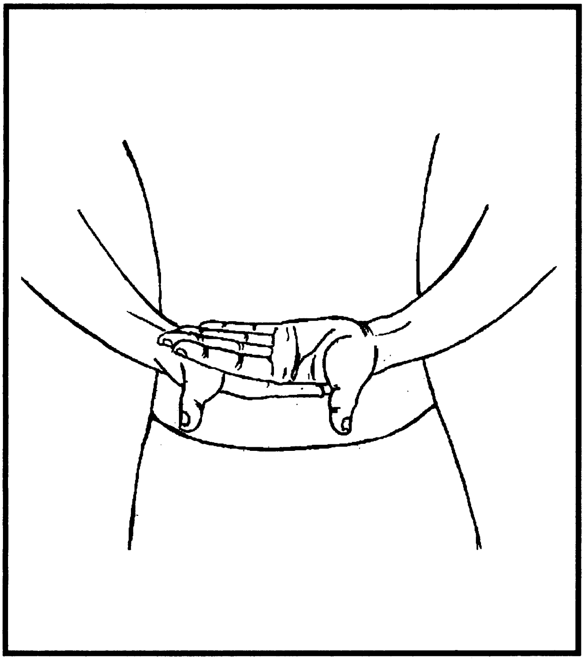

मोक्ष कल्पलता मुद्रा-1

अंगूठों को अंगुलियों के समूह से अलग करके नाभि से अंगुलियों को चालित करते हुए द्वादश तक ले जाने पर जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे मोक्ष कल्पलता मुद्रा कहते हैं।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा नाड़ी तन्त्र की शुद्धि करती है। इससे रक्त वाहिनियों का परिशोधन होता है।

अग्नि एवं जल तत्व को संतुलित एवं नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा शरीरस्थ तीनों अग्नियों को जागृत करती है। भावों में प्रवाहात्मकता लाती है। यह पाचन तंत्र, चयापचय, लीवर, पित्ताशय, मधुमेह आदि की समस्या, अल्सर, बुखार, हर्निया, दाद, नुपंसकता, कामुकता मासिकधर्म, गुर्दे आदि की समस्याओं का निवारण करती है।

- आध्यात्मिक दृष्टि से इस मुद्रा की साधना के द्वारा मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र सक्रिय हो जाते हैं। यह ऊर्जा एवं ज्ञान दोनों का ऊर्ध्वगमन

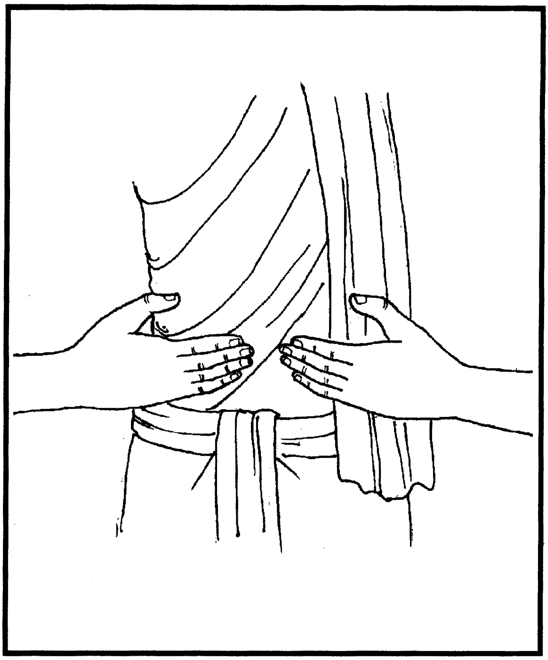

मोक्ष कल्पलता मुद्रा-2

करवाती है तथा सांसारिक (भौतिक) इच्छाओं एवं छल-कपट आदि से सदैव बचाती है।

एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रंथि के स्राव को नियंत्रित करने हेतु यह मुद्रा तनाव मुक्ति आदि का विकास करती है। कामेच्छाओं का नियंत्रण करती है तथा स्वर आदि की समस्या का शमन करती है।

इसके अभ्यास से शरीर की प्राणवान ऊर्जा जो नीचे की ओर प्रवाहित हो रही है, उसका ऊर्ध्वीकरण होता है।

साधना विकास में सहयोगी कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वाभिमुख हो ऊपर की ओर प्रयाण करती है।

23. कल्पवृक्ष मुद्रा

तीन लोकों में सर्वोत्तम वृक्ष कल्पवृक्ष कहलाता है। इसे समस्त प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाला कहा जाता है। जन-मान्यता है कि इसके समक्ष की गई प्रार्थना निष्फल नहीं जाती इसका नाश कल्पांत तक नहीं होता।

जैनागमों के अनुसार प्रत्येक कालखण्ड में जब तक युगलिक काल रहता है तब तक मानव जाति का निर्वाह कल्पवृक्ष द्वारा ही होता है। इसके अतिरिक्त अकर्म भूमियों में रहने वाले मनुष्य भी कल्पवृक्ष के माध्यम से जीवन यापन करते हैं। अकर्म भूमि पर असि, मसि, कृषि का व्यापार नहीं होता, उस भू-क्षेत्रीय लोगों की सर्व इच्छाएँ कल्पवृक्ष से पूर्ण होती हैं।

कल्पवृक्ष के सम्बन्ध में कुछ भिन्न मान्यताएँ भी हैं। पुराणों के अनुसार यह देवलोक का एक वृक्ष है, जो समुद्र मंथन के समय समुद्र से प्रगट हुआ था और 14 रत्नों में श्रेष्ठ रत्न माना जाता है। इसे इन्द्र को प्रदान कर दिया गया, अतः

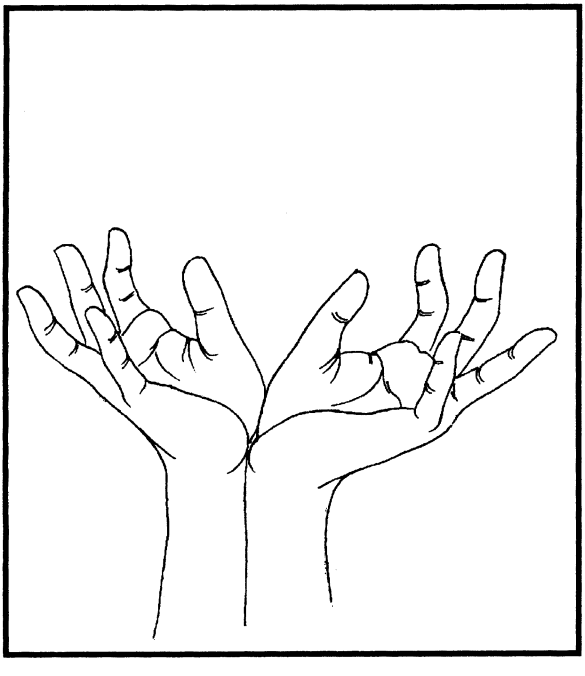

कल्पवृक्ष मुद्रा

देवलोक में विद्यमान है। मुस्लिम परम्परा इसी तरह के वृक्ष को स्वर्ग में मानती है जिसे वे तूबा कहते हैं।

हिन्दी शब्दसागर कोश के अनुसार कल्पवृक्ष संसार में सब पेड़ों से ऊँचा, घेरदार और दीर्घजीवी होता है। इस तरह यह वृक्ष इच्छित फलदायक और वांछा पूरक है।

इस मुद्रा के माध्यम से कल्पवृक्ष की भाँति सर्व कामनाओं की सिद्धि होती है और साधक शीघ्रातिशीघ्र श्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

विधि

"भुजयोः कूर्परादारभ्य मीलितयोरङ्गुलीप्रसारणं कल्पवृक्ष मुद्रा सर्व वाञ्छित प्रदा।"

दोनों भुजाओं को कोहनियों से मिलाकर एवं अंगुलियों को फैलाने पर जो मुद्रा निष्पन्न होती है, उसे कल्पवृक्ष मुद्रा कहते हैं।

सुपरिणाम

• शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा के द्वारा हाथ की मांसपेशियों, हथेलियों एवं अंगुलियों पर विशेष दबाव पड़ता है। इससे यह सम्पूर्ण भाग सक्रिय एवं शक्ति स्रोत के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

यह मुद्रा थायरॉइड और पेराथायरॉइड ग्रंथियों के स्राव को नियन्त्रित रखती हैं। आँख, कर्ण एवं गले सम्बन्धी बीमारियों में शीघ्र लाभ पहुँचाती है।

आकाश एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा पाचन तंत्र, हृदय, श्वसन आदि की प्रक्रिया को नियंत्रित रखती है। सृजनात्मक एवं कलात्मक कार्यों में रुचि का वर्धन करती है।

इससे शारीरिक विकृतियाँ दूर होकर आरोग्य की प्राप्ति होती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मविकास की मूलशक्ति कुण्डलिनी अपनी स्वरूप की ओर उन्मुख बनती है।

चक्र विशेषज्ञों के अनुसार कल्पवृक्ष मुद्रा के प्रयोग से अनाहत, मणिपुर एवं ब्रह्म केन्द्र जागृत होते हैं। इससे अन्तरंग गुणों का प्रकटीकरण होता है।

थायमस, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते

हुए यह मुद्रा कामवासना का उपशमन करती है। सद्विचार, सद्बुद्धि एवं सत्संस्कारों का जागरण करती है तथा जीवन पद्धति एवं मनोवृत्तियों को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा तनावमुक्ती एवं प्रसन्नता देती है।

इससे जीवात्मा का परमात्मा से मिलन या साक्षात्कार की संभावना भी बढ़ जाती है।

उपरोक्त अध्याय में आचार दिनकर ग्रंथ में उल्लेखित मुद्राओं का सस्वरूप विस्तृत वर्णन किया गया। इस वर्णन का मुख्य ध्येय विधि-विधानों में प्राण तत्त्व का संचार करना है। वर्तमान में विधि-विधान तो बढ़ रहे है परन्तु उन विधानों से आन्तरिक जुड़ाव समाप्त होता जा रहा है। इसका एक मुख्य कारण है उनकी अधुरी या नहींवत जानकारी तथा उसके सुपरिणामों के विषय में अज्ञेयता। इसी हकीकत को ध्यान में रखकर मुद्रा प्रयोग की सम्यक विधि एवं उसके लौकिक-लोकोत्तरक परिणामों का प्रामाणिक रूप आराधक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है। यह साधक वर्ग को अवश्य लाभान्वित करेगा।

●

अध्याय-4

मुद्रा प्रकरण एवं मुद्राविधि में वर्णित मुद्राओं की प्रयोग विधियाँ एवं उनके सुप्रभाव

जैन मुद्रा विज्ञान के संदर्भ में मुद्राप्रकरण एवं मुद्राविधि दोनों ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। यह ग्रन्थ विशेष रूप से वर्णित विषय का ही प्रतिपादन करते हैं। इनमें उल्लेखित शताधिक मुद्राएँ दैनिक साधना-उपासना एवं विशिष्ट आयोजित दोनों का ही स्वरूप स्पष्ट करती है। जैन साधना पद्धति के अनेक सूक्ष्म रहस्य इन मुद्राओं के माध्यम से समझे जा सकते हैं। निम्नोक्त रूप में यह मुद्राएँ हमारे जीवन को प्रभावित करती हैं।

1. ॐकार मुद्रा

ॐकार की उत्पत्ति 'अव रक्षणे' धातु से मानी गई है। इससे 'अवति रक्षति संसार सागरात स ओम्' अर्थात जो संसार सागर से रक्षा करता है वह ओम् है ऐसा अर्थ प्रकट होता है। सभी मंत्रों में ॐ का प्रथम स्थान है, जैसे ॐ नमो अरिहंताणं, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ नमः शिवाय आदि। ॐकार का महत्त्व बतलाते हुए अनेक ग्रन्थों में कहा गया है कि ॐ से सकल देवता उत्पन्न हुए हैं, ॐ से स्वर निधि जागृत होती है, ओंकार में ब्रह्माण्ड (स्वर्ग-मृत्यु-पाताल लोक) समाविष्ट है। ओंकार नाद ब्रह्म है, ओंकार आध्यात्मिक कवच है, ओंकार ब्रह्म तत्त्व है, ओंकार अक्षर ब्रह्म है। भूत-वर्तमान-भविष्य इन तीनों काल में होने वाले समस्त कार्य ॐकार में व्याप्त है तथा तीन काल से जो अतीत हैं, वे सब भी ॐकारमय है।

छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार समस्त भूतों का सार पृथ्वी है, पृथ्वी का सार जल, जल का सार औषधि (धान्यादि), औषधि का सार पुरुष, पुरुष का सार वाणी, वाणी का सार ऋचाएँ, ऋचाओं का सार सामवेद, सामवेद का सार उद्गीथ रूप ॐकार है।

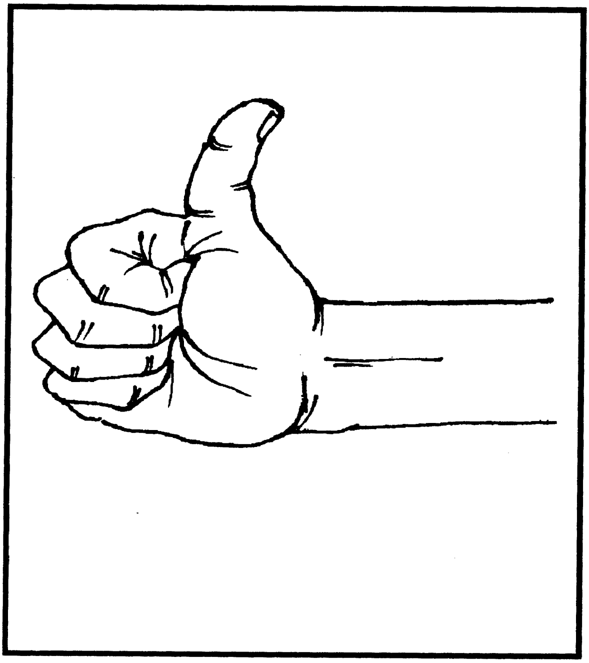

ॐकार मुद्रा

ॐकार किसी भाषा का शब्द नहीं प्रत्युत शक्तिशाली ध्वनि है। यह एकाक्षरी मन्त्र परमात्मा का वाचक है। परमात्मा का साकार प्रतीक होने से परम उपासना का श्रेष्ठ साधन है।

जैन धर्म में 'ॐ' को पंच परमेष्ठि का प्रतीक माना गया है। मुद्राविधि पुस्तक के उल्लेखानुसार सभी जगह स्मरण के अवसर पर और श्रेष्ठ चरित्रवान मुनियों के ध्यान के विषय में इस मुद्रा का उपयोग होता है। इसका बीज प्रणव है।

विधि

"दक्षिणहस्तस्य मुष्टिबंधने दक्षिणांगुष्ठाग्रस्य चोटिवत्कर्षणे ॐकार मुद्रा।"

दायें हाथ की मुट्ठी बांधकर एवं दायें अंगूठे के अग्रभाग को चोटीवत खींचने पर ॐकार मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• ॐकार मुद्रा को धारण करने से अनाहत एवं ब्रह्म केन्द्र जागृत एवं सक्रिय होते हैं। यह मुद्रा साधक में प्रेम, भक्ति और परोपकार के भाव जागृत करती है। चित्रकला, नृत्य, संगीत आदि कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्यों में रुचि उत्पन्न करती है। इससे आध्यात्मिक क्षेत्र में रुचि बढ़ती है।

• यह मुद्रा मस्तिष्क समस्या, पार्किन्सन्स रोग, एलर्जी, दमा, छाती में दर्द, सुस्ती आदि के निराकरण में सहायक बनती है।

• वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा श्वसन एवं रक्त संचरण प्रणाली आदि के कार्यों को नियमित करती है। हृदय, फेफड़ें, नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र आदि की समस्याओं का निवारण करती है। प्राण धारण एवं उसके नियोजन में भी यह विशेष सहायक है।

• थायमस एवं पीयूष ग्रंथि के स्राव को प्रभावित कर यह मुद्रा शारीरिक स्फूर्ति, हृदय की धड़कन, शरीर के तापक्रम, रक्त शर्करा, स्वभाव आदि को नियन्त्रित रखती है।

2. ह्रीँकार मुद्रा

ह्रीँ बीज मन्त्र है। ह्रीँ शब्द में ह + र + ई + ँ + 0 व्याप्त है। इस मन्त्र में परिव्याप्त 'ह' शिव वाचक, रेफ प्रकृति वाचक, 'ई' महामाया वाचक, ँ चन्द्रकला एवं बिन्दू नाद आदि का सूचक है। इस तरह ह्रीँ शब्द बीज, शिव और शक्ति की अपार लीला को सूचित करता है।

त्रिपुरोपनिषद् के अनुसार ह्रीँ का निर्युक्ति अर्थ है—

हृ – हृदय रूप आगार में, ई– निवास करने वाली शक्तियों का बोध कराने वाला ह्रीँकार कहलाता है।

जैन मंत्र विशारदों के मतानुसार 'सर्वधर्म बीजमिदम्' ह्रीँकार बीज सकल धर्मों को मान्य है। इसलिए इस मन्त्र में ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवत्व शक्तियों का समावेश है। तात्पर्य है कि ह्रीँकार मन्त्र का स्मरण जो जिस स्वरूप में करता है उसे तदरूप में उस शक्ति का दर्शन हो जाता है और वह साधक के सर्वमनोरथ को पूर्ण करता है। मंत्राभिधान, बीजाभिधान, प्रणव विद्यास्तवन, मन्त्र व्याकरण आदि ग्रन्थों में ह्रीँकार के अनेक नाम उल्लिखित हैं जो इस मन्त्र की मूल्यवत्ता का साक्षात बोध कराते हैं। जैसे एकाक्षर, आदिरूप, मायाक्षर,

आदिमंत्र, त्रैलोक्य वर्ण, परमेष्ठि बीज, लोकेश, त्रिमूर्ति, बीजेश, भुवनाधात्री आदि।

किंचित ग्रन्थों में ॐकार को पुरुष प्रणव और ह्रीँकार को प्रकृति प्रणव कहा गया है। इसी वजह से प्राय: मन्त्र नामों के पहले 'ॐ ह्रीँ' मंत्राक्षर जोड़े जाते हैं। कुछ ग्रन्थों में आद्यशक्ति या महाशक्ति को ॐकारमयी और ह्रीँकारमयी उभयस्वरूपा माना गया है।

अचिन्त्य गुणों से युक्त यह ह्रीँकार मुद्रा पंच परमेष्ठी के स्मरण निमित्त और अन्य सभी कार्यों की सफलता हेतु की जाती है। इसका बीज माया बीज के समान है।

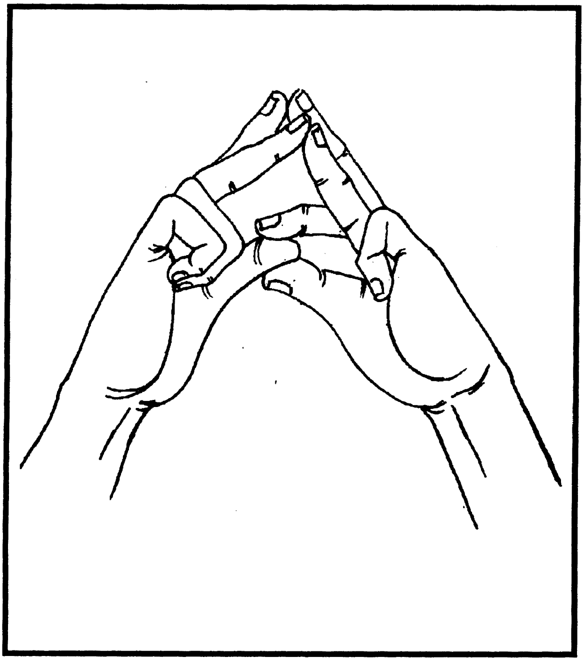

ह्रींकार मुद्रा

विधि

"वामांगुष्ठाग्रं दक्षिणांगुष्ठपृष्ठलग्नं, तथा वामतर्जन्यग्रं दक्षिणांगुष्ठाग्रे संयोज्य, वाममध्यमादक्षिणतर्जनी योजने वामाऽनामिकादक्षिणमध्यमां संयोज्य वामकनिष्ठिकां बिंदुवत्कृत्वा ह्रीँकार मुद्रा।"

बाँयें अंगूठे के अग्रभाग को दायें अंगूठे के पृष्ठ भाग से योजित करें। फिर बायीं तर्जनी के अग्रभाग को दायें अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्शित करें। फिर बायीं मध्यमा को दायीं तर्जनी से संयुक्त करें। बायीं अनामिका को दायीं मध्यमा से संस्पर्शित करें। फिर बायीं कनिष्ठिका को बिन्दुवत करने से ह्रीँकार मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- अनुभवी योगी साधकों के अनुसार ह्रीँकार मुद्रा का प्रयोग करने से मणिपुर एवं ब्रह्म केन्द्र प्रभावित होते हैं। यह आत्मविश्वास, मनोबल, सजीवता और सहनियंत्रण को जागृत करती है। इससे आध्यात्मिक क्षेत्र में रुचि बढ़ती है।
- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा कैन्सर, पुरानी बीमारी, गर्भाशय, पित्ताशय आदि समस्याओं का निवारण करती है।
- अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक अग्नियों को प्रदीप्त करती है। ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण करती है तथा आन्तरिक आनंद की अनुभूति करवाती है।
- एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शौर्य, पराक्रम, आत्मविश्वास आदि गुणों का वर्धन करती है।

3. नकार मुद्रा

नकार शब्द विविध अर्थों का वाचक है। 'न' का एक अर्थ धन-सम्पत्ति है। यहाँ नकार का अभिप्राय धन-संपदा हो सकता है क्योंकि यह मुद्रा मृतक निमित्त पूजा सामग्री चढ़ाने के पश्चात की जाती है। उस पूजा सामग्री का अन्तर्भाव धन-संपदा में होता है। इस तरह नकार की मुद्रा मृतात्मा की शान्ति निमित्त और मंत्र साधना के प्रसंग में की जाती है। मन्त्र साधना के दरम्यान साधक, साध्य के अनुरूप बनने का प्रयास करता है अथवा स्वयं को साध्य से अविभक्त समझता है, तभी मंत्र सिद्ध होता है। अत: यह मुद्रा इष्ट देवी-देवता को प्रसन्न करने एवं साध्य गुणों को प्राप्त करने के उद्देश्य से भी की जाती है। नकार मुद्रा का बीज मन्त्र 'न' है।

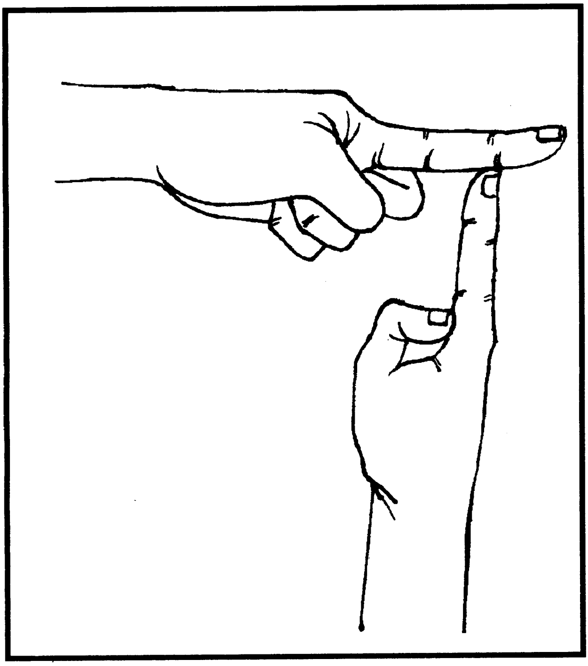

नकार मुद्रा

विधि

"वामांगुष्ठं कुण्डलाकारं कृत्वा वामतर्जनी मूले संस्थाप्य वामतर्जनी मध्यमाग्रे दक्षिण तर्जन्यां स्थापने नकारमुद्रा"

बायें हाथ के अंगूठे को कुण्डल आकार के समान करके उसे बायीं तर्जनी के मूल में संस्थापित करें। फिर बायीं तर्जनी और मध्यमा के अग्रभाग पर दायीं तर्जनी को स्थापित करने से नकार मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- मुद्रा विचार में वर्णित नकार मुद्रा की साधना करने से मूलाधार, मणिपुर एवं ब्रह्म केन्द्र पर प्रभाव पड़ता है। यह मुद्रा सकारात्मक ऊर्जा का उत्पादन कर आत्मविश्वास एवं मनोबल में वृद्धि करती है। आन्तरिक आनंद की प्राप्ति करवाती है। इससे मनोविकार घटते हैं एवं परमार्थ में रुचि बढ़ती है।
- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा कैन्सर, हड्डी की समस्या, कोष्ठबद्धता, पाचन तंत्र, मांसपेशी, जोड़ों के दर्द एवं मस्तिष्क सम्बन्धी विकारों को दूर करने में सहायक बनती है।

• पृथ्वी, अग्नि एवं आकाश तत्त्व का संतुलन करते हुए यह मुद्रा जागृत ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन करती है, परमानंद की प्राप्ति करवाती है तथा विचारों में उत्साह एवं स्फूर्ति लाती है।

• प्रजनन, एड्रीनल, पीयूष आदि ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा योनि विकारों को दूर करने, कामेच्छा को नियंत्रित करने तथा बालों एवं हड्डियों की समस्या को दूर करने में विशेष उपयोगी है।

4. मकार मुद्रा

मकार शब्द अव्ययवाची भी है और संज्ञावाची भी। इन दोनों रूपों में 'म' का प्रयोग होता है। यदि अव्यय रूप में प्रयुक्त करते हैं तो यह निषेध अर्थ का वाचक होता है और संज्ञा रूप में प्रयुक्त करते हैं तो इसके कई अर्थ होते हैं जैसे शिव, चन्द्रमा, सौभाग्य, प्रसन्नता, कल्याण आदि।

यहाँ संभवत: मकार मुद्रा का तात्पर्य सौभाग्य, कल्याण आदि अर्थों से है क्योंकि यह मुद्रा जिनवाणी (प्रवचन) की महिमा को बढ़ाने के निमित्त करते हैं।

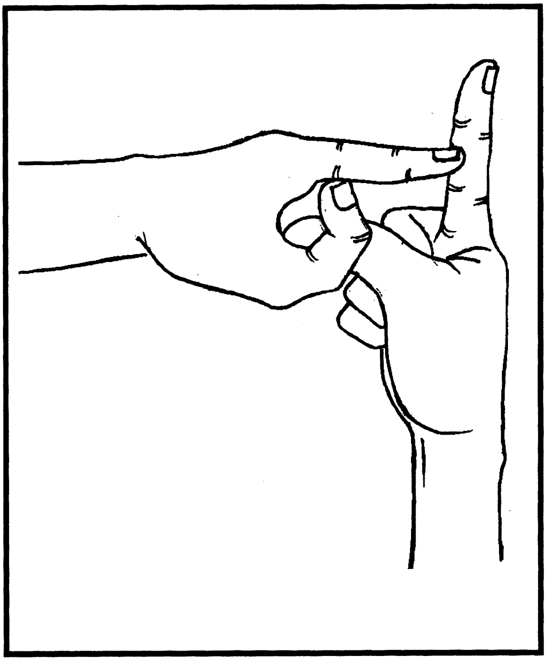

मकार मुद्रा

जिनेश्वर के वचनों का श्रवण करने से संसारी आत्मा का कल्याण होता है, साधक का सौभाग्य बढ़ता है, आन्तरिक प्रसन्नता में अभिवृद्धि होती है, अत: माना जा सकता है कि मकार मुद्रा का मुख्य प्रयोजन आत्म कल्याण है।

मुद्राविधि के उल्लेखानुसार इस मुद्रा का प्रयोग मंत्र गुणने के प्रसंग पर भी होता है। मकार मुद्रा का बीज मन्त्र 'म' है।

विधि

"तत्रैव नकार मुद्रायां मध्य प्रदेशे दक्षिणांगुष्ठं अर्गलावत स्थाप्यते मकार मुद्रा।"

दोनों हाथों को नकार मुद्रा की भाँति बनाकर हथेली के मध्य भाग में दायें अंगूठे को अर्गला (चिटकनी) की तरह स्थापित करने पर मकार मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- मकार मुद्रा का प्रयोग मणिपुर एवं अनाहत चक्र को जागृत एवं सक्रिय करने के लिए किया जा सकता है। यह मुद्रा सहनियंत्रण, आत्मविश्वास, प्रेम, भक्ति, परोपकार आदि के भावों का वर्धन करती है।
- भौतिक स्तर पर यह मुद्रा एलर्जी, श्वास विकार, हृदय, फेफड़ा, उदर, लीवर आदि की समस्याओं का शमन करती है।
- अग्नि एवं वायु तत्त्व को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा भीतर में प्रवाहित ऊर्जा का अनुभव करवाती है। सृजनात्मक एवं कलात्मक कार्यों में रुचि का वर्धन करती है।
- थायमस, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक शारीरिक हलन-चलन एवं कार्यप्रणालियों को नियंत्रित रखती है।

5. सिंह मुद्रा

सिंह एक शूरवीर, साहसी और निर्भीक प्राणी है। पशु जगत में इस प्राणी का अद्वितीय प्रभुत्व है। यह पशु योनि में उत्पन्न होने के उपरान्त भी अनेक विलक्षणताओं से युक्त है। जैन परम्परा में सिंहत्व भाव को दर्शाने के लिए सिंह मुद्रा की जाती है।

उपलब्ध प्रति के अनुसार सिंह मुद्रा, वर्धमान विद्या की जाप साधना निमित्त और चौबीसवें तीर्थंकर श्री वर्धमान स्वामी की मूर्ति प्रतिष्ठा के अवसर पर करते हैं।

इस मुद्रा का बीजमन्त्र 'अ' है।

विधि

"तर्जनी अनामिकयोः पश्चादाकुञ्चने सिंह मुद्रा।"

तर्जनी अंगुली के द्वारा अनामिका अंगुली के पृष्ठ भाग को आकुञ्चित करने पर सिंह मुद्रा बनती है।

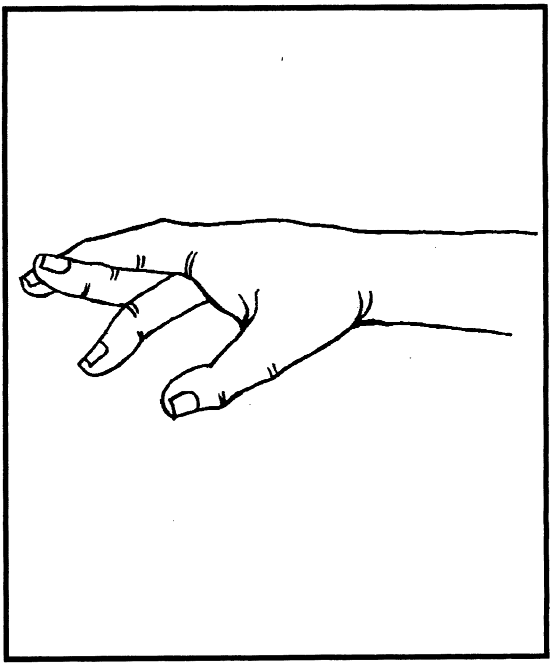

सिंह मुद्रा

सुपरिणाम

- सिंह मुद्रा को धारण करके मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को जागृत किया जा सकता है। यह मुद्रा व्यवहार नियंत्रण, आत्मविश्वास, अध्यात्म एवं अनुशासन में वृद्धि करती है। इससे प्रेम, करुणा, भक्ति, मैत्री आदि पवित्र भावनाओं का जागरण होता है।

• शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा मुँह, गला, कण्ठ, कान आदि की व्याधियों एवं थायरॉइड, मधुमेह, अल्सर, बुखार, मांसपेशियों आदि कई समस्याओं के निवारण में सहायक बनती है।

• अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक ऊर्जा का अनुभव करवाती है एवं भावनाओं को व्यक्त करने में सहायक बनती है। पाचन एवं रक्त संचरण के कार्यों को नियंत्रित करती है। इससे भावों में निर्मलता आती है एवं आंतरिक आनंद की अनुभूति होती है।

• थायरॉइड-पेराथायरॉइड, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा आवाज नियंत्रण, स्वभाव नियंत्रण, शरीरस्थ कैल्शियम, आयोडिन, कोलेस्ट्राल आदि के नियंत्रण एवं थकावट दूर करने में सहायक बनती है।

6. ऐँकार मुद्रा

'ऐँ' मन्त्र वाक् शक्ति का प्रतीक है। वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है। सम्यकज्ञान की प्राप्ति के लिए सरस्वती की साधना प्रत्येक धर्मावलम्बी हेतु परमावश्यक मानी गई है। इस शक्ति उपासना की परम्परा सृष्टि के प्रारम्भ काल से ही रही है। युग के आदिकाल में यह ब्राह्मी के नाम से प्रख्यात थी। भगवान आदिनाथ को सृष्टि के आद्य कर्त्ता ब्रह्मा माना जाता है। ब्राह्मी उनकी पुत्री थी, उसे ब्राह्मी लिपि सिखाई थी। ब्राह्मी लिपि ही 'वाणी की देवता' के रूप में प्रस्थापित हुई।

जैन एवं इतर समस्त परम्पराओं में विद्यादायिनी सरस्वती साधना का अचिन्त्य महत्त्व है। सरस्वती को तीर्थंकरों के मुख में निवास करने वाली कहा गया है।

वैदिक परम्परा में प्राचीन काल से तीन महानदियों का उल्लेख मिलता है— गंगा, सिन्धु और सरस्वती। लोक मान्यता अनुसार सरस्वती को गुप्त नदी मानते हैं। एक मान्यता ऐसी है कि जहाँ दो नदी का संगम हो वहाँ सरस्वती का प्रवाह स्वयं आ जाता है और उसे त्रिवेणी संगम कहते हैं। जहाँ ऐसे त्रिवेणी संगम बनते हैं वहाँ कोई अलौकिक विद्युत चुम्बकीय वृत्त (Magnetic field) होता है जिसमें विशिष्ट शक्ति प्रवाह का अवतरण होता है, उसे योगी पुरुष 'सारस्वत महः' कहते हैं। यह 'सारस्वत महः' आकाश मंडल में प्रवहण करता

हुआ परमात्मा का एक विशिष्ट प्रचंड ऊर्जा प्रवाह है जो संगम स्थलों में जहाँ चुम्बकीय वातावरण हो वहाँ अवतरित होता है जिसकी उपासना करके हर मानव अपना ईप्सित प्राप्त कर सकता है।

हमारे शरीर में इड़ा-पिंगला नामक प्राणधारा बहती है, जो गंगा-सिन्धु है। इन दोनों के संगम स्थल को सुषुम्ना कहा जाता है वही सरस्वती है, वही कुंडलिनी शक्ति है, परात्परा वाणी है जिसमें से समग्र अक्षर मातृकाएँ प्रगट हुई हैं। प्रवाह की दृष्टि से सरस्वती का सम्बन्ध अनादि से अनन्त काल तक है। अस्तित्व की अपेक्षा इसका सम्बन्ध जन्म के समय से ही है। हम देखते हैं, बच्चा जन्म लेने के साथ ही रूदन की प्रक्रिया शुरू कर देता है। उस रूदन में ऐं ऐं ऐं की ध्वनि उच्चारित होती है जो सरस्वती के सम्बन्ध को दर्शाती है।

ऐंकार मुद्रा अपने स्वरूप के अनुसार त्रिकोण आकार वाली है। यह मुद्रा सरस्वती मंत्र जाप और उसे वश करने के उद्देश्य से की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'आ' है।

विधि

"दक्षिणकर तर्जनी मध्ये शकटाकारं कृत्वा वामतर्जन्यां स्थापने वाममध्यमाऽनामिका कनिष्ठिकां नाद बिन्दुकलाकाराः क्रियन्ते।"

दायें हाथ की तर्जनी के मध्य भाग में बायीं तर्जनी को शकट आकार में बनाकर स्थापित करें तथा बायें हाथ की मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को नाद, बिन्दु एवं कला आकार में करने पर ऐंकार मुद्रा बनती है।

7. शंख मुद्रा

शंख एक प्रकार का जलीय जंतु है। लोग इस जीव सत्ता को नष्ट कर उसका कलेवर बजाने के उपयोग में लाते हैं। यह बहुत पवित्र समझा जाता है और देवता आदि के सामने तथा लड़ाई के समय मुँह से फूँककर बजाया जाता है। भिन्न-भिन्न आकार की अपेक्षा शंख अनेक प्रकार के होते हैं, किन्तु मूलत: उसकी द्विविध जातियाँ प्रचलित है— एक दक्षिणावर्त्त और दूसरा वामावर्त्त। दक्षिणावर्त्त शंख दुर्लभ प्राप्य हैं और कहते हैं जिसके घर यह शंख रहता है उसके धन की वृद्धि होती है। वामावर्त्त शंख सुलभता से मिलता है और औषध के काम आता है।

जैन मुनि ऋषिरत्नजी ने शंख के दो प्रकारों की चर्चा की है। तदनुसार दक्षिणावर्त्त शंख मुद्रा लक्ष्मी प्राप्ति एवं पुत्र प्राप्ति के निमित्त और मंत्र स्मरण काल में की जाती है तथा वामावर्त्त शंख मुद्रा प्रतिष्ठा सम्बन्धित मांगलिक आलेख और वासचूर्ण को अभिमन्त्रित करने निमित्त करते हैं।

शंख मुद्रा का बीज मन्त्र 'इ' है।

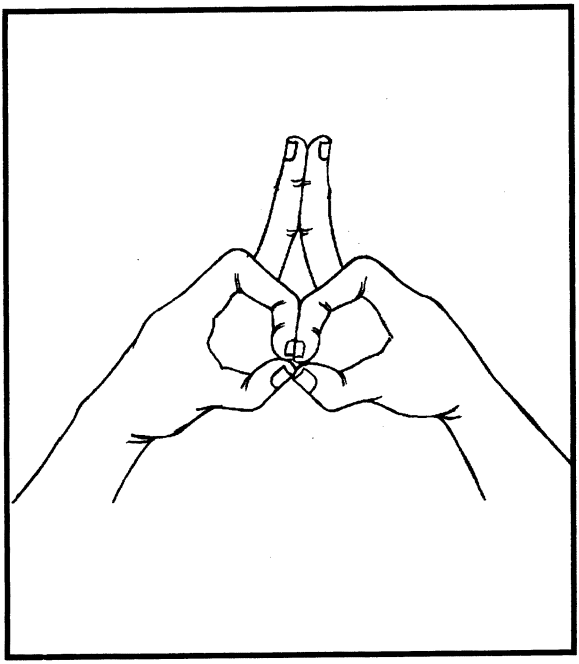

दक्षिणावर्त्त शंख मुद्रा

विधि

"अंगुष्ठद्वय योजने तर्जनी द्वयस्य सृष्टया कुंडलाकार विधाने मध्यमाद्वयं परस्परं (प्रसार्य) संमील्य च दक्षिणावर्त्त शंख मुद्रा। एषैव तर्जनीद्वयस्य संहरणे कुण्डलाकार विधाने वामावर्त्त शंख मुद्रा।

दोनों हाथों के अंगूठों को परस्पर योजित कर दोनों तर्जनियों को ढीला छोड़ते हुए उन्हें कुण्डलाकार में बनायें तथा दोनों मध्यमाओं को ऊर्ध्व प्रसरित करते हुए सम्मिलित करने पर दक्षिणावर्त्त शंख मुद्रा बनती है।

इसी तरह दोनों तर्जनियों को मिलाकर उसे कुण्डलाकार में निर्मित करने पर वामावर्त्त शंख मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के प्रयोग से सहस्रार, मणिपुर एवं मूलाधार चक्र में आई हुई रुकावटें दूर होती हैं। क्रोधादि कषाय, घृणा, पागलपन, उन्मत्तता, अवषाद, निराशा, आत्महीनता, शंकालुवृत्ति आदि को कम करने में यह मुद्रा सहायक बनती है।

• भौतिक स्तर पर यह मुद्रा हड्डी की समस्या, कोष्ठबद्धता, गुदास्थि समस्या, शारीरिक कमजोरी, बवासीर, मस्तिष्क समस्याएँ, मधुमेह, पाचन समस्या, योनि विकार आदि का निवारण करने में सहायक बनती है।

• आकाश, अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा हृदय में शुभ भावों का जागरण, विचारों एवं भावों में स्थिरता, सत्य स्वीकार करने की क्षमता एवं ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण करती है।

8. चतुष्कपट्ट मुद्रा

चतुष्कपट्ट का शाब्दिक अर्थ है चार पट्ट। इस मुद्रा के द्वारा चतु: पाँवों से युक्त पट्ट की आकृति दर्शायी जाती है अर्थात इस मुद्रा में हस्तांगुलियों को चार पैर वाले चौकी की तरह स्थिर किया जाता है। इसलिए इसे चतुष्कपट्ट मुद्रा कहते हैं।

प्रस्तुत मुद्रा संघ के प्रमुख कार्यों में की जाती है। यह मुद्रा चतुर्विध संघ की सूचक है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'ई' है।

विधि

"परस्पराभिमुख मध्यमाद्वयं अनामिकाद्वयं संयोज्य तर्जनीद्वयं कनिष्ठिकाद्वयं चतुष्पादवन्नियोज्य चतुष्कपट्ट मुद्रा।"

दोनों हाथों को एक-दूसरे के आमने-सामने रखकर दोनों मध्यमाओं और दोनों अनामिकाओं को संयोजित करें। फिर दोनों तर्जनियों और दोनों कनिष्ठिकाओं को चतु:पाद की भाँति नियोजित करने पर चतुष्कपट्ट मुद्रा बनती है।

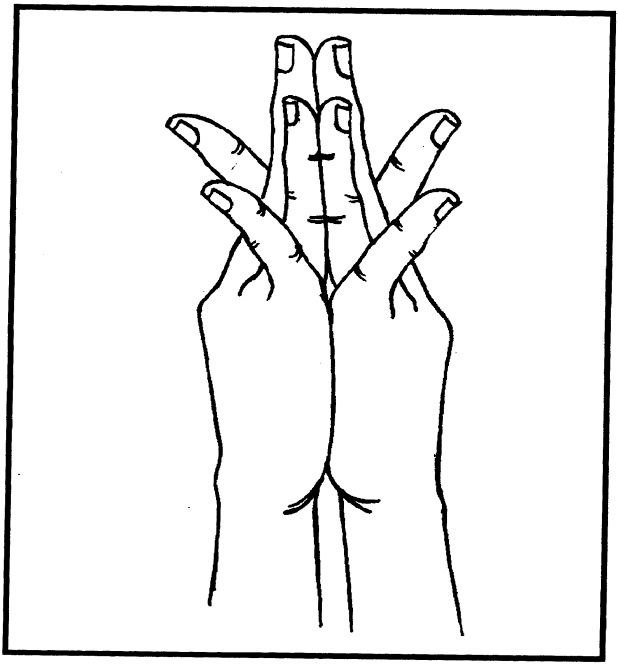

चतुष्कपट्ट मुद्रा

सुपरिणाम

- जैनाचार्यों द्वारा वर्णित चतुष्कपट्ट मुद्रा को धारण करने से स्वाधिष्ठान, मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र प्रभावित होते हैं। यह मुद्रा संकल्पबल, पराक्रम, आत्मविश्वास, बलिष्ठता, स्फूर्ति एवं अतीन्द्रिय क्षमता का जागरण करती है।
- दैहिक स्तर पर यह मुद्रा गला, मुँह, थायरॉइड, कण्ठ, कंधा, त्वचा, पित्ताशय, पाचन तंत्र, गर्भाशय आदि के विकारों को दूर करते हुए अल्सर, खून की कमी, नपुंसकता, कामुकता, बुखार, योनि विकार आदि में लाभ पहुँचाती है।
- जल, अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा प्रतिकूलता से लड़ने की क्षमता बढ़ाती है तथा शरीरस्थ अग्नि को जागृत कर ऊर्ध्वगमन में सहायक बनती है।

प्रजनन, एड्रिनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड, पेराथायरॉइड आदि ग्रंथियों के स्राव को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा कामेच्छाओं में तथा व्यवहार आदि पर नियंत्रण रखती है।

9. नागवेलि पत्रद्वय मुद्रा

नागवेलि शब्द का संस्कृत रूप नागवल्ली है। नागवल्ली का अर्थ होता है पान अथवा पान की बेल। पत्र अर्थात वृक्ष का पत्ता। यहाँ नागवेलि पत्र से तात्पर्य पान का पत्ता होना चाहिए। इस मुद्रा में हस्तांगुलियों की आकृति पान के पत्ते के समान रचित होती है अत: इसका नाम नागवेलि पत्र है।

पान का पत्ता शुभ माना जाता है अत: मंगलकारी प्रसंगों में शुभत्व का वातावरण प्रसरित करने के प्रयोजन से यह मुद्रा करते हैं।

उपलब्ध प्रति के अनुसार लोक प्रसिद्ध नाम वाली यह मुद्रा सभी वस्तुओं की स्थापना के पश्चात मंगल के लिए और समर्पण के लिए करते हैं।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'उ' है।

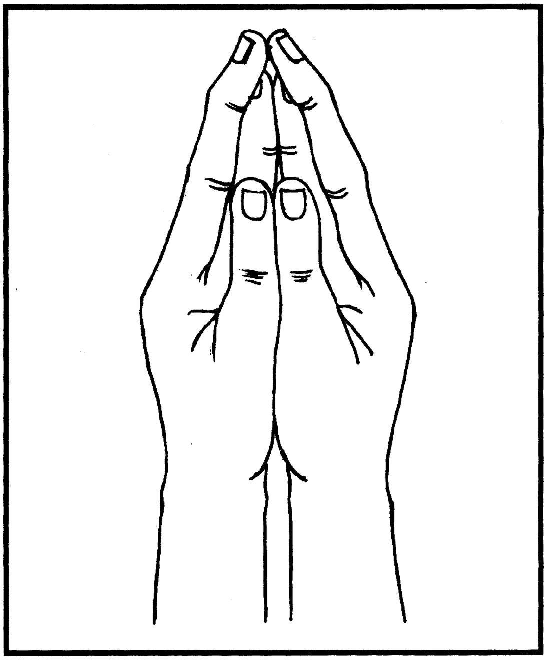

नागवेलि पत्रद्वय मुद्रा

विधि

''हस्तद्वयस्यांगुष्ठद्वय योजने तर्जनीद्वयस्य ऊर्ध्व योजने पत्र मुद्रा, नागबेलि पत्रोपरि मध्यमाद्वय योगे ऊर्ध्वीकरणे नागवेलिपत्रद्वय मुद्रा।''

उभय हाथों के दोनों अंगूठों को परस्पर में योजित करते हुए दोनों तर्जनियों को ऊपर की ओर मिलाने पर पत्र मुद्रा बनती है तथा नागवेलि पत्र के ऊपर दोनों मध्यमाओं का योग कर उन्हें ऊर्ध्वाभिमुख करने से नागवेलि पत्रद्वय मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- इस मुद्रा की साधना आज्ञा एवं अनाहत चक्र को जागृत एवं सक्रिय करती है। इनके जागरण से उदारता, सहकारिता, परमार्थ भक्ति आदि के प्रति सद्भाव उत्पन्न होते हैं। एकाग्रता, स्थिरता, ज्ञान आदि में वृद्धि होती है और स्वभाव में शान्ति एवं स्वयं में रहने की रुचि बढ़ती है।
- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा दमा, हृदय, श्वास, छाती, मस्तिष्क आदि से सम्बन्धित रोगों का निवारण करती है।
- आकाश एवं वायु तत्व में संतुलन स्थापित करते हुए यह मुद्रा श्वसन, रक्त संचरण एवं मस्तिष्क के कार्यों को संतुलित करती है। कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्यों में रुचि का वर्धन करती है।
- पीयूष एवं थायमस ग्रंथि के स्राव को नियंत्रित करते हुए साधक में सक्रियता लाती है।

10. योनि मुद्रा

जीव के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। इस मुद्रा के माध्यम से योनि स्थान को दर्शाया जाता है अतः इसका नाम योनि मुद्रा है। किसी भी वस्तु या व्यक्ति को अपने अनुकूल बनाने के लिए इस मुद्रा का प्रयोग करते हैं। इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'ऊ' है।

विधि

''संमुखं अंगुष्ठौ संपीड्य तर्जनीद्वयं च परस्परं संपीड्याऽवाच्याकारवत् प्रलंबीकरणे योनि मुद्रा।''

दोनों हाथों को एक-दूसरे के सम्मुख रखकर अंगूठों को संपीड़ित करें और तर्जनियों को भी परस्पर में भींचकर नीचे की ओर लटकाने से अर्थात पश्चिमाभिमुख करने पर योनि मुद्रा बनती है।

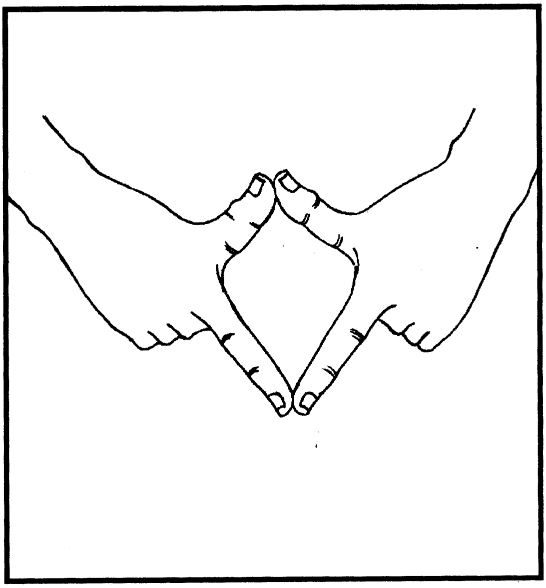

योनि मुद्रा

सुपरिणाम

• योनि मुद्रा को धारण करने से स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र सक्रिय होते है। जिससे तनाव एवं प्रतिकूलताओं में जूझने की क्षमता जागृत होती है। इससे प्रमाद, अवज्ञा, अविश्वास, काम-वासना आदि दुर्गुण मिटते हैं तथा साधक आत्माभिमुख बनता है।

• शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा खून की कमी, सूखी त्वचा, बिस्तर गीला करना, दाद-खाज, गुर्दे आदि की समस्या, गला, मुँह, नाक, कान आदि के रोगोशमन में सहायक बनती है।

• जल एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा कामेच्छा के नियंत्रण में सहायक बनती है। इसी के साथ भाव अभिव्यक्ति में एवं उत्सर्जन-विसर्जन के कार्यों में भी सहायक बनती है।

• पीयूष एवं पीनियल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा नेतृत्व निर्णय एवं नियंत्रण शक्ति का विकास करती है। इससे बालों से सम्बन्धित समस्या एवं शारीरिक कमजोरी आदि दूर होती है।

11. पंच परमेष्ठी मुद्रा (प्रथम)

यह मुद्रा अपने नाम के अनुरूप परमेष्ठी पद की सूचक है। इस मुद्रा के द्वारा सर्वोत्तम रूप से आराध्य अरिहन्त आदि पाँच पदों की आकृति बनाई जाती है। इससे यह पंच परमेष्ठी मुद्रा कहलाती है।

इस मुद्रा को मोक्ष साधना के उद्देश्य से करते हैं। इसका बीज मन्त्र 'ऋ' है।

विधि

"कर द्वयांगुष्ठाभ्यां मध्यमाद्वयं संपीड्य अनामिकाद्वयं संपीड्य च तदुपरि तर्जनीद्वयं भोजयित्वा प्रकारांतरेण पञ्चपरमेष्ठी मुद्रा।"

दोनों हाथों के अंगूठों से दोनों मध्यमाओं को संपीडित कर और दोनों अनामिकाओं को संपीडित कर उसके ऊपर दोनों तर्जनियों को योजित करने पर प्रकारान्तर से पंचपरमेष्ठी मुद्रा बनती है।

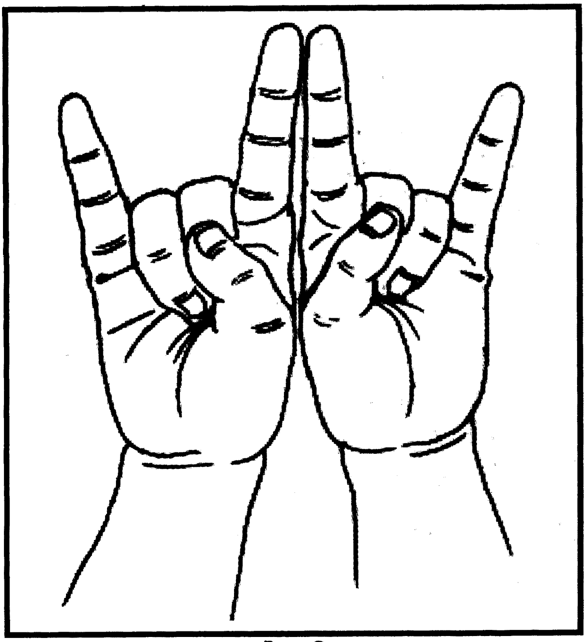

पंच परमेष्ठी मुद्रा-1

12. पंच परमेष्ठी मुद्रा (द्वितीय)

यह मुद्रा भी प्रकारान्तर से परमेष्ठी के पाँच पदों का बोध कराती है। मुझे परमेष्ठी मुद्रा से सम्बन्धित चार प्रकार प्राप्त हुए हैं उनमें यह चौथा प्रकार है।

परम + इष्ट अर्थात जिससे बढ़कर अन्य कोई हो नहीं सकता उसे परम कहते हैं। अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु परम रूप से इष्ट हैं, अत: परमेष्ठी कहलाते हैं।

इस मुद्रा का प्रयोग महान कार्यों को साधने हेतु किया जाता है। इसका बीज मन्त्र 'ऋ' है।

विधि

"अस्या एव पंचयोनिर्नामांतरं।"

इस मुद्रा का अपर नाम पंचयोनि मुद्रा है।

13. त्रिद्वार जिनालय मुद्रा

इस मुद्रा के माध्यम से तीन द्वार युक्त जिनालय की कल्पना को प्रतिबिम्बित किया जाता है, इसलिए यह त्रिद्वार जिनालय मुद्रा है।

यह मुद्रा तीन द्वार से सुशोभित जिनालय की स्थापना एवं उस जिनालय की प्रतिष्ठा आदि के निमित्त करते हैं।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'ऌ है।

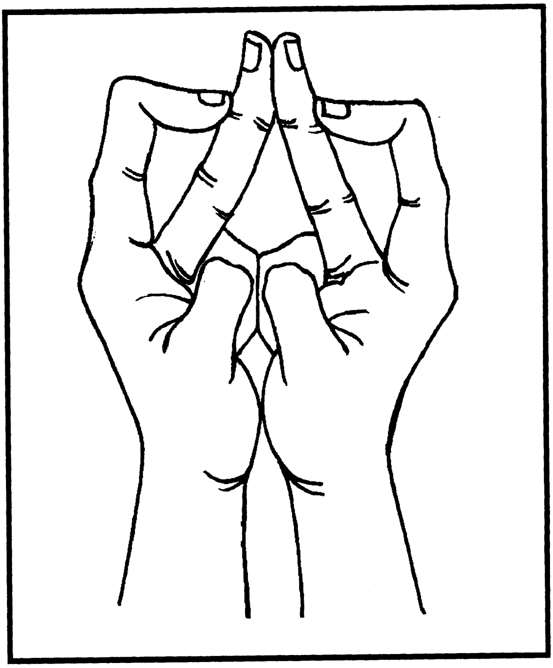

त्रिद्वार जिनालय मुद्रा

विधि

"कर द्वयस्य मध्यमयोः ऊर्ध्वीकरणे मशीतवत् तदुपरि तर्जन्योः संस्थापने त्रिद्वार जिनालय मुद्रा।"

दोनों हाथों की मध्यमाओं को ऊर्ध्वाभिमुख करते हुए उसके ऊपर दोनों तर्जनियों को मशीतवत संस्थापित करने पर त्रिद्वार जिनालय मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• त्रिद्वार जिनालय मुद्रा को धारण करने से मणिपुर एवं सहस्रार चक्र जागृत होते हैं। यह मुद्रा उन्मत्तता, भय, अस्थिरता, अविश्वास, क्रोधादि कषाय, अनुत्साह आदि को कम करते हुए आत्मविश्वास, सहनियंत्रण एवं जागरुकता को लाती है।

• भौतिक स्तर पर यह मुद्रा पाचन तंत्र, चयापचय, लीवर, पित्ताशय, मधुमेह, मस्तिष्क सम्बन्धी रोग, अल्सर, त्वचा रोग आदि में उपयोगी है।

• अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण कर आन्तरिक आत्मानंद की प्राप्ति करवाती है।

• एड्रिनल ग्रंथि के स्राव को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा संचार व्यवस्था, हलन-चलन, श्वसन, रक्त परिभ्रमण, पाचन, अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन में विशेष उपयोगी है।

14 स्वस्तिक मुद्रा

स्वस्तिक एक प्रकार का मंगल चिह्न है। प्राचीन समय में शुभ अवसरों पर दीवारों आदि पर इस चिह्न को अंकित किया जाता था।

संस्कृत व्युत्पत्ति के अनुसार स्वस्ति शब्द कल्याण सूचक है। यह 'स्वस्ति शुभाय हितं क' इस अर्थ को प्रकट करता है। यह मुद्रा कल्याणप्रद वातावरण को निर्मित करने के प्रसंग में की जाती है।

ज्ञात सूत्रों के अनुसार इस मुद्रा का उपयोग शकुन देखने और प्रतिष्ठादि कार्यों को निर्विघ्न संपन्न करने के अवसर पर होता है।

विधि

"दक्षिणकरमध्यमोपरि वाममध्यमां कृत्वा मध्यमयोस्तयोरग्रे तर्जनीद्वयपरस्परयोगो तयोर्मूले अंगुष्ठद्वय संस्थापने स्वस्तिक मुद्रा।"

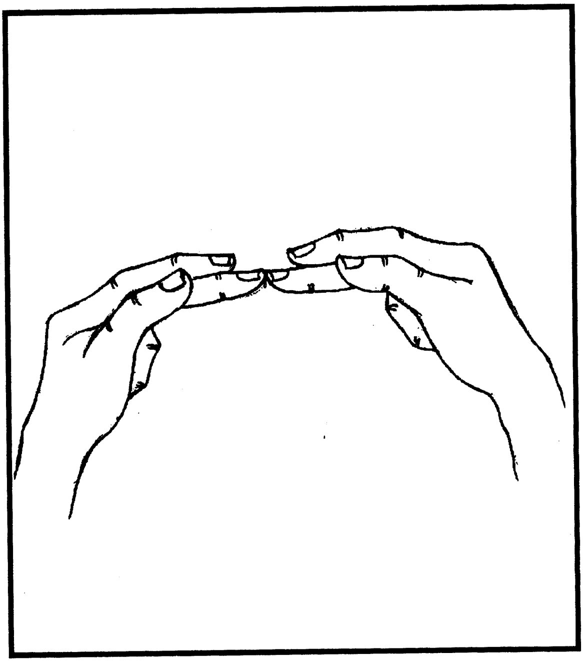

स्वस्तिक मुद्रा

दायें हाथ की मध्यमा के ऊपर बायें हाथ की मध्यमा को रखें। तदनन्तर उन दोनों मध्यमाओं के अग्रभाग पर दोनों तर्जनियों का परस्पर योग कर उनके मूल भाग में अंगुष्ठ द्वय को संस्थापित करने पर स्वस्तिक मुद्रा बनती है।

15. चतुर्मुख मुद्रा

जिस मुद्रा में चार मुख दिखायी पड़ते हैं अथवा जिस मुद्रा में चार मुख जैसी आकृति बनायी जाती है उसे चतुर्मुख मुद्रा कहते हैं।

उपर्युक्त मुद्रा चार मुख (द्वार) से युक्त प्रासाद एवं चार जटाओं से युक्त नारियल की सूचक है।

यह मुद्रा दीक्षा आदि मांगलिक कार्यों के प्रसंग पर की जाती है। इस मुद्रा को दिखाने से चार द्वार युक्त जिनालय का स्थैर्यत्व होता है।

इसका बीज मन्त्र 'ए' है।

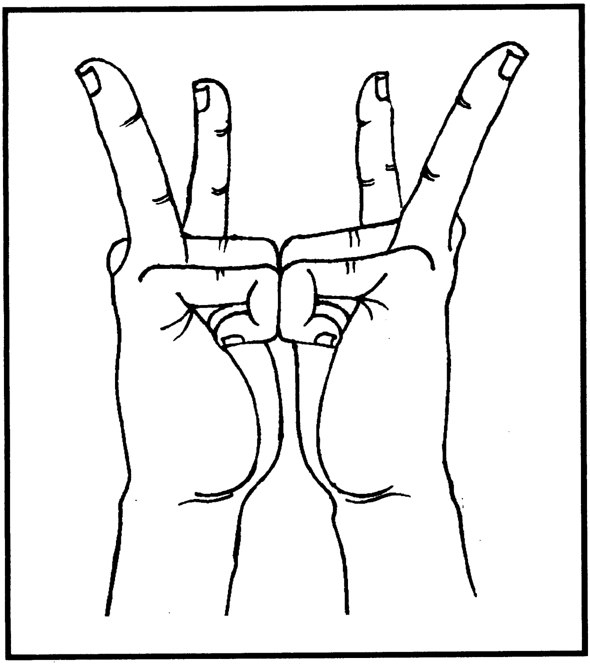

चतुर्मुख मुद्रा

विधि

"कोशाकारौ करौ कृत्वा तर्जनीद्वयाऽनामिकाद्वययोः ऊर्ध्वीकरणे प्रासादवत् करणे अपरांगुली अधोस्थापने चतुर्मुख मुद्रा।"

दोनों हथेलियों को कोशाकार में करके दोनों तर्जनियों और दोनों अनामिकाओं को ऊर्ध्वाभिमुख करें। यहाँ ऊर्ध्वमुख से तात्पर्य गगनचुंबी विशाल भवन के सदृश अंगुलियों को ऊपर की ओर करते हुए शेष अंगुलियों को नीचे की ओर स्थापित करना है।

सुपरिणाम

- चक्र विशेषज्ञों के अनुसार चतुर्मुख मुद्रा धारण करने से आज्ञा, अनाहत एवं सहस्रार चक्र जागृत होकर सक्रिय बनते हैं। यह साधक में कलात्मक उमंगों, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं का प्रकटन करती है।
- यह मुद्रा अनेक शारीरिक समस्याएँ जैसे ब्रेन ट्यूमर, मिरगी, अनिद्रा, एलर्जी तथा मस्तिष्क, हृदय, फेफड़ें, श्वास आदि से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण करती है।

• आकाश एवं वायु तत्व को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा अध्यात्म एवं अनुशासन में वृद्धि करती है।

• पीनियल, पीयूष एवं थायमस ग्रंथि के स्राव को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा हमारी जीवन पद्धति को नियंत्रित रखती है तथा दुष्प्रवृत्तियों एवं मानसिक विकारों का निवारण करती है।

16. कल्याणत्रय मुद्रा

इस मुद्रा के द्वारा त्रिखण्ड का प्रतिबिम्ब दर्शाया जाता है जिसे आत्मा के लिए कल्याणकारी माना है। अतः इसका नाम कल्याण मुद्रा है।

यह मुद्रा त्रिनेत्र चिह्नित नारियल एवं त्रिमुखी रुद्राक्ष की सूचक है।

इस मुद्रा को प्रतिष्ठा जैसे मांगलिक प्रसंगों पर करते हैं। यहाँ कल्याणत्रय का सांकेतिक प्रयोजन यह हो सकता है कि प्राणी मात्र के कल्याणकारक तीर्थंकरों को वन्दन एवं स्मरण करने का जो मूलभूत आधार है उसकी प्रतिस्थापना करना। इसका बीज मन्त्र 'ऐं' है।

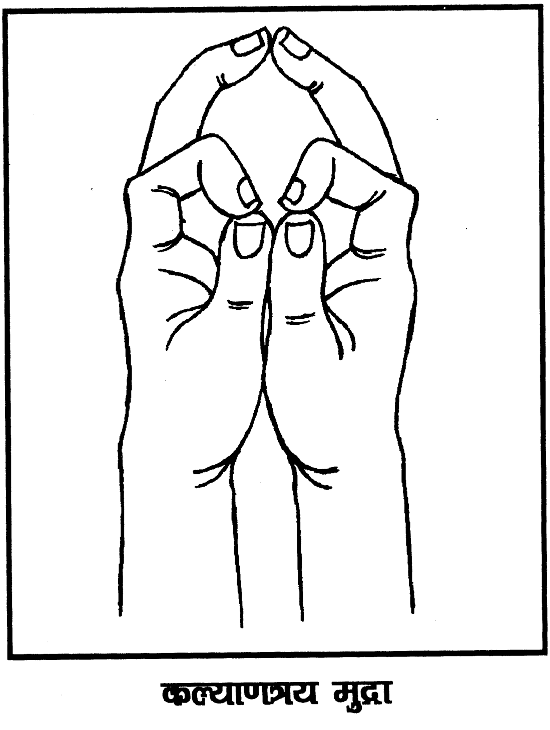

कल्याणत्रय मुद्रा

विधि

''मशीतमुद्रावन्मध्यमाद्वयं ऊर्ध्वीकृत्य तर्जनीद्वयस्यात्मसंमुखीकरण अंगुष्ठद्वय तर्जनीद्वय नखा एकत्र मीलने कल्याण मुद्रा।''

मशीतमुद्रा के समान दोनों मध्यमाओं को ऊपर की ओर करते हुए दोनों तर्जनियों को स्वयं के सम्मुख करें। फिर दोनों अंगूठों और दोनों तर्जनियों को नख भाग से परस्पर सम्मिलित करने पर कल्याणत्रय मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- मुद्रा विचार में वर्णित कल्याण मुद्रा का प्रयोग करने से मूलाधार, अनाहत एवं मणिपुर चक्र जागृत होते हैं। यह मुद्रा ऊर्जा का उत्पादन करते हुए परमानंद की प्राप्ति करवाती है। इसी के साथ संकल्प बल, पराक्रम एवं आत्मविश्वास का जागरण करती है।
- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा कैन्सर, कोष्ठबद्धता, जोड़ों-घुटनों की समस्या, एलर्जी, बुखार, श्वास, छाती, हृदय आदि की समस्या में विशेष लाभ करती है।
- पृथ्वी, अग्नि एवं वायु तत्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा पाचन एवं रक्त संचरण में विशेष रूप से सहायक बनती है। इस मुद्रा से प्रतिकूलताओं से लड़ने एवं परिस्थिति स्वीकार की क्षमता उत्पन्न होती है। इससे विचारों में स्थिरता आती है तथा ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन होता है।

17. सामान्य जिनालय मुद्रा

इस मुद्रा के माध्यम से सामान्य जिनालय की प्रतिकृति उजागर की जाती है, अतः इसका नाम सामान्य जिनालय मुद्रा है।

यह मुद्रा सामान्य गृह चैत्य की स्थापना और सामान्य जिनालय की प्रतिष्ठादि के अवसर पर की जाती है। इस मुद्रा का मुख्य उद्देश्य साधारण रूप से निर्मित गृह चैत्य और संघ चैत्य को स्थैर्यत्व प्रदान करना है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'ओं' है।

विधि

''हस्तद्वयस्य कनिष्ठिकाऽनामिकामध्यमानां सर्पफणावत्करणे सामान्य जिनालय मुद्रा।''

दोनों हाथों की कनिष्ठिका, अनामिका और मध्यमाओं को सर्प के फण की भाँति करने पर सामान्य जिनालय मुद्रा बनती है।

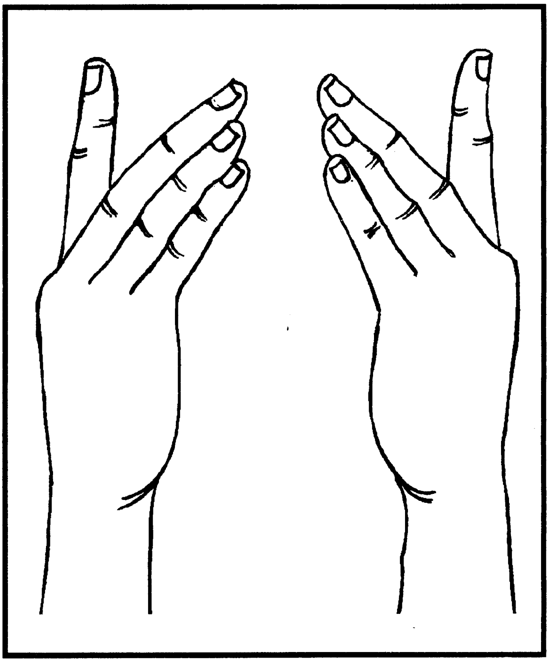

सामान्य जिनालय मुद्रा

सुपरिणाम

• सामान्य जिनालय मुद्रा को धारण करने से अनाहत एवं सहस्रार चक्र पर प्रभाव पड़ता है। यह मुद्रा साधक में प्रेम, दया, परोपकार के भाव जागृत करते हुए आन्तरिक ज्ञान एवं ऊर्जा का जागरण करती है। सृजनात्मक एवं कलात्मक कार्यों में रुचि उत्पन्न करती है।

• शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा मस्तिष्क समस्या, पुरानी बीमारी, पार्किन्सन्स रोग, एलर्जी तथा हृदय, श्वास, फेफड़ों से सम्बन्धित रोगों में लाभकारी है।

• वायु एवं आकाश तत्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा रक्त संचरण, श्वसन एवं मस्तिष्क सम्बन्धी समस्याओं में फायदा करती है और आन्तरिक आनंद की अनुभूति करवाती है।

• थायमस एवं पीनियल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा कामेच्छा का नियंत्रण, नेतृत्व नियंत्रण एवं निर्णयात्मक शक्ति का विकास करती है।

18. कपाट मुद्रा

इस मुद्रा के द्वारा अर्धआच्छादित अथवा खुलते हुए कपाट की छवि दर्शायी जाती है, इसलिए इसे कपाट मुद्रा कहा गया है।

प्राप्त स्रोतों के अनुसार यह मुद्रा चक्षु उन्मिलन की सूचक है। इस मुद्रा को दिखाकर प्रतिष्ठा के समय नवीन बिम्बों का चक्षुन्मिलन किया जाता है। सामान्यतः कमल प्रतिष्ठा के अवसर पर भी कपाट मुद्रा की जाती है।

हिन्दू परम्परा में पूजा करने से पूर्व चावलों के चूर्ण से अष्टदल कमल बनाते हैं। उसी पर आराध्य देवी की स्थापना अथवा उसके स्थापन की मानसिक कल्पना कर पूजा-पाठ किया जाता है। दक्षिण भारतीय प्रतिदिन प्रातःकाल में गृह द्वार के बहिर्भाग में अष्टदल कमल बनाते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'औं' है।

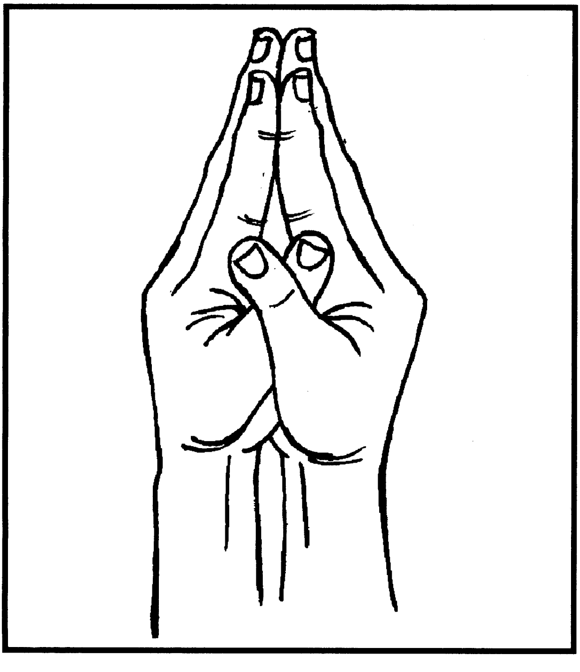

कपाट मुद्रा

विधि

"कोशाकारौ करौ कृत्वा अंगुष्ठद्वयग्रथने मध्ये शुषिरे कपाट मुद्रा।"

दोनों हाथों को कोशाकार रूप में बनाते हुए अंगूठों को परस्पर ग्रथित करने एवं हथेलियों के मध्य भाग को छिद्र युक्त रखने पर कपाट मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• कपाट मुद्रा को धारण करने से अनाहत, विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र जागृत होते हैं। यह मुद्रा अध्यात्म एवं अनुशासन में वृद्धि करते हुए भय, निराशा, ईर्ष्या, निष्क्रियता, आत्महीनता आदि दुर्गुणों को नष्ट करती है। इससे अतीन्द्रिय ज्ञान एवं क्षमता का जागरण होता है।

• भौतिक स्तर पर यह मुद्रा मुँह, गला, नाक, कान आदि की समस्याओं एवं श्वास, हृदय, छाती, फेफड़ा, मस्तिष्क आदि की समस्याओं का निवारण करती है।

• यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्व में संतुलन स्थापित करते हुए कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्यों में रुचि का वर्धन करती है तथा सद्विचार एवं सद्भावों का विकास करती है।

• पीयूष एवं पिनियल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास में सहायक बनती है। यह चित्त और दिमाग को शांत, स्थिर एवं एकाग्र बनाती है।

19. तोरण मुद्रा

घर का मुख्य द्वार तोरण द्वार कहलाता है। इसे सिंह द्वार भी कहते हैं। यह प्रवेश द्वार, बहिर्द्वार भी कहलाता है। बृहद् हिन्दी कोश एवं हिन्दी शब्द सागर के अनुसार किसी घर या नगर का बाहरी फाटक तोरण कहलाता है। एक अन्य अर्थ के अनुसार वह द्वार जिसका ऊपरी भाग मंडपाकार तथा मालाओं और पताकाओं आदि से सजाया गया हो, तोरण कहलाता है एवं दूसरे अर्थ के अनुसार दीवारों, खंभों आदि की सजावट के लिए लगायी जाने वाली मालाएँ तोरण कहलाती हैं।

यहाँ तोरण शब्द का अभिप्राय गृह प्रवेश द्वार और नगर प्रवेश द्वार से है। यह मुद्रा नये शहर में, मकान प्रवेश पर और शकुन देखने के अवसर पर की जाती है।

इस मुद्रा का बीज 'क' है।

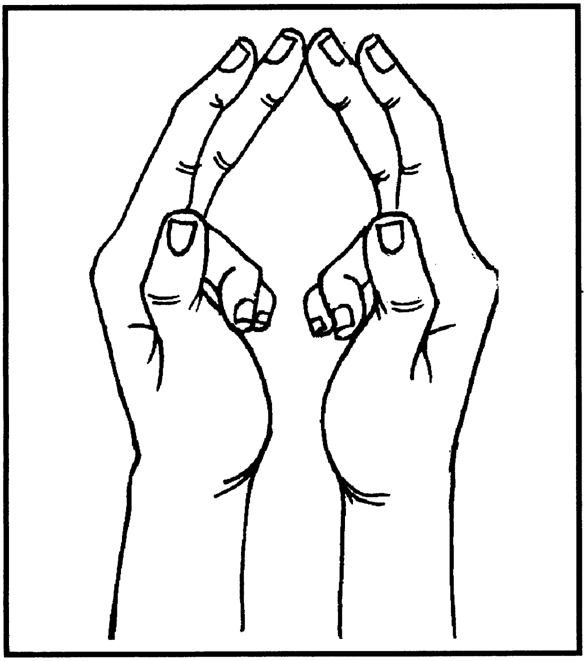

तोरण मुद्रा

विधि

"हस्तद्वयमध्यमाद्वयं तोरणवत्संयोज्य हस्तद्वय तर्जन्यौ तदुपरि वक्रीकृत्य तर्जनीद्वयमूले संयुक्तांगुष्ठ द्वयस्य कुंभिकाकार करणे तोरण मुद्रा।"

दोनों हाथों की दोनों मध्यमाओं को तोरण के समान संयोजित कर दोनों तर्जनियों को उसके ऊपर वक्री (कुछ टेढ़ी) रखें तत्पश्चात दोनों तर्जनी के मूल भाग में दोनों अंगूठों को संयुक्त कर कुंभिका आकार में करने पर तोरण मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- चक्र चिकित्सा विशेषज्ञों के अनुसार तोरण मुद्रा का प्रयोग करने से मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र सक्रिय होते हैं। इनके जागरण से प्रतिकूलता, तनाव एवं विपरीत परिस्थितियों में रहने की शक्ति प्राप्त होती है।

• शारीरिक समस्याएँ जैसे कि खून की कमी, बिस्तर गीला होना, हर्निया, दाद-खुजली, आर्थराइटिस, मधुमेह, पाचन, गर्भाशय, त्वचा आदि के विकारों में यह मुद्रा लाभदायी है।

• अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा मनोविकारों का शमन करती है।

• एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर को सभी प्रकार के रोगों एवं एलर्जी से बचाती है। साधक को साहसी, निर्भयी, सहनशील, आशावादी एवं तनावमुक्त बनाती है। कामेच्छाओं पर नियंत्रण करती है।

20 शक्ति मुद्रा

इस मुद्रा को बनाते वक्त दोनों हाथों की पूर्ण शक्ति का उपयोग किया जाता है, अत: इसका नाम शक्ति मुद्रा है।

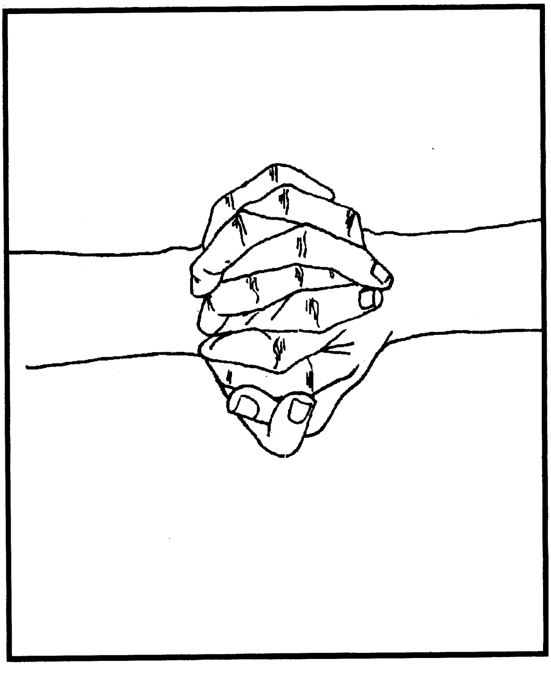

शक्ति मुद्रा

मुद्राविधि नामक प्रति के अनुसार यह मुद्रा महामारी के निवारण हेतु की जाती है। महामारी एक संक्रामक रोग है। इसका उपशमन करने के लिए प्रबल शक्ति की आवश्यकता होती है इसलिए शक्ति मुद्रा का प्रयोजन सार्थक सिद्ध होता है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'ख' है।

विधि

"परस्पराभिमुख हस्ताभ्यां वेणीबंधं विधाय प्रसार्य संयोज्य च शेषांगुलिभिर्मुष्टिं बंधयेत् इति शक्तिः– प्रहरणविशेषस्तस्य मुद्रा।"

परस्पर में अभिमुख दोनों हाथों के द्वारा वेणी बंध करके अंगुलियों को प्रसारित करें और पुन: संयोजित कर शेष अंगुलियों से मुट्ठी बांधने पर शक्ति मुद्रा बनती है। यह महामारी जैसे उपद्रव का निवारण करने में विशेष फलदायी है।

सुपरिणाम

• शक्ति मुद्रा का प्रयोग आज्ञा, मूलाधार एवं अनाहत चक्र को जागृत करता है। आत्मनियंत्रण, सूक्ष्म दर्शन, सद्भावों के जागरण, भौतिक संसार से पराङ्मुख होने में भी यह मुद्रा विशेष सहयोगी है। इससे साधक शांत, धैर्यशील, एकाग्र एवं मधुर स्वभावी बनता है।

• शारीरिक तौर पर यह मुद्रा एलर्जी, बवासीर, योनि विकार आदि में लाभ देती है।

• आकाश, पृथ्वी एवं वायु तत्त्व को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा श्वसन, रक्तसंचरण एवं विसर्जन तंत्र के कार्यों को नियमित एवं नियंत्रित करती है। यह भावों में स्थिरता, दृढ़ता तथा सृजनात्मक एवं कलात्मक कार्यों में रुचि का वर्धन करती है।

पीयूष, थायमस एवं प्रजनन ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर की आन्तरिक हलन-चलन, रक्त शर्करा, रक्तचाप आदि को नियंत्रित रखती है।

21. ईश्वर मुद्रा

इस मुद्रा के द्वारा त्रिकालदर्शी परमात्मा का प्रतिबिम्ब दर्शाया जाता है अतः इसे ईश्वर मुद्रा कहते हैं।

उक्त मुद्रा मिथ्यात्व ग्रसितों के दलन एवं नास्तिकवादियों के दुर्विचारों का खंडन करने के प्रयोजन से की जाती है। इस मुद्रा प्रभाव से कुमति से ग्रसितजन शान्त हो जाते हैं तथा साधक के मन में ईश्वरीय शक्ति का उद्घाटन होता है।

उपलब्ध प्रति के अनुसार यह मुद्रा जिस गाँव में ईश्वर प्रासाद (जिनालय) होता है उस गाँव में मिथ्यात्वी के स्थान पर की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ग' है।

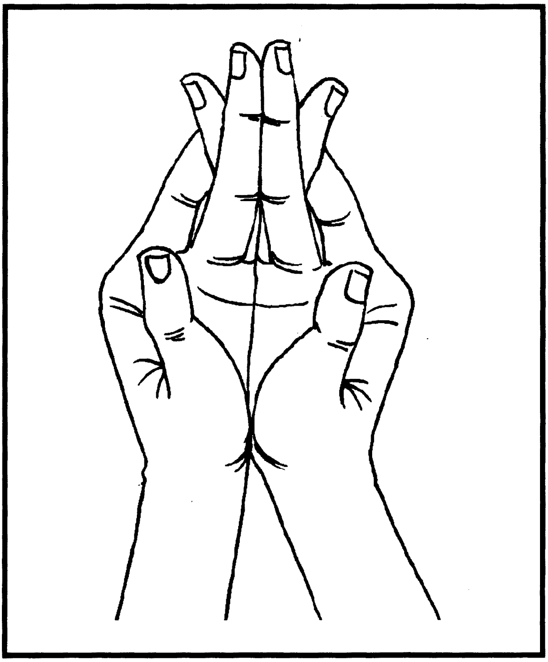

ईश्वर मुद्रा

विधि

"सौभाग्यमुद्रावत्कृत्वा अंगुष्ठद्वयं तर्ज्जनीद्वयं योगे ईश्वर मुद्रा।"

दोनों हाथों को सौभाग्य मुद्रा की भाँति विरचित करके दोनों अंगूठों और दोनों तर्जनियों का संयोग करने पर ईश्वर मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• ईश्वर मुद्रा का प्रयोग करने से मूलाधार एवं अनाहत चक्र जागृत होते हैं। यह मुद्रा आन्तरिक ऊर्जा का उत्पादन करती है। इससे जीवन में उदारता, सहकारिता, परमार्थ, कर्त्तव्यपरायणता के भाव जागृत होते हैं।

• दैहिक स्तर पर यह मुद्रा कैन्सर, हड्डी की समस्या, जोड़ों एवं घुटनों की समस्या, शारीरिक कमजोरी, बवासीर, श्वास, छाती, हृदय, फेफड़ों आदि की समस्या में लाभदायी है।

• पृथ्वी एवं वायु तत्त्व में संतुलन स्थापित करते हुए यह मुद्रा परिस्थिति स्वीकार, कलात्मक उमंगों, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं को उत्पन्न करती है।

• थायमस एवं प्रजनन ग्रंथि के स्राव को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा कामवासना के विकारों का दमन करती है। रोगों से बच्चों की रक्षा करती है और शरीर के तापक्रम आदि को संतुलित रखती है।

22. अमृत सञ्जीवनी मुद्रा

पुनर्जीवन प्रदान करने वाली शक्ति विशेष को संजीवनी कहते हैं। एक प्रकार का अमृत संजीवनी कहलाता है। कहते हैं कि इस तरह के अमृत सेवन से मृतक भी पुनर्जीवित हो जाता है।

यहाँ संजीवनी से तात्पर्य जीवनदायिनी प्राणशक्ति से है। हमारे जीवन को प्राणवन्त बनाने में श्वास की भूमिका मुख्य है। श्वास गति के प्रवहमान होने से व्यक्ति जीवित रहता है और श्वास गति रुक जाने से मृत माना जाता है।

इस मुद्रा में नासिका रन्ध्रों से बहने वाली श्वास वायु का आस्वादन करते हैं। वह आस्वादन जिस प्रक्रिया द्वारा किया जाता है उससे शाश्वत अमृत की प्राप्ति होती है। साथ इसी के हतोत्साहित मानव उत्साहित हो सत्कार्य में प्रवृत्त हो जाता है।

उपर्युक्त मुद्रा जलपान के पूर्व की जाती है जिससे पीया जा रहा पानी जीवन के लिए अमृत रूप बने। पानी को अमृत तुल्य माना भी गया है।

इसका बीज मन्त्र 'घ' है।

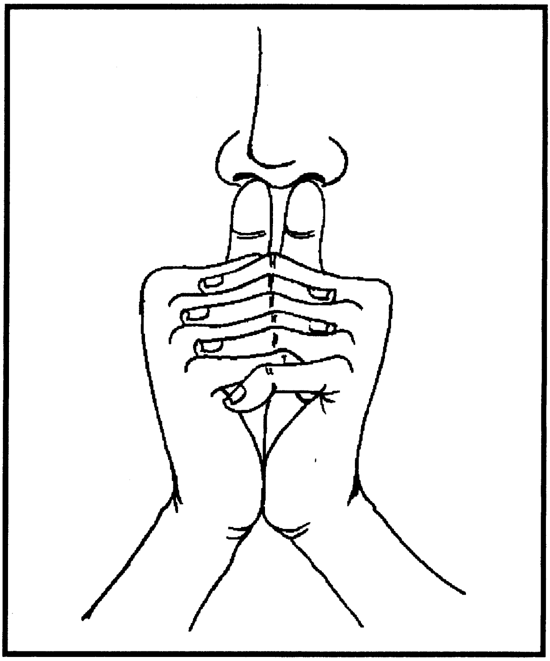

अमृत सञ्जीवनी मुद्रा

विधि

"उभयकरांगुली ग्रथने मध्ये कुंभाकारं कृत्वांगुष्ठयोर्ध्वीकरणे नाशिकाद्वारे विन्यस्य पवन लिहनं क्रियते अमृत सञ्जीवनी मुद्रा।"

दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर गूंथते हुए मध्य भाग को कुंभाकार में करें, दोनों अंगूठों को ऊर्ध्वाभिमुख करते हुए उन्हें नासिका द्वार पर रखें तथा श्वासोश्वास को थोड़ा-थोड़ा चखने का कार्य करते रहने की क्रिया अमृत संजीवनी मुद्रा कहलाती है।

सुपरिणाम

- अमृत संजीवनी मुद्रा को धारण करने से आज्ञा, सहस्रार एवं अनाहत चक्र सक्रिय होते हैं। यह मुद्रा प्रेम, दयालुता, परोपकार, कलात्मकता आदि गुणों में वृद्धि करती है।
- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा मस्तिष्क की क्रियाओं को संयोजित करते हुए अनिद्रा, थकावट, सिरदर्द, मानसिक अस्थिरता, दमा, हृदय, छाती, श्वास आदि से सम्बन्धित रोगों को दूर करती है।

• यह मुद्रा आकाश एवं वायु तत्व को संतुलित कर हृदय, कंठ एवं मस्तिष्क सम्बन्धी समस्याओं का निवारण करती है। यह आन्तरिक आनंद की अनुभूति करवाती है तथा मन को शांत एवं एकाग्र बनाती है।

• पीयूष, पीनियल एवं थायमस ग्रंथि के स्राव को सक्रिय एवं नियन्त्रित करते हुए यह मुद्रा सिर के बालों एवं हड्डियों के विकास में सहायक बनती है। यह जीवन पद्धति, स्वभाव एवं मनोवृत्तियों को नियंत्रित करते हुए शारीरिक स्फूर्ति एवं स्वस्थता प्रदान करती है।

23. त्रिनेत्र मुद्रा

इस मुद्रा को देखने से तीन नेत्रों की कल्पना प्रतिबिम्बत हो उठती है, अत: इसे त्रिनेत्र मुद्रा कहते हैं।

सामान्य प्राणी के दो नेत्र होते हैं किन्तु ईश्वरीय गुणों के निकट पहुँचे अथवा प्रभु उपासना में निमग्न साधक का तीसरा नेत्र भी उद्घाटित हो जाता है। तीसरा नेत्र अंतर्नेत्र है। इसकी शक्ति अचिन्त्य है। इस नेत्र के प्रकट होने पर आत्मा के लिए दुरूह कार्य भी सुलभ हो जाते हैं।

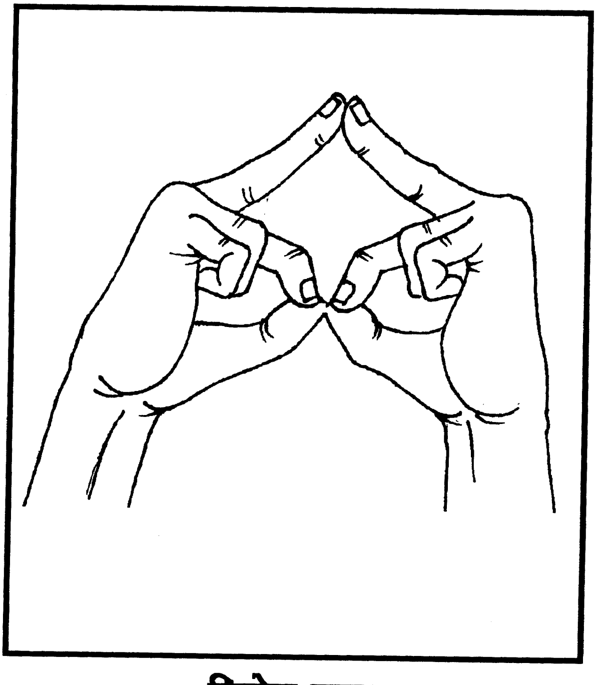

त्रिनेत्र मुद्रा

जहाँ भयंकर प्रकोप की स्थिति बनती है वहाँ उसके उपशमन हेतु त्रिनेत्र मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। इसका बीज मन्त्र 'छ' है।

विधि

''संमुखीनकरद्वयांगुष्ठतर्ज्जन्यौ संयोज्य मध्यमाद्वयं च संयोज्य च त्रिनेत्र मुद्रा।''

दोनों हाथों को एक-दूसरे के सम्मुख रखते हुए अंगूठों, तर्जनियों और मध्यमाओं को परस्पर संयोजित करने पर त्रिनेत्र मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- त्रिनेत्र मुद्रा को धारण करने से स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र जागृत एवं सक्रिय होते हैं। यह मुद्रा आत्म नियंत्रण के साथ प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ने की क्षमता उत्पन्न करती है। इससे अतीन्द्रिय क्षमता का जागरण होता है।
- भौतिक स्तर पर यह मुद्रा खून की कमी, खसरा, सूखी त्वचा, हर्निया, कामुकता, मासिक धर्म की अनियमितता, प्रजनन अंगों की समस्या, गला, मुँह, कान, नाक आदि के विकारों में फायदा करती है।
- जल एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा प्रजनन एवं रक्त संचरण के कार्य को व्यवस्थित करती है तथा अचेतन मन एवं चित्त संस्थान को प्रभावित करती है।
- थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं प्रजनन ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए इस मुद्राभ्यास से आवाज, रक्त कैल्शियम, फॉसफोरस आदि नियंत्रित रहते हैं। इससे शांति, धैर्य, सहयोग भावना आदि उत्पन्न होती है।

24. त्रिपुरस मुद्रा

यह मुद्रा मिथ्यात्वियों के स्थान पर उन्हें अपने अनुकूल बनाने के उद्देश्य से की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'च' है।

विधि

''संमुखकर द्वयस्य मध्यमाद्वयं मशीतवत् संस्थाप्य तर्जनीद्वयं तदुपरि वक्रीभूतं क्रियते त्रिपुरस मुद्रा।''

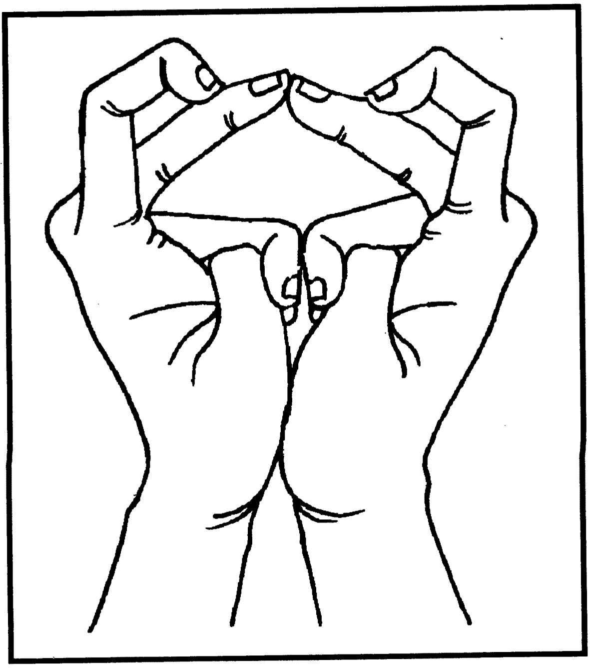

त्रिपुरस मुद्रा

एक-दूसरे के सम्मुख रहे हुए दोनों हाथों की मध्यमाओं को मशीतवत संस्थापित करने एवं दोनों तर्जनियों को उसके ऊपर कुछ टेढ़ी रखने पर त्रिपुरस मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- यह मुद्रा मणिपुर एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित करती है। इन चक्रों के जागरण से संकल्पबल एवं आत्मविश्वास बढ़ता है, मनोविकार घटते हैं और परमार्थ में रुचि जागृत होती है।
- शारीरिक समस्याएँ जैसे कि बदबूदार श्वास, शरीर में दुर्गन्ध, जलने आदि के दाग, पुरानी बीमारी, पार्किंसस रोग, पाचन इन्द्रिय का कैन्सर, अन्य पाचन समस्याएँ आदि में यह मुद्रा फायदा करती है।
- इस मुद्रा के प्रयोग से अग्नि एवं आकाश तत्त्व संतुलित रहते हैं। यह शरीरस्थ तीनों अग्नियों को जागृत कर ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन करती है तथा हृदय में आन्तरिक आनंद की अनुभूति करवाती है।

• पीनियल, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा कामेच्छा को नियंत्रित कर नेतृत्व, निर्णय एवं नियंत्रण शक्ति का विकास करती है। साधक में साहस, सहिष्णुता, निर्भयता, सकारात्मकता आदि गुणों का प्रकटन करती है एवं उसे तनावमुक्त रखती है।

25. मशीत मुद्रा

संस्कृत रूप मशक शब्द का पर्याय मशीत होना चाहिए। मशक अर्थात चमड़े का बना हुआ थैला, जिसमें पानी भरकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है, वह मशक कहलाता है।

मुद्राविधि के उल्लेखानुसार मशीत मुद्रा का प्रयोग म्लेच्छ स्थान पर और पृष्ठ पट्ट स्थापना के अवसर पर किया जाता है।

म्लेच्छ जाति के मनुष्य गोमांस भक्षी, विरुद्ध भाषी, सदाचार विहीन होते हैं, सदा पाप कर्म में रत रहते हैं। यह मुद्रा बाह्य अशुद्धि को दूर करने एवं पाप कर्म को धोने के प्रतीक रूप में दिखायी जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'छ' है।

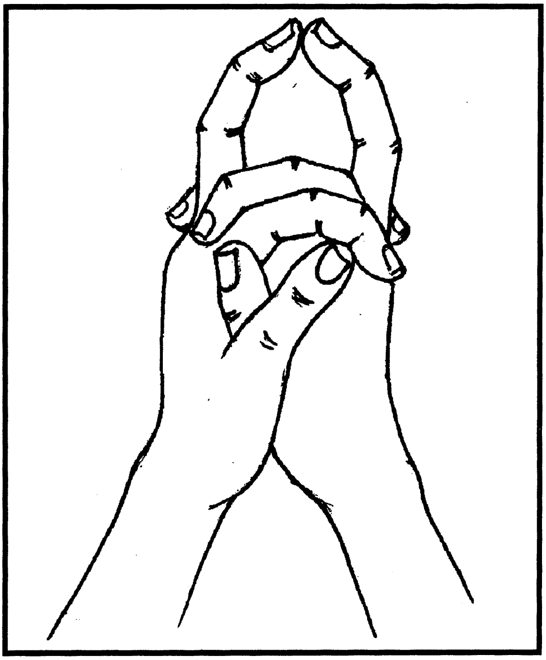

मशीत मुद्रा

विधि

''करद्वयस्य संमुखांगुलीग्रथनं कृत्वा पश्चान्मध्यमा द्वयं ऊर्ध्वीकृत्य मशीत आकारवत् क्रियते मशीत मुद्रा।

एक-दूसरे के अभिमुख रहे हुए दोनों हाथों की अंगुलियों को ग्रथित करने एवं दोनों मध्यमाओं को ऊपर की ओर प्रसरित करके मशीत आकार के समान करने पर मशीत मुद्रा बनती है

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, मूलभूत अंग, प्रजनन अंग एवं गुर्दे।

26. गृह तोड़ा मुद्रा

हिन्दी का मूल शब्द तोड़ है। तोड़ने की क्रिया या भाव तोड़ कहलाता है।

उपलब्ध प्रति के निर्देशानुसार यह मुद्रा गृह प्रवेश और नवीन बिम्ब प्रवेश के समय की जाती है। उस समय मूलत: गृह द्वार या मन्दिर द्वार को खोला जाता है। यहाँ तोड़ने का अभिप्राय खोलना है, अत: इसे गृह तोड़ा मुद्रा कहा गया है।

इस मुद्रा को करने से गृह द्वार एवं चैत्यद्वार को खोलने का अथवा चैत्यद्वार का भाव प्रकट होता है।

इसका बीज मन्त्र 'ज' है।

विधि

''अक्षमुद्राप्रणवमुद्राभ्यां सार्धं कृताभ्यां गृहतोड़ामुद्रा।''

अक्ष मुद्रा और प्रणव मुद्रा को साथ करने पर गृह तोड़ा मुद्रा बनती है।

27. सिंहासन मुद्रा

इस मुद्रा के द्वारा सिंह की यथार्थ स्थिति का चित्रण प्रस्तुत किया जाता है, अत: इस मुद्रा का नाम सिंहासन मुद्रा है।

यह मुद्रा जिनालय में मूलनायक आदि बिम्बों की स्थापना और आचार्यपद स्थापना के अवसर पर की जाती है। इस मुद्रा को करते वक्त जिनबिम्ब में एवं आचार्य में सिंहत्व के गुणों का आरोपण किया जाता है अथवा उन्हें सिंहत्व गुणों से परिपूर्ण माना जाता है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'झ' है।

विधि

"परस्परं पृष्ठलग्नपाणी ग्रथितांगुलीकौ अधः कृत्वा कनिष्ठिकाद्वयं पृष्ठिपट्ट स्थाने ऊर्ध्वीकृत्य सिंहासन मुद्रा।"

पृष्ठ भागों से परस्पर संयोजित हाथों और गूंथी हुई अंगुलियों को नीचे की ओर करके दोनों कनिष्ठिकाओं को पृष्ठ पट्ट के स्थान पर ऊर्ध्वाभिमुख करने से सिंहासन मुद्रा बनती है।

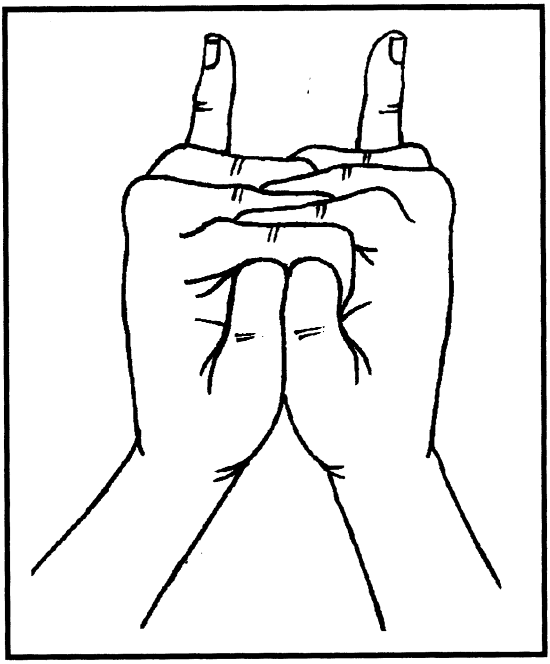

सिंहासन मुद्रा

सुपरिणाम

- चक्र विशेषज्ञों के अनुसार सिंहासन मुद्रा का प्रयोग मूलाधार एवं मणिपुर चक्र को जागृत करता है। इन चक्रों के सक्रिय होने से सह नियंत्रण एवं आत्मविश्वास में वर्धन होता है। यह मुद्रा व्यक्तित्व बोध करवाते हुए भावों की अभिव्यक्ति में सहायक बनती है तथा क्रोध, अहंकार, भय, तृष्णा, अविश्वास आदि अवगुणों का नाश करती है।

• शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा चयापचय, पाचन तंत्र, लीवर, पित्ताशय, तिल्ली, पाचक ग्रंथि को स्वस्थ रखती है। इसी के साथ कैन्सर, हड्डी की समस्या, कोष्ठबद्धता, बवासीर आदि में लाभ करती है।

• पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा भीतर में एक विशिष्ट ऊर्जा का अनुभव करवाती है तथा वास्तविकता एवं परिस्थिति स्वीकार की भावना उत्पन्न करती है।

• एड्रीनल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर की संचार व्यवस्था, हलन-चलन, श्वसन, अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन में सहायक बनती है। रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करती है और साधक को साहसी, निर्भीक, सहनशील एवं आशावादी बनाती है।

28. पद्मकोश मुद्रा

संपुटित कमल के आकार की मुद्रा पद्मकोश मुद्रा कहलाती है। अर्ध विकसित अवस्था में कमल संपुटाकार में होता है। इस मुद्रा में संपुटमय पद्म को दर्शाया जाता है, अतः इसका नाम पद्मकोश मुद्रा है।

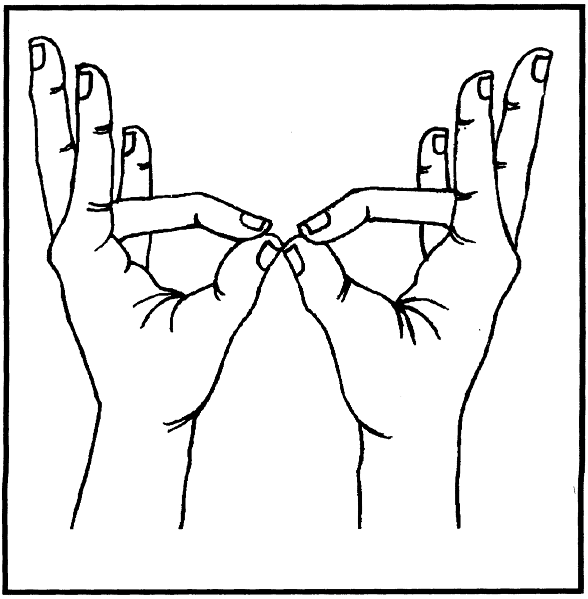

पद्मकोश मुद्रा

यह मुद्रा अपने गुण के अनुसार धान्य, कोश, सौभाग्य और आनन्द अभिवृद्धि की सूचक है।

पद्मकोश मुद्रा दिखाकर नंद्यावर्त्त स्थापना एवं प्रतिष्ठा सम्बन्धी मंगल अनुष्ठान सम्पन्न किये जाते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'ञ' है।

विधि

"कोशाकारौ करौ कृत्वाऽनामिकाद्वयस्यांगुष्ठलगनं कनिष्ठिकाद्वयस्य मध्ये प्रतिमाकारं कृत्वा पद्मकोशमुद्रा।"

दोनों हाथों को कोशाकार में निर्मित कर दोनों अनामिकाओं को अंगूठों से संस्पर्शित करें। पश्चात दोनों कनिष्ठिकाओं के मध्य भाग को प्रतिमा आकार में करने पर पद्मकोश मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- पद्मकोश मुद्रा मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को सक्रिय करती है। इससे बलिष्ठता, स्फूर्ति, संकल्पबल, पराक्रम एवं आत्मविश्वास बढ़ता है।
- दैहिक स्तर पर यह मुद्रा हर्निया, दाद-खाज, नपुंसकता, कामुकता, मासिक धर्म सम्बन्धी समस्या, पाचन समस्या, अल्सर, त्वचा रोग, दाग आदि के निवारण में लाभ करती है।
- अग्नि एवं जल तत्त्व को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा उत्सर्जन-विसर्जन में सहायक बनती है। मनोविकारों को घटाती है और अध्यात्म में रुचि विकसित करती है।

29. सामान्य पद्म मुद्रा

जिस मुद्रा से सामान्य कमल की आकृति दर्शायी जाती हो, उसे सामान्य पद्म मुद्रा कहते हैं।

यह मुद्रा सर्वत्र मंत्र विधान और पूजा विधान के अवसर पर की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ट' है।

विधि

"दक्षिणकर एक एव प्रसारितांगुलीकः सामान्य पद्म मुद्रा।"

दाहिने हाथ की अंगुलियों को प्रसारित करने पर सामान्य पद्म मुद्रा बनती है।

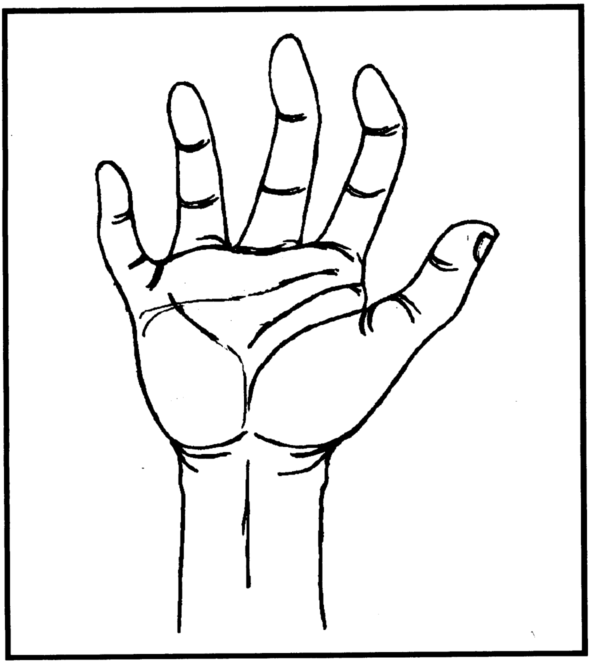

सामान्य पद्म मुद्रा

सुपरिणाम

• सामान्य पद्म मुद्रा धारण करने से अनाहत, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र जागृत होते हैं। इन चक्रों के जागरण से सकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न होती है। यह अतीन्द्रिय ज्ञान एवं शक्तियों को जागृत करते हुए कलात्मक उमंगों, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं को उत्पन्न करती है। इससे व्यष्टि सत्ता समष्टि चेतना से सम्बन्ध जोड़ने में सक्षम हो जाती है।

• भौतिक स्तर पर यह मुद्रा ब्रेन ट्यूमर, मिरगी, मस्तिष्क सम्बन्धी समस्याएँ, पुरानी बीमारी, एलर्जी, हृदय, श्वास, फेफड़े आदि से सम्बन्धित समस्याओं में लाभ करती है।

• वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा रक्त संचरण, श्वसन एवं मस्तिष्क में आए विकारों को दूर करती है। चित्त में आनंद की

अनुभूति करवाते हुए दिमाग को शांत एवं एकाग्र करती है तथा उदारता, सहकारिता आदि गुणों का जागरण करती है।

• पीयूष, पीनियल एवं थायमस ग्रंथि के स्राव को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा मानसिक प्रतिभा, रक्त दबाव एवं प्रजनन अंगों पर गहरा प्रभाव छोड़ती है। जीवन पद्धति एवं मनोवृत्तियों को नियन्त्रित रखती है।

30. नेत्र मुद्रा

हाथों की वह संरचना, जिसके द्वारा नेत्र युगल की साक्षात प्रतीति हो, उसे नेत्र मुद्रा कहते हैं। मुनि ऋषिरत्नजी के उल्लेखानुसार यह मुद्रा बिम्बों के नेत्र अंजन (अंजनशलाका) के अवसर पर एवं प्रथम कपाट उद्घाटन (द्वारोद्घाटन) के पश्चात दिखायी जाती है। प्रतिष्ठा में सम्मिलित जन समूह को आत्मवश करने के लिए भी इस मुद्रा का प्रयोग करते हैं। इस मुद्रा को अधोमुख करने से प्रतिमा संबंधी दोष टल जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'ठ' है।

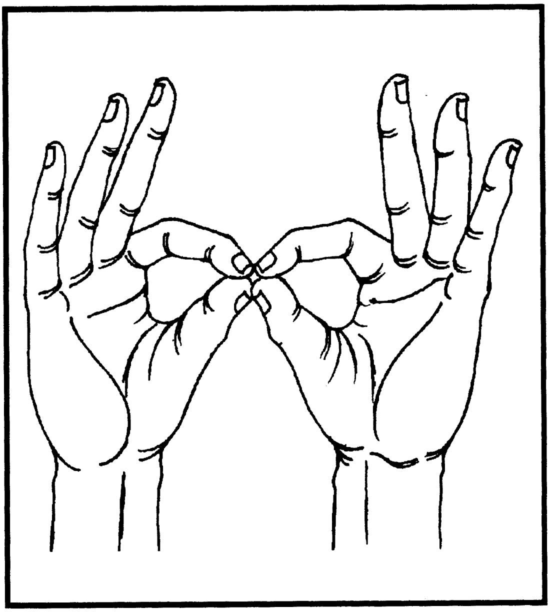

नेत्र मुद्रा

विधि

"हस्तद्वयांगुष्ठद्वयतर्जनीद्वययोगे नेत्राकारे नेत्र मुद्रा।"

दोनों हाथों के दोनों अंगूठों और दोनों तर्जनियों को संयोजित करने पर नेत्राकार में नेत्र मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

मुद्रा विशेषज्ञों के अनुसार नेत्र मुद्रा को धारण करने से आज्ञा चक्र एवं स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होते हैं। यह मुद्रा स्मृति को स्थिर करती है, अन्तर्ज्ञान को जागृत करती है और कामेच्छाओं पर नियंत्रण रखती है।

- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा खून की कमी, त्वचा रोग, बिस्तर गीला करना, नपुंसकता, ब्रेन ट्यूमर, पुरानी थकान, मिरगी, सिरदर्द आदि में लाभ करती है।
- इस मुद्रा को धारण करने से आकाश एवं जल तत्त्व संतुलित रहते हैं। यह प्रजनन एवं मस्तिष्क सम्बन्धी विकारों का शमन करती है। इससे आत्मनियंत्रण एवं भावों में प्रवाह आता है तथा दिमाग शांत एवं स्थिर बनता है।
- पीयूष एवं प्रजनन ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा स्वभाव एवं व्यवहार नियंत्रण में सहायक बनती है।

31. विकसित पद्म मुद्रा

हाथों की वह बनावट, जिसे देखकर खिले हुए कमल की स्मृति उभर आये, उसे विकसित पद्म मुद्रा कहते हैं।

यह मुद्रा प्रतिष्ठा विसर्जन के अवसर पर की जाती है। इस मुद्रा को दिखाते हुए आचार्य यह भावना करते हैं कि इस प्रतिष्ठा से अथवा अमुक मूलनायक भगवान के विराजमान होने से अमुक नगर एवं नगरवासी जन फलते-फूलते रहें।

इसका बीज मन्त्र 'ड' है।

विधि

"कोशाकारावेव करौ कृत्वा पद्मपत्रवत् प्रसारितांगुलीकौ विकसित पद्म मुद्रा।"

दोनों हाथों को कोशाकार के समान करके, अंगुलियों को कमल के पत्तों की तरह विकसित करने पर विकसित पद्म मुद्रा बनती है।

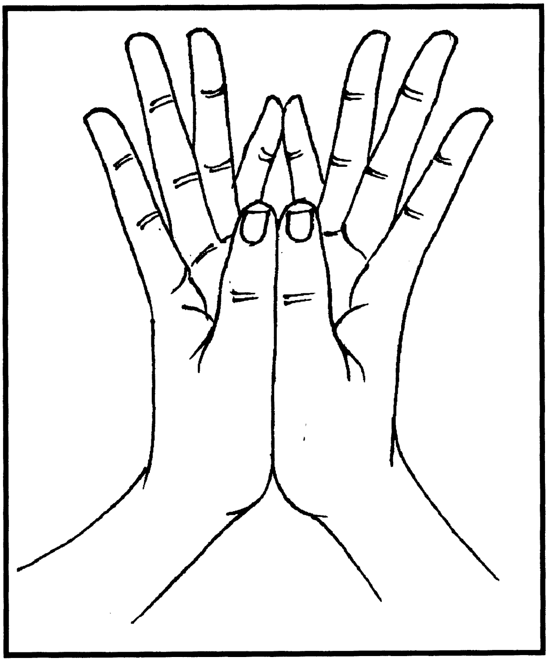

विकसित पद्म मुद्रा

32. सनाल कमल मुद्रा

हाथों की वह रचना, जिसके द्वारा कमल को डंडी (नाल) सहित दिखाया जा सके, वह सनाल कमल मुद्रा कहलाती है।

इस मुद्रा को दिखाते समय इस तरह के भाव रखने चाहिए कि हमें अपनी शक्ति के मूल स्रोत को पहचानते हुए उसे प्रकट करना है। कमल की डंडी मूल स्रोत का प्रतीक है।

यह मुद्रा गौतम स्वामी के मन्त्र जाप के अवसर पर की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ढ' है।

विधि

''अञ्जलिं बद्ध्वा द्वयोः करयोरनामिकाद्वयं आत्मसंमुखं क्रियते आमणिबंधं कनिष्ठिकाद्वयं योज्यते अपरांगुली विरली करणे सनाल कमल मुद्रा।''

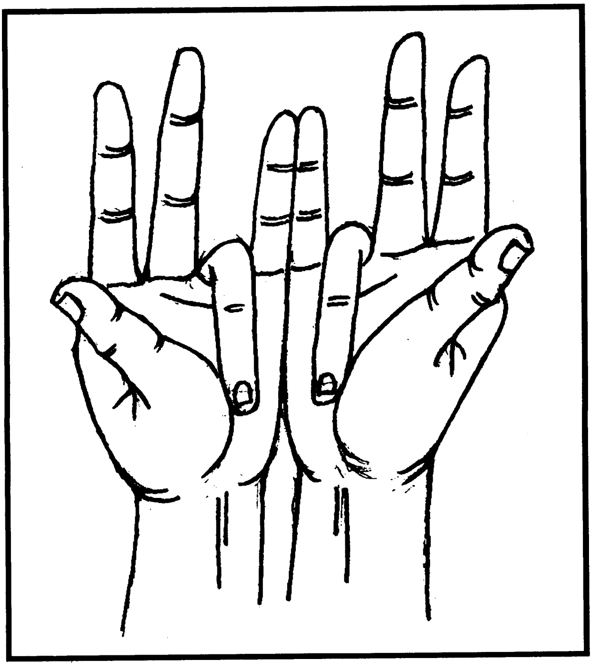

सनाल कमल मुद्रा

दोनों हाथों को अंजलि के रूप में बाँधकर दोनों अनामिकाओं को मणिबंध पर्यन्त स्वयं के सम्मुख करें तथा दोनों कनिष्ठिकाओं को संयुक्त कर शेष अंगुलियों को पृथक्-पृथक् कर देने पर सनाल कमल मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- इस मुद्रा को धारण करने से मूलाधार एवं अनाहत चक्र जागृत एवं सक्रिय होते हैं। यह मुद्रा सकारात्मक ऊर्जा का उत्पादन कर कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्यों में रुचि विकसित करती है।
- भौतिक स्तर पर यह मुद्रा हड्डी की समस्या, कोष्ठबद्धता, सिरदर्द, आर्थराइटिस, दमा, हृदय, फेफड़ें आदि के रोग निवारण में उपयोगी है।
- यह मुद्रा पृथ्वी एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए भावों एवं विचारों में स्थिरता लाती है। प्राण धारण एवं उसके सुनियोजन में सहायक बनती है तथा आन्तरिक आनंद की प्राप्ति करवाती है।

• प्रजनन एवं थायमस ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा रोगों से बच्चों की रक्षा करती है। कामवासनाओं को नियंत्रित करते हुए शरीर के तापमान को संतुलित रखने में सहायक बनती है।

33. अश्व मुद्रा

अश्वमुख को प्रदर्शित करने वाली मुद्रा अश्व मुद्रा कहलाती है।

यह मुद्रा दिखाने से अश्वाधिपति प्रसन्न होते हैं अतः उनके द्वारा किसी तरह का शुभ कर्म करवाया जा सकता है।

उपलब्ध कृति के अनुसार यह मुद्रा अश्वाधिपतियों के द्वारा नवीन प्रासाद (चैत्य) करवाये जाने पर, उस चैत्य की प्रतिष्ठा के अवसर पर और अश्वशाला में अश्व के दोषों का निवारण करने के प्रयोजन से की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ण' है।

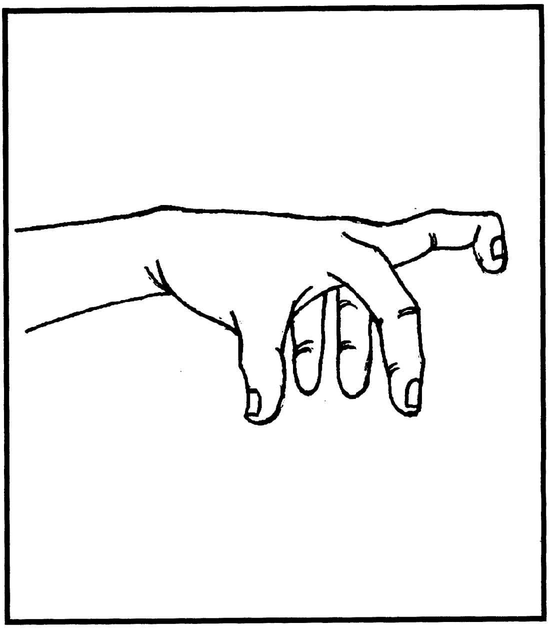

अश्व मुद्रा

विधि

"दक्षिणकरस्यांगुलीः विरलीकृत्याऽधः मध्यमा किंचिदश्वमुखवद् वक्री करणे अश्व मुद्रा।"

दाहिने हाथ की अंगुलियों को पृथक-पृथक करके अधोमुख करें तथा मध्यमा अंगुली को अश्वमुख के समान किंचित वक्र करने पर अश्व मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• अश्व मुद्रा का प्रयोग करने से मूलाधार एवं मणिपुर चक्र प्रभावित होते हैं। इससे मनोविकार घटते हैं एवं परमार्थ में रुचि बढ़ती है।

• शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा शरीर दुर्गन्ध, बदबूदार श्वास, पाचन समस्या, अल्सर, प्रजनन तंत्र के विकार, कोष्ठबद्धता आदि में लाभ करती है।

• अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा अंदर की सकारात्मक ऊर्जा का अनुभव करवाती है। मानसिक स्थिरता लाती है तथा प्रतिकूलताओं से लड़ने की क्षमता उत्पन्न करती है।

• एड्रीनल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा संचरण व्यवस्था, हलन-चलन, श्वसन, रक्त परिभ्रमण आदि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इससे व्यक्ति साहसी, सहिष्णु एवं आशावादी बनता है।

34. गज मुद्रा

गज (हाथी) के समान मुख आकार वाली मुद्रा, गज मुद्रा कहलाती है।

इस मुद्रा को करने से गजाधिपति तुष्टमान होते हैं, अजितनाथ भगवान की प्रतिमा का प्रभुत्व बढ़ता है तथा विनायक देव सहायक बनते हैं।

मुनि ऋषिरत्नजी के निर्देशानुसार गज मुद्रा गजाधिपतियों के द्वारा नवीन जिनालय करवाये जाने पर, उस चैत्य की प्रतिष्ठा के अवसर पर, अजितनाथ भगवान के बिंब की प्रतिष्ठा प्रसंग पर, विनायक मूर्ति की प्रतिष्ठा एवं विनायक मंत्र का जाप आदि कार्यों में दिखायी जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'त्र्य' है।

विधि

"अश्वमुखमुद्रायामेव वामकरमध्यमा प्रक्षेपे अश्वमुखे दंतयुगलं वामांगुष्ठतर्जनीद्वयं दक्षिणहस्तांगुष्ठकनिष्ठिकाद्वयं च चरणस्थाने नियोज्य च गज मुद्रा।"

अश्वमुख मुद्रा के समान ही बायें हाथ की मध्यमा को किंचित वक्राकार में रखें। फिर अश्वमुख मुद्रा में दंत युगल के रूप में बायाँ अंगूठा और बायीं तर्जनी को नियोजित करें तथा दायाँ अंगूठा और दायीं कनिष्ठिका को चरण स्थान पर संस्पर्शित करने से गज मुद्रा बनती है।

35. दण्ड मुद्रा

इस मुद्रा के द्वारा दाहिना हाथ दण्ड जैसी आकृति से युक्त दिखता है। अत: इसका नाम दण्ड मुद्रा है।

यह मुद्रा दिखाने से कुक्कुर जाति का भय समाप्त हो जाता है क्योंकि श्वापदों के लिए यह विरोधी शस्त्र के समान है।

इस तरह दण्ड मुद्रा श्वापद सम्बन्धी भय को दूर करने एवं क्षेत्रपाल दोष का निवारण करने के उद्देश्य से की जाती है। इसका बीज मन्त्र 'त' है।

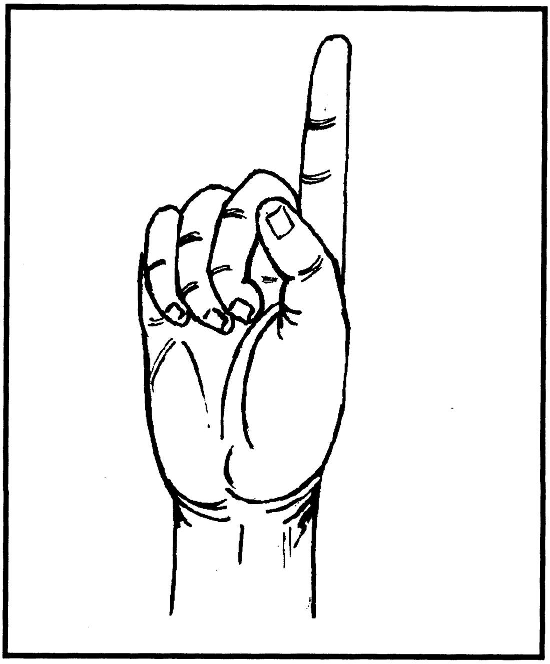

दण्ड मुद्रा

विधि

"दक्षिण हस्तेन मुष्टिं बद्ध्वा तर्जनीं प्रसारयेदिति दण्ड मुद्रा।"

दायें हाथ की मुट्ठी बांधते हुए तर्जनी को प्रसारित करने पर दण्ड मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

चक्र– विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, गला, मुँह, स्वरयंत्र, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

36. पार्श्वनाथ मुद्रा

प्रभु पार्श्वनाथ के प्रतिबिम्ब को दर्शाने वाली मुद्रा पार्श्वनाथ मुद्रा कही जाती है। इस मुद्रा प्रयोग से प्रभु पार्श्वनाथ के रक्षक देवी-देवता प्रसन्न होकर सहयोगी बनते हैं।

यह मुद्रा भगवान पार्श्वनाथ के मंत्र जाप के अवसर पर,सर्प भय के निवारण प्रसंग पर और सर्प को आत्मवश करने के प्रयोजन से करते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'थ' है।

विधि

"पराङ्मुख हस्ताभ्यां वेणीबंधं विधाय अभिमुखीकृत्वा तर्ज्जन्यौ आश्लेष्य शेषांगुली मध्ये अंगुष्ठद्वयं विन्यसेदिति पार्श्वनाथ मुद्रा।"

एक-दूसरे से विपरीत मुख किये हुए हाथों से वेणी बन्ध करके हाथों को स्वयं के सम्मुख करें तथा तर्जनियों को आश्लेषित (आलिंगित) कर शेष अंगुलियों के मध्य में द्वयांगुष्ठों को प्रस्थापित करने पर पार्श्वनाथ मुद्रा बनती है।

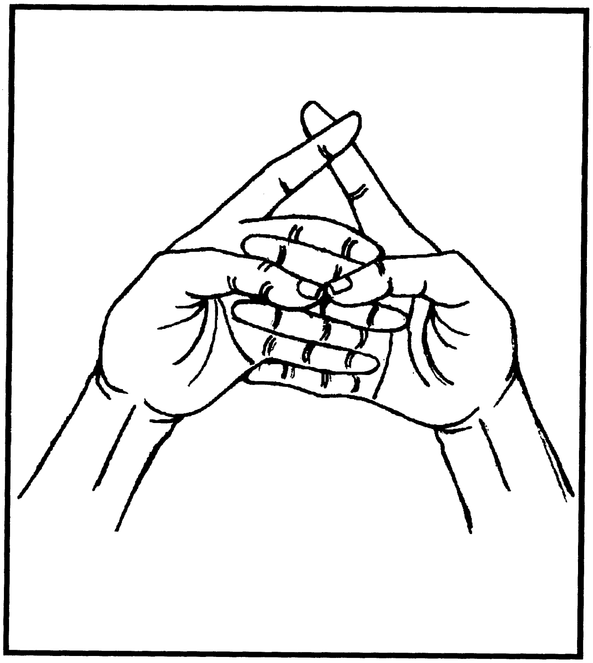

पार्श्वनाथ मुद्रा

सुपरिणाम

• चक्र विशेषज्ञों के अनुसार पार्श्वनाथ मुद्रा को धारण करने से आज्ञा एवं सहस्रार चक्र जागृत होते हैं। इनके जागरण से अतीन्द्रिय ज्ञान का जागरण होता है। आध्यात्मिक प्रगति होती है। उन्मत्तता, अवसाद, अनुत्साह, मानसिक अस्थिरता, भय आदि पर विजय प्राप्त होती है।

• दैहिक स्तर पर यह मुद्रा ब्रेन ट्यूमर, कोमा, कानों का संक्रमण, अनिद्रा, निराशा, पार्किन्सन्स रोग आदि में फायदा करती है।

• आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा श्वसन एवं मस्तिष्क सम्बन्धी विकारों को दूर करती है। आत्मनियंत्रण एवं आत्मविकास में सहायक बनती है तथा आन्तरिक आनंद की अनुभूति करवाती है।

• पीयूष एवं पीनियल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा मानसिक विकास एवं मनोवृत्ति के नियंत्रण में सहायक बनती है।

37. गरुड़ मुद्रा

हाथों की वह स्थिति, जिसके द्वारा गरुड़ पक्षी का प्रतिरूप दर्शाया जा सके, उसे गरुड़ मुद्रा कहते हैं।

यह मुद्रा परचक्र का निवारण करने, विष का अपहरण करने और दुष्ट शाकिनी आदि दोषों का निग्रह करने हेतु प्रभु पार्श्वनाथ के बिम्ब के आगे दिखायी जाती है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'द' है।

विधि

"आत्मनोऽभिमुखं दक्षिणहस्तकनिष्ठिकां संगृह्याऽधः परावर्त्तित हस्ताभ्यां गरुड़ मुद्रा।"

स्वयं की ओर अभिमुख दायें हाथ की कनिष्ठिका को अच्छी तरह से नीचे की ओर परावर्तित करने पर गरुड़ मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• गरुड़ मुद्रा को धारण करने से मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र सक्रिय होते हैं। यह मुद्रा व्यवहार नियंत्रण और आंतरिक रूकावटों को दूर करने में सहायक बनती है। यह मूल ऊर्जा का उत्पादन कर अतीन्द्रिय क्षमता का जागरण करती

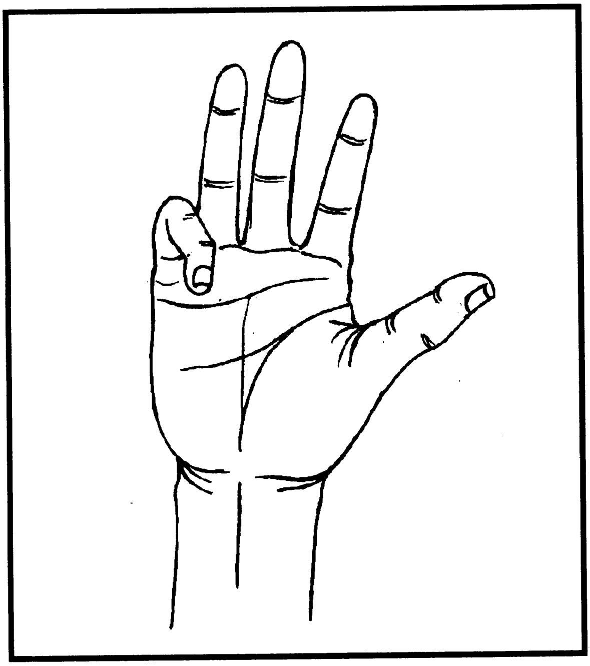

गरुड़ मुद्रा

है तथा क्रोधादि कषाय, अहंकार, तृष्णा, अस्थिरता आदि समस्याओं का निवारण करती है।

• शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा गला, मुँह, कान, नाक, कंधे आदि की समस्या, गठिया, कैन्सर, कोष्ठबद्धता, बवासीर, शारीरिक कमजोरी आदि का निवारण करती है।

• इस मुद्रा का प्रयोग पृथ्वी एवं वायु तत्त्व को संतुलित रखता है। यह प्रतिकूलताओं से लड़ने की क्षमता उत्पन्न करते हुए विचारों में स्थिरता एवं दृढ़ता लाती है।

• प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा आवाज, स्वभाव, व्यवहार, कामेच्छा, रक्त प्रवाह आदि के नियंत्रण में विशेष सहायक बनती है और शरीरस्थ कोलेस्ट्रोल, कैल्शियम फासफोरस आदि को संतुलित रखती है।

38. नाराच मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में उल्लिखित मुद्रा नं. 1 के समान है।

उपलब्ध प्रति के अनुसार नाराच मुद्रा दुष्ट शत्रुओं का निग्रह करने और प्रतिष्ठा में दृष्टि दोष का निवारण करने के प्रयोजन से की जाती है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'ध' है।

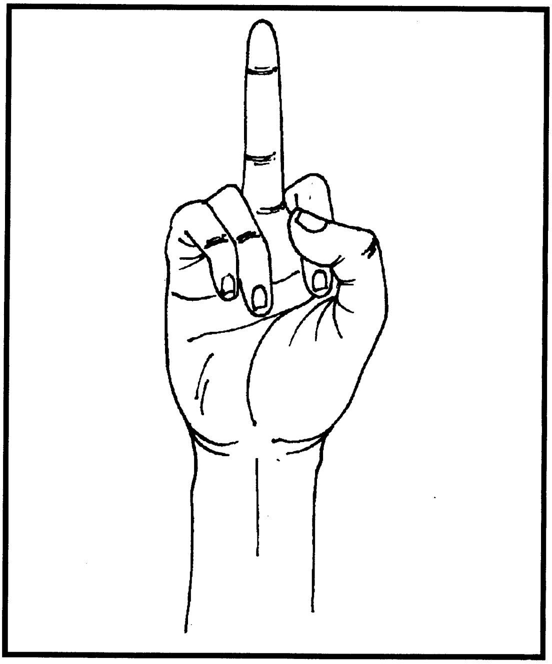

नाराच मुद्रा

सुपरिणाम

- नाराच मुद्रा को धारण करने से मणिपुर एवं अनाहत चक्र जागृत होते हैं। इनके सक्रिय होने से मनोविकार घटते हैं एवं परमार्थ में रुचि बढ़ती है। संकल्पबल, आत्मविश्वास एवं पराक्रम बढ़ता है। यह कलात्मक उमंगों, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं को उत्पन्न करती है।
- दैहिक दृष्टि से यह मुद्रा एलर्जी, अवसाद, दमा, हृदय, श्वास, छाती, फेफड़ा, पाचन आदि से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण करती है।
- अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा प्राण धारण एवं उसके सुनियोजन में सहायक बनती है। शरीरस्थ तीनों अग्नियों को जागृत करते

हुए आध्यात्मिकता एवं अनुशासन में वृद्धि करती है।

• एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शारीरिक संचरण व्यवस्था, हलन-चलन, श्वसन, रक्त परिभ्रमण, मांसपेशी संकुचन, अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन आदि का नियमन करती है।

39. सतत मुद्रा

यह मुद्रा पक्षी विशेष से सम्बन्धित है। इस मुद्रा में उस गोपनीय पक्षी की आकृति निर्मित करते हैं।

मुद्राविधि के अनुसार सभी तरह के कार्यों में इस मुद्रा का उपयोग होता है।

इसका बीज मन्त्र 'न' है।

विधि

"अवाङ्मुखकरद्वयं कृत्वा कनिष्ठिके परस्परं सांडसाबंधेन संबंध्य अंगुष्ठद्वयाऽनामिकाद्वययोः परस्परं संयोज्य मध्यमाद्वयं चंचुवत् प्रसार्य तर्ज्जनीद्वयं चरणयगलमिव कत्वा सततः पक्षिविशेषस्तस्य मद्रा सतत मुद्रा।"

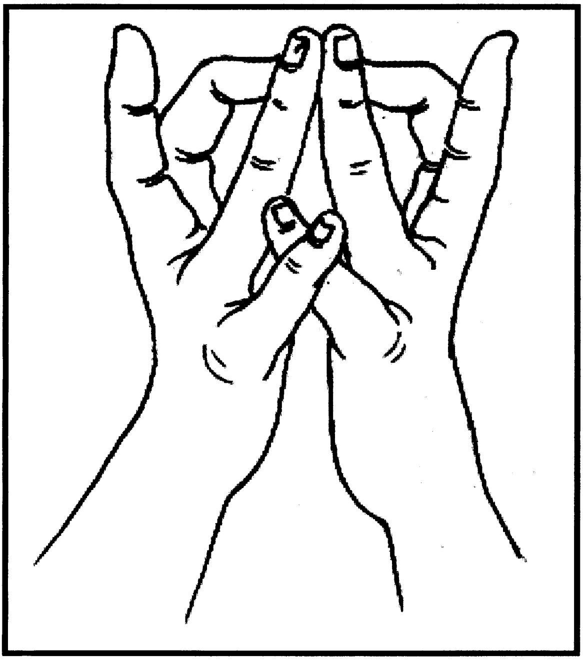

सतत मुद्रा

दोनों हाथों को नीचे की ओर अभिमुख करते हुए कनिष्ठिकाओं को परस्पर सांड के समान बंधन से बांध दें। तदनन्तर दोनों अंगूठों और दोनों अनामिकाओं को आपस में संयोजित कर दोनों मध्यमाओं को चोंच की तरह प्रसारित करें तथा दोनों तर्जनियों को चरण युगल की तरह करने पर सतत मुद्रा बनती है।

40. वापी मुद्रा

छोटा जलाशय, बावड़ी अथवा तालाब को वापी कहते हैं। यह मुद्रा तालाब के पानी से सम्बन्धित है। तालाब का जल पवित्र माना जाता है। प्राचीन युग में इस तरह के पवित्र स्थान बहुतायत में होते थे।

वापी मुद्रा प्रतिष्ठा के समय शांतिक कार्यों के निमित्त एवं बंदियों को मुक्त करने के उद्देश्य से की जाती है। जल का स्वभाव शीतलता है, अत: इस मुद्रा को दिखाने से प्रतीक रूप में सर्वत्र शान्ति का वातावरण उपस्थित होता है।

इसका बीज मन्त्र 'प' है।

विधि

''तोरण मुद्रायामेव अंगुष्ठद्वय प्रसारणे संयोजने च वापी मुद्रा''।

तोरण मुद्रा के समान ही दोनों अंगूठों को प्रसारित करने और संयोजित करने पर वापी मुद्रा बनती है।

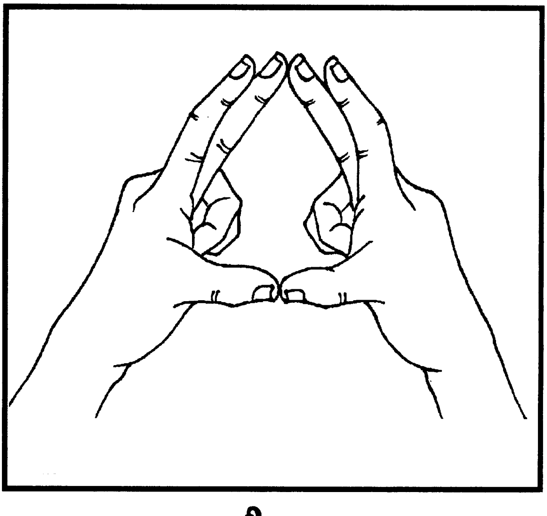

वापी मुद्रा

सुपरिणाम

• वापी मुद्रा की साधना करने से स्वाधिष्ठान एवं सहस्रार चक्र जागृत होते हैं। यह मुद्रा ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम करते हुए प्रतिकूलताओं में समभाव उत्पन्न करती है।

• यह मुद्रा मस्तिष्क की समस्याएँ, अंत:स्रावी तंत्र सम्बन्धी समस्याएँ, पुरानी बीमारी, खून की कमी, बिस्तर गीला होना, नपुंसकता, कामुकता आदि को कम करती है। मासिक धर्म की अनियमितता, योनि विकार, प्रजनन अंगों में विकार आदि को भी दूर करती है।

• जल एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा मल-मूत्र, गुर्दे, मस्तिष्क, आँख आदि के विकारों का शमन करती है। सत्य स्वीकार एवं भावों में प्रवाहत्मकता लाती है।

• प्रजनन एवं पीनियल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा चेहरे के आकर्षण, तेज एवं व्यक्तित्व को प्रभावी बनाती है। नेतृत्व नियंत्रण एवं निर्णयात्मक शक्ति में विकास करती है।

41. कुंभ मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्रा नं. 2 के समान है।

उपलब्ध प्रति के अनुसार यह कुंभ मुद्रा अक्षत खजाने के समान है। इसका प्रयोग गृह भवन में कुंभ स्थापना करते समय और बंदीजनों को मुक्त करते समय किया जाना चाहिए।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'फ' है।

42. अपरकुंभ मुद्रा

कुम्भ मुद्रा के तीन प्रकारान्तर हैं। उनमें द्वितीय प्रकार की कुंभ मुद्रा प्रासाद निर्माण, सामान्य जिनालय निर्माण, पौषधशाला निर्माण के निमित्त शिलान्यास के अवसर पर की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'फ' है।

विधि

''पार्ष्णिभ्यां संपुटीकृत्य कूर्म्माकारौ पादौ विधाय मध्ये विवरं क्रियते अपरकुंभ मुद्रा।''

एड़ियों के द्वारा संपुट बनाकर पैरों को कूर्माकार में करते हुए, मध्य भाग में अन्तराल रखने पर अपरकुंभ मुद्रा बनती है।

43. कुंभ मुद्रा

कुंभ मुद्रा का तीसरा प्रकार भी महत्त्वपूर्ण है। यह मुद्रा जिनालय के ऊपर दंड-कलश का आरोपण करते समय, जिन प्रतिमा एवं गुरु के प्रवेश महोत्सव के समय और सम्मुख कलश ले जाते समय प्रयुक्त होती है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'भ' है।

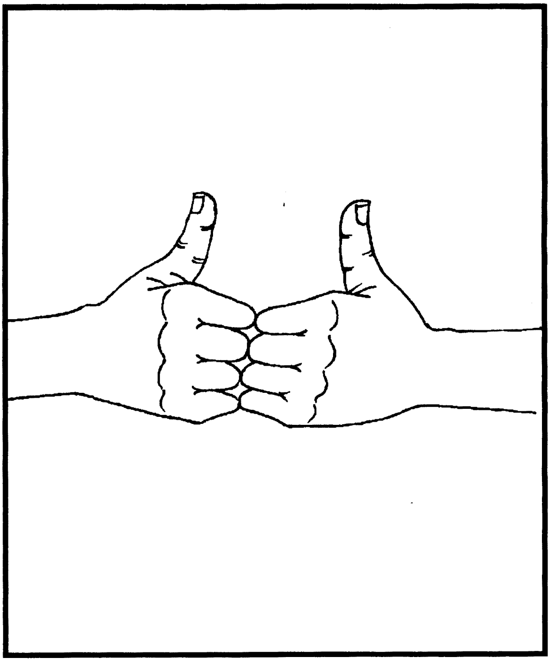

कुंभ मुद्रा

विधि

"बद्धमुष्टयोः करयोः संलग्न संमुखांगुष्ठयोः कुंभ मुद्रा।"

दोनों हाथों की बंधी हुई मुट्ठियों को संयोजित कर अंगूठों को एक-दूसरे के सम्मुख करने पर तीसरे प्रकार की कुंभ मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- इस कुंभ मुद्रा को धारण करने से स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र जागृत होते हैं। इनके सक्रिय होने से मन शांत होता है। ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि न्यून होते हैं और वाणी प्रखर होती है। चिंतन खुलने से साधक विचारक, चिंतक या दार्शनिक बनता है।

• शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा से कंठ विकार, मानसिक रोग, स्मरण शक्ति, खून की कमी, योनि विकार, गला, मुँह, नाक, कान आदि की समस्या का निराकरण किया जा सकता है।

• शरीरस्थ जल एवं वायु तत्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा, आध्यात्मिक विकास के साथ साधक की कांति और तेजस्विता को बढ़ाती है।

• प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रंथि के स्राव को संतुलित कर यह मुद्रा शरीर में ऊर्जा का उत्पादन कर साधक में सक्रियता एवं तीव्रता लाती है। कैल्शियम आदि को नियंत्रित करती है तथा कामवृत्ति को नियन्त्रित रखती है।

44. हृदय मुद्रा

इस मुद्रा के द्वारा हृदय को आन्दोलित किया जाता है इसलिए यह हृदय मुद्रा है। यह मुद्रा ध्यान के अवसर पर और प्रतिष्ठा काल में जिनबिंब आदि के हृदय न्यास के अवसर पर प्रयुक्त होती है।

इसका बीज मन्त्र 'म' है।

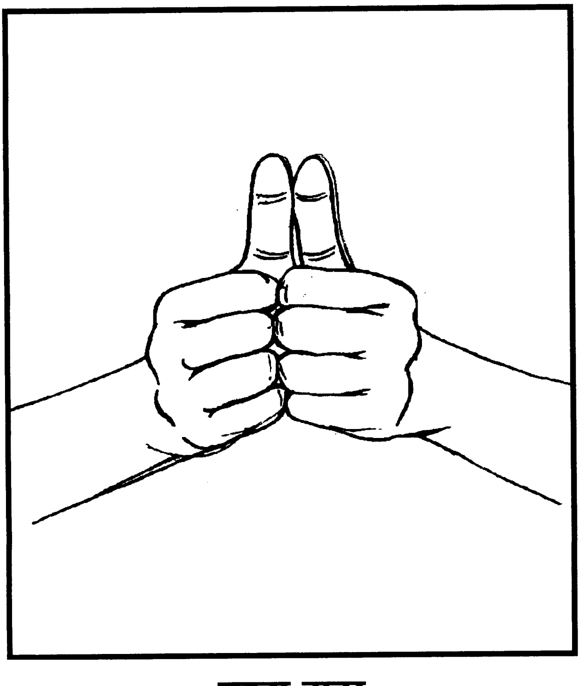

हृदय मुद्रा

विधि

"एषैव हृदये यदा योज्यते तदा हृदय मुद्रा।"

कुंभ मुद्रा की भाँति दोनों हाथों की बंधी हुई और संयुक्त की गई मुट्ठियों को जब हृदय भाग पर योजित (स्पर्शित) किया जाता है तब हृदय मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• हृदय मुद्रा साधक के शरीरस्थ अनाहत एवं आज्ञा चक्र को जागृत कर करुणा, क्षमा, विवेक, आत्मिक आनंद आदि गुणों को विकसित करती है।

• भौतिक दृष्टि से यह मुद्रा एलर्जी, मानसिक रोग, मस्तिष्क सम्बन्धी समस्याएँ, दमा, हर्निया, खून की कमी, योनि विकार आदि में लाभ पहुँचाती है।

• वायु एवं आकाश तत्व में संतुलन प्रस्थापित करते हुए यह मुद्रा रक्त संचरण, श्वसन, मस्तिष्क आदि के कार्यों को नियमित करती है। इसी के साथ प्राण धारण करने एवं उसके सुनियोजन में सहायक बनती है।

• पीयूष एवं थायमस ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शैशव अवस्था में बच्चों के शारीरिक विकास का नियमन करती है और रक्त शर्करा को संतुलित रखती है।

45. शिरो मुद्रा

इस मुद्रा का विवरण विधिमार्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्रा नं. 4 के समान है।

यह शिरो मुद्रा प्रतिष्ठा काल में जिनबिम्बों के मस्तक न्यास, नये गाँव में प्रवेश, जिनालय गमन और अधिष्ठायक देवी-देवता को आत्मवश करने के प्रसंग पर की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'य' है।

46. शिखा मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्रा नं. 5 की भाँति है। इस मुद्रा का उपयोग स्वदेह की रक्षा निमित्त किया जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'र' है।

47. कवच मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा में कथित मुद्रा नं. 6 के समान ही है। इस मुद्रा का

प्रयोग व्याख्यान के प्रारम्भ में, स्वदेह के रक्षणार्थ तथा परचक्र एवं चोर निवारण के निमित्त करते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'ल' है।

48. घृतभृत कुंभ मुद्रा

घृत से भरा हुआ कलश घृतभृत कुंभ कहलाता है। इस मुद्रा के माध्यम से घृत पूरित कुंभ का प्रतिरूप दर्शाया जाता है। प्रतिष्ठा के दिनों में कुंभ स्थापना करते वक्त कुंभ को पंचरत्न सहित घृत से भरा जाता है, उसे लक्षित कर यह मुद्रा करते हैं।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'व' है।

विधि

"पूर्ववद् ग्रथितांगुलीकौ करौ कृत्वांगुष्ठाभ्यां विधानं कुर्यात् मध्ये किंचिद् विवरे घृतभृतकुंभमुद्रा।"

कवच मुद्रा की भाँति दोनों हाथों की अंगुलियों को एक-दूसरे में गूंथकर

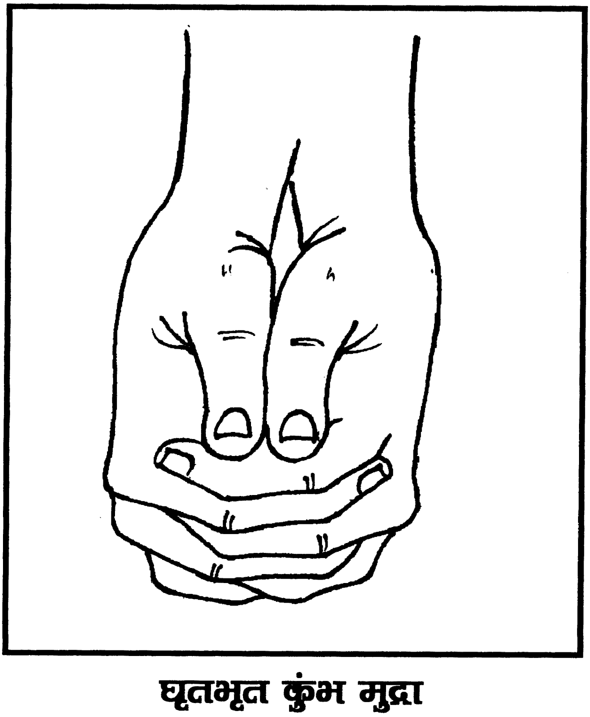

घृतभृत कुंभ मुद्रा

अंगूठों के द्वारा ढकते हुए एवं मध्य में किंचिद अन्तराल (रिक्तता) रखने पर घृतकुंभ मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• घृतभृत कुंभ मुद्रा का प्रयोग स्वाधिष्ठान, मणिपुर एवं अनाहत चक्र को प्रभावित करता है। यह मुद्रा प्रतिकूलता एवं तनाव से लड़ने की क्षमता उत्पन्न करती है। आत्मविश्वास, संकल्पबल एवं पराक्रम बढ़ाता है।

• शारीरिक दृष्टिकोण से यह मुद्रा एलर्जी, दमा, खून की कमी, बदबूदार श्वास, मधुमेह, पाचन समस्या, छाती, श्वास, हृदय, फेफड़ा आदि के विकार में फायदा करती है।

• इस मुद्रा का प्रयोग जल, अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए प्रजनन, पाचन एवं रक्त संचरण के कार्यों को नियमित करता है। यह मुद्रा शरीरस्थ अग्नि को जागृत कर ऊर्जा के ऊर्ध्वगमन में भी सहायता करती है।

• थायमस, एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा बालकों में सुसंस्कारों एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करती है तथा रक्तशर्करा, ब्लडप्रेशर, कामेच्छा आदि पर नियंत्रण रखने में सहायक बनती है।

49. क्षुर मुद्रा

एक प्रकार का शस्त्र विशेष क्षुर कहलाता है। इस मुद्रा में तीन अंगुलियाँ ऊर्ध्व प्रसरित रहती हैं जो नेत्रत्रय और रत्नत्रय की प्रतीक हैं। इसीलिए क्षुर मुद्रा के द्वारा नेत्रत्रय का न्यास किया जाता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करते समय भी यह मुद्रा दिखायी जाती है। इस मुद्रा के द्वारा शाकिनी, भूत, प्रेत आदि का निग्रह भी किया जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'श' है।

विधि

"कनिष्ठिकामंगुष्ठेन संपीड्य शेषांगुलीः प्रसारयेदिति क्षुर मुद्रा।"

कनिष्ठिका को अंगूठे से संस्पर्शित करते हुए शेष अंगुलियों को प्रसारित करने पर क्षुर मुद्रा बनती है।

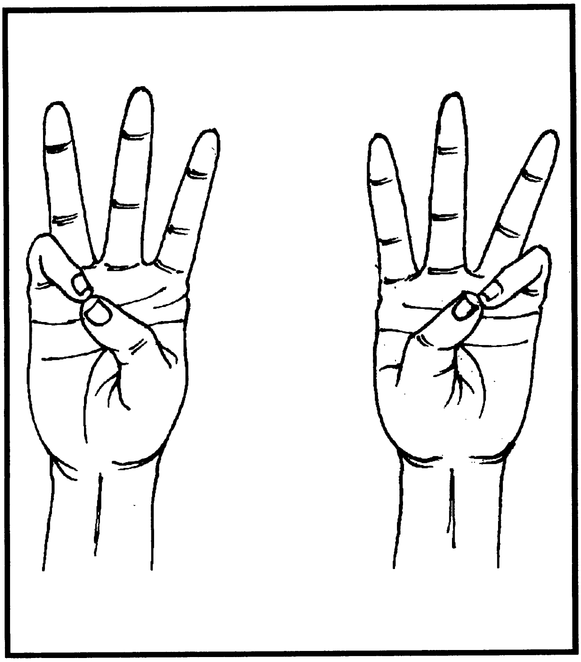

क्षुर मुद्रा

सुपरिणाम

• क्षुर मुद्रा धारण करने से मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र जागृत होता है। इससे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा आदि में उत्तरोत्तर प्रगति होती है।

• यह मुद्रा संकल्प शक्ति एवं पराक्रम में वृद्धि करती है।

• भौतिक स्तर पर यह मुद्रा गला, मुँह, नाक, कान आदि की समस्या, शरीर में दुर्गन्ध, फोड़े-फुन्सी, मधुमेह, पाचन समस्या आदि में लाभकारी है।

• यह मुद्रा अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए शरीरस्थ अग्नियों को जागृत एवं ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन करती है। पाचन एवं रक्त संचरण के कार्य को नियमित करती है।

• थायरॉइड, पेराथायरॉइड, एड्रीनल आदि ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर के सभी अंगों में शक्ति उत्पन्न करती है। हड्डियों के विकास एवं घाव भरने में सहायक बनती है। स्वभाव, आवाज, व्यवहार आदि के नियंत्रण में भी सहयोगी है।

50. भृंगार मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में कथित मुद्रा नं. 60 के तुल्य है।

यह कलश मुद्रा की प्रकारान्तर मुद्रा है।

यह मुद्रा ध्वजा, प्रतिष्ठा, स्नात्र पूजा आदि प्रमुख कार्यों एवं जिन बिम्बों के अभिषेक के अवसर पर प्रयुक्त होती है।

इसका बीज मन्त्र 'ष' है।

51. अस्त्र मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में उपदिष्ट मुद्रा नं. 8 के समान है।

अस्त्र मुद्रा का प्रयोग हृदयादि का न्यास करने, परचक्र का निवारण करने और शत्रुओं का उच्चाटन करने के निमित्त किया जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'स' है।

52. धेनु मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा में वर्णित मुद्रा नं. 10 के समान है।

जहाँ भूमि शुद्धि और इर्द-गिर्द के वातावरण को पवित्र बनाना हो, सर्वत्र शांतिक यंत्र की स्थापना करनी हो, वहाँ पूर्व में धेनु मुद्रा करते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'ह' है।

53. प्रतिमा मुद्रा

दोनों हाथों की वह संरचना, जिसमें प्रतिमा की बिंब रूप आकृति दिखाई देती हो, उसे प्रतिमा मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा में परमात्मा की प्रतिमा जैसा प्रतिबिम्ब निर्मित होता है।

प्रस्तुत मुद्रा दिखाने से नवीन बिम्बों का अतिशय बढ़ता है तथा प्रतिष्ठा मंडप अलौकिक विशेषताओं से युक्त हो उठता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार नूतन प्रतिमाओं के उद्देश्य से बनाए गए प्रतिष्ठा मंडप में यह मुद्रा प्रारंभ में ही कर लेनी चाहिए। नवीन बिम्बों के मन्त्र न्यास के अवसर पर आचार्य या अधिकारी मुनि स्वयं प्रतिमा मुद्रा करके उन्हें दिखाते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'अं' है।

विधि

"हस्तद्वयस्य मध्यमाद्वयं किंचित् फणावत्कृत्वा तर्ज्जनीद्वयहस्ताकारं कृत्वा अनामिका द्वयस्य चरणाकारौ कृत्वा प्रतिमा मुद्रा।"

दोनों हाथों की दोनों मध्यमाओं को किंचित सर्पफण के समान करके दोनों तर्जनियों को हस्त आकार में करने तथा दोनों अनामिकों को चरण आकार में करने पर प्रतिमा मुद्रा बनती है।

54. स्थापनी मुद्रा

विधिमार्गप्रपा में उल्लिखित मुद्रा नं. 12 के समान यह मुद्रा जाननी चाहिए।

यह मुद्रा किसी भी तरह की स्थापना के अवसर पर और श्राद्ध आदि के स्थिरीकरण के निमित्त प्रयुक्त होती है।

इसका बीज मन्त्र 'अः' है।

55. आवाहनी मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा वर्णित मुद्रा नं. 11 के समान है।

यह मुद्रा व्याख्यान के अवसर पर श्रोताओं को आकर्षित करने और दश दिक्पालों को आमन्त्रित करने के उद्देश्य से की जाती है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'श्क' है।

56. संनिधापनी मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में कथित मुद्रा नं. 13 के समान है। यह मुद्रा किसी भी मन्त्रादि जाप के प्रारम्भ में और क्षुद्रोपद्रव का विनाश करने के निमित्त की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ठ' है।

57. निष्ठुरा मुद्रा

इस मुद्रा का वर्णन विधिमार्गप्रपा में निरूपित मुद्रा नं. 14 के समान है।

यह मुद्रा चित्त को एकाग्र करने और कदाचित कोप करने के अवसर पर की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'अ' है।

58. प्रवहण मुद्रा

संस्कृत शब्द प्रवहण के अनेक अर्थ हैं। एक अर्थ के अनुसार बन्द गाड़ी या पालकी को प्रवहण कहते हैं। दूसरे अर्थ में जहाज को भी प्रवहण कहा गया है। यहाँ प्रसंगानुसार प्रवहण का अभीष्ट अर्थ जहाज है।

इस मुद्रा में जलयान (जहाज) की प्रतिकृति दर्शायी जाती है।

कोई विदेश गया हुआ हो और उसको अपने निकट बुलाना हो तो यह मुद्रा करनी चाहिए। इस मुद्रा का तुरन्त असर होता है। समुद्र से पार होने के निमित्त भी प्रवहण मुद्रा करनी चाहिए।

इसका बीज मन्त्र 'आ' है।

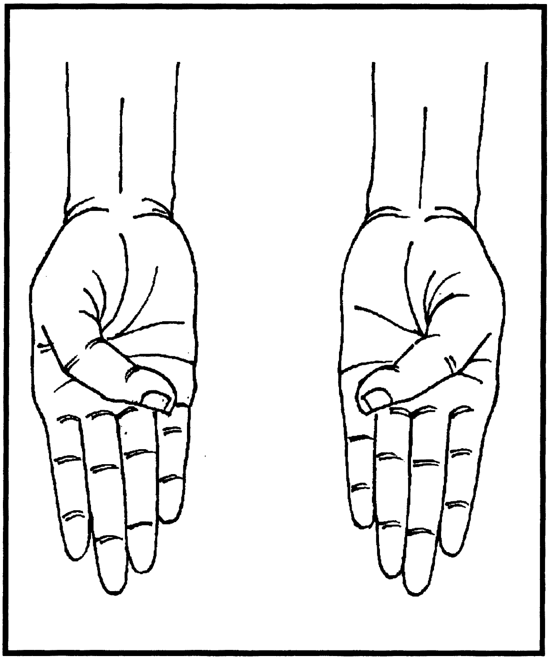

प्रवहण मुद्रा

विधि

"उभयकनिष्ठिकामूल संयुक्तांगुष्ठाग्रद्वयमुत्तानितं सहितं पाणि युगमावाहनं प्रवहणा पर पर्यायं तन्मुद्रा।"

दोनों कनिष्ठिकाओं के मूल भाग में अंगूठों के अग्रभागों को संयुक्त करते हुए उठे हुए दोनों हाथों से आवाहन करना प्रवहण मुद्रा है।

सुपरिणाम

• मुद्रा विशेषज्ञों के अनुसार प्रवहण मुद्रा धारण करने से स्वाधिष्ठान चक्र जागृत एवं सक्रिय होता है। इससे प्रतिकूल परिस्थिति एवं तनाव से लड़ने की क्षमता उत्पन्न होती है।

• यह मुद्रा खून की कमी, सूखी त्वचा, हर्निया, दाद, खुजली, अंडाशय, गर्भाशय आदि की समस्या, योनि विकार आदि शारीरिक रोगों में लाभ पहुँचाती है।

• शरीरस्थ जल तत्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा उत्सर्जन एवं विसर्जन कार्यों में विशेष सहायक बनती है।

• प्रजनन ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा कामेच्छाओं का नियंत्रण करती है तथा बालों के झड़ने एवं तापमान के असंतुलन आदि में भी लाभ पहुँचाती है।

59. स्थापन मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्रा नं. 16 के समान है।

यह मुद्रा नन्दि स्थापना और संघपति प्रमुख की स्थापना के समय प्रयुक्त होती है।

इसका बीज मन्त्र 'इ' है।

60. अवगुण्ठन मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा निर्दिष्ट मुद्रा नं. 18 के समान है।

किन्हीं के मतानुसार इस मुद्रा का प्रयोग स्वयं के अंगों की रक्षा के लिए और मार्ग में साथ गमन करने वाले जन समुदाय की रक्षा के लिए किया जाता है।

इसका बीज मंत्र 'ई' है।

61. निरोध मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में उल्लिखित मुद्रा नं. 17 के समान है।

यह मुद्रा अग्नि जैसे प्रमुख भयों को टालने के लिए और वर्षाकाल में ध्यान के अवसर पर की जाती है।

इस मुद्रा का बीज 'उ' है।

62. त्रासनी मुद्रा

इस मुद्रा का परिचय विधिमार्गप्रपा में वर्णित मुद्रा नं. 20 के समान जानना चाहिए।

यह त्रासनी मुद्रा दुष्ट शक्तियों का निवारण करने एवं दुर्विनीत शिष्यों को अनुशासन में रखने के प्रयोजन से प्रयुक्त होती है।

इसका बीज मन्त्र 'ऊ' है।

63. गोवृषण मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में कथित मुद्रा नं. 19 के समान जानना चाहिए।

यदि चतुर्विध संघ के साथ विहार करना हो तब इस मुद्रा का प्रयोग करने के पश्चात यात्रा शुरू करनी चाहिए। इस मुद्रा प्रभाव से समस्त प्रकार का मंगल होता है।

इसका बीज मन्त्र 'ऋ' है।

64. पाश मुद्रा

इस मुद्रा का परिचय विधिमार्गप्रपा में सन्दिष्ट मुद्रा नं. 21 के समान है।

पाश मुद्रा दुष्टों का निग्रह करने के लिए करते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'ॠ' है।

65. महा मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्रा नं. 9 के सदृश है।

यह मुद्रा संघपति प्रमुखों की स्थापना और सृष्टि को अपने अनुकूल करने के निमित्त की जानी चाहिए।

इसका बीज मन्त्र 'ऌ' है।

66. अपरपाश मुद्रा

पाश मुद्रा का एक अन्य प्रकार अपरपाश मुद्रा है। यह मुद्रा अत्यन्त दुष्ट शक्तियों का निग्रह करने एवं शाकिनी आदि प्रेतात्माओं को उपशान्त करने के प्रयोजन से की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'लृ' है।

विधि

"परस्पराभिमुखौ करौ कृत्वा दक्षिणकरमध्यमाऽनामिकाभ्यां वामकरमध्यमाऽनामिकयोर्वल्गनं क्रियते अपरपाश मुद्रा"।

दोनों हाथों को एक-दूसरे के अभिमुख करके दायें हाथ की मध्यमा और अनामिका से बायें हाथ की मध्यमा और अनामिका को इधर-उधर घुमाने पर अपरपाश मुद्रा बनती है।

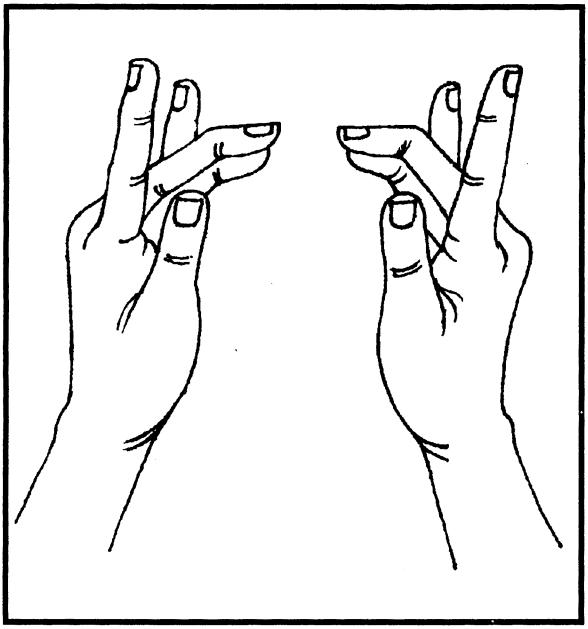

अपरपाश मुद्रा

सुपरिणाम

• अपरपाश मुद्रा को धारण करने से मणिपुर एवं आज्ञा चक्र जागृत होते हैं। इससे आत्मविश्वास, संकल्पबल एवं पराक्रम जागृत होता है। यह मुद्रा

साधक को दिव्य ज्ञानी बनाने एवं परभावों को समझने में सहायक बनती है।

• दैहिक स्तर पर यह मुद्रा रक्त विकार, हृदय विकार एवं मानसिक विकार को उपशांत करती है। यह अल्सर, पाचन समस्या, ब्रेन ट्यूमर आदि को भी दूर करती है।

• अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीरस्थ ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण करती है और हृदय में आंतरिक आनंद की अनुभूति करवाती है।

• पीयूष, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा व्यवहार आदि को नियन्त्रित रखती है।

67. अंकुश मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में कथित मुद्रा नं. 22 के समान है।

यह मुद्रा किसी व्यक्ति या देवी-देवता को वश में करने हेतु की जाती है तथा इसे प्रतिष्ठा विसर्जन के अवसर पर भी करते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'ए' है।

68. अपर अंकुश मुद्रा

अंकुश मुद्रा के तीन प्रकारान्तर हैं। दूसरा प्रकार अपर अंकुश मुद्रा के नाम से प्रख्यात है।

यह मुद्रा सामान्य मनुष्य जाति पर नियन्त्रण रखने और चार पैर वाले तिर्यंच जाति के पशुओं पर निग्रह करने के भाव से प्रयुक्त होती है।

इसका बीज मन्त्र 'ऐ' है।

विधि

''सौभाग्य मुद्रां कृत्वा द्वे अपि मध्यमे आत्मसंमुखे क्रियेते इति अपरअंकुश मुद्रा।''

दोनों हाथों को सौभाग्य मुद्रा के समान करते हुए दोनों मध्यमाओं को आत्म सम्मुख करने पर अपर अंकुश मुद्रा बनती है।

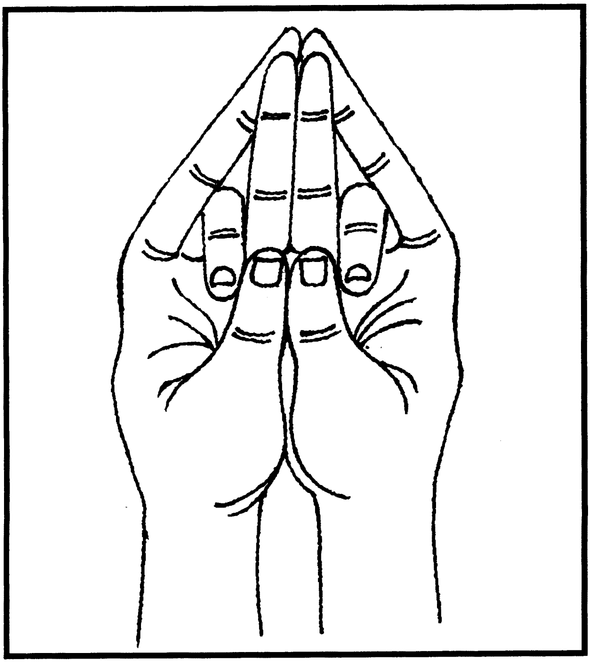

अपर अंकुश मुद्रा

सुपरिणाम

• अपर अंकुश मुद्रा को धारण करने से मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र जागृत होते हैं। इनके जागरण से शरीर की तेज, कान्ति एवं ओज में वृद्धि होती है, आत्मानंद की प्राप्ति होती है और अतीन्द्रिय ज्ञान की क्षमता बढ़ती है।

• शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा हड्डी की समस्या, गला, मुँह, नाक, कान आदि की समस्या, शारीरिक कमजोरी आदि के निवारण में सहायक बनती है।

• पृथ्वी एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा विचारों एवं भावों को स्थिर, एकाग्र एवं दृढ़ बनाती है। सत्य स्वीकार का सामर्थ्य प्रदान करती है।

• प्रजनन, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों का निवारण करती है। स्वर सुधारने, शरीर के तापक्रम को संतुलित रखने, आवाज, स्वभाव एवं व्यवहार नियंत्रण में सहायक बनती है। शरीर के मोटापे एवं वजन को नियंत्रण में रखती है।

69. महांकुश मुद्रा

जिस मुद्रा के द्वारा किसी तरह के दुष्ट का निग्रह किया जा सके, उसे महांकुश मुद्रा कहते हैं।

इस मुद्रा के द्वारा चतुर्विध संघ के अन्तर्गत रहे हुए दुष्ट मनुष्यों का निवारण किया जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'ओं' है।

विधि

"एषैव विपर्यासे आत्मनीनसंमुखे मध्यमे महाङ्कुशमुद्रा।"

दोनों हाथों को सौभाग्य मुद्रा की तरह रचकर दोनों मध्यमाओं को आत्म दिशा से विमुख रखने पर महाङ्कुश मुद्रा बनती है।

70. महानागपाश मुद्रा

नागों का पाश या बंधन नागपाश कहलाता है। हिन्दी शब्दसागर के अनुसार वरुणदेव (दिक्पालदेव) के एक प्रकार का अस्त्र, जिससे शत्रुओं को बांध लिया जाता है अथवा शत्रुओं को बांधने के लिए एक प्रकार का बंधन या फंदा नागपाश कहलाता है।

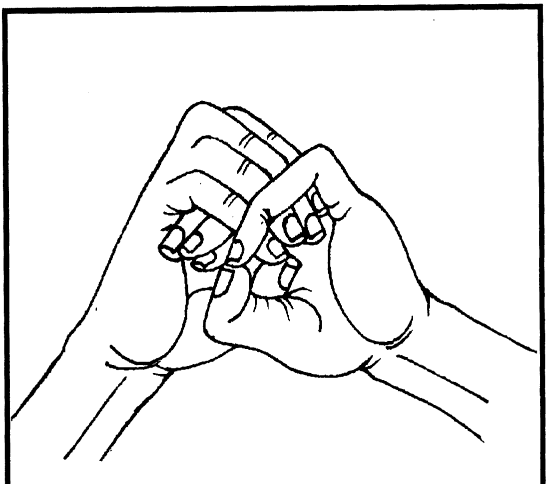

महानागपाश मुद्रा

प्रतिष्ठा के समय दुष्ट देवों को प्रतिबंधित करने, दुष्ट शक्तियों का निग्रह करने, दुष्ट आत्माओं को वश में करने और सर्प भय का निवारण करने के प्रयोजन से यह मुद्रा की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'औ' है।

विधि

"परस्परोन्मुखौ मणिबन्धाभिमुख कर शाखौ करौ कृत्वा ततो दक्षिणांगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां वाममध्यमाऽनामिके तर्जनीं च तथा वामांगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यामितरस्य मध्यमाऽनामिके तर्जनीं समाक्रामयेदिति महानागपाश मुद्रा।"

एक-दूसरे से विमुख दोनों हाथों की अंगुलियों को मणिबन्ध के अभिमुख करें। फिर दायें हाथ के अंगूठे और कनिष्ठिका से बायें हाथ की मध्यमा, अनामिका और तर्जनी को आक्रमित करें तथा बायें हाथ के अंगूठे और कनिष्ठिका से दायें हाथ की मध्यमा, अनामिका और तर्जनी को अच्छी तरह आक्रमित करने पर महानागपाश मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• चक्र विशेषज्ञों के अनुसार महानागपाश मुद्रा की साधना करने से स्वाधिष्ठान, अनाहत एवं आज्ञा चक्र जागृत होते हैं। इनके जागरण से मन शांत होता है। ईर्ष्या, राग-द्वेष में कमी होती है। शरीर कांतिवान एवं वाणी प्रखर बनती है। विचारों के संप्रेषण में दक्षता प्राप्त होती है।

• दैहिक दृष्टि से यह मानसिक एवं मस्तिष्क के रोगों का निवारण करती है। शरीर निरोगी बनता है और हृदय रोग, दमा, मानसिक अस्थिरता आदि का शमन होता है।

• जल, वायु एवं आकाश तत्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा प्रजनन, रक्तसंचरण, मस्तिष्क के कार्यों को नियमित रखती है। प्राण धारण एवं उसके सुनियोजन में तथा आन्तरिक आनंद की प्राप्ति में सहायक बनती है।

• प्रजनन, थायमस एवं पीयूष ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शैशव अवस्था में बालकों के विकास एवं कामेच्छा के नियंत्रण में सहायक बनती है। शरीर की आन्तरिक हलन-चलन, हृदय की धड़कन, राग-द्वेष आदि का संतुलन करते हुए साधक को प्रसन्न रखती है।

71. ध्वज मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा वर्णित मुद्रा नं. 23 के समान है।

मुनि ऋषिगुणरत्नजी के अनुसार यह मुद्रा ध्वजा आरोपण के समय और शिष्य की पदस्थापना के अनन्तर दिखाई जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'क' है।

72. शरा मुद्रा

संस्कृत शब्द शर का अर्थ बाण है। बाण एक प्रकार का अस्त्र है। इस मुद्रा में बाण का प्रतिरूप दर्शाया जाता है, अतः इसे शरा मुद्रा कहा गया है।

मुद्राविधि के निर्देशानुसार शरा मुद्रा का प्रयोग धवल माया बीज का स्मरण करते समय, कामधेनु द्वारा दूध देनें पर तथा आलोचना और उद्यापन के अवसान पर करना चाहिए।

इसका बीज मन्त्र 'ख' है।

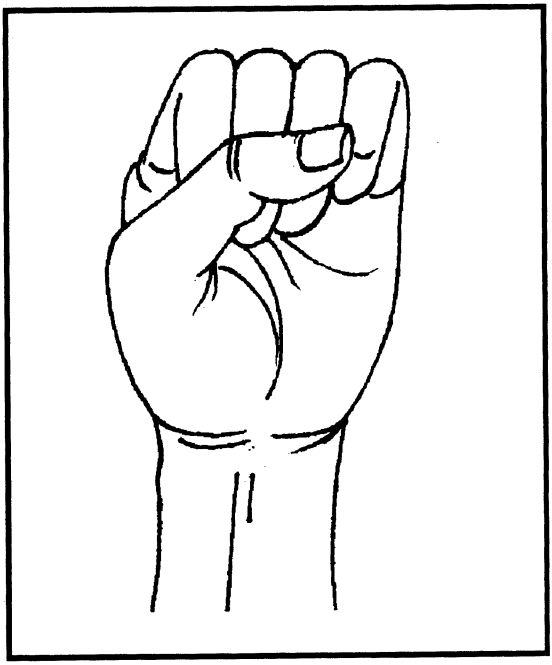

शरा मुद्रा

विधि

"वामहस्तेन मुष्टिकां प्रसार्य शेषांगुलीरंगुष्ठेन पीडयेत् इति शरामुद्रा।"

बायें हाथ की बंधी मुट्ठी को प्रसारित करके एवं शेष अंगुलियों को अंगूठे के द्वारा संपीडित करने पर शरा मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- इस मुद्रा का प्रयोग करने से आज्ञा, सहस्रार एवं विशुद्धि चक्र सक्रिय होते हैं। अतीन्द्रिय ज्ञान एवं क्षमता को जागृत करते हुए यह मुद्रा भावों को अभिव्यक्त करने में सहायक बनती है।
- शारीरिक स्तर पर इससे गला, मुँह, कण्ठ, कान, मस्तिष्क आदि की समस्या दूर होती है। यह गठिया, मस्तिष्क का कैन्सर, पार्किंसस रोग, मिरगी, सिरदर्द, पागलपन, पुरानी बीमारी, अंत:स्रावी तंत्र से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण करती है।
- आकाश एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा श्वसन एवं रक्त संचरण तंत्र को संतुलित रखती है। हृदय में आनंद एवं प्रेम की अनुभूति करवाती है तथा प्राण धारण एवं उनके सुनियोजन में सहायक बनती है।
- पीयूष, पीनियल, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा स्वभाव, व्यवहार एवं जीवन को नियमित एवं नियंत्रित रखती है।

73. वज्र मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में उपदिष्ट मुद्रा नं. 28के समान है।

वज्र मुद्रा का उपयोग प्रतिष्ठा जैसे मंगलकारी प्रसंगों में अंग रक्षा निमित्त किया जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'श्क' है।

74. श्रृंखला मुद्रा

इस मुद्रा का परिचय विधिमार्गप्रपा में उल्लिखित मुद्रा नं. 27 की भाँति जानना चाहिए।

यह मुद्रा प्रतीक रूप में दुष्टों को बन्धन में आबद्धित करने और खण्डित (बिखरे) चित्त वाले शिष्य आदि को स्थिर करने के प्रयोजन से की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ग' है।

75. वरद मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा कथित मुद्रा नं. 65 के समान है।

यह मुद्रा वर प्रदान करने वाली है, अत: इसे मन्त्र साधना के अवसर पर अवश्य करना चाहिए। इस मुद्रा के प्रभाव से इष्ट देवी-देवताओं द्वारा वरदान की प्राप्ति होती है।

इसका बीज मन्त्र 'घ' है।

76. चक्र मुद्रा

चक्र मुद्रा के दो प्रकार हैं।

प्रथम प्रकार के अनुसार बायें हाथ के तल पर दाहिने हाथ के मूल भाग को सन्निविष्ट करते हुए अंगुलियों को पृथक-पृथक प्रसारित करने पर चक्र मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा का विस्तृत वर्णन विधिमार्गप्रपा के अन्तर्गत मुद्रा नं. 29 में किया गया है।

द्वितीय परिभाषा के अनुसार दक्षिणाभिमुख बायें हाथ के तल पर उत्तराभिमुख दाहिने हाथ के तल को रखते हुए एवं अंगुलियों को पृथक करने पर चक्र मुद्रा बनती है।

यह चक्र मुद्रा प्रतिष्ठा के अवसर पर दुष्टों का उच्चाटन करने और समस्त दोषों का निवारण करने के उद्देश्य से की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ङ' है।

77. नमस्कृति मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्रा नं. 56 के समान है।

यह मुद्रा तत्त्व चिंतन के अधिकार में और क्रोधादि के उपशमनार्थ की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'च' है।

78. मुक्ताशुक्ति मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा वर्णित मुद्रा नं. 57 के तुल्य है।

इस मुद्रा का प्रयोग पाप कर्मों का क्षय करने हेतु तथा प्रतिष्ठा अधिकार में होता है।

इसका बीज मन्त्र 'घ' है।

79. प्रणिपात मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा की मुद्रा नं. 58 के समान है।

इस मुद्रा का प्रयोग क्रोधादि कषायों की उपशान्ति निमित्त एवं राजा-महाराजा आदि के मिलन के अवसर पर किया जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'ज' है।

80. योनि मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्रा नं. 53 के समान है।

यह रहस्यमयी मुद्रा जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा में नासिका न्यास के अवसर पर, लिंग स्थान न्यास के अवसर पर और किसी को वश में करने के निमित्त की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'झ' है।

81. त्रिमुख मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में वर्णित मुद्रा नं. 59 के समान है।

मुनि ऋषिगुणरत्नजी के अनुसार देवालय की प्रतिष्ठा और त्रिमुखी रूद्राक्ष की प्रतिष्ठा के प्रसंग पर त्रिमुख मुद्रा दिखायी जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ञ' है।

82. योगिनी मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में वर्णित मुद्रा नं. 61 के तुल्य है।

योगिनी मुद्रा का प्रयोग महामारी उपद्रव का अपनयन करने हेतु किया जाता है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'ट' है।

83. डमरूक मुद्रा

डमरूक मुद्रा विधिमार्गप्रपा में वर्णित मुद्रा नं. 63 के सदृश है।

यह मुद्रा अशुभ उपद्रव का निवारण करने और दृष्टि दोष को दूर करने निमित्त की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ठ' है।

84. क्षेत्रपाल मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा उल्लिखित मुद्रा नं. 62 के समान है।

यह मुद्रा आत्मरक्षा के लिए, चातुर्मास में स्थिरावास के लिए, नूतन क्षेत्र में प्रवेश के अवसर पर और जिनालय प्रवेश के अनन्तर की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ड' है।

85. अभय मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा में वर्णित मुद्रा नं. 64 के समान है।

इस मुद्रा का प्रयोग शान्ति निमित्त और बंदी को छुड़ाने के अवसर पर करते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'ढ' है।

86. पाशक मुद्रा

फंदा अथवा जाल को पाशक कहते हैं। प्राचीन युग में युद्ध करते समय आयुध के रूप में पाश का प्रयोग किया जाता था।

प्रस्तुत मुद्रा में फंदा जैसी आकृति बनती है, अतः इसे पाशक मुद्रा कहते हैं।

इस मुद्रा को करने से द्यूत क्रीड़ा में विजय होती है तथा ध्यान के क्षेत्र में भी आशातीत सफलता मिलती है।

इसका बीज मन्त्र 'ण' है।

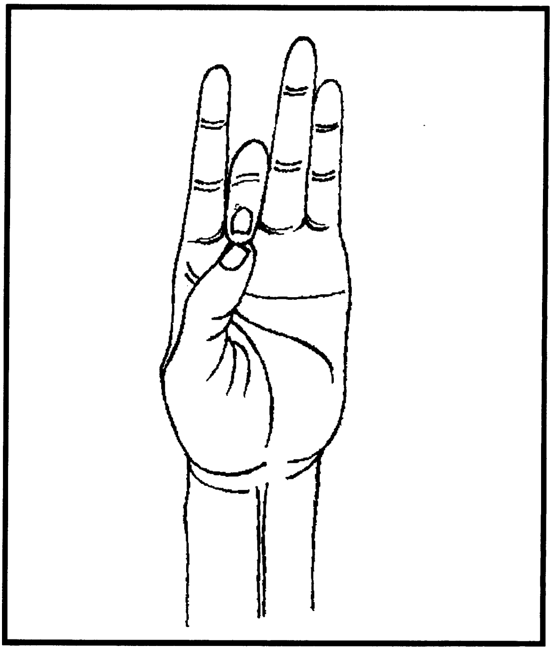

पाशक मुद्रा

विधि

"वामहस्तस्य मध्यमाङ्गुष्ठयोजनेन पाशक मुद्रा।"

बायें हाथ की मध्यमा को अंगूठे से योजित करने पर पाशक मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- जैन ग्रंथों में वर्णित पाशक मुद्रा को धारण करने से मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र जागृत एवं सक्रिय होते हैं। इनके जागरण से भीतर में ऊर्जा का उत्पादन एवं ऊर्ध्वगमन होता है तथा बलिष्ठता एवं स्फूर्ति बढ़ती है।
- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा खून की कमी, सूखी त्वचा, पाचन समस्या, शारीरिक कमजोरी, गुर्दे की कमजोरी आदि को दूर करती है।
- पृथ्वी एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा भावों एवं विचारों में स्थिरता, दृढ़ता एवं एकाग्रता आदि बढ़ाती है। प्रतिकूलता एवं विपरीत परिस्थिति को स्वीकार करने की क्षमता उत्पन्न करती है।
- प्रजनन ग्रंथि के स्राव को नियंत्रित कर कामेच्छा पर नियंत्रण करती है। इससे चेहरे के तेज, आकर्षण आदि में वृद्धि होती है।

87. खड्ग मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा वर्णित मुद्रा नं. 38 के समान है।

खड्ग मुद्रा शिष्य स्थापना के अवसर पर, परचक्र निवारण और ईति भय के निवारण हेतु दिखायी जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'त' है।

88. प्रवचन मुद्रा

इस मुद्रा का परिचय विधिमार्गप्रपा निर्दिष्ट मुद्रा नं. 68 के समान है।

प्रवचन मुद्रा मुख्य रूप से सिद्धान्तों का अभ्यास करते हुए, व्याख्यान देते हुए और ध्यान साधना में स्थिर रहते हुए की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'थ' है।

89. योग मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा वर्णित मुद्रा नं. 72 के समान है।

यह मुद्रा ध्यान करते वक्त, प्रतिष्ठा के प्रसंग पर और शक्रस्तव पाठ बोलते समय की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'द' है।

90. मंगल मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा में कथित मुद्रा नं. 69 के तुल्य है।

उपलब्ध प्रति के अनुसार मंगल मुद्रा मांगलिक कार्यों जैसे- हथलेवा, विवाह, प्रतिष्ठा आदि में करते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'ध' है।

91. आसन मुद्रा

यह आसन मुद्रा विधिमार्गप्रपा मुद्रा नं. 70 के समान है।

इस मुद्रा का प्रयोग मांगलिक कार्यों के अवसर पर तथा विशेष रूप से प्रतिष्ठा के अवसर पर किया जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'न' है।

92. अंग मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा में कथित मुद्रा नं. 71 के समान है।

यह मुद्रा अपने नाम को सार्थक करती हुई अंग रक्षा के निमित्त की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'प' है।

93. पर्वत मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा मुद्रा नं. 73 के तुल्य है।

गीतार्थ परम्परानुसार यह मुद्रा स्नात्र पूजा करते वक्त और क्षुद्र उपद्रवों के निवारणार्थ की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'फ' है।

94. विस्मय मुद्रा

यह विस्मय मुद्रा विधिमार्गप्रपा में निर्दिष्ट मुद्रा नं. 74 के समान है।

इस मुद्रा का उपयोग चमत्कार दिखने पर और प्रतिष्ठा के पश्चात सर्व दोषों के निवारणार्थ किया जाता है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'ब' है।

95. चुंटन मुद्रा

चुंटन मुद्रा का प्रयोग शान्ति की स्थापना और कल्याण की अभिवृद्धि हेतु किया जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'भ' है।

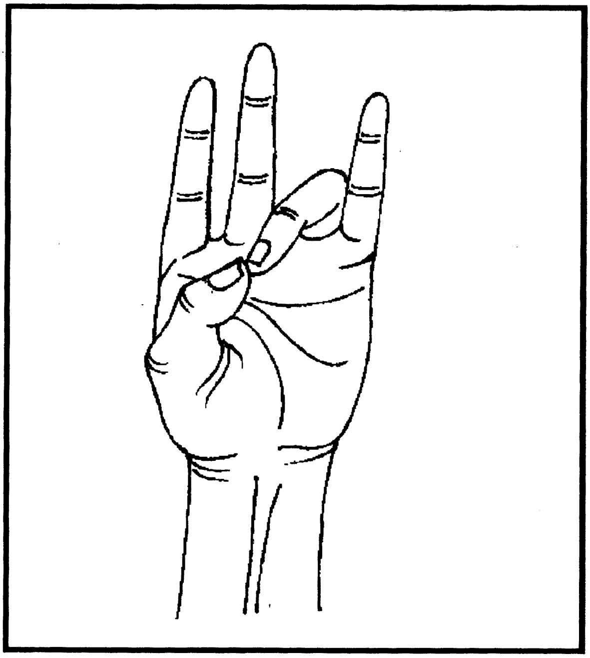

चुंटन मुद्रा

विधि

"अनामिकायां अङ्गुष्ठाग्रस्पर्शनं दुर्वावनस्पति चुंटन मुद्रा"

अनामिका का अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करवाना चुंटन मुद्रा है। इस मुद्रा में दुर्वा नाम की वनस्पति पकड़ी हुई होनी चाहिए।

सुपरिणाम

- चक्र अभ्यासी साधकों के अनुसार चुंटन मुद्रा धारण करने से अनाहत एवं आज्ञा चक्र जागृत होते हैं। इन चक्रों के जागरण से करुणा, मैत्री, क्षमा, विवेक आदि गुण जागृत होते हैं। यह मुद्रा दूसरों के मनोभावों को समझने एवं उन्मत्तता, अवसाद आदि को दूर करने में सहायक बनती है।

• भौतिक स्तर पर एलर्जी, मस्तिष्क, हृदय, फेफड़ें, छाती आदि की समस्याओं का निवारण करती है। मानसिक रोगों में मानसिक स्थिरता एवं शांति प्रदान करती है।

• इस मुद्रा का प्रयोग वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित रखता है। यह मुद्रा रक्त संचरण एवं श्वसन प्रक्रिया को व्यवस्थित कर अतीन्द्रिय शक्तियों को जागृत करती है तथा ऊर्जा को उत्पन्न कर ऊर्ध्व गमन करवाती है।

• पीयूष एवं थायमस ग्रंथि के स्राव को संतुलित कर यह शरीर की आन्तरिक हलन-चलन, धड़कन, रक्त शर्करा एवं तापक्रम को नियंत्रित रखती है। बालकों में रोगों से बचाव और कामेच्छा को नियंत्रित रखती है।

96. श्रीवत्स मुद्रा

एक प्रकार के चिह्न विशेष का नाम श्रीवत्स है। जैन परम्परा में दशवें तीर्थंकर शीतलनाथ प्रभु का यह चिह्न यही माना गया है। हिन्दू मान्यता में भगवान विष्णु का एक विशेषण और हृदयस्थ चिह्न श्रीवत्स है।

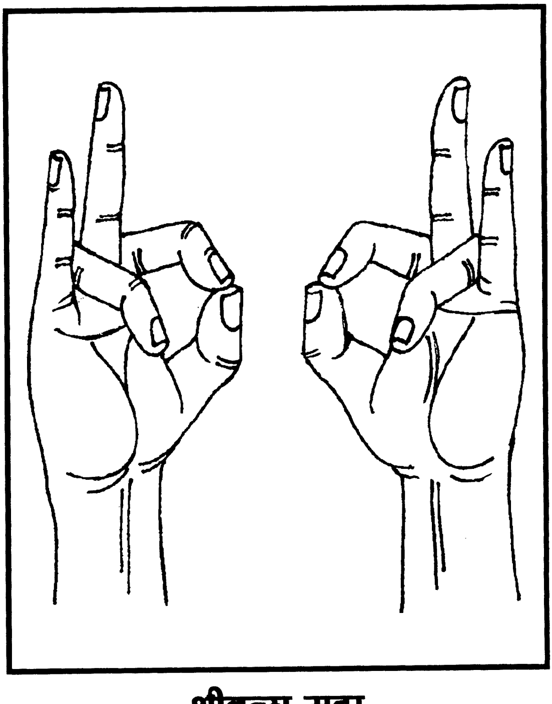

श्रीवत्स मुद्रा

यहाँ श्रीवत्स से तात्पर्य सामान्य चिह्न से है।

मुद्राविधि के अनुसार इस मुद्रा का उपयोग शकुन देखने के लिए किया जाता है।

इसके अतिरिक्त बिंब हृदय पर न्यास क्रिया करते समय, शीतलनाथ बिम्ब की प्रतिष्ठा के समय और मांगलिक लेख के अवसर पर भी श्रीवत्स मुद्रा करते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'म' है।

विधि

"उभयकर तर्जन्यौ अंगुष्ठेन सह संमील्य मध्यमाद्वयं प्रसार्य अनामिकाद्वयं अङ्गुष्ठाऽधः संयोज्यते श्रीवत्स मुद्रा।"

दोनों हाथों की तर्जनियों को अंगूठे के साथ सम्मिलित करें, दोनों मध्यमाओं को प्रसारित करें तथा दोनों अनामिकाओं को अंगूठों के नीचे संयोजित करने पर श्रीवत्स मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- श्रीवत्स मुद्रा को धारण करने से मणिपुर, अनाहत एवं विशुद्धि चक्र सक्रिय होते हैं। यह मुद्रा आत्मबल, मनोबल एवं संकल्प बल को बढ़ाती है। इससे मनोविकार घटते हैं, परमार्थ रुचि बढ़ती है तथा अतीन्द्रिय क्षमताएँ जागृत होती हैं।
- शारीरिक दृष्टिकोण से गला, मुँह, कान, नाक की समस्या, पाचन समस्या, दमा, एलर्जी, फेफड़े, छाती आदि विकारों का उपशमन करती है।
- अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीरस्थ तीनों अग्नियों का जागरण कर स्फूर्ति लाती है तथा कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्यों में रुचि का वर्धन करती है।

97. अक्ष मुद्रा

अक्ष शब्द अनेक अर्थों का ज्ञापक है। यहाँ अक्ष का अर्थ आध्यात्मिक है।

यह मुद्रा अक्षयनिधि तप करने पर तथा प्रतिष्ठा काल में अक्षतों और वासचूर्ण का प्रक्षेपण करने पर प्रदर्शित की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'य' है।

विधि

''वामहस्तस्य मुष्टि बंधने अक्षमुद्रा।''

बायें हाथ की मुट्ठी बांधने पर अक्ष मुद्रा बनती है।

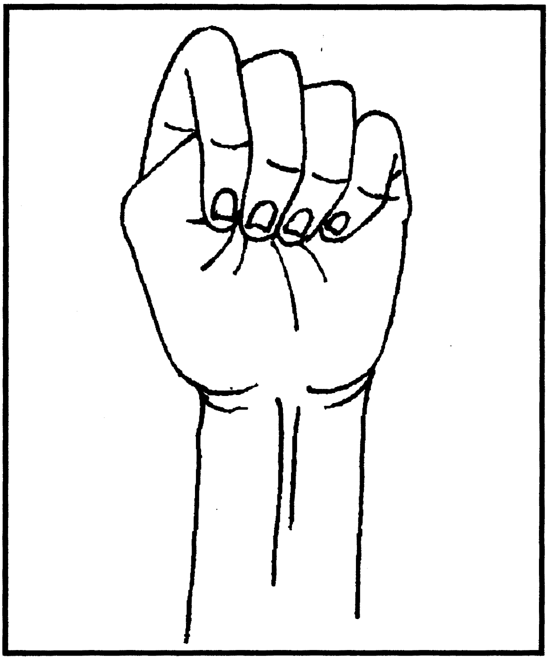

अक्ष मुद्रा

सुपरिणाम

• अक्ष मुद्रा का प्रयोग स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र को सक्रिय एवं नियंत्रित करते हुए उसमें आई हुई रुकावटों को दूर करता है। यह मुद्रा एकाग्रता एवं स्थिरता प्रदान करते हुए भय, ईर्ष्या, राग-द्वेष को दूर कर शरीर को

कांतिवान बनाती है। दिव्य ज्ञान को जागृत कर विचारों के संप्रेषण में सहायक बनती है।

• शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा खून की कमी, खसरा, बिस्तर गीला होना, मासिक धर्म की अनियमितता, कामुकता, ब्रेन ट्यूमर, अनिद्रा आदि रोगों के निवारण में सहायक बनती है।

• जल एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा मन को शांत एवं शीतल बनाती है तथा आन्तरिक सहजानंद की प्राप्ति करवाती है।

• पीयूष एवं प्रजनन ग्रंथि के स्राव को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा कामेच्छाओं को नियंत्रित रखती है।

98. गदा मुद्रा

इस मुद्रा का वर्णन विधिमार्गप्रपा मुद्रा नं. 31 के समान है।

सामान्य तौर पर दुष्ट शक्तियों अथवा बाधक तत्त्वों का निवारण करने हेतु उक्त मुद्रा का प्रयोग होता है।

इसका मन्त्र बीज 'र' है।

99. घण्टा मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा उपदिष्ट मुद्रा नं. 32 के समान है।

यह मुद्रा जिन प्रतिमा की पूजा आदि करते समय, प्रतिष्ठा सम्बन्धी मुहूर्त्त निकलने पर, किसी को सावधान करते वक्त, व्याख्यान के प्रारम्भ में सभासदों को सावचेत करने हेतु प्रदर्शित की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ल' है।

100. नाद मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा वर्णित मुद्रा नं. 75 के समान है।

इस मुद्रा का प्रयोग किसी गाँव या शहर में प्रवेश करने के अवसर पर और वाजिंत्र-वादन के प्रसंग पर किया जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'व' है।

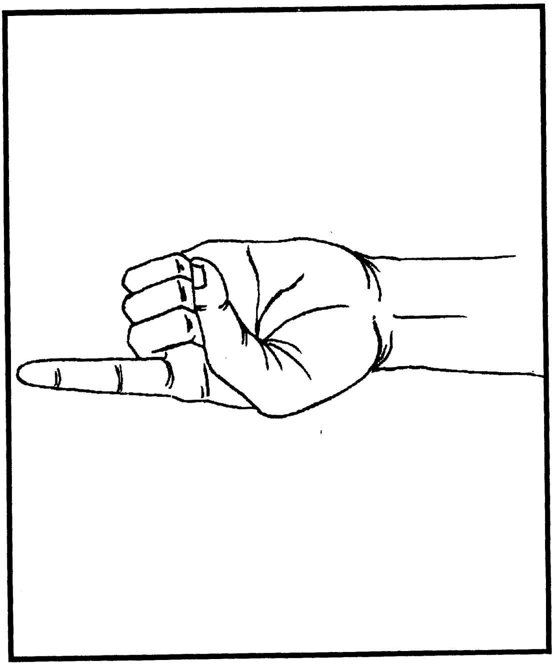

नाद मुद्रा

सुपरिणाम

- नाद मुद्रा को धारण करने से मणिपुर एवं सहस्रार चक्र जागृत होते हैं। इससे मनोविकार घटते है एवं परमार्थ में रुचि बढ़ती है। साधक को दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है।
- यह मुद्रा शारीरिक समस्याएँ जैसे कि मस्तिष्क कैन्सर, अस्थिरता, पुरानी बीमारी, पार्किन्सन्स रोग, बुखार, अल्सर आदि में लाभ देती है।
- अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा अतीन्द्रिय क्षमता को प्रस्फुटित करती है। शरीरस्थ अग्नि को जागृत कर ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण करती है। भावों एवं विचारों में उत्साह एवं जोश लाती है।
- एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं पीनियल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शैशव अवस्था में कामवृत्ति को नियंत्रित रखती है। निर्णय, नियंत्रण एवं नेतृत्व शक्ति का विकास करती है तथा साधक को साहसी, निर्भया, सहनशील, आशावादी बनाती है।

101. कमण्डलु मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप वर्णन विधिमार्गप्रपा मुद्रा नं. 33 के समान है।

किसी भी वस्तु, व्यक्ति या स्थान को पवित्र करने के लिए कमण्डलु मुद्रा दिखाते हैं।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'श' है।

102. परशु मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा में वर्णित मुद्रा नं. 34 के सदृश है।

दुष्ट तत्त्वों के वशीकरणार्थ और शाकिनी-डाकिनी आदि प्रेतात्माओं के भय निवारणार्थ परशु मुद्रा की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ष' है।

103. अपर परशु मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा मुद्रा नं. 35 के समान है।

अपर परशु मुद्रा दृष्टि दोष के निवारण हेतु की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'स' है।

104. वृक्ष मुद्रा

वृक्ष मुद्रा विधिमार्गप्रपा उल्लिखित मुद्रा नं. 36 के समान है।

यह मुद्रा अशोक वृक्ष की रचना करने पर और शिष्य की पद स्थापना आदि करने पर दिखायी जाती है। इस मुद्रा के प्रभाव से शिष्य वृक्ष की भाँति फलता-फूलता रहता है।

इसका बीज मन्त्र 'ह' है।

105. सर्प मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा मुद्रा नं. 37 के समान ही है।

प्रस्तुत मुद्रा सर्पादि जन्तुओं के उपसर्ग का निवारण करने के लिए एवं शाकिनी प्रेतात्मा का अपनयन करने के लिए दर्शायी जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'अं' है।

106. ज्वलन मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा कथित मुद्रा नं. 39 के समान जाननी चाहिए।

इसका प्रयोग शाकिनी जाति की आसुरी देवी का निवारण करने हेतु और संकटप्रद स्थितियों से छुटकारा पाने हेतु किया जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'ध्या' है।

107. शिवशासन मुद्रा

जिनशासन एवं शिवशासन की अभिव्यक्ति स्वरूप यह मुद्रा करते हैं। प्राप्त प्रति के अनुसार क्रोध के उपशमनार्थ इस मुद्रा को किया जाता है।

इसका बीज मन्त्र 'ठ' है।

विधि

"उभौ कूर्परौ एकत्रमीलने उपरि कमलवत्प्रसार्य स्थीयते जिनशासनशिवशासन मुद्रा।"

दोनों कूर्पर स्थान को एक-दूसरे से संयुक्त करें। फिर ऊर्ध्व भाग को कमल के समान प्रसारित करते हुए स्थिर करने पर जिनशासन-शिवशासन मुद्रा बनती है।

108. शूल मुद्रा

शूल मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा मुद्रा नं. 43 के समान है।

यह मुद्रा उपसर्ग निवारण, दुष्ट शक्तियों का उच्चाटन एवं कामण दोष का अपगमन करने हेतु दर्शायी जाती है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'अं' है।

109. श्रीमणि मुद्रा

प्रस्तुत मुद्रा का स्वरूप पूर्ववत मुद्रा नं. 40 के समान है।

श्रीमणि मुद्रा पन्द्रह अक्षर वाली विद्या पूजा के लिए की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'आ' है।

110. शूल मुद्रा

इस मुद्रा का वर्णन पूर्ववत मुद्रा नं. 43 के समान है।

यह मुद्रा विकृत भावों एवं निरर्थक विकल्पों को समाप्त करने हेतु प्रदर्शित की जाती है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'इ' है।

111. संहार मुद्रा

संहार मुद्रा पूर्ववत मुद्रा नं. 44 के सदृश जाननी चाहिए।

संहार मुद्रा का दूसरा नाम विसर्जन मुद्रा है। यह मुद्रा मन्त्र विसर्जन आदि के प्रसंग पर, जाप साधना के अन्त में और सकल दोषों के निवारणार्थ की जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ई' है।

112. परमेष्ठी मुद्रा

यह मुद्रा पूर्ववत मुद्रा नं. 45 के समान समझनी चाहिए।

वासचूर्ण को अभिमन्त्रित करते समय, ध्वज की प्रतिष्ठा करते वक्त और आरती आदि का अवतरण करते समय इस मुद्रा का उपयोग करते हैं।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'उ' है।

113.अंजलि मुद्रा

इस मुद्रा का स्वरूप विधिमार्गप्रपा कथित मुद्रा नं. 48 के समतुल्य है।

इस मुद्रा का प्रयोग समस्त प्रकार के संतोष गुण को उत्पन्न करने हेतु करते हैं।

इसका बीज मन्त्र 'ऊ' है।

114. जिन मुद्रा

जिन मुद्रा का वर्णन पूर्ववत मुद्रा नं. 50 के समान है।

इस मुद्रा का प्रयोग करने से चोर-लूटेरों का भय समाप्त हो जाता है।

इस मुद्रा का बीज मन्त्र 'ए' है।

115. सौभाग्य मुद्रा

यह मुद्रा विधिमार्गप्रपा में प्रतिपादित मुद्रा नं. 51 के समान है।

चराचर विश्व को अपने अनुकूल करने के लिए एवं कल्याण वृद्धि के लिए यह मुद्रा दर्शायी जाती है।

इसका बीज मन्त्र 'ऐ' है।

लघुविद्यानुवाद नामक लघुकृति में 45 मुद्राओं का वर्णन परिभाषा के साथ दिया गया है और कुछ मुद्राओं के चित्र भी दिये गये हैं। यद्यपि यह कृति

उपलब्ध नहीं हो पाई है किन्तु डॉ. सागरमल जैन ने इसका वर्णन प्रस्तुत किया है। तुलना की दृष्टि से देखा जाए तो लघुविद्यानुवाद की मुद्राएँ लगभग विधिमार्गप्रपा के समान ही है। 'जैन धर्म और तान्त्रिक साधना'' (पृ. 330-333) के आधार पर विवेच्य मुद्राओं का स्वरूप इस प्रकार है–

1. बाएँ हाथ के ऊपर दाहिना हाथ रखकर कनिष्ठिका और अंगूठों से मणिबन्ध को लपेटकर अवशिष्ट अंगुलियों को फैलाने से वज्र मुद्रा होती है।
2. दोनों हाथों को पद्माकार करके अंगूठों को मध्य में कर्णिका आकार में रखने से पद्म मुद्रा होती है।
3. वाम हस्ततल में दक्षिण हस्तमूल को निविष्ट कर अंगुलियों को अलग-अलग फैलाने से चक्र मुद्रा होती है।
4. ऊपर उठाये हुए हस्तद्वय के द्वारा वेणीबंध करके अंगूठों को कनिष्ठिका एवं तर्जनी के मध्य में एकत्र करके अनामिका में मिलाने से 'परमेष्ठी मुद्रा' होती है।
5. अथवा अंगुलियों को आधा मोड़कर मध्यमा को मध्य में करने से दूसरी परमेष्ठी मुद्रा होती है।
6. हथेलियों को ऊपर करके अंगुलियों को कुछ सिकोड़कर रखने से 'अञ्जलिमुद्रा' अथवा 'पल्लवमुद्रा' होती है।
7. हाथ की अंगुलियों को परस्पराभिमुख करके गूँथकर तर्जनियों से अनामिका को पकड़कर, मध्यमा को फैलाकर उनके बीच में दोनों अंगूठों को डालने से 'सौभाग्यमुद्रा' होती है।
8. समान हाथों को समतल करके कुछ गहरा कर ललाट देश में लगाने से 'मुक्ताशुक्तिमुद्रा' होती है।
9. हाथों की परस्पर विमुख अंगुलियों को मिलाकर दूर से ही अपनी ओर परिवर्तित करने से 'मुद्गर मुद्रा' होती है।
10. बाएँ हाथ की मिली हुई अंगुलियों को हृदय के आगे रखकर एवं दायीं मुट्ठी बाँधकर तर्जनी को ऊपर करने से 'तर्जनी मुद्रा' होती है।
11. तीन अंगुलियों को सीधा करके, तर्जनी और अंगूठे को छिपाकर हृदयाग्र में रखने से 'प्रवचन मुद्रा' होती है।

12. एक-दूसरे से गुथी हुई अंगुलियों में कनिष्ठिका को अनामिका एवं मध्यमा को तर्जनी के साथ जोड़ने से गो-स्तनाकार 'धेनु मुद्रा' होती है।
13. हस्ततल के ऊपर हस्ततल रखने से 'आसन मुद्रा' होती है।
14. दक्षिण अंगुष्ठ द्वारा तर्जनी मध्य को लपेटकर पुनः मध्यमा को छोड़ने से 'नाराच मुद्रा' होती है।
15. हस्तस्थापन करने से 'जन मुद्रा' होती है।
16. बाएँ हाथ के पीठ पर दाहिना हस्ततल रखने एवं दोनों अंगूठों को चलाने से 'मीन मुद्रा' होती है।
17. दाहिने हाथ की तर्जनी को फैलाकर मध्यमा को थोड़ा टेढ़ा करने से 'अंकुश मुद्रा' होती है।
18. दोनों हाथों की बँधी हुई मुट्ठियों को मिलाकर अंगुष्ठद्वय को सम्मुख करने से 'हृदय मुद्रा' होती है।
19. उसी प्रकार दोनों मुट्ठियों को मिलाकर अंगूठे के आधे भाग को सिर पर रखने से 'शिरो मुद्रा' होती है।
20. मुट्ठी बांधकर कनिष्ठिका और अंगूठे को फैलाने से शिखा मुद्रा होती है।
21. पूर्ववत मुट्ठी बांधकर तर्जनियों को फैलाने से 'कवच मुद्रा' होती है।
22. कनिष्ठिका को अंगूठे से दबाकर शेष अंगुलियों को फैलाने से 'क्षर मुद्रा' होती है।
23. दाहिने हाथ की मुट्ठी बांधकर तर्जनी और मध्यमा को फैलाने से 'अस्त्र मुद्रा' होती है।
24. फैले हुये और मुख की तरफ आये हुए दोनों हाथों से पादांगुलि के तल से लेकर मस्तक तक स्पर्श करना 'महा मुद्रा' है।
25. दोनों हाथों से अंजलि बांधकर नाभि के मूल में अंगूठे के पर्व को लगाने से 'आवाहिनी मुद्रा' होती है।
26. अधोमुखी होने पर यही 'स्थापनी मुद्रा' कही जाती है।
27. बंधी हुई मुट्ठियों में ऊपर उठे हुए अंगूठों वाले दोनों हाथों से 'सन्निधानी मुद्रा' होती है।
28. एक अंगूठा ऊपर उठाने से 'निष्ठुरा मुद्रा' होती है। ये तीनों ही अवगाहनादि मुद्राएँ हैं।

29. एक दूसरे से गुथी हुई अंगुलियों में कनिष्ठिका और अनामिका में मध्यमा और तर्जनी के फैलाने से और तर्जनी द्वारा वामहस्त तल चालन से त्रासनी (डरावनी) मुद्रा 'पूज्य मुद्रा' होती है।
30. अंगूठे और तर्जनी को मिलाकर शेष अंगुलियों को फैलाने से 'पाश मुद्रा' होती है।
31. अपने हाथ की ऊपरी अंगुली को बाएं हाथ के मूल में तथा उसी अंगूठे को तिरछाकर तर्जनी चलाने से 'ध्वज मुद्रा' होती है।
32. दाहिने हाथ को सीधा तानकर अंगुलियों को नीचे की ओर फैलाने से 'वर मुद्रा' होती है।
33. बाएं हाथ से मुट्ठी बांधकर कनिष्ठिका को फैलाकर शेष अंगुलियों को अंगूठे से दबाने से 'शंख मुद्रा' होती है।
34. एक दूसरे की ओर किए गये हाथों से वेणीबंध करके मध्यमा अंगुलियों को फैलाकर एवं मिलाकर शेष अंगुलियों से मुट्ठी बांधने पर 'शक्ति मुद्रा' होती है।
35. दोनों हाथ की तर्जनी और अंगूठे से घुमाव (कड़ी) बनाकर परस्पर एक दूसरे के अन्दर प्रवेश कराने से 'श्रृंखला मुद्रा' होती है।
36. सिर के ऊपर दोनों हाथों से शिखराकार कली बनाई जाती है उसी को 'मन्दरमेरु मुद्रा' (पंचमेरु मुद्रा) कहते हैं।
37. बाएं हाथ की मुट्ठी के ऊपर दाहिने हाथ की मुट्ठी रखकर शरीर के साथ कुछ ऊपर उठाने से 'गदा मुद्रा' होती है।
38. बाएं हाथ की अंगुलियों को नीचे की ओर घंटाकार फैलाकर दाहिने हाथ से मुट्ठी बांधकर, तर्जनी को ऊपर करके बाएं हाथ के नीचे लगाकर घंटे (को बजाने के) के समान चलाने से 'घण्टा मुद्रा' होती है।
39. ऊपर उठे हुए पृष्ठ भाग वाले हाथों को जोड़कर दोनों कनिष्ठिकाओं को बाहर करके जोड़ने से 'परशु मुद्रा' होती हैं।
40. हाथों को उठाकर उसकी अंगुलियों को कमल के समान फैलाने से 'वृक्षमुद्रा' होती है।
41. दाहिने हाथ की मिली हुई अंगुलियों को ऊपर उठाकर सर्प फण समान कुछ मोड़ने से 'सर्प मुद्रा' होती है।

42. दाहिने हाथ से मुट्ठी बांधकर तर्जनी और मध्यमा को फैलाने से 'खड्ग मुद्रा' होती है।
43. हाथों में संपुट करके कमल के समान अंगुलियों को पद्म (कमल) के समान फैलाकर दोनों मध्यमा अंगुलियों को परस्पर मिलाकर उनके मूल में दोनों अंगूठे लगाने से 'ज्वलन मुद्रा' होती है।
44. मुट्ठी बांधे हुए दाहिने हाथ के मध्यमा, अंगुष्ठ और तर्जनी अंगुलियों को उनके मूल के क्रम से फैलाने से 'दण्ड मुद्रा' होती है।

पंच परमेष्ठी मुद्राएँ

यौगिक साधना में मुद्रा तन्त्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भावाभिव्यक्ति के लिए मुद्रा के समकक्ष किसी अन्य प्रयोग की तुलना नहीं की जा सकती है। मुद्राओं के द्वारा अन्तर्भावों को सहज रूप से व्यक्त किया जा सकता है। मुद्राएँ भावों का प्रतिबिम्ब हैं। जैसे भाव होते हैं वैसी ही मुद्रा बन जाती है। जैसी मुद्रा बनाते हैं वैसे ही भाव प्रकट होने लगते हैं।

सकारात्मक मुद्राओं के अभ्यास से सकारात्मक भावों का निर्माण होता है और निषेधात्मक मुद्राओं के प्रयोग से नेगेटिव भावनाओं का जन्म होता है।

पंच परमेष्ठी मुद्राएँ समग्र रूप से विधायक भावों का पोषण करती हैं। हर एक व्यक्ति में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि बनने की शक्ति समाहित है। इन मुद्राओं के माध्यम से तद्रूप शक्ति का जागरण होता है। जो व्यक्ति अपने जीवन में स्वयं की सम्प्रभुता को पाना चाहता है उसे नमस्कार मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए।

प्रेक्षाध्यान यौगिक क्रिया (पृ. 58) में मुनिवर्य्य श्री किशनलालजी ने नमस्कार मन्त्र की निम्न पाँच मुद्राओं का उल्लेख किया है जो किंचित विस्तार से निम्न प्रकार है–

1. अर्हं मुद्रा 2. सिद्ध मुद्रा 3. आचार्य मुद्रा 4. उपाध्याय मुद्रा 5. मुनि मुद्रा

निर्देश

1. इन पाँचों मुद्राओं के लिए पद्मासन, वज्रासन एवं सुखासन श्रेष्ठ माने गये हैं। इनमें से किसी एक आसन का चयन करें, अभ्यास के वक्त उसी आसन का प्रयोग हो।

2. उक्त मुद्राओं को खड़े या बैठे उभय स्थितियों में कर सकते हैं।
3. नमस्कार मुद्राएँ करते समय शरीर स्थिर, सीधा एवं तनाव मुक्त रहे।
4. इन मुद्राओं को शुरू करने के वक्त दोनों हाथों को जोड़कर हृदय (आनन्द केन्द्र) के समीप रखें। मुद्रा की समाप्ति में श्वास छोड़ते वक्त एकाग्र चित्त से **ॐ मन्त्र, पंचपरमेष्ठि मंत्र** या **इच्छित मंत्र** का लयबद्ध गुंजन के साथ उच्चारण करें।
5. प्रस्तुत मुद्राओं के लिए तीनों संध्याएँ उपयुक्त हैं।
6. नमस्कार मुद्राओं का अभ्यास इच्छानुसार कितनी भी बार किया जा सकता है।

अर्हं मुद्रा

अर्हं शब्द अर्हता, चरम योग्यता, वीतरागता का बोधक है। चेतना का मूल स्वभाव वीतरागमय भावों में विहरण करना है। इस मुद्रा का ध्येय वीतरागता का साक्षात्कार है।

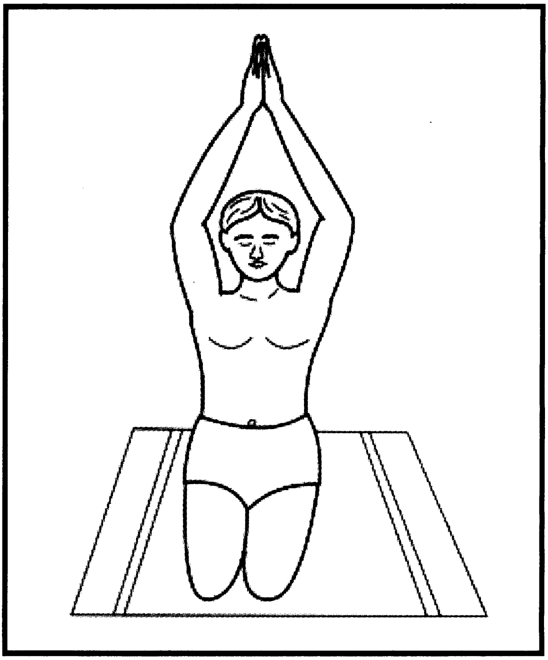

अर्हं मुद्रा

अर्हं मुद्रा में जिस तरह की आकृति बनाई जाती है उससे शरीर के द्वारा भी इस प्रकार के संवेदन महसूस किये जाते हैं कि व्यक्ति अन्तर्मुखी हुये बिना रह नहीं सकता।

ॐ ह्रीँ णमो अरिहंताणं

विधि

पूर्वनिर्दिष्ट नियम के अनुसार शरीर को स्थिर करें। फिर हृदय के मध्य दोनों हाथ मिलाकर नमस्कार की स्थिति में आएँ।

फिर 'ॐ ह्रीँ नमो अरिहंताणं' इस मन्त्र पद का तीन बार उच्चारण करें।

तदनन्तर श्वास को भरते हुए नमस्कार मुद्रा की स्थिति में ही दोनों हाथों को कान का स्पर्श हो सके इतना ऊँचा उठायें। फिर उस स्थिति में थोड़ी देर श्वास रोकें। पश्चात धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए नमस्कार मुद्रा में ही हाथों को आनन्द केन्द्र पर ले आना अर्हँ मुद्रा है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा में अंगुलियाँ, हथेलियाँ, मणिबंध, कुहनी और स्कन्ध पर हल्का सा दबाव पड़ने के कारण वे स्वस्थ और शक्तिशाली बनते हैं। इससे पेट, सीना, पसलियाँ और मेरूदण्ड पर खिंचाव होने के कारण ये अंग भी सशक्त और सक्रिय होते हैं।
- शरीर तन्त्र की सक्रियता से जड़ता और आलस्य दूर होकर नई स्फूर्ति का अनुभव होता है।
- एड्रीनल और थाइमस ग्रन्थियों के स्राव परिवर्तित हो संतुलन की स्थिति में आ जाते हैं। पूरे शरीर में सूक्ष्म प्रकंपन होने से विजातीय द्रव्यों का विसर्जन होता है।
- मानसिक दृष्टि से चित्त का सन्तुलन होता है और अनावश्यक विकल्प दूर होते हैं।
- अध्यात्म दृष्टि से अर्हत भाव जागृत होता है। जैन दृष्टि से हर आत्मा में अनेक अर्हताएँ (आत्मिक योग्यताएँ) है किन्तु संसार दशा में प्रायः सुप्त रहती है। इसलिए व्यक्ति सब कुछ जानकर भी बेहोशी में जीता है, मूर्च्छा में डूबा रहता है। अर्हं मुद्रा से मूर्च्छा टूटती है और वीतरागता प्रकट होती है।

जहाँ व्यक्ति का लक्ष्य वीतरागमय हो, वहाँ वह अनुकूल-प्रतिकूल, सुख-

दुःख, लाभ-हानि के प्रभावों से मुक्त हो जाता है। इस मुद्रा के स्मरण मात्र से अनन्त शक्तियों का आविर्भाव होता है।

विशेष– • अर्हं मुद्रा का प्रयोग करने से अनाहत, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र नियंत्रित एवं सक्रिय रहते हैं। यह मुद्रा साधक के आन्तरिक दिव्य ज्ञान चक्षुओं को जागृत करती है, दूसरों के मनोभावों को समझने एवं विचार संप्रेषण में सहायक बनती है। इससे शारीरिक और मानसिक प्रगति एवं वैचारिक स्थिरता में वृद्धि होती है।

• यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए छाती, फेफड़ा, हृदय, श्वास, मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों के निवारण में विशेष उपयोगी है। यह स्मरण शक्ति का वर्धन करती है तथा श्वसन एवं मल-मूत्र की गति में सहायक बनती है।

• थायमस, पीयूष एवं पीनियल ग्रन्थि के स्राव को नियमित करते हुए यह मुद्रा बालकों के शारीरिक, बौद्धिक एवं जननेन्द्रियों के विकास को संतुलित रखती है। इससे साधक तनावमुक्त, प्रसन्न एवं क्रियाशील रहता है।

सिद्ध मुद्रा

सिध् धातु + क्त प्रत्यय से निर्मित सिद्ध शब्द संस्कृत के भूतकालिक कृदन्त का रूप है। जिसका सामान्य अर्थ है– सम्पन्न, कार्यान्वित, अनुष्ठित, पूर्ण। दूसरा अर्थ अलौकिक शक्ति से युक्त ऐसा भी किया गया है।

जैन परम्परानुसार जो आत्माएँ अष्ट कर्मों से मुक्त हो जाती है वे सिद्ध कहलाती हैं। सिद्ध आत्माओं का न जन्म होता है और न ही मरण होता है। वे सदाकाल आत्मधर्म में एवं अनन्त ज्ञानादि गुणों में सुख मग्न रहती हैं। सिद्धों का स्थान लोक के अग्रभाग पर माना गया है। इस मुद्रा से सिद्ध अवस्था की प्राप्ति हेतु मनोभूमिका तैयार होती है, व्यक्ति उस लक्ष्य की ओर अग्रसर बनता है फिर जहाँ गति वहाँ प्रगति, जहाँ प्रगति वहाँ पूर्णता निश्चित है।

ॐ ह्रीँ णमो सिद्धाणं

विधि

- शरीर को सुखासन अथवा अन्य आसन में स्थिर करें।
- फिर दोनों हाथ जोड़कर उन्हें हृदय के मध्य स्थिर करें।

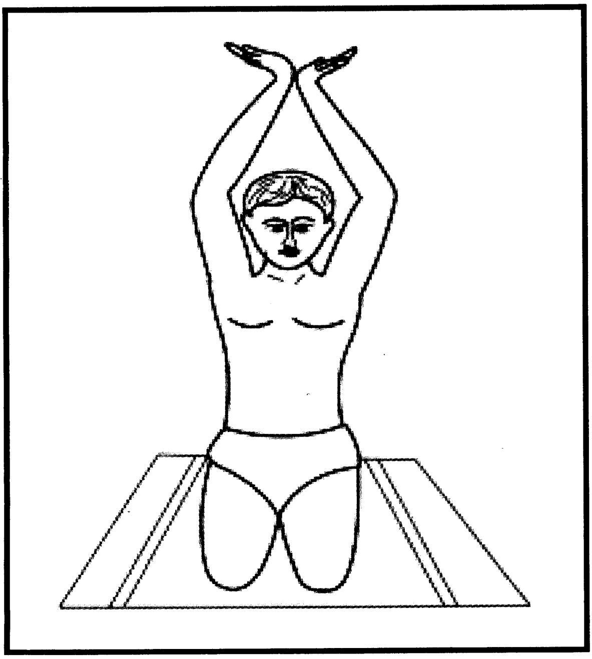

सिद्ध मुद्रा

- फिर 'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं' इस पद का तीन बार उच्चारण करें।
- फिर श्वास को भरते हुए नमस्कार मुद्रा की स्थिति में ही हाथों को सीधा ऊपर की ओर ले जाएँ।
- ऊपरी भाग में दोनों हथेलियों को इस तरह खोलें कि सिद्धशिला का आकार बन जायें। (इस समय बाँहें कानों का स्पर्श करते हुए, हाथ सीधे एवं दोनों मणिबंध एक दूसरे से संयुक्त रहे)।
- सिद्धशिला की मुद्रा में कुछ सैकण्ड के लिए श्वास को रोक कर रखें।
- फिर शनैः शनैः श्वास छोड़ते हुए हथेलियों को बन्द करें और हाथों को सीने के मध्य आनन्द केन्द्र पर ले आना सिद्ध मुद्रा है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से अर्हं मुद्रा के सभी लाभ इसमें होते हैं। इसके साथ-

साथ हथेलियों के खुलने से हथेलियों, हाथ एवं मणिबंध की मांसपेशियों पर विशेष दबाव पड़ता है। इससे उस भाग की मांसपेशियाँ पुष्ट और लचीली होती है।

- मानसिक स्तर पर इसमें दृष्टि सुस्थिर रहती है। जिसके कारण एकाग्रता, बौद्धिक क्षमता, दीर्घदर्शिता, हिताहित का विवेक जैसे गुण विकसित होते हैं।
- आध्यात्मिक दृष्टि से खुली हुई दोनों हथेलियों के प्रतीकात्मक रूप में सिद्ध गति के द्वार खुलते हैं।

भौतिक स्तर पर कई तरह की आत्मिक सिद्धियाँ भी प्राप्त हो सकती है। सिद्ध सर्व बन्धनों से रहित स्वतन्त्र (आत्माधिष्ठित) होते हैं। इसलिए इस मुद्रा के अभ्यास से स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण एवं सह अस्तित्व का बोध होता है।

- अप्रमाद केन्द्र (कान एवं समीपवर्ती भाग) प्रभावित होने से आलस्य, तन्द्रा, निष्क्रियता, सुस्तापन दूर होता है और जागरूकता बढ़ती है।

विशेष– इस मुद्रा की साधना स्वाधिष्ठान, सहस्रार एवं मूलाधार चक्र को जागृत करती है। इससे कामेच्छाओं पर नियंत्रण होता है। साधक को निर्विकल्प स्थिति एवं असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है। व्यक्ति उदार, कर्मशील एवं प्रभावशाली बनता है।

- यह मुद्रा जल, आकाश एवं पृथ्वी तत्त्व को नियंत्रित रखती है। यह शरीर में स्थित विषद्रव्यों को हटाकर शरीर को स्वस्थ एवं तंदुरूस्त बनाती है। इससे अस्थि तंत्र मजबूत बनता है।
- स्वास्थ्य, ज्ञान एवं शक्ति केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण करती है तथा अतीन्द्रिय शक्तियों को जागृत करती है।

आचार्य मुद्रा

जैन परम्परा में नवकार मन्त्र को महामन्त्र कहते हैं। इस महामन्त्र का शक्ति सम्पन्न शब्द है आचार्य। आचार्य शब्द का निर्माण आ उपसर्ग + चर धातु + ष्यत् प्रत्यय से हुआ है। आचार्य के अनेक अर्थ हैं वे समानार्थक ही प्रतीत होते हैं जैसे– अध्यापक, गुरु, आध्यात्मिक गुरु, विशिष्ट सिद्धान्त का प्रस्तोता आदि।

जैन ग्रन्थों में आचार्य को इन अर्थों से बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। वे

अध्यापन कार्य या गुरुत्व पद मात्र का निर्वहन करते हों ऐसा नहीं है अपितु साक्षात तीर्थंकर के अभाव में अरिहन्त के प्रतिनिधि होते हैं। वस्तुतः आचार्य का जीवन साधकों के आचार-विचार को तोलने का एक थर्मामीटर होता है। आचरण की शुद्धता को मापने एवं उस दिशा में अग्रसर होने के लिए दिशा-सूचक का कार्य करता है। आचार्य शब्द में निहित 'चर' धातु आचरण के अर्थ में प्रयुक्त है। आचार्य मुद्रा वैचारिक एवं आचारिक सम्पन्नता की प्राप्ति के उद्देश्य से की जाती है।

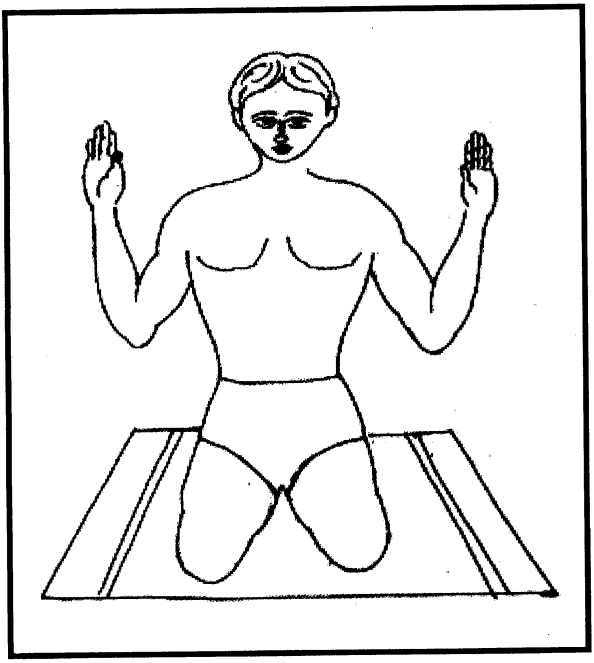

आचार्य मुद्रा

ॐ ह्रीँ णमो आयरियाणं

विधि

पूर्व स्थिति के अनुसार हृदय के मध्य भाग पर दोनों हाथों को नमस्कार मुद्रा में रखें।

- तत्पश्चात आचार्य मन्त्र का तीन बार उच्चारण करें।
- फिर श्वास भरते हुए दोनों हथेलियों को खोले और धीरे-धीरे कन्धे के

पास लाएँ। अंगूठों को कन्धे से स्पर्शित करते हुए हथेलियों को सीधा एवं खुला रहने दें।

- फिर इस मुद्रा में यथासम्भव श्वास को रोककर रखें।
- पश्चात धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए हाथों को पूर्वस्थिति में ले आना आचार्य मुद्रा है।

सुपरिणाम

- शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा में हथेलियाँ, अंगुलियाँ और हाथ की मांसपेशियाँ क्रियाशील होती है।
- इस मुद्रा के दरम्यान कंधे, छाती, पृष्ठ भाग एवं श्वसन तंत्र पर दबाव पड़ने से ये संतुलित और सक्रिय बनते हैं।
- मानसिक स्तर पर आचार्य मुद्रा में देहजन्य समस्त चंचल प्रवृत्तियों का निरोध हो जाता है उससे मन की हलचल भी समाप्त होने लगती है। एक आसन में स्थिर रहने से मनोचेतना भी नियन्त्रित रहती है।
- इस मुद्राभ्यास का आध्यात्मिक जगत पर भी प्रभावी असर होता है। जैसे कि मुद्रा के प्रारम्भ और समापन में हाथों को जोड़े हुए रखने से विनय और पूज्यभाव प्रकट होते हैं तथा खुले हुए हाथों के द्वारा समर्पण भाव का उदय होता है।

इस मुद्रा में दोनों हाथों की आकृति अभय मुद्रा की प्रतीक है। इससे शौर्य, ओज, वीरता, निर्भीकता, कर्मठता जैसे पुरुष प्रधान धर्म गुणों का आविर्भाव होता है। आचार्य में उक्त सभी गुण प्रधान रूप से रहे होते हैं।

आचार्य मुद्रा से शुद्धाचार की प्रवृत्ति का सूत्रपात होता है।

विशेष– • इस मुद्रा को धारण करने से अनाहत एवं आज्ञा चक्र सक्रिय होते हैं। ये साधक की विशिष्ट आन्तरिक शक्तियों को जागृत करते हैं। इससे त्रिकाल ज्ञान एवं विचार संप्रेषण में दक्षता प्राप्त होती है।

- वायु एवं आकाश तत्त्व के संतुलन में आचार्य मुद्रा विशेष उपयोगी है। यह शरीर के संरक्षण एवं सहकारी बल उत्पन्न करने में भी सहायक बनती है।
- थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा साधक के प्रजनन अंगों को उत्तेजित होने एवं काम वासना को जागृत होने से रोकती है। चिड़ चिड़ापन, अहंभाव, क्रोध, दूराचार, मानसिक असंतुलन आदि

को नियंत्रित रखती है। बालकों के विकास एवं संरक्षण में विशेष सहयोग करती है।

उपाध्याय मुद्रा

संस्कृत व्युत्पत्ति के अनुसार **'उपेत्याधीयते अस्मात् इति उपाध्यायः'** जिसके समीप अध्ययन किया जाता है उसे उपाध्याय कहते हैं।

उपाध्याय हुई उप + अधि + इ +घञ् के योग से हुई है। इसमें 'उप्' उपसर्ग समीपार्थक व 'अधि' धातु अध्ययनार्थक है।

जैन ग्रन्थों में उपाध्याय को अध्ययन-अध्यापन का अधिष्ठाता माना गया है। पच्चीस गुणों से युक्त उपाध्याय पठन-पाठन में ही डूबे रहते हैं।

अध्ययन-अध्यापन की नियमित प्रवृत्ति से पूर्वोपार्जित ज्ञान ठोस बनता है, नयी-नयी जानकारियाँ प्राप्त होती है और आगामी काल के लिए ज्ञान मार्ग का द्वार खुला रहता है। इस मुद्रा का उपयोग सम्यकज्ञान के विकास में सहायक हैं।

ॐ ह्रीँ णमो उवज्झायाणं

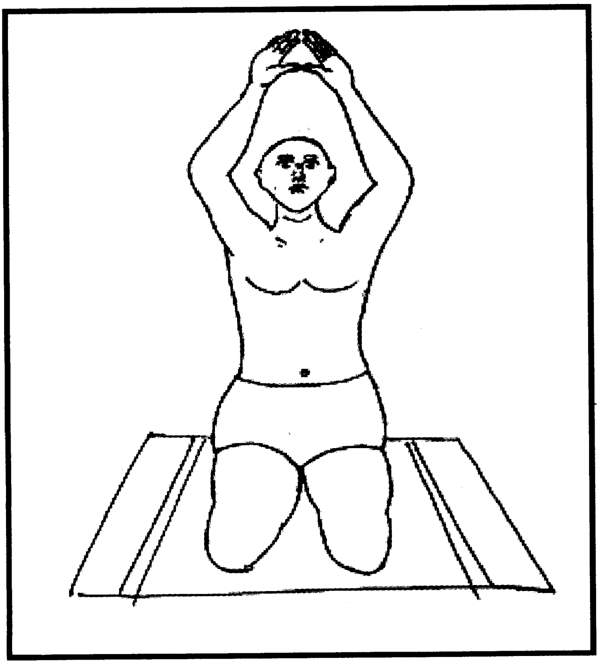

उपाध्याय मुद्रा

विधि

पूर्व नियम के अनुसार सर्वप्रथम सुखासन या अन्य आसन में स्थिर हो जायें। फिर पूर्ववत दोनों हाथों को नमस्कार मुद्रा में करके सीने के मध्य भाग पर लायें।

- फिर उपाध्याय मन्त्र का तीन बार उच्चारण करें।
- फिर श्वास को भरते हुए दोनों हथेलियों को धीरे-धीरे आकाश की ओर ले जाएँ, बाँहों को कानों से स्पर्श करें, हथेलियों को आकाश की ओर खोल दें, द्वयांगुष्ठों के अग्रभाग और दोनों तर्जनी के अग्रभाग परस्पर में मिले रहें।
- फिर श्वास रोके हुए की स्थिति में सिर को गर्दन के पीछे की तरफ ले जायें और अपलक दृष्टि से आसमान की ओर देखें।
- तदनन्तर धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए हाथों को पूर्वस्थिति में ले आयें। यह उपाध्याय मुद्रा कहलाती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से इस मुद्रा में गर्दन की तकलीफें समाप्त होती है।
- चक्षुयुगल पर दबाव पड़ने से आँखों की रोशनी बढ़ती है और दृष्टि तीक्ष्ण बनती है।
- थायरॉइड पेराथायरॉइड, पिच्युटचरी, पीनियल और थायमस ग्रन्थियों के स्राव संतुलित होते हैं।
- मानसिक दृष्टि से चित्त की एकाग्रता बढ़ती है, बुद्धि की जड़ता दूर होती है और मन नियन्त्रित रहता है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से विद्या ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि होती है।

पीछे झुकती हुई गर्दन विशालता एवं शौर्यत्व की प्रतीक हैं। इससे हृदय की विशालता बढ़ती है और ज्ञानदान की प्रवृत्ति मन: शक्ति पूर्वक होती है।

इन मुद्रा के अभ्यास से स्वाध्याय के प्रति रुचि बढ़ती है।

सम्यक्ज्ञान और सम्यक्दर्शन मुक्ति के चरम हेतु हैं। उपाध्याय ज्ञान और दृष्टि के आराधक होते हैं। इस मुद्रा में ज्ञान ग्रन्थियों पर दबाव पड़ता है जिससे ज्ञान-दर्शन के द्वार सहज खुल जाते हैं।

शुभ भावधारा बहने से विकारी एवं विजातीय द्रव्यों का विसर्जन होता है।

विशेष– • उपाध्याय मुद्रा की साधना से मूलाधार, विशुद्धि एवं आज्ञा

चक्र संतुलित एवं सक्रिय रहते हैं। यह शारीरिक स्तर पर रक्त विकार, काम विकार, त्वचा विकार, नेत्र विकार, मूत्र प्रदेश के विकारों को दूर करती है। इससे एकाग्रता विकसित होती है और अन्तर चक्षुओं का उद्घाटन होता है।

- यह मुद्रा पृथ्वी, वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित रखते हुए हृदय की शुद्धि करती है, मानसिक चेताओं का पोषण करती है और शरीर को स्वस्थ एवं तंदरूस्त रखती है।
- यह आनन्द, ज्ञान एवं तैजस केन्द्र को नियमित करते हुए भावधारा को निर्मल एवं परिष्कृत करती है और काम वासनाओं का परिशोधन करती है।

मुनि मुद्रा

समस्त धर्मों में मान्य 'मुनि' शब्द मौन का वाचक है। मौन रखने वाला मुनि कहलाता है। संस्कृत परिभाषा के अनुसार **"उच्चै मनुते जानाति यः मुनि"** अर्थात जो उत्तम विचारों के द्वारा आत्मा को जानता है वह मुनि कहलाता है। मुनि शब्द मन् धातु + इन् प्रत्यय के योग से बना है। यहाँ मन् धातु मनन, चिन्तन के अर्थ में हैं। ऋषि, महात्मा, सन्त, संन्यासी, निर्ग्रन्थ यह सब मुनि के पर्यायवाची हैं।

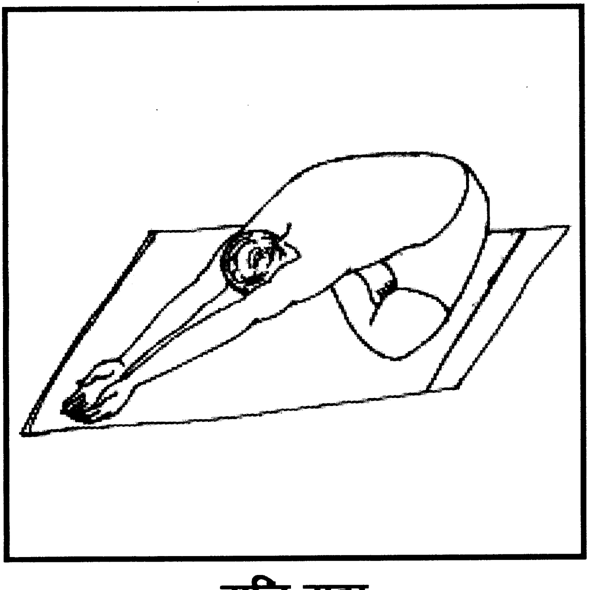

मुनि मुद्रा

मुनि को साधु, श्रमण, भिक्षु, संयमी, व्रती भी कहते हैं। अर्थ की अपेक्षा उपर्युक्त शब्द स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। सामान्यत: मुनि समता, सहिष्णुता, सौम्यता, सहृदयता, सरलता, सहजता के धनी होते हैं। वे कष्टों में घबराते नहीं, सुखों में इतराते नहीं, कर्मशत्रुओं से लड़ने में कतराते नहीं। प्रत्युत सदा आत्म साधना के प्रति समर्पित रहते हैं।

मुनि मुद्रा के अभ्यास से मैत्री, प्रमोद, करूणा, माध्यस्थादि भाव उत्पन्न होते हैं, जिससे स्व साधना का स्तर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता है।

ॐ ह्रीँ णमो लोएसव्वसाहूणं

विधि

पूर्ववत सुखासन में स्थिर हो जायें। दोनों हाथों को नमस्कार मुद्रा में करके आनन्द केन्द्र पर लाएँ।

- फिर साधु के मन्त्र पद का तीन बार उच्चारण करें।
- तदनन्तर श्वास भरते हुए हाथों को कान से स्पर्श करते हुए आकाश की ओर ले जाएँ, हाथों को जोड़े रखें।
- इस मुद्रा में कुछ मिनट श्वास को रोककर रखें। फिर श्वास छोड़ते हुए हाथों की अंजलि मुद्रा बनाएँ।
- फिर सिर झुकाते हुए अंजलि मुद्रित हाथों को भूमि से स्पर्शित करते हुए रखें और उस स्थिति में कुछ देर के लिए श्वास को रोक लें।
- तत्पश्चात श्वास छोड़ते हुए हाथों को पूर्वस्थिति में ले आना मुनि मुद्रा है।

सुपरिणाम

- शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से थाइमस ग्रन्थि के स्राव सन्तुलित होते हैं, जिसके फलस्वरूप मैत्री और करुणा के भाव विकसित होते हैं, कलह-द्वेष या ईर्ष्याजनित अनेक रोगों से बचते हैं तथा मानसिक रोगों से मुक्ति मिलती है।
- अध्यात्म के स्तर पर इस मुद्रा से समता और सहिष्णुता के भावों में वृद्धि होती है तथा प्राणी मात्र के प्रति मैत्री-प्रमोद-करुणा आदि के भाव उमड़ते हैं।

इसमें झुका हुआ मस्तक विनय मुद्रा का प्रतीक है उससे अहंकार का विलय एवं ऋजुता-मृदुता का पोषण होता है।

विशेष– • यह मुद्रा अनाहत, सहस्रार एवं मणिपुर चक्र को जागृत करते

हुए रक्त विकार, हृदय विकार, मानसिक विकार, श्वास आदि में लाभ करती है।

- साधु मुद्रा की साधना से वायु, आकाश एवं अग्नि तत्त्व संतुलित रहते हैं। पित्त एवं वात प्रकृति पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह बेहोशी, मस्तिष्क सम्बन्धी अव्यवस्था, आखों की कमजोरी, एसीडिटि आदि के निवारण में मदद करती है।

- थायमस, पीनियल, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर की व्यवस्था एवं गतिविधियों में सहायक बनती है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करती है।

हमारी आंतरिक शारीरिक संरचना अति सूक्ष्म है। एक छोटा सा बदलाव इसकी पूरी प्रक्रिया को ठप कर देता है। अतः। इनका संतुलन एवं समीकरण बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। जैन विधि-विधानों का मुख्य लक्ष्य समभाव की प्राप्ति है। समभाव या समाधि में स्थिरता तभी रहती है जब भावनात्मक सात्विकता के साथ दैहिक स्वस्थता एवं मानसिक निर्विकल्पता हो। विधि अनुष्ठानों में मुद्रा, आसन आदि यौगिक साधनाओं का प्रयोग इसी लक्ष्य से किया जाता है। इस अध्याय में वर्णित मुद्राओं का स्वरूप वर्णन जैन दर्शन के सूक्ष्म विषयों का ज्ञान तो करवाना ही है साथ ही आत्मस्वरूप की अनुभूति एवं प्राप्ति करवाता है।

●

अध्याय-5

उपसंहार

भौतिक एवं आध्यात्मिक चिकित्सा में उपयोगी मुद्राएँ

प्राणिक हीलिंग विशेषज्ञ के.के. जायसवाल एवं एक्युप्रेशर चिकित्सज्ञ शरद कुमार जायसवाल, वाराणसी के अनुसार कौनसा रोग किस मुद्रा से ठीक हो सकता है? इससे सम्बन्धित जैन मुद्राओं का एक चार्ट प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देना जरूरी है कि रोगों से छुटकारा पाने हेतु जिन मुद्राओं का सूचन कर रहे हैं वे मुद्राएँ उन रोगों की चिकित्सा में मुख्य रूप से सहयोगी हैं किन्तु सभी मनुष्यों की शारीरिक एवं मानसिक प्रकृति भिन्न-भिन्न होने से कई बार अन्य मुद्राओं का प्रयोग करना भी आवश्यक हो जाता है अत: मुद्रा विशेषज्ञों से पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के बाद ही निर्दिष्ट मुद्राओं से उपचार करना चाहिए।

- किसी भी मुद्रा को निरन्तर कुछ दिनों तक करने पर उसका प्रभाव पड़ता है।
- मुद्रा का प्रयोग सही समझ एवं विश्वास पूर्वक करना अनिवार्य है।
- पूजा उपासना या विशिष्ट साधना के दौरान यदि सम्यक विधि से मुद्रा का प्रयोग किया जाए तो भावधारा निर्मल होने से वे शीघ्र लाभदायी होती हैं।

शारीरिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

अस्थमा : हृदय मुद्रा, संहार मुद्रा-2, सौभाग्य मुद्रा।

अनिद्रा : महा मुद्रा, ध्वज मुद्रा, शूल मुद्रा-1, पाश मुद्रा, खड़ग मुद्रा, माला मुद्रा, ज्ञान कल्पलता मुद्रा।

आफरा : वज्र मुद्रा, चक्र मुद्रा, संहार मुद्रा, जिन मुद्रा, कल्पवृक्ष मुद्रा, ह्रींकार मुद्रा।

आलस्य : संहार मुद्रा-1, यथाजात मुद्रा, छत्र मुद्रा, कुन्त मुद्रा, शाल्मकी मुद्रा।

आँखों के रोग– शूल मुद्रा-1, संहार मुद्रा, गदा मुद्रा, दक्षिणावर्त्त शंख मुद्रा, सिंह मुद्रा, चतुष्कपद मुद्रा, सिंहासन मुद्रा।

आंतों के रोग (अल्सर, आँतों में सूजन, आँतों में रूकावट, नाभि खिसकना, आँतों में गांठ, (Tumour) हर्निया, एपेन्डिक्स, टाइफाइड, दस्त, कब्ज आदि)– गदा मुद्रा

अण्डाशय – तोरण मुद्रा, पद्मकोश मुद्रा, प्रार्थना मुद्रा, प्रियंकरी मुद्रा, कुन्त मुद्रा, पाशक मुद्रा।

अपच : कुम्भ मुद्रा, नकार मुद्रा, मकार मुद्रा, दक्षिणावर्त्त मुद्रा, त्रिद्वार जिनालय मुद्रा, कल्याण मुद्रा, ज्वलन मुद्रा।

अपस्मार मिरगी (Epilepsy fits) : आरात्रिक मुद्रा, हृदय मुद्रा, महानागपाश मुद्रा, पुंस मुद्रा, अक्ष मुद्रा, अपरपाश मुद्रा।

अकड़न (कपकपी (Conveilsion) : अवगुण्ठन मुद्रा, श्रृंखला मुद्रा, छत्र मुद्रा, गरुड़ मुद्रा, अपर अंकुश मुद्रा, पाशक मुद्रा।

अस्थितंत्र सम्बन्धी रोग (आर्थ्राराइटिस, जोड़ों में दर्द, रियुमेटिज्म)– कुम्भ मुद्रा, क्षुर मुद्रा, सरा मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, अपर अंकुश मुद्रा, योनि मुद्रा, त्रिनेत्र मुद्रा।

उल्टी : गणधर मुद्रा, नाराच मुद्रा, घृतभृत मुद्रा, अपरपाश मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, परमेष्ठी मुद्रा, तर्जनी मुद्रा।

उच्च रक्तचाप (B.P.) : क्षुर मुद्रा, कच्छप मुद्रा, सिंह मुद्रा, प्रायश्चित्त मुद्रा, ज्वलन मुद्रा।

एसिडिटी : त्रिशिखा मुद्रा, योगिनी मुद्रा, वरद मुद्रा, मंगल मुद्रा, पर्वत मुद्रा, श्रीमणि मुद्रा।

एलर्जी : हृदय मुद्रा, संहार मुद्रा-2, क्षेत्रपाल मुद्रा, अभय मुद्रा, बिम्ब मुद्रा, आसन मुद्रा, नमस्कृति मुद्रा।

एपेन्डिक्स : श्रीमणि मुद्रा, शूल मुद्रा-1, संहार मुद्रा, मंगल मुद्रा, पर्वत मुद्रा, वरद मुद्रा, योगिनी मुद्रा, त्रिशिखा मुद्रा।

कब्ज (Constipation) : छत्र मुद्रा, बिन्दु मुद्रा, प्रवचन मुद्रा, अंजलि मुद्रा, श्रृंखला मुद्रा, नाद मुद्रा, छत्र मुद्रा, शक्ति मुद्रा।

कमजोरी : डमरूक मुद्रा, अंग मुद्रा, बिन्दु मुद्रा, श्रृंगार मुद्रा, पार्श्व मुद्रा, कुम्भ मुद्रा, वापी मुद्रा, प्रवहण मुद्रा, परमेष्ठी मुद्रा।

कफ : स्थापनी मुद्रा, नाद मुद्रा, कुन्त मुद्रा, पाशक मुद्रा।

कोष्ठबद्धता : संहार मुद्रा, जिन मुद्रा, मुक्ताशुक्ति मुद्रा, नाद मुद्रा, अपर अंकुश मुद्रा, गरुड़ मुद्रा, ईश्वर मुद्रा, सिंहासन मुद्रा, सनाल कमल मुद्रा।

कुष्ठ रोग : मकार मुद्रा, सिंह मुद्रा, चतुष्कपट्ट मुद्रा, त्रिद्वार मुद्रा, कल्याण मुद्रा, तोरण मुद्रा, त्रिपुरस मुद्रा, पद्मकोश मुद्रा, अश्व मुद्रा, क्षुर मुद्रा।

कान की समस्याएँ (कानों में दर्द, बहरापन, कम सुनना, कान में पीड़ा आदि)– नाराच मुद्रा, वज्र मुद्रा, शूल मुद्रा-1, चक्र मुद्रा, डमरूक मुद्रा, अभय मुद्रा, योग मुद्रा, विस्मय मुद्रा, बिम्ब मुद्रा।

कैन्सर : स्थापनी मुद्रा, अवगुण्ठन मुद्रा, शृंखला मुद्रा, गदा मुद्रा, अपर अंकुश मुद्रा, श्री वत्स मुद्रा, नाद मुद्रा, अपरपाश मुद्रा, गरूड़ मुद्रा, बिन्दु मुद्रा।

कोलेस्ट्रॉल बढ़ना : बिम्ब मुद्रा, आसन मुद्रा, महा मुद्रा, हृदय मुद्रा, महा मुद्रा, सौभाग्य मुद्रा, आरात्रिक मुद्रा, प्रार्थना मुद्रा, गणधर मुद्रा, वृक्ष मुद्रा, पताका मुद्रा।

कोमा : अस्त्र मुद्रा-2, मुक्तासुक्ति मुद्रा, परशु मुद्रा, यथाजात मुद्रा, डमरूक मुद्रा, योग मुद्रा, विस्मय मुद्रा, चतुरमुख मुद्रा, नेत्र मुद्रा, पार्श्वनाथ मुद्रा, महानाग पाश मुद्रा।

खाँसी : वृक्ष मुद्रा, श्रृंगार मुद्रा, परद मुद्रा, अंग मुद्रा, पर्वत मुद्रा, परशु मुद्रा-1, गरुड़ मुद्रा, ज्ञान कल्पलता मुद्रा, माला मुद्रा।

खुजली : आवाहनी मुद्रा, कमण्डलु मुद्रा, प्रार्थना मुद्रा, प्रियंकरी मुद्रा, वापी मुद्रा, परद मुद्रा, बिन्दु मुद्रा, वज्र मुद्रा, कच्छप मुद्रा, खड़ग मुद्रा, नेत्र मुद्रा।

गाउट (वात रोग) : गणधर मुद्रा, सामान्य जिनालय मुद्रा, सनाल कमल मुद्रा, नाराच मुद्रा, हृदय मुद्रा, महानाग पाश मुद्रा, तर्जनी मुद्रा, विनित मुद्रा, वृक्ष मुद्रा, प्रायश्चित्त विशोधनी मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा।

गेस्ट्रोएन्ट्राइटिस : हृदय मुद्रा, तर्जनी मुद्रा, आसन मुद्रा, बिम्ब मुद्रा, विनित मुद्रा, सामान्य पद्म मुद्रा, मकार मुद्रा, नागवेलिपत्र द्वय मुद्रा, शक्ति मुद्रा, महानागपाश मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, तर्जनी मुद्रा।

गर्भाशय सम्बन्धी समस्याएँ (प्रजनन समस्या, बांझपन, मासिक स्राव की अनियमितता, पेडु में दर्द, सूजन, गर्भाशय में गाँठ (Tumour) ल्युकोरिया, गर्भपात आदि)— संहार मुद्रा, अंग मुद्रा, डमरूक मुद्रा, शृंगार मुद्रा, दण्ड मुद्रा, आवाहनी मुद्रा, अवगुण्ठन मुद्रा, वज्र मुद्रा, नाद मुद्रा, कमण्डलु मुद्रा, प्रार्थना मुद्रा, प्रियंकरी मुद्रा, खड़ग मुद्रा, कुन्त मुद्रा।

गले की समस्याएँ (गले में दर्द,गला खराब होना, टॉन्सिल आदि)— शूल मुद्रा-2, जिन मुद्रा, नाराच मुद्रा, आवाहनी मुद्रा, प्रार्थना मुद्रा, शंख मुद्रा, मोक्ष कल्पलता मुद्रा-2, तोरण मुद्रा, त्रिनेत्र मुद्रा, नेत्र मुद्रा, वापी मुद्रा।

गठिया : शूल मुद्रा-2, जिन मुद्रा, नेत्र मुद्रा, त्रिनेत्र मुद्रा, चतुष्कपद मुद्रा, योनि मुद्रा, पद्मकोश मुद्रा, वापी मुद्रा, कुम्भ मुद्रा, अक्ष मुद्रा, परमेष्ठी मुद्रा, तर्जनी मुद्रा।

घुटनों की समस्या : अवगुण्ठन मुद्रा, शूल मुद्रा-2, नाद मुद्रा, स्थापनी मुद्रा, श्रृंखला मुद्रा, मुक्तासुक्ति मुद्रा गदा मुद्रा, वीर मुद्रा, छत्र मुद्रा, शक्ति मुद्रा, कुन्त मुद्रा।

घबराहट : अंग मुद्रा, पर्वत मुद्रा, क्षुर मुद्रा, गरुड़ मुद्रा, कुम्भ मुद्रा, अपर अंकुश मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, कुम्भ मुद्रा, योनि मुद्रा, कपाट मुद्रा, त्रिनेत्र मुद्रा।

चर्म रोग : स्थापनी मुद्रा, अवगुण्ठन मुद्रा, शृंखला मुद्रा, जिन मुद्रा, मुक्तासुक्ति मुद्रा, गदा मुद्रा, शक्ति मुद्रा, सिंहासन मुद्रा, सनाल कमल मुद्रा।

चक्कर आना : नागफण मुद्रा, प्रायश्चित्त विशोधनी मुद्रा, मोक्ष कल्पलता मुद्रा, मकार मुद्रा, सिंह मुद्रा, तोरण मुद्रा, त्रिपुरस मुद्रा, सिंहासन मुद्रा, अश्व मुद्रा।

छाती में दर्द : हृदय मुद्रा, संहार मुद्रा-2, महा मुद्रा, शंख मुद्रा, सौभाग्य मुद्रा, कमण्डलु मुद्रा, वृक्ष मुद्रा, सर्प मुद्रा।

जलोदर : प्रियंकरी मुद्रा, खड़ग मुद्रा, कुन्त मुद्रा, मोक्ष कल्पलता मुद्रा-2, वज्र मुद्रा, कपाट मुद्रा, चतुष्कपद मुद्रा, त्रिनेत्र मुद्रा, नेत्र मुद्रा, वापी मुद्रा, प्रवहण मुद्रा, अक्ष मुद्रा।

जबड़े में दर्द : कुम्भ मुद्रा, शर मुद्रा, अपर अंकुश मुद्रा, क्षुर मुद्रा, वापी मुद्रा, त्रिनेत्र मुद्रा, कपाट मुद्रा, योनि मुद्रा, चतुष्कपट्ट मुद्रा, सिंह मुद्रा,

धनु:संधान मुद्रा, वृक्ष मुद्रा, नागफण मुद्रा, माला मुद्रा, आवाहनी मुद्रा, जिन मुद्रा।

ठंड के साथ बुखार : शाल्मकी मुद्रा, प्रायश्चित्त विशोधनी मुद्रा, मोक्ष कल्पलता मुद्रा-2, कल्पवृक्ष मुद्रा, शक्ति मुद्रा।

टाइफाइड : छत्र मुद्रा, शक्ति मुद्रा, कुन्त मुद्रा, शाल्मकी मुद्रा, स्थापनी मुद्रा, श्रृंखला मुद्रा, जिन मुद्रा, मुक्ताशुक्ति मुद्रा, गदा मुद्रा, यथाजात मुद्रा, परशु मुद्रा, घण्टा मुद्रा, नकार मुद्रा, ईश्वर मुद्रा, कल्याण मुद्रा, सिंहासन मुद्रा, सनाल कमल मुद्रा।

टॉन्सिलाइटिस : परशु मुद्रा-1, आरात्रिक मुद्रा, धनु:संधान मुद्रा, वृक्ष मुद्रा, नागफण मुद्रा, माला मुद्रा, कल्याण मुद्रा, आवाहनी मुद्रा, शूल मुद्रा, जिन मुद्रा, परशु मुद्रा-1, ज्ञान कल्पलता मुद्रा, सिंह मुद्रा, योनि मुद्रा।

डायबीटिस : गणधर मुद्रा, कच्छप मुद्रा, धनु:संधान मुद्रा, सिंह मुद्रा, त्रिशिखा मुद्रा, योगिनी मुद्रा, वरद मुद्रा, मंगल मुद्रा, अंग मुद्रा, पर्वत मुद्रा, ज्वलन मुद्रा, श्रीमणि मुद्रा, नाराच मुद्रा, क्षुर मुद्रा, अपरपाश मुद्रा, श्री वत्स मुद्रा, परमेष्ठी मुद्रा, त्रिद्वार जिनालय मुद्रा, तोरण मुद्रा, त्रिपुरस मुद्रा, अश्व मुद्रा।

डायरिया (उल्टी-दस्त लगना) : वृक्ष मुद्रा, मुद्गर मुद्रा, प्रार्थना मुद्रा, कुम्भ मुद्रा, अवगुण्ठन मुद्रा, शंख मुद्रा, शूल मुद्रा-1, कपाट मुद्रा, जिन मुद्रा, मुक्तासुक्ति मुद्रा, मंगल मुद्रा, चक्र मुद्रा, वीर मुद्रा, परशु मुद्रा, कच्छप मुद्रा, सिंह मुद्रा, पाश मुद्रा, शाल्मकी मुद्रा, नागफण मुद्रा।

तुतलाना : वृक्ष मुद्रा, नाराच मुद्रा, आवाहनी मुद्रा, जिन मुद्रा, परशु मुद्रा-1, नागफण मुद्रा, माला मुद्रा, ज्ञान कल्पलता मुद्रा, सिंह मुद्रा, योनि मुद्रा, कपाट मुद्रा, त्रिनेत्र मुद्रा, गरुड़ मुद्रा, कुम्भ मुद्रा, क्षुर मुद्रा, अपर अंकुश मुद्रा।

थायरॉइड : आवाहनी मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, अपर अंकुश मुद्रा, गरुड़ मुद्रा, योनि मुद्रा, सिंह मुद्रा, दक्षिणावर्त्त शंख मुद्रा, नागफण मुद्रा, धनु:संधान मुद्रा, वृक्ष मुद्रा, जिन मुद्रा, परशु मुद्रा-1

दाद (Ring worms) : अस्त्र मुद्रा-2, कपाट मुद्रा, नाद मुद्रा, कमण्डलु मुद्रा, प्रार्थना मुद्रा, प्रियंकरी मुद्रा, शंख मुद्रा, कुन्त मुद्रा, चतुष्कपट्ट मुद्रा, पद्मकोश मुद्रा, नेत्र मुद्रा, वापी मुद्रा।

दुर्बलता : स्थापनी मुद्रा, श्रृंखला मुद्रा, शूल मुद्रा-2, जिन मुद्रा, मुक्तासुक्ति मुद्रा, नाद मुद्रा, गदा मुद्रा, यथाजात मुद्रा, वीर मुद्रा, परशु मुद्रा, छत्र मुद्रा, सिंह मुद्रा, कुन्त मुद्रा, शाल्मकी मुद्रा, घण्टा मुद्रा, दक्षिणावर्त्त शंख मुद्रा, कल्याण मुद्रा।

न्युमोनिया : मुद्‌गर मुद्रा, पर्वत मुद्रा, मंगल मुद्रा, वरद मुद्रा, त्रिशिखा मुद्रा, नाराच मुद्रा, घृतमृत कुंभ मुद्रा, अपरपाश मुद्रा, तर्जनी मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, संहार मुद्रा, अवगुण्ठन मुद्रा।

नपुंसकता : नाद मुद्रा, चतुष्कपट्ट मुद्रा, योनि मुद्रा, तोरण मुद्रा, त्रिनेत्र मुद्रा, नेत्र मुद्रा, डमरुक मुद्रा, बिन्दु मुद्रा, श्रृंगार मुद्रा, अस्त्र मुद्रा-2, वज्र मुद्रा, कपाट मुद्रा, कमण्डलु मुद्रा।

पित्ताशय सम्बन्धी समस्या (पथरी, पित्ताशय क्षेत्र में दर्द, पित्ताशय की नली में गाँठ (Billary Tumour), पीलिया आदि)– मंगल मुद्रा।

पाचन समस्या : शूल मुद्रा, मंगल मुद्रा, चक्र मुद्रा, योगिनी मुद्रा, त्रिद्वार जिनालय मुद्रा।

पार्किन्सन्स रोग : नकार मुद्रा, दक्षिणावर्त्त शंख मुद्रा, त्रिद्वार जिनालय मुद्रा, अमृत संजीवनी मुद्रा, त्रिपुर मुद्रा, सामान्य पद्म मुद्रा, वापी मुद्रा, नाद मुद्रा।

फेफड़ों की समस्या (अस्थमा, न्युमोनिया, फेफड़ों में फोड़ा या पस (Abscess) फेफड़ों में T.B.) – सर्प मुद्रा, विनित मुद्रा, आरात्रिक मुद्रा, गणधर मुद्रा, वृक्ष मुद्रा, प्रायश्चित्त विशोधनी मुद्रा, हृदय मुद्रा, शंख मुद्रा, सौभाग्य मुद्रा, सर्प मुद्रा।

फोड़े-फुन्सी : श्रृंखला मुद्रा, वज्र मुद्रा, चक्र मुद्रा, छत्र मुद्रा, सिंह मुद्रा, शक्ति मुद्रा, घण्टा मुद्रा, नकार मुद्रा, कल्याण मुद्रा, शक्ति मुद्रा, सिंहासन मुद्रा, सनाल कमल मुद्रा।

बवासीर : जिन मुद्रा, मुक्तासुक्ति मुद्रा, स्थापनी मुद्रा, शूल मुद्रा-2, यथाजात मुद्रा, वीर मुद्रा, छत्र मुद्रा, शक्ति मुद्रा, कुन्त मुद्रा, घण्टा मुद्रा।

ब्लडप्रेशर : मुद्‌गर मुद्रा, वीर मुद्रा, कच्छप मुद्रा, गणधर मुद्रा, शंख मुद्रा, शाल्मकी मुद्रा, कल्पवृक्ष मुद्रा, चक्र मुद्रा।

बिस्तर गीला करना (नींद में पेशाब करना)– स्थापनी मुद्रा, नाद

मुद्रा, पद्मकोश मुद्रा, नेत्र मुद्रा, प्रवहण मुद्रा, डमरुक मुद्रा, बिन्दु मुद्रा, तोरण मुद्रा, महानाग पाश मुद्रा, पाशक मुद्रा, अक्ष मुद्रा।

बालों की समस्या (बाल झड़ना, बालों का सफेद होना, बालों का रूखापन आदि)– यथाजात मुद्रा, परशु मुद्रा, धनु:संधान मुद्रा, पाश मुद्रा, खड्ग मुद्रा, माला मुद्रा, ज्वलन मुद्रा।

मूत्राशय सम्बन्धी समस्याएँ (मूत्र त्याग में अवरोध, मूत्र मार्ग में संक्रमण (infection), मूत्राशय में पथरी या गांठ, मूत्राशय का बाहर लटकना (Urinary Bladder Prolapse))– प्रियंकरी मुद्रा, शंख मुद्रा, कुन्त मुद्रा, वज्र मुद्रा, कमण्डलु मुद्रा, महानागपाश मुद्रा, अक्ष मुद्रा, परमेष्ठी मुद्रा, तोरण मुद्रा, डमरूक मुद्रा।

माइग्रेन (आधाशीशी)– नागवेलि पत्रद्वय मुद्रा, शक्ति मुद्रा, नेत्र मुद्रा, पार्श्वनाथ मुद्रा, हृदय मुद्रा, अपरपाश मुद्रा, महानागपाश मुद्रा, पुंस मुद्रा।

मस्तिष्क समस्याएँ (मस्तिष्क कैन्सर, सिरदर्द, कोमा, ब्रेन ट्यूमर आदि)– ध्वज मुद्रा, आरात्रिक मुद्रा, वीर मुद्रा, नागवेलि पत्रद्वय मुद्रा, चतुरमुख मुद्रा, शक्ति मुद्रा, सनाल कमल मुद्रा, अमृत संजीवनी मुद्रा।

मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याएँ (मासिक अनियमितता, गहरा दर्द, अधिक मासिक स्राव आदि)– वज्र मुद्रा, यथाजात मुद्रा, वापी मुद्रा, कुम्भ मुद्रा, घृतमृत मुद्रा, पाशक मुद्रा, परमेष्ठी मुद्रा, अवगुण्ठन मुद्रा, श्रृंखला मुद्रा।

वायु विकार– अवगुण्ठन मुद्रा, शंख मुद्रा, कपाट मुद्रा, चक्र मुद्रा, शक्ति मुद्रा, पाश मुद्रा, शाल्मकी मुद्रा, मकार मुद्रा, तोरण मुद्रा।

वजन बढ़ना– नकार मुद्रा, शक्ति मुद्रा, सिंहासन मुद्रा, गरूड़ मुद्रा, आसन मुद्रा, प्रवचन मुद्रा, कल्याण मुद्रा, दक्षिणावर्त्त शंख मुद्रा, अश्व मुद्रा।

स्नायुतंत्र की समस्या (स्नायु तंत्र में रूकावट, स्नायु तंत्र में खिंचाव)– वीर मुद्रा, छत्र मुद्रा, शक्ति मुद्रा, शाल्मकी मुद्रा, घण्टा मुद्रा, चतुरमुख मुद्रा, अपरपाश मुद्रा, प्रवचन मुद्रा।

सिर दर्द– अस्त्र मुद्रा, महा मुद्रा, संहार मुद्रा, नागवेलि पत्रद्वय मुद्रा, पुंस मुद्रा, अक्ष मुद्रा, ध्वज मुद्रा, पाश मुद्रा, विनित मुद्रा।

स्मरण शक्ति की समस्या– हृदय मुद्रा, अपरपाश मुद्रा, पुंस मुद्रा, अक्ष मुद्रा, महा मुद्रा, वज्र मुद्रा, चक्र मुद्रा, विनित मुद्रा, माला मुद्रा।

श्वसन तंत्र सम्बन्धी समस्याएँ (श्वास फूलना, बैचेनी, घबराहट, दमा, श्वास लेने में तकलीफ आदि)– गणधर मुद्रा, वृक्ष मुद्रा, पताका मुद्रा, सौभाग्य मुद्रा, कमण्डलु मुद्रा, हृदय मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, तर्जनी मुद्रा।

स्वर यंत्र की समस्या (आवाज का दबना, मोटा होना, हकलाना आदि)– त्रिनेत्र मुद्रा, सिंह मुद्रा, अंग मुद्रा, योगिनी मुद्रा, शृंगार मुद्रा, नागफण मुद्रा, माला मुद्रा, ज्ञान कल्पलता मुद्रा।

हृदय सम्बन्धी रोग (सदमा (Shock), Cardiac failure, Disorder of Heart Valves, हार्ट अटैक Heart infections disorders) महा मुद्रा, संहार मुद्रा-2, कमण्डलु मुद्रा, सर्प मुद्रा।

हाथी पाव– दक्षिणावर्त शंख मुद्रा, चतुरमुख मुद्रा, त्रिद्वार जिनालय मुद्रा, सामान्य पद्म मुद्रा, पार्श्वनाथ मुद्रा, पद्म मुद्रा, पताका मुद्रा, नकार मुद्रा।

मानसिक एवं भावनात्मक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

क्रोध, पागलपन, घृणा, आसक्ति, अहंकार, अकेलापन आदि : कुम्भ मुद्रा, संहार मुद्रा-1, मुक्तासुक्ति मुद्रा, नाद मुद्रा, गदा मुद्रा, यथाजात मुद्रा, वीर मुद्रा, परशु मुद्रा, छत्र मुद्रा।

नशे की लत, भावात्मक अस्थिरता, अतिविश्वास (Over Confidence) : अवगुण्ठन मुद्रा, नाद मुद्रा, कमण्डलु मुद्रा, प्रार्थना मुद्रा, प्रियंकरी मुद्रा, वज्र मुद्रा, कुन्त मुद्रा, मोक्ष कल्पलता मुद्रा।

एकाग्रता की कमी, अविश्वास, अखुशहाल, स्वाभिमान की कमी : जिन मुद्रा, मंगल मुद्रा, चक्र मुद्रा, गदा मुद्रा, मुद्गर मुद्रा, पद्म मुद्रा, वीर मुद्रा, परशु मुद्रा, छत्र मुद्रा।

गाली देना, चिल्लाना, बेहोशी, अनुत्साह, लज्जा, आत्म सम्मान की कमी : हृदय मुद्रा, महा मुद्रा, संहार मुद्रा-2, कमण्डलु मुद्रा, वृक्ष मुद्रा, सर्प मुद्रा, मुद्गर मुद्रा, आरात्रिक मुद्रा, प्रार्थना मुद्रा।

आन्तरिक चिन्ता, अनुशासन हीनता, आत्महीनता, घबराहट, निष्क्रियता, अहंकार : नाराच मुद्रा, आवाहनी मुद्रा, शूल मुद्रा-2, परशु मुद्रा-1, वृक्ष मुद्रा, जिन मुद्रा, माला मुद्रा।

असफलता, अल्पज्ञान, स्मृति समस्या, मानसिक विकार आदि : अस्त्र मुद्रा, ध्वज मुद्रा, शूल मुद्रा-1, चक्र मुद्रा, परशु मुद्रा-1, यथाजात मुद्रा, आरात्रिक मुद्रा।

उन्मत्तता, अवषाद, मृत्युभय, निराशा, आनंद की कमी, अनुत्साह, अखुशहाल जीवन : हृदय मुद्रा, ध्वज मुद्रा, संहार मुद्रा-2, पद्म मुद्रा, पताका मुद्रा, सौभाग्य मुद्रा।

आध्यात्मिक रोगों के निदान में प्रभावी मुद्राएँ

क्रोध, मान, माया, लोभ, बाचालता, भय, ईर्ष्या, प्रमाद आदि : कुम्भ मुद्रा, मुक्तासुक्ति मुद्रा, नाद मुद्रा, गदा मुद्रा, यथाजात मुद्रा, वीर मुद्रा, परशु मुद्रा, छत्र मुद्रा।

सप्तव्यसन की लत, चंचलता, कामुकता, अभिमान : शूल मुद्रा-1, जिन मुद्रा, नाद मुद्रा, कमण्डलु मुद्रा, प्रार्थना मुद्रा, प्रियंकरी मुद्रा, खड्ग मुद्रा।

आत्म बल की कमी, एकाग्रता की कमी, शंकालु वृत्ति आदि : स्थापनी मुद्रा, अवगुण्ठन मुद्रा, संहार मुद्रा-1, मंगल मुद्रा, चक्र मुद्रा, गदा मुद्रा, मुद्गर मुद्रा, वीर मुद्रा, परशु मुद्रा, छत्र मुद्रा।

वाणी पर नियंत्रण, असंवेदनशीलता , हिंसक भावना आदि : कमण्डलु मुद्रा, परशु मुद्रा, सर्प मुद्रा, मुद्गर मुद्रा, आरात्रिक मुद्रा, प्रार्थना मुद्रा, शंख मुद्रा, सौभाग्य मुद्रा, वृक्ष मुद्रा।

ज्ञान का अभिमान, मायाचारी, अनुत्साह, अंधी श्रद्धा, सम्यक रुचि का अभाव : ध्वज मुद्रा, शूल मुद्रा-2, चक्र मुद्रा, परशु मुद्रा-1, यथाजात मुद्रा, आरात्रिक मुद्रा, वीर मुद्रा, सामान्य पद्म मुद्रा, योग मुद्रा, अस्त्र मुद्रा-2, महा मुद्रा, शंख मुद्रा,वापी मुद्रा, नाद मुद्रा, परमेष्ठी मुद्रा, महा मुद्रा।

मुद्रा और मानव का सम्बन्ध अनादिकाल से रहा हुआ है। मानव के द्वारा बनाई जाने वाली विभिन्न आकृतियाँ एवं भाव भंगिमाएँ योग की भाषा में मुद्रा कहलाती है। जैन धर्म में आगम काल से ही मुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होता है एवं इनकी संख्या में क्रमश: विकास ही देखा जाता है।

प्रत्येक धार्मिक आराधना में मुद्राओं का विशेष स्थान है। चाहे प्रतिक्रमण

हो या पूजा-उपासना। हर क्रिया के लिए कुछ विशिष्ट मुद्राओं का उल्लेख जैनाचार्यों द्वारा किया गया है। इन मुद्राओं से कार्य सिद्धि में सहायता तो प्राप्त होती ही है साथ ही साथ दैहिक स्वस्थता, वैचारिक उर्ध्वता एवं अनेकानेक सकारात्मक सुपरिणामों की भी प्राप्ति होती है। परंतु हमारा दुर्देव है कि अधिकांश आराधक वर्ग इन सबसे अज्ञात रहते हुए मात्र परम्परा निर्वाह या अंधानुकरण करने के कारण इन मुद्राओं का यथोक्त परिणाम प्राप्त नहीं कर पाते। अनेकशः लोग तो इनकी सम्यक विधि से ही अनभिज्ञ होते हैं। सम्यक जानकारी के अभाव में इन क्रिया विधियों के प्रति श्रद्धा भाव उत्पन्न ही नहीं होते। ध्यान और प्राणायाम के समान ही मुद्रा प्रयोग रोग उपशान्ति का प्रमुख उपाय है। Personal Development और Body maintianence के लिए मुद्रा प्रयोग अचुक उपाय है। इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए जैन धर्म ग्रन्थों में प्राप्त अबतक की सभी मुद्राओं का सचित्र स्वरूप वर्णन किया है। साथ ही साथ विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में इसके लाभ एवं इनके पीछे छिपे हुए रहस्यमयी हेतुओं को भी उजागर किया। जैन धर्म की वैज्ञानिकता मिश्रित आध्यात्मिकता का यह सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इस कृति के उद्देश्य पूर्ति एवं सार्थकता तभी होगी जब सुधि वर्ग के मन में मुद्रा प्रयोग के प्रति जागरूकता आएगी।

आशा है कि इस पुस्तक के पठन के बाद क्रिया-कांड को निरर्थक एवं अप्रासंगिक मानने वाले युवा चेतना के भीतर जिनधर्म के प्रति अनुराग वृद्धि एवं जन सामान्य में विधि-विधानों के लिए सचेष्टता की अभिवृद्धि होगी।

●

सज्जनमणि ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त सूची पत्र

क्र.	नाम	ले./संपा./अनु.	मूल्य
1.	सज्जन जिन वन्दन विधि	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
2.	सज्जन सद्ज्ञान प्रवेशिका	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
3.	सज्जन पूजामृत (पूजा संग्रह)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
4.	सज्जन वंदनामृत (नवपद आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
5.	सज्जन अर्चनामृत (बीसस्थानक तप विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
6.	सज्जन आराधनामृत (नव्वाणु यात्रा विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
7.	सज्जन ज्ञान विधि	साध्वी प्रियदर्शनाश्री	सदुपयोग
		साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
8.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
9.	तप से सज्जन बने विचक्षण	साध्वी मणिप्रभाश्री	सदुपयोग
	(चातुर्मासिक पर्व एवं तप आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
10.	मणिमंथन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
11.	सज्जन सद्ज्ञान सुधा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
12.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
13.	सज्जन गीत गुंजन (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
14.	दर्पण विशेषांक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
15.	विधिमार्गप्रपा (सानुवाद)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
16.	जैन विधि-विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध सार	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
17.	जैन विधि विधान सम्बन्धी साहित्य का बृहद् इतिहास	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
18.	जैन गृहस्थ के सोलह संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

19.	जैन गृहस्थ के व्रतारोपण सम्बन्धी संस्कारों का प्रासंगिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
20.	जैन मुनि के व्रतारोपण सम्बन्धी विधि-विधानों की त्रैकालिक उपयोगिता, नव्ययुग के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
21.	जैन मुनि की आचार संहिता का सर्वाङ्गीण अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
22.	जैन मुनि की आहार संहिता का समीक्षात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
23.	पदारोहण सम्बन्धी विधियों की मौलिकता, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
24.	आगम अध्ययन की मौलिक विधि का शास्त्रीय अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
25.	तप साधना विधि का प्रासंगिक अनुशीलन, आगमों से अब तक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
26.	प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रीय पर्यवेक्षण व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
27.	षडावश्यक की उपादेयता, भौतिक एवं आध्यात्मिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
28.	प्रतिक्रमण, एक रहस्यमयी योग साधना	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
29.	पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता, मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
30.	प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
31.	मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
32.	नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

33.	जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
34.	हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता, चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
35.	बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
36.	यौगिक मुद्राएँ, मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
37.	आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
38.	सज्जन तप प्रवेशिका	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
39.	शंका नवि चित्त धरिए	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00

●

विधि संशोधिका का अणु परिचय

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी (D.Lit.)

नाम	:	नारंगी उर्फ निशा
माता-पिता	:	विमलादेवी केसरीचंद छाजेड
जन्म	:	श्रावण वदि अष्टमी, सन् 1971 गढ़ सिवाना
दीक्षा	:	वैशाख सुदी छट्ठ, सन् 1983, गढ़ सिवाना
दीक्षा नाम	:	सौम्यगुणा श्री
दीक्षा गुरु	:	प्रवर्त्तिनी महोदया प. पू. सज्जनमणि श्रीजी म. सा.
शिक्षा गुरु	:	संघरत्ना प. पू. शशिप्रभा श्रीजी म. सा.
अध्ययन	:	जैन दर्शन में आचार्य, विधिमार्गप्रपा ग्रन्थ पर Ph.D. कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम कंठस्थ, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान।
रचित, अनुवादित एवं सम्पादित साहित्य	:	तीर्थंकर चरित्र, सद्ज्ञानसुधा, मणिमंथन, अनुवाद-विधिमार्गप्रपा, पर्युषण प्रवचन, तत्वज्ञान प्रवेशिका, सज्जन गीत गुंजन (भाग : १-२)
विचरण	:	राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, थलीप्रदेश, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़।
विशिष्टता	:	सौम्य स्वभावी, मितभाषी, कोकिल कंठी, सरस्वती की कृपापात्री, स्वाध्याय निमग्ना, गुरु निश्रारत।
तपाराधना	:	श्रेणीतप, मासक्षमण, चत्तारि अट्ठ दस दोय, ग्यारह, अट्ठाई बीसस्थानक, नवपद ओली, वर्धमान ओली, पखवासा, डेढ़ मासी, दो मासी आदि अनेक तप।

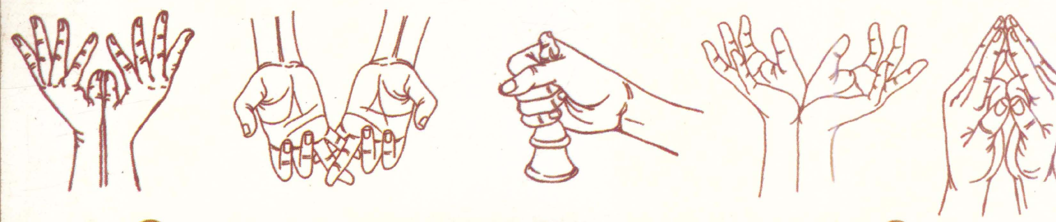

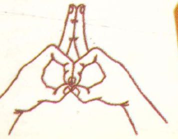

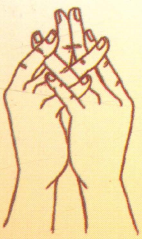

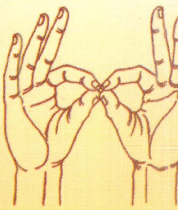

सज्जन हृदय के अमृत स्वर

- मुद्रा योग द्वारा कैसे करें सप्त चक्र आदि का जागरण?
- विधिमार्गप्रपा के अनुसार शरीर एवं वातावरण शुद्धि में कौनसी मुद्राएँ उपयोगी?
- आचार दिनकर में वर्णित मुद्राओं के सांकेतिक एवं प्रायोगिक हेतु क्या है?
- मुद्रा विचार में उल्लिखित मुद्राएँ साधना की दृष्टि से कितनी प्रासंगिक?
- सप्त चक्र एवं चैतन्य केन्द्र आदि के जागरण में जैन मुद्रा विज्ञान कैसे सहयोगी?
- विभिन्न आचार्यों द्वारा कुछ समान मुद्राओं का उल्लेख क्यों?

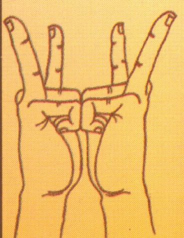

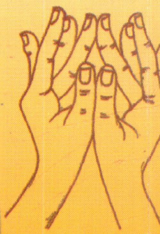

SAJJANMANI GRANTHMALA

Website : www.jainsajjanmani.com,E-mail : vidhiprabha@gmail.com

ISBN 978-81-910801-6-2 (XVII)